चित्रा मुद्गल का कथा-साहित्य : संवेदना एवं शिल्प

पीएच.डी (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

हिन्दी अध्ययन शाखा

शणै गोंयबाब भाषा और साहित्य महाशाला

गोवा विश्वविद्यालय

के द्वारा

शोधार्थी

प्रिया सुरेश गोसावी

हिन्दी अध्ययन शाखा

शणै गोंयबाब भाषा और साहित्य महाशाला

गोवा विश्वविद्यालय

गोवा

नवंबर 2022

DECLARATION

I, Priya Suresh Gosavi here by declare that this thesis entitled **'चित्रा मुद्गल का कथा-साहित्य : संवेदना एवं शिल्प'** **'CHITRA MUDGAL KA KATHA-SAHITYA SAMVEDNA EVAM SHILP'** represents work which has been carried out by me and that it has not been submitted, either in part or full, to any other University or Institution for the award of any research degree.

Place: Taleigao Plateau

Dated:

Priya Suresh Gosavi
Research Scholar
Hindi Discipline
Shenoi Goembab School of
Languages & Literature
Goa University

CERTIFICATE

We here by certify that the above Declaration of the candidate, Priya Suresh Gosavi is true and the was work was carried out under my/our supervision.

Research Guide
Prof. Vrushali Mandrekar
Guide
Vice Dean (Academic)
Hindi Discipline
Shenoi Goembab School of Languages & Literature
Goa University
Taleigao Plateau
Goa (403206)

प्राक्कथन

संवेदनशीलता मनुष्य में ईश्वर प्रदत्त गुण है, जो सभी में एक समान नहीं होता । यदि संवेदनहीन मनुष्य निर्दयी होता है तो संवेदनशील मनुष्य उदार होता है । साहित्यकार जिस सामाजिक परिवेश में जीवनयापन करता है, उसकी चुनौतियाँ तथा घटनाओं के प्रसंग उसके जन्मजात संवेदना को झकझोरती हैं और उनसे उद्वेलित हो उठता है। साहित्यकार की संवेदना का यही गुण उसकी रचना का साधन बनता है । यह संवेदना जितनी प्रखर होगी उसकी रचना भी उतनी ही उत्तम एवं कालजयी बनती है । साहित्य कुछ संवेदनाएं परिवेश से अर्जित करता है कुछ स्वयं के अनुभव से । यही संवेदनाएं साहित्यकार के सम्मुख जो यथार्थ प्रस्तुत करती है उसे वह अपने अनुभव, नैतिक बोध एवं जीवन दृष्टि के आधार पर विवेचित करता है ।

साहित्य जगत में चित्रा मुद्गल की अपनी एक विशिष्ट पहचान है । साहित्य के विभिन्न विधाओं में उनका लेखन हुआ है । चित्रा जी का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा का धनी है । उन्होंने अपने साहित्य में समाज के हर एक वर्ग को हमारे सामने उद्घाटित किया है । लेखिका ने अपने साहित्य में निम्न-मध्य वर्ग का चित्रण किया है, अन्याय का विरोध किया है, तो कही अंधविश्वास को मानने वाले समाज को हमारे सामने प्रस्तुत किया है । उनके पात्र चेतनाशील, प्रगतिशील, उनमें नीडरता की वृत्ति मुखर है, सुधारवादी दृष्टि है, वे किसी के अधीन रहना नहीं चाहते, यही सब इसी कारण है कि उनका परिवेश ही आधुनिक मान्यताओं को मानने वाला है । इनकी रचनाएं भूमंडलीकृत परिवेश में नव स्त्री के नव निर्माण की हिमायती रही है ।

किसी के मन से उपजी विशेष सहानुभूति को संवेदना कहते है । संवेदना ज्ञानेंद्रियों की अनुभूति ही होती है । मानवीय संवेदनाओं के अंतर्गत रागात्मक, सुखात्मक तथा दु:खात्मक संवेदनाएँ आती है । जो मनुष्य को दूसरों के प्रति सोचने के लिए बाध्य करती है । समाज उसको अपना सा प्रतीत होता है और वह संवेदनाओं के जरिए उससे एकरूप हो जाता है ।

आज भूमंडलीकरण के इस दौर में समाज संवेदनाहीन बनता जा रहा है । चित्रा जी ने अपने कथासाहित्य में जनसामान्य की संवेदनाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है । उनकी विचारधारा, संवेदनशीलता से प्रभावित समाज एवं उससे प्रभावित साहित्य का आपसी सहसंबंध होता है । अतः चित्रा मुद्गल के कथा-

साहित्य में उपलब्ध संवेदना तथा शिल्प का विश्लेषण करना ही प्रस्तुत अनुसंधान के अंतर्गत शोधकर्ती का प्रमुख उद्देश्य है।

प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से मानवीय संवेदना के क्षेत्र बहुत कम कार्य हुआ है। इसलिए मैंने **'चित्रा मुद्गल का कथा-साहित्य : संवेदना एवं शिल्प'** इस विषय का चयन किया ताकि चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में निहित अनेक संवेदनाएँ ज्ञात हो।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को अध्ययन की दृष्टि से पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय **'चित्रा मुद्गल : व्यक्तित्व और रचना संसार'** में लेखिका के जन्म तथा बचपन, शिक्षा, वैवाहिक जीवन, विचारधारा को प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में विद्रोह का स्वर दिखाई देता है। इस अध्याय में उन्हें मिले अनेक पुरस्कारों तथा उनकी साहित्यिक कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक **'संवेदना: अवधारणा एवं स्वरूप'** है। प्रस्तुत अध्याय में संवेदना: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप, साहित्य और संवेदना का संबंध, संवेदना के विविध रूप इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही मानवीय संवेदनाओं के विविध रूपों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय **'चित्रा मुद्गल के कहानी साहित्य में संवेदना'** में चित्रा मुद्गल के कहानी साहित्य के संबध में मानवीय संवेदनाओं का विवेचन तथा विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय **'चित्रा मुद्गल के उपन्यास साहित्य में संवेदना'** के अंतर्गत चित्रा मुद्गल के उपन्यासों का सोदाहरण विश्लेषण किया है।

पंचम अध्याय **'चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में शिल्प - विधान'** अंतर्गत कथा-साहित्य की भाषाशैली, शिल्प का स्वरूप, शैलीगत विशेषताएं, कथा-साहित्य का शिल्प पक्ष की दृष्टि से अध्ययन किया है, भाषिक संरचना के विविध आयामों को कथा-साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

अंतिम अध्याय **'उपसंहार'** के अंतर्गत अनुसंधान की उपलब्धि पर विवेचन तथा विश्लेषण किया गया है।

कृतज्ञता ज्ञापन

इस अनुसंधान कार्य को निहित अवधि में पूर्ण करने में गोवा विश्वविद्यालय, शणै गोंयबाब भाषा और साहित्य महाशाला, हिन्दी अध्ययन शाखा की उप अधिष्ठाता (शैक्षिक) परम आदरणीय तथा स्नेहशील व्यक्तित्व की धनी प्रो. डॉ. वृषाली माद्रकेर के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ। उनके मार्गदर्शन तथा प्रोत्साहन के कारण ही यह शोध कार्य संभव हो सका।

प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित लेखिका चित्रा मुद्गल जी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। आपने मुझे अपने साहित्य से संबंधित सामग्री प्रदान की जो मेरे शोध कार्य के लिए लाभदायक सिद्ध हुई।

अनुसंधान कार्य की पूर्ति में विषय विशेषज्ञ, कला, विज्ञान एवं वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, सांखळी, गोवा की उपप्राचार्य (शैक्षिक), अध्यक्ष, हिन्दी विभाग की आदरणीय प्रो. सोनिया सिरसाट, के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने मेरे शोधकार्य में रुचि दिखाई और समय-समय पर मुझे मार्गदर्शन दिया। आदरणीय प्रो. रवींद्रनाथ मिश्र, डॉ. इशरत खान, डॉ. बिपिन तिवारी तथा हिन्दी विभाग के सभी शिक्षकों का मैं आभार व्यक्त करती हूं। श्रीमती संजना म्हामल, श्रीमती सुचिता फडते तथा दिपाली आरोस्कर के सहयोग के लिए धन्यवाद।

विद्या प्रबोधिनी वाणिज्य, शिक्षण, संगणक एवं व्यवस्थापन के पूर्व प्राचार्य प्रो. पाटील, उपप्राचार्य प्रो. सुखाजी नायक, आदरणीय प्राचार्य डॉ. भूषण भावे, उपप्राचार्य तथा शिक्षण प्रशिक्षण के विभागाध्यक्ष डॉ. अनिल ठोसरे, वाणिज्य की विभागाध्यक्षा डॉ. उज्वला हणजुनकर के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

गोवा विश्वविद्यालय के ग्रंथालय तथा गोवा के अन्य विभिन्न ग्रंथालयों के कर्मचारियों की भी मैं आभारी हूँ। साथ ही मेरी बहन प्रा. प्रीति गोसावी तथा मेरी छात्राएँ समीक्षा नाईक, विंदा पोळेकर, ऐश्वर्या वारंग, प्रतिमा गडेकर के प्रति भी आभार प्रकट करना चाहूँगी। जिन्होंने पग-पग पर मेरा साथ निभाया।

मेरी इस उपलब्धि में मेरे पिता श्री. सुरेश गोसावी, माँ सुशांति गोसावी, छोटी बहने प्रीति, सिमा, वर्षा, हर्षदा तथा छोटा भाई लखन गोसावी, अभिषेक गोसावी, मेरे स्व. ससुर मनोहर गोसावी तथा मेरी सांस

मंदाकिनी गोसावी का विशेष योगदान रहा हैं। मेरे पति श्री.मनोज गोसावी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। उन्होंने मुझे पग-पग पर साथ दिया और मेरा मार्गदर्शन किया। उनके आशीर्वाद तथा सहयोग के बिना शायद ही यह कार्य सफल हो पाता। उनके प्रति त्रिवार धन्यवाद तथा मेरे छोटे बेटे आयुष गोसावी को ढेर सारा प्यार और आशीष।

इस शोध कार्य को संपन्न करते समय जिन-जिन व्यक्तियों ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की, उन सभी के प्रति आदरयुक्त प्रणाम ।

दिनांक - भवदीय

स्थान - प्रिया सुरेश गोसावी

समर्पण

पूज्य माँ श्रीमती सुशांति सुरेश गोसावी

एवं

साहित्य और शोध की ललक जागृत करनेवाले

पिताजी स्मृतिशेष श्री. सुरेश ल. गोसावी

को सादर समर्पित

जिनका स्नेह और आशीष ही

मेरा सबसे बड़ा संबल है।

चित्रा मुद्गल का कथा-साहित्य : संवेदना एवं शिल्प

अनुक्रमाणिका

प्राक्कथन **I-IV**

1. चित्रा मुद्गल : व्यक्तित्व और रचना संसार **1-97**

1.1 चित्रा मुद्गल : व्यक्तित्व

1.1.1. जन्म तथा बचपन

1.1.2. शिक्षा

1.1.3. विवाह और पारिवारिक जीवन

1.1.4. विचारधारा-चित्रा मुद्गल पर लेखकों का प्रभाव

1.1.5. चित्रा मुद्गल के रचनाओं में विद्रोह का स्वर

1.1.6. सम्मान तथा पुरस्कार

1.1.7 सदस्यता

1.2 चित्रा मुद्गल : रचना संसार

1.2.1 चित्रा मुद्गल के कहानी संग्रह

1.2.2 चित्रा मुद्गल के उपन्यास

1.2.3 बाल उपन्यास

1.2.4 लेख संकलन

1.2.5 नाटक

1.2.6 संपादित पुस्तके

1.2.7 अन्य अनुवादित साहित्य

1.2.8 फिल्म निर्माण में योगदान

1.2.9 शिक्षा संस्थानों में अध्ययनार्थ साहित्य

1.2.10. कहानी साहित्य का सामान्य परिचय

1.2.10.1 आदि-अनादि भाग – 1

1.2.10.2 आदि-अनादि भाग – 2

1.2.10.3 आदि-अनादि भाग – 3

1.2.11. उपन्यास साहित्य का सामान्य परिचय

1.2.11.1 एक जमीन अपनी

1.2.11.2 आवां

1.2.11.3 गिलिगडु

1.2.11.4 पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा

निष्कर्ष

2. संवेदना: अवधारणा एवं स्वरूप 98-138

प्रस्तावना

2.1 संवेदना: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

2.1.1 संवेदना: विभिन्न विद्वानों के मत

2.1.2. पाश्चात्य विचारकों की संवेदना संबंधित परिभाषाएं

2.2 साहित्य और संवेदना

2.3 संवेदना के विविध रूप

2.3.1 वैयक्तिक संवेदना

2.3.2 सामाजिक संवेदना

2.3.3 राजनीतिक संवेदना

2.3.4 धार्मिक संवेदना

2.3.5 सांस्कृतिक संवेदना

2.3.6 आर्थिक संवेदना

2.3.7 साहित्यिक संवेदना

2.3.8 मानवीय संवेदनाओं के विविध रूप

2.3.8.1 रागात्मक संवेदना

2.3.8.2 सुखात्मक संवेदना

2.3.8.3 दु:खात्मक संवेदना

निष्कर्ष

3. चित्रा मुद्गल के कहानी साहित्य में संवेदना **139-221**

प्रस्तावना

3.1 रागात्मक संवेदनाएं

3.1.1 संयोगात्मक संवेदनाएं

3.1.2 वियोगात्मक संवेदनाएं

3.1.3 मूल प्रवृत्तिपरक संवेदनाएं

3.1.3.1 करुणापरक संवेदना

3.1.3.2 क्रोधपरक संवेदना

3.1.3.3 कामपरक संवेदना

3.1.3.4. ईर्ष्यापरक संवेदना

3.1.3.5 घृणापरक संवेदना

3.1.3.6 अहंभावना

3.1.3.7 लोभपरक संवेदना

3.1.3.8 दैन्यपरक संवेदनाः

3.1.3.9 भयपरक संवेदना

3.1.4 मानवेतर प्रेमपरक संवेदना

3.1.4.1 मनुष्य एवं अचेतन वस्तुओं का सहसंबंध

3.1.4.1 मानव का मानवेतर चेतन प्राणियों से सहसंबंध

3.2 सुखात्मक संवेदनाएं

3.2.1 पारिवारिक जीवन से संबंध्द

3.2.2 राजनीतिक जीवन से संबंद्ध

3.2.3 आर्थिक जीवन से संबद्ध

3.2.4 धार्मिक जीवन से संबद्ध

3.3 दु:खात्मक संवेदनाएं

3.3.1 संयुक्त परिवारों का विघटन

3.3.2 पारिवारिक जीवन की समस्याएँ

निष्कर्ष

4. चित्रा मुद्गल के उपन्यास साहित्य में संवेदना 222-300

प्रस्तावना

4.1 रागात्मक संवेदनाएं

4.1.1 संयोगात्मक संवेदनाएं

4.1.2 वियोगात्मक संवेदनाएं

4.1.3 मूल प्रवृत्तिपरक संवेदनाएं

4.1.3.1 करुणापरक संवेदना

4.1.3.2 क्रोधपरक संवेदना

4.1.3.3 कामपरक संवेदना

4.1.3.4. ईर्ष्यापरक संवेदना

4.1.3.5 घृणापरक संवेदना

4.1.3.6 अहंभावना

4.1.3.7 लोभपरक संवेदना

4.1.3.8 दैन्यपरक संवेदनाः

4.1.3.9 भयपरक संवेदना

4.1.4 मानवेतर प्रेमपरक संवेदना

4.1.4.1 मनुष्य एवं अचेतन वस्तुओं का सहसंबंध
4.1.4.1 मानव का मानवेतर चेतन प्राणियों से सहसंबंध

4.2 सुखात्मक संवेदनाएं

4.2.1 पारिवारिक जीवन से संबंध्द

4.2.2 राजनीतिक जीवन से संबंद्ध

4.2.3 आर्थिक जीवन से संबद्ध

4.2.4 धार्मिक जीवन से संबद्ध

4.3 दु:खात्मक संवेदनाएं

4.3.1 संयुक्त परिवारों का विघटन

4.3.2 पारिवारिक जीवन की समस्याएँ

निष्कर्ष

5. चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में शिल्प – विधान **301-338**

5.1 शिल्प:परिभाषा एवं स्वरूप

5.2 शैलीगत विशेषताएँ

5.3 भाषिक संरचना विविध आयाम

5.3.1 शब्द योजना

5.3.2 भाषिक विधान की विशेषताएँ

5.3.3 बिंब योजना

निष्कर्ष

उपसंहार **339-344**

परिशिष्ट **345-354**

प्रथम अध्याय

1.चित्रा मुद्गल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

चित्रा मुद्गल आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य की बहुचर्चित तथा सम्मानित रचनाकार है। जिन्हें आधुनिक हिंदी की सर्वाधिक पठनीय रचनाकारों में से एक माना जाता है। उनके लेखन में समूचा दौर दिखता है। मुद्गल के लेखन में निरंतर समाप्त होती जा रही मानवीय संवेदनाओं का चित्रण दिखाई देता है वही दूसरी ओर नए जमाने की रफ्तार में फँसी जिंदगी की मजबूरियों का चित्रण बहुत ही सलीके से हुआ है। इनकी रचनाओं में दलित शोषित संवर्ग को विशेष स्थान मिला है। उन्होंने लोकमंगल तथा समष्टिहीत के लिए अपनी लेखनी चलाई।

साहित्य जन चेतना का इतिहास होता है। साहित्य की पक्षधरता जनसामान्य के बेहतरी के लिए विचारधारा की नींव रखती है। समाज की विषमताओं को दूर करने के लिए एवं एक बेहतर समाज का दर्पण होता है इस बात से चित्राजी असहमत है क्योंकि वे मानती है कि दर्पण केवल बाहरी चेहरा दिखाता है, चेहरे के भीतर की वास्तविकता नहीं दर्शाता है।

आपका मानना है कि सहस्रों वर्षों से जो साहित्य रचा गया उसमें राजे-रजवाडों की कथानक को ही बढा-चढाकर लिखा गया। आम-आदमी को कहीं भी स्थान नहीं दिया गया। मुंशी प्रेमचंदजी ने पहली बार जन की बात उठाई।। लेखिका भी प्रेमचंद जी की तरह "साहित्य को राजनीति के आगे चलने वाली मशाल मानती है। उनका मानना है कि साहित्य को अपनी भूमिका पहचाननी चाहिए।"[1]

लेखिका 'स्वांत सुखाय' के लिए नहीं लिखती है क्योंकि लिखकर कोई सुखी नहीं हो सकता। वो लोगों की समस्या की आवाज बनने के लिए कलमरूपी मशाल लेकर निकलती है। समस्या से जुड़कर के उसका रास्ता खोजने के लिए वे लिखती है। वे पाठकों के साथ उस समस्या से जुड़े वर्ग के साथ जुड़कर उसका हिस्सा बनकर उसकी आवाज में अपनी आवाज पिरोकर उसकी तकलीफ को अपने ऊपर बीतता महसूस करके लेखिका ने साहित्य का समाजोपयोगी सृजन किया है, वे ड्राईंग रूम में बैठकर लिखने वाली लेखिका नहीं है। वे मानती है –" मैं अपनी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए लिखती हूँ। स्वयं के होने को महसूस करने और उस होने की सामाजिक उपस्थिति और उस सामाजिक उपस्थिति के दायित्वों और सरोकारों को पूरा करने के लिए लिखती हूँ।"[2]

कथाकार दैनंदिन जीवन के अनुभवों को संवेदना के माध्यम से समाज तक पहुँचाता है, उसका एक विशेष महत्व रहता है। "यह संवेदना कोई गढ़ी हुई मूर्ति नहीं है, वरन् वह समय के तात्कालिक दबाव से प्रभावित होती है। यदि समकालीन जीवन-संदर्भों, मनुष्य के यथार्थ परिवेश और जीवंत तत्वों की उपेक्षा कर दी जाएगी और उसका कोई अर्थ शेष नहीं रहेगा।"[3]

साहित्यकार की पहचान हमें उनके कृतियों के माध्यम से होती है। एक साहित्यकार को जानने के लिए अनुसंधाता को उनके व्यक्तित्व के बारे में जानना बहुत जरूरी है ताकि साहित्यकार का जीवन परिचय, उसकी अनुभूति, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ, तत्कालीन समाज और इसके साथ समकालीन प्रभाव उनके साहित्य पर अपनी एक छाप छोड़ता है। अपने अनुभवों को साहित्यकार अपनी लेखनी के माध्यम से प्रस्फुटित करता है और उसी का प्रतिबिंब उसके साहित्य पर पड़ता है। अतः किसी साहित्यकार के साहित्य का अध्ययन करते समय उसके व्यक्तित्व का अध्ययन करना आवश्यक है।

1.1 चित्रा मुद्गल : व्यक्तित्व

समाज में हर किसी का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण होता है। रचनाकार अपने सृजन से अपने व्यक्तित्व की पहचान समाज को देता है।

1.1.1 जन्म तथा बचपन

चित्रा जी का जन्म 10 दिसंबर 1944 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के निहाली खेड़ा गाँव में एक जमींदार घराने के ठाकुर प्रताप सिंह के यहाँ हुआ। उनकी माँ विमला ठाकुर उत्तर प्रदेश के जनपद प्रतापगढ़ के बयालीस गाँवों के तालुकेदार ठाकुर देवराद कुँवर की बेटी थी। चित्रा के पिता ठाकुर प्रताप सिंह आई. एन.एस. अश्विनी, मद्रास में नेवी के कमांडर के पद पर कार्यरत थे। उनके पिताजी का तबादला चेन्नई, मुंबई, गोवा, विशाखापट्टणम आदि स्थानों पर जाने और रहने के कारण उनका अनुभव बढ़ता गया। भारत के विभिन्न राज्यों के लोगों की जिंदगी और समस्याओं को निकट से देखने का अवसर उनको मिला।

पिताजी की सामंतवादी मानसिकता एवं कार्यों ने चित्रा जी के बाल मन को बहुत प्रभावित किया। उनके पिता में जमींदार खानदान के गुण मौजूद थे। वह महंगी शराब पीते, जंगली जानवरों का शिकार करते थे। लेखिका कहती है -"उनकी अपनी अफसरों वाली दिनचर्या थी जिसमें हमारी, हम भाई-बहनों की,

माँ की, कोई जगह नहीं थी। हम पाँच रुपये माँगते तो सौ मिल जाते, स्कूल से किसी प्रतियोगिता में हम कप जीतकर लाते तो उस पर भी उनकी कोई प्रतिक्रिया न होती। जैसे उन सबका कोई मूल्य ही नहीं था उनकी नजर में।"[4] उनकी माँ सीधी-साधी घर में ही पढ़ी-लिखी घरेलू औरत थी। उनके माता-पिता के बीच मेल नहीं था। लेखिका अपनी माँ के संदर्भ में कहती है- "माँ के साथ पिताजी का व्यवहार असंतोषजनक और बुरा था।"[5] इसके कारण चित्रा जी के मन में माँ के प्रति लगाव बढ़ा, वहीं पिताजी के प्रति विद्रोह की भावना जगी।

चित्रा जी के पिताजी अंग्रेजी में रोमांटिक कविताएँ और नाटक लिखते थे। वे अपने पिता के बारे में कहती है -"पिता की मृत्यु के बाद मुझे एक रजिस्टर प्राप्त हुआ जिसमें हिन्दी में एक नाटक लिखा हुआ था। अंग्रेजी में रोमैंटिक कविताएँ करना, दूसरों पर प्रेम करना उनकी कमजोरी थी। उनके कठोर, दुस्साहसी, आकर्षक, रोबीले व्यक्तित्व का यह संवेदनशील रचनात्मक पक्ष मेरे लिए सर्वथा अनजाना था।"[6] एक प्रकार से कह सकते हैं कि चित्रा को लेखन की रुचि पिताजी से प्राप्त हुई।

लेखिका बचपन से ही जिज्ञासु स्वभाव की थी। घर, परिवार तथा समाज में जो उनके परिवार के पुरुष वर्ग का वर्चस्व था उसे देखकर वह हमेशा प्रश्न करती थी। एक घटना का जिक्र करते हुए चित्रा कहती है -गाँव वाले घर में एक बहुत बड़ा तालाब बना हुआ था। उसपर उनकी नजर पड़ गयी। उसके बारे में उन्होंने अपनी माँ, दादी से पूछा उन्होंने उसे गर्मियों में सोने के लिए बनाया गया है ऐसे कहा। उस तलघर को देखकर उनके मन में शंका आ रही थी, "सोने के लिए बनवाया गया था तो उसमें कोई सोता क्यों नहीं ? न उसमें कोई झरोखा हैं, न रोशनदान ! हफ्तेभर भी कोई भूल से बंद रह जाए तो जिंदा बच पाएगा।"[7] दादाजी से प्रश्न किए। दादाजी ने समझा बुझाकर उनको शांत किया। पर दहाड़े हुए उन्होंने दादी से पूछा था,"कोटवा वाली इस बच्ची को तलघर की राह किसने दिखायी ? आज इस बच्ची ने जो सवाल मुझसे किया है वह घर में आने वाले आगन्तुकों से भी कर सकती है ख्याल रखे आइन्दा ऐसी कोई गलती यदि दुबारा हुई तो एक-एक की खाल उधेड़ कर इसी तलघर में फिकवा दूँगा। समझा देना सारी दुलहिनों को।"[8] दादाजी के देहरी लाँघते ही उन्होंने लेखिका को पटक-पटक कर कूटा था तथा यह भी समझाया था कि घर में और भी बच्चे हैं एक तुम्हीं क्यों बाल में खाल निकालती रहती हो ? परंतु वह अपने चंचल स्वभाव के कारण हर जगह पर घूमती-नाचती थी।

1.1.2. शिक्षा

चित्रा जी की प्रारंभिक शिक्षा मुंबई के सेंट्रल स्कूल में सन् 1952-1953 तक हुई। उसके बाद बालिका चित्रा को अपने दादाजी के गाँव निहाली खेड़ा में भेज दिया गया। वहाँ की कन्या पाठशाला में चित्रा जी की दूसरी, तीसरी और चौथी कक्षा की पढ़ाई संपन्न हुई। वहाँ के पाठशाला के बारे में वे कहती है, "फर्श पर टाट की पट्टियाँ बिछी हुई हैं। बच्चियाँ उसी पर बैठती है। धूल और मिट्टी भरे फर्श पर बड़ी अध्यापिका जी कभी-कभी उन्हें पढ़ाने आती हैं। मनोरमा बहन जी उन लोगों को समवेत स्वर में गिनती रटवाती हैं। बच्ची कक्षा में सहमी-सहमी बैठी रहती हैं। कन्या पाठशाला वैसी क्यों नहीं हैं, जैसा कि विले पारले बंबई में उसका कई मालोवाला सुंदर सा स्कूल था।"[9]

अपने दादाजी के घर में रहकर पढ़ते समय उनके शिशु मन ने देखा कि उनके घर में काम करनेवाले निम्नवर्ग के लोग उनके घरवालों द्वारा कैसे शोषित और पीड़ित है। अपनी बचपन की कुछ घटनाएँ चित्रा जी के मन में अविस्मरणीय रूप से अंकित है। उन घटनाओं के कारण ही चित्रा जी के मन में काम करनेवाले भीखू नायक लड़के को गेहूँ की चोरी करने की बात को लेकर उनके ताऊजी ने नीम के पेड़ के तने से बाँध कर इतना पीटा कि उसका शरीर लहूलुहान हो गया। भिखू के माता-पिता ने ताऊजी के पैर पकड़ कर क्षमा मांगी। फिर भी उनका मन नहीं पसीजा। मार खा-खा कर भिखू की गर्दन बँधी देह पर एक ओर लुढ़क गई थी। "बच्ची अब तक स्तब्ध हैं। उसे अच्छी तरह याद हैं, वेदना से छटपटा रहे भीखू की ही भाँति गरदन एक ओर मुर्छित न हो जाए..."[10] यह दर्दनाक दृश्य चित्रा ने स्वयं देखा और डर गई थी। 'मेरी रचना प्रक्रिया' में चित्रा जी स्वयं लिखती है, "जब वह मेरे जैसा ही है, फिर इसे जो खाना दिया जाता है, वह इतना कम क्यों होता है कि उसे अनाज की चोरी करनी पड़ती है, क्यों बड़े पापा इसे इतनी निर्दयता से मारते हैं ? "[11] उनको समाज में शोषितों पर होते अत्याचार पर क्रोध आता है। तभी से बालिका चित्रा के मन में विद्रोह का भाव पैदा हुआ। ऐसी घटनाएँ उनको विचलित करती थी। वह अपने पिता को पत्र लिखती है, "वे उसके पास क्यों नहीं रह सकते ? यहाँ गाँव में क्यों छोड़ दिया है उन्होंने ? लोग कहते हैं बाबू ने किसी को रख दिया है। उसे उनकी याद आ रही है...आकर उन्हें ले जाएँ। बड़े बप्पा उसे राक्षस लगते हैं।"[12]

पाँचवीं कक्षा से आगे की पढ़ाई फिर मुंबई के घाट कोपर के हिन्दी हाईस्कूल में हुई। उसके पिताजी वही रहते थे और वही से शिकार के लिए जाकर शेर मारकर लदवाकर ले आते थे। चित्रा को भी एक बार उसके पिताजी शिकार के लिए ले जाते है परंतु लेखिका का संवेदनशील मन होने के कारण उनके हाथों से बंदूक

छूटकर गिर जाती है । इस पर उसके पिताजी बहुत गुस्सा होते है और गाँववालों के समक्ष उसे डाँटते है । वे चाहते थे कि चित्रा जी बंदूक चलाना तथा घुडसवारी करना सीखें । उनके बारे वह सोचती है, “क्या उसके बप्पा भी बड़े बप्पा जैसे निर्दयी और कठोर हैं ।”[13] उनके पिता ने उन्हें घुड़सवारी सिखाना चाहा पर वह घोड़े से गिर गई और उनको चोट लगी । तब उनके पिता गुस्से से कहते है - “अनपढ़ जाहिल माँ से आगे नहीं बढ़ सकती…”[14] पिता की यह बात सुनकर चित्रा को बहुत गुस्सा आता है और उसमें वैचारिक असमानता पनपने लगी । जिसके कारण वह ठीक उलटा करने लगी । पिता को चित्रकारी पसंद नहीं थी लेकिन चित्रा चित्रकला की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाती थी । पिताजी के विरोध करने पर भी चित्रा जी स्कूल में नृत्य सीखती रही । उसके बाद चित्रा जी ने 1963 में मुंबई के जे.जे.स्कूल ऑफ फाइन आर्टस से चित्रकला में डिप्लोमा ग्रहण किया।

एक बार कहानी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए उनके गुरु उदय नारायण जी ने उन्हें प्रोत्साहित किया । उनके गुरु ने उनको पूछा, “तुम्हें कौन सी कहानी अच्छी लगती है जो तुम्हारी पाठ्य-पुस्तक में है।’ मैंने कहा – प्रेमचंद की कहानी ‘ठाकुर का कुँआ’ क्योंकि मेरे गाँव वाले घर के दरवाजे पर भी वैसा ही कुँआ है । उससे भी छोटी जाति के लोग पानी नहीं भर सकते । इस बात का गुस्सा मेरे मन में ‘ठाकुर का कुँआ’ पढ़कर ही उपजा था । गुरु जी ने कहा -‘तो अपने जीवन की कोई ऐसी ही घटना लिख डालो’ तो मैंने एक लघुकथा लिखी ‘डोमिन काकी’। घर में दलित टोले से एक औरत आती थी -शौचालय, नाली आदि साफ करने के लिए। मैंने उसे ‘डोमिन आई है’ कहकर संबोधित किया तो मेरी आजी ने गाल पर जोरदार थप्पड़ जड़कर कहा - ‘डोमिन नहीं, डोमिन काकी कहो ।’ कुछ दिन बाद आजी ने एक दिन कहा -‘एक टोकरी में अनाज भरकर उसे दे दो।’ मैं देने लगी तो टोकरी छिटक गई और अनाज बिखर गया । मैं डोमिन काकी के पास बैठकर बिखरा अनाज उसके आँचल में समेटने लगी । तभी आजी आ गई और मुझे डोमिन काकी के पास बैठा देखकर उनका खून खौल उठा । मुझे खींचकर उठाया, दो थप्पड़ लगाए और काकी को पुकारा, जल्दी से नहलाओं इसको । गंगाजल छिड़को इस पर और मुझ पर भी । तो वे खुद भी नहाईं, दूसरी धोती पहनी और मुझे भी नहलाया । समझ भी नहीं पाई कि डोमिन काकी को छूने से नहाना क्यों पड़ता है और अपनी सगी काकी (बड़ी माँ) को छूने से नहाना क्यों नहीं पड़ता ? बस उस घटना को ‘डोमिन काकी’ में लिख दिया । मन का गुस्सा था न, जैसे वहीं उतरा । मैं जब-जब भी प्रेमचंद, गोर्की, हेमिंग्वे आदि को पढ़ती हूँ – अपने गुस्से को आक्रोश को, कहीं न कहीं उनकी कहानियों में पाती हूं तो लिखने का, लेखन बनने का एक कारण बना ।”[15]

लेखिका के घर प्रसिद्ध पत्रिकाएँ आती थी जैसे- टाइम्स ऑफ इण्डिया, नवभारत टाइम्स, इण्डियन एक्सप्रेस, धर्मयुग आदि जो घर के सदस्य पढ़ते थे। पत्रिकाओं में छपे लेखों को पढ़कर चित्रा मन उसे लिखने के लिए मजबूर करता था। उन्होंने मन में एक बात ठान ली -"कॉलेज में आग्रह के बावजूद वार्षिकोत्सव में नृत्य की बात मन में उठने लगी थी – मेरी अभिव्यक्ति का मंच रंगमंच नहीं है – लेखन है।"[16]

1.1.3 विवाह और पारिवारिक जीवन

चित्रा मुद्गल का विवाह 'सारिका' के संपादक साहित्य में रुचि रखने वाले अवध नारायण मुद्गल के साथ हुआ। उनका प्रेम विवाह था। उन दोनों की पहली मुलाकात बहुत ही दिलचस्प है। चित्रा इंटरमीटियट की छात्रा थी, कॉलेज में एक कहानी प्रतियोगिता आयोजित हुई। चित्रा को प्रोफेसर अनन्तराम त्रिपाठी ने कहानी लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। अन्य कहानियों से चित्रा की कहानी प्रोफेसर त्रिपाठी को पसंद आयी। उन्होंने वह कहानी 'सारिका' में भेजने का परामर्श दिया जिसके संपादक उनके मित्र अवध नारायण थे। चित्रा उन दोनों के पहली मुलाकात के बारे में कहती है, "यह थी उस व्यक्ति की पहली मुलाकात जिसने उसकी कहानी का इतनी निर्ममता से पोस्टमार्टम किया कि वह अपनी कहानी की छीछालेदर पर लगभग रो पड़ी। उसने लिखा था-'आप अभी कहानी के क, ख, ग से भी परिचित नहीं हैं…कुछ पढ़िए…देश के, विदेश के महत्वपूर्ण लेखकों को' और साथ में थी विश्व की महातम् कृतियों की एक लंबी सूची।"[17] बस यही से उन दोनों के प्रेम कहानी की शुरुआत हुई। चित्रा को पता ही नहीं चला कि कैसे वह अवध से आकर्षित हो चली। अवध नारायण ब्राह्मण थे और लेखिका ठाकुर। उनके पिताजी तथा घरवालों को यह विवाह बिल्कुल स्वीकार्य नहीं था। उन्होंने अपने बेटी से कह दिया -"निहाल सिंह के खानदान (जिनके नाम पर उन्नाव स्थित उसके गाँव का नाम 'निहाली खेड़ा' पड़ा) में किसी लड़की को छूट नहीं है…' उसने प्रतिवाद में उत्तर दिया, 'निहाल सिंह के खानदान में किसी लड़की ने कभी किसी बड़े स्कूल तो क्या मामूली मदरसे का मुँह भी नहीं देखा होगा। कभी पिता के साथ शिकार पर नहीं गई होगी। कभी आधुनिक पोशाकें नहीं पहनी होंगी। खेल प्रतियोगिता, वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में एक के बाद एक पुरस्कार नहीं जीते होंगे।…घुड़सवारी नहीं की होगी, फिर वह अखबारों में लिख क्यों नहीं सकती ? किसी युवक की चाह क्यों नहीं हो सकती ?"[18] चित्रा निश्चय करती है -"वह वही करेगी जो करना चाहती है, न वह सोच गिरवी रख सकती है, न मस्तिष्क, न भावनाएँ, न विचार, न दृष्टि इसलिए कि वह लड़की है… "[19] उन्होंने अतः उनको अपना घर छोड़ना पड़ा।

शादी के बाद ससुराल में उनको आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ससुरालवाले संपन्न न होने के कारण उनको घर चलाने में बहुत संघर्ष करना पड़ा। वे कहती है, "इस समय वे भांडुप की झोपड़पट्टी में एक अति मामूली चाल में आठ-बाई-आठ के कोठरीनुमा कमरे में रहते थे। जिसमें बिना आड़ की मोरी जरूरत पड़ने पर स्नानघर में परिवर्तित कर ली जाती थी। और चाली के अन्य सदस्यों की भाँति तड़के उठकर चाली के एकमात्र शौचालय में लाइन लगाकर अपनी बारी की प्रतीक्षा में खड़ा होना पड़ता था।"[20]

आर्थिक तंगी के कारण अवधनारायण मुद्गल ने कविताएँ और कहानियों की दुनिया छोड़कर एजन्सियों में विज्ञापन लिखना शुरू किया और चित्रा जी ने अनुवाद कार्य को आगे बढ़ाया। लेखिका को एक बेटा और एक बेटी। बेटे का नाम राजीव और बेटी का नाम अपर्णा। दोनों पढ़ाई में बहुत तेज़ थे। माँ-बाप के समान बेटा भी साहित्य में अभिरुचि रखने वाला है। वह भी कविताएँ तथा नाटक लिखता है। उनके जीवन की सबसे दुखद घटना उनकी युवा कन्या और दामाद की मृत्यु है। एक कार दुर्घटना में दोनों की मृत्यु हो गई। जिसे याद करने से आज भी उनकी आँखें आँसू से भर जाते हैं। "तुमने जब अपनी आँखें दान की, बहुत लड़ी मैं तुमसे। तुमने जब किडनी दान करने का फार्म भरा, फार्म छीन मैंने चिथडे-चिथडे कर दिया। तुमने कहा, तुम जो कुछ लिखती हो कहती हो – सिर्फ औरों के लिए है ? अपने छद्म से तुम कब मुक्त होगी माँ ? मैं चिढ गई थी ! अब तुम्हें यकीन दिला सकती हूं, तुमसे पिछड जरूर गई मैं, अपर्णा ! परास्त नहीं हुई ....लिखने और कहने के बीच 'पहल'-सी उठ खड़ी हुई हूं। "[21] अब बेटी अपर्णा का खालीपन उनके दो जुड़वा पौत्री आध्या और अनघा के जन्म के उपरांत दूर हो गया। उनके आगमन से चित्रा जी का सुना आंगन फिर से किलकालियों से गूँज उठा।

उनका वैवाहिक जीवन अथक संघर्षों से गुजरा है। फिर भी उन्होंने साहस के साथ तथा आत्मविश्वास से हर परिस्थिति का डटकर मुकाबला किया है। चित्रा मुद्गल के संदर्भ में शब्द कुमार का कथन है -"मैंने चित्रा को खिलते हुए भी देखा और मुरझाते हुए भी, उसका सुख भी देखा है और दु:ख भी। पर चित्रा को बहुत दिन तक न उसका सुख बाँध कर रख सका, न उसका दु:ख। वह हर परिस्थिति से जूझती रही, रोती रही और आगे बढ़ती रही।"[22]

उनके व्यक्तित्व के बारे में दामोदर दत्त दीक्षित का कहना है, "चित्रा जी में एक ओर गरिमा है, दूसरी और ऋजुता। वेशभूषा में वह भद्र और सोफिस्टीकेटेड हैं, पर व्यवहार में सरल और अनौपचारिक। उम्र की आधी सदी पार करने की ओर वह अग्रसर तो हैं, पर उतावली नहीं। उसकी कहानी की तरह उनका कद

लंबा है पर कहानी के ढब पर उन्होंने अपना वजन नहीं बढ़ाया। गोरे गोल चेहरे पर गरिमापूर्ण लावण्य है।"[23] सच तो यही है चित्रा जी स्नेहशील तथा गरिमापूर्ण व्यक्तित्व की धनी है। जो अपनी लेखनी से समाज के लिए निष्ठा से सृजन कर रही है।

1.1.4 विचारधारा - चित्रा मुद्गल पर लेखकों का प्रभाव

विश्व के सर्वश्रेष्ठ रचनाकार टालस्टॉय, गोर्की, इलियट, रविद्रनाथ ठाकुर, प्रेमचंद, हिमिंग्वे आदि के रचनाओं का प्रभाव लेखिका पर पड़ा। चित्रा मुद्गल पर प्रेमचंद के कहानियों का प्रभाव पड़ा। खासकर 'ठाकुर का कुआँ' कहानी ने उन्हें प्रभावित किया था। उस कहानी को उन्होंने अपने गाँव के परिवेश से जोड़कर देखा था। उसी प्रकार भगवती चरण वर्मा की 'दो बाँके', विश्वंभर नाथ कौशिक की 'ताई', प्रसाद की 'आकाशदीप', गुलेरी की 'उसने कहा था' आदि कहानियों ने भी उन्हें बहुत प्रभावित किया था। यशपाल जी उनके पसंदीदा लेखक थे। उनके 'झूठा सच' उपन्यास ने उनको प्रभावित किया। स्कूल के वाचनालय से 'चित्रलेखा', 'धृवस्वामिनी', 'गोदान', 'मृगनयनी', 'डूबते मस्तल', 'ओल्ड मैन एंड दि सी', गोर्की की 'माँ' आदि को उन्होंने पढ़ा। गोर्की की 'माँ' उपन्यास तथा महात्मा गांधी के 'My Experiment with truth' ने उनके विद्यार्थी जीवन में बड़ी निर्णायक भूमिका निभाई। उनपर कार्ल मार्क्स की विचारधारा का भी प्रभाव पड़ा। उनके मतानुसार मार्क्सवादी विचारधारा के माध्यम से हम सर्वहारा की पीड़ा तथा उनके दुःख-दर्द को समझ सकते हैं। इससे प्रभावित होकर वह आगे 'स्वधार' और 'जागरण' संस्था से जुड़ जाती है।

चित्रा जी राम मनोहर लोहिया के विचारधारा से भी प्रभावित है। तभी तो वे उनके बारे में कहती है -"देश की समस्याओं की आम लोगों के दुःख-दर्द की उन्हें गहरी जानकारी थी। उनके समाधान भारतीय स्थितियों के अनुकूल थे। अन्य समाज वादियों जैसे मधु लिमये जी, मृणाल गौर जी से मेरा संपर्क रहा। उनके साथ मैंने कुछ सामाजिक कार्य भी किए।"[24] उनके लेखन पर पड़नेवाले प्रभाव को उजागर करते हुए शब्द कुमार कहते है, "चित्रा को जानना सहज हैं क्योंकि उनकी सोच और आचरण में ऐक्य है। घर के सदस्यों की नाराजगी के बावजूद झाड़ू लगानेवाली जमादारनी को उसी गिलास में पानी पिलाती हैं जिसमें स्वयं पीती हैं।"[25] चित्रा जी समाज के निम्न-मध्य वर्ग के साथ रही है। उन्होंने उस जीवन को भोगा है। वह स्वयं को गरीब भूखे लोगों के

बीच मानती है ,"मेरा हाड मास का जन्म निहाल सिंह के खानदान में जरूर हुआ, लेकिन मानसिक जन्म, भूख, बदहाली तंगी रोगो में जी रहे इन्हीं लोगों के बीच हुआ। "[26]

उनके पति के साथ के कारण ही उनको विश्व के श्रेष्ठ रचनाकारों के रचनाओं को पढ़ने का मौका प्राप्त हुआ जैसे फ्योदोर दोस्तोवस्की, गोर्की, काफ्का, कामू आदि। वे स्वयं कहती है,"'ग्रेटमीस्टर्स' की कालजयी रचनाओं की भूमिका मेरी रचनाशीलता के संदर्भ में उन गुरुओं के सदृश्य है जो अपने ज्ञान से कक्षा दर-कक्षा विद्यार्थी को जीवन पर्यंत विद्यार्थी बने रहने की अंतर्शक्ति से पूरते हैं।"[27] सबसे अधिक प्रभावित उनको हेमिंग्वे के रचनाओं ने किया है।

1.1.5 चित्रा मुद्गल के रचनाओं में विद्रोह का स्वर

चित्रा जी बचपन से ही विद्रोही थी। जिस काम को करने के लिए उनको मना किया जाता वही काम करती थी। उनके घर पर डोमीन आया करती थी। वह 'डोमीन' को 'डोमीन आई' ! कहकर पुकारती है। तो दादी उनपर थप्पड मारती है और कहती है 'डोमीन काकी' कहो। जब चित्रा जी डोमीन काकी के कोंछ में अनाज और कलेवा डालने जाती है। तो उनका कोंछ छू जाता है, तो दादी डपटकर कहती है, 'चलो नहाओ' और उनपर गंगाजल छिड़कती है। ये अंतर्द्वद्व कही न कही उनके मन में था इसलिए उन्होंने इस घटना को पहली कहानी में परिवर्तित किया। जब लेखिका तीसरी-चौथी कक्षा में गाँव में पढ़ रही थी तो गाँव में लड़कियों के लिए कम आजादी थी। उनको घर के मुख्य दरवाजे से आना-जाना मना था। लेकिन चित्रा जी को यह सब पसंद नहीं था अगर उनकी सहेलियाँ उनको पाठशाला ले जाने के लिए बाहर खड़ी रहती, तो चित्रा जी मुख्य दरवाजे से स्कूल के लिए भागती। उनको दादी ने भी समझाया था और इस बरताव के लिए उनके ताऊ ने भी उनको पीटा था। उसी तरह उनके भाई को 'डान बास्कों' में पढ़ने के लिए डाला और उनको सेंट्रल स्कूल में डाल दिया। फिर स्कूल के आसपास मर्डर हो गया और लेखिका को हिन्दी स्कूल में डाला गया। इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के कारण उसका दुष्प्रभाव असंतोष और आक्रोश के कारण प्रकट हुआ।

1.1. 6 सम्मान तथा पुरस्कार

1. सन् 1965 अक्तूबर 25 को मुंबई के 'नवभारत टाईम्स' प्रतियोगिता में चित्रा जी की प्रथम कहानी 'सफेद सेनारा' को लिए प्रथम पुरस्कार।

2. सन् 1985 में चित्रा मुद्गल जी के साहित्यिक योगदान के लिए ‘प्रेक्षा पुरस्कार’ ।
3. सन् 1986 में ‘इस हमाम में’ कथा संग्रह को तथा सन् 1987 में ‘जंगल का राज’ बाल कथा संग्रह को दिल्ली हिन्दी अकादमी की ओर से ‘साहित्य कृति पुरस्कार’ ।
4. सन् 1987 में बीहार राजभाषा द्वारा ‘ग्यारह लंबी कहानियाँ’ कहानी संकलन को ‘राजा राधीका रमण प्रसाद’ पुरस्कार ।
5. सन् 1995 में ग्रामीण विकास संगठन मुंबई की ओर से ‘एक जमीन अपनी’ उपन्यास को ‘फणीश्वरनाथ रेणु’ पुरस्कार ।
6. सन् 1995 में साहित्यिक योगदान के लिए ‘अखिल भारतीय महिला समन्वय परिषद्’ द्वारा ‘ईडविक पुरस्कार’।
7. सन् 2000 में ‘आवां’ उपन्यास के लिए इंग्लैंड में बसे दक्षिण एशियाई लेखकों की संस्था ‘कथा’ की ओर से ‘इन्दु शर्मा अंतर राष्ट्रीय कथा सम्मान’ और उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा ‘साहित्य भूषण सम्मान’ ।
   - सन् 2003 में बिडला फाउंडेशन द्वारा प्रतिष्ठित ‘व्यास’ सम्मान ।
   - सहस्त्रद्विका’ पहला अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार ।
   - साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश सरकार ।
8. सन् 2000 हिन्दी अकादमी दिल्ली की ओर से ‘साहित्य कृति सम्मान’ ।
9. सन् 2001 में सामाजिक कार्यों के लिए ‘विकास काया फाउन्डेशन’ की ओर से ‘विदुला सम्मान’ ।
10. सन् 2002 में उत्तर प्रदेश साहित्य अकादमी की ओर से ‘वीर सिंह देव सम्मान’ ।
11. सन् 2005 में ‘गिलिगडु’ उपन्यास को ‘चक्रधर सम्मान’, मध्य प्रदेश और ‘गोएन्का पुरस्कार’, मुंबई ।
12. सन् 2007 में हिमाचल प्रदेश का ‘शिखर सम्मान’ और ‘कल्पना चावला’ पुरस्कार ।
13. सन् 2018 में ‘पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा’ उपन्यास को प्रतिष्ठित ‘साहित्य अकादमी पुरस्कार’ ।

1.1.7 सदस्यता

सचिव –संस्था जागरण – जो घरों में चौका बर्तन करने वाली मजदूरिनों की संस्था जागरण की वह सचिव सन् 1962 से 1972 तक रहीं ।

1. सदस्य – चित्रा मुद्गल का सन् 1979 -83 तक 'स्वद्धार' जो आर्थिक स्वयंपूर्ण बनाने वाली संस्था की सदस्य थी।
2. सदस्य – लेखिका आशीर्वाद फिल्म पुरस्कार वितरण सन् 1980 में जुरी सदस्य रही।
3. निर्देशक - चित्रा मुद्गल का 'महिला अध्ययन संघ' पुस्तकों के नियोजन में सहभाग, दहेज दावानल, 'बेगम हजरत महाल' 'श्री समता' में निर्देशक सन् 1986-1990 तक रही।
4. सदस्य - चित्रा मुद्गल ए.आय.आर. नेशनल कॉम्पीटिशन ऑफ ड्रामा की सन् 1995 में सदस्य रही।
5. सदस्य - चित्रा मुद्गल भारतीय सेन्सर बोर्ड की सन् 1999-2001 तक सदस्य रही।
6. निमंत्रित सदस्य – लेखिका महात्मा गांधी प्रतिष्ठा का कार्यक्रम 'रचनाकार से भींत' कार्यक्रम की नियंत्रित सदस्य रही।
7. सुप्रसिद्ध फिल्म मैगजीन 'माधुरी' की कवर स्टोरी लेखिका जो चार वर्ष पूर्व टाईम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित हुयी थी।
8. स्तंभ लेखिका के रूप में साप्ताहिक हिन्दुस्थान, सूर्या, महाराष्ट्र टाईम्स (अनुवादित) श्री (गुजराती), चिमू –चार बच्चों का मैगजीन 'पराग'।
9. सदस्य – जुरी 49 वाँ नेशनल फिल्म अवार्ड सन 2001 और भारतीय पॅनोरोमा सन् 2002 में सदस्य रही।
10. सदस्य – लेखिका छठे और सातवें 'विश्व स्तरीय' 'हिन्दी परिषद' लंदन का सदस्य रही है।
11. सदस्य-लेखिका जुरी , मौलाना आज़ाद निबंध स्पर्धा (सार्कदेश) आय.सी.सी.आर. की सदस्य रही है।
12. लेखिका बोर्ड मेंबर प्रसार भारती कॉपरेशन ऑफ इंडिया सन् 2003-2007 तक सदस्य रही।
13. चित्रा मुद्गल 'इंडियन क्लासिक दूरदर्शन' की ओर से चेयरपर्सन रही।

14. चित्रा मुद्गल को सीनियर फेलोशिप ‘ह्युमन रिसोर्स मंत्रालय’ भारत सरकार द्वारा दी गयी ।
15. ‘हिन्दी सलाहकार समिति’ स्पेस और ऍटोमिक ऐनर्जी विभाग के लिए सन् 2000-2009 तक सदस्य।
16. सदस्य- हिन्दी सलाहकार समिति- भारतीय डाक एवं टेलीग्राम विभाग सन् 2006-2009 तक।

1.2 चित्रा मुद्गल : रचना संसार

समाज में जो घटित होता है, उसका अनुभव लेकर रचनाकार अपनी सृजनशीलता से साहित्य में उतारता है। इस प्रकार से रचनाकार, समाज और साहित्य का घनिष्ठ संबंध बन जाता है। समाज, रचनाकार और साहित्य सृजन की प्रक्रिया पर क्षेमचंद्र सुमन की टिप्पणी है-“यदि मानव प्रकृति को हम मूल रूप से सामाजिक मानते है तो निश्चय ही कला और साहित्य के विभिन्न उपकरणों द्वारा अभिव्यक्त उसकी भावना और अनुभूति भी मूल रूप से सामाजिक और समाज की देन है। सामाजिक आवेष्टन में ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्तित्व के मूल में प्राप्य मानसिक असंतुलन तथा अस्वास्थ्य इत्यादि हमारी सामाजिक संस्कृति में प्राप्त पारस्परिक विरोधों का प्रतिफलन है। यह ठीक है कि व्यक्ति के जीवन के व्यष्टि और समष्टि दोनों ही रूप है; परंतु व्यष्टि के आधार स्वरूप अहं का विकास भी समाज में ही संभव है।”[28] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति की चेतना सामाजिक चेतना का अविभाज्य अंग है। मानव मन में प्रस्फुटित होने वाला साहित्य समाज से ही प्रेरित होकर जन्म लेता है। चित्रा जी भी इसे स्वीकार करते हुए कहती है कि, “लेखक जिस वक्त रचनारत होता है वह अपने दौर के आम आदमी में से ही एक हो उठता है। ”[29]

कृतित्व सूची इस प्रकार है

1.2.1 चित्रा मुद्गल के कहानी संग्रह

1. ‘जहर ठहरा हुआ’ (1980) अनन्य प्रकाशन, दिल्ली।
2. ‘लाक्षागृह’ (1982) पराग प्रकाशन, शहादरा।

3. ‘अपनी वापसी’ (1983) संभावना प्रकाशन, हापुड।
4. ‘इस हमाम में’ (1984) प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
5. ‘ग्यारह लंबी कहानियाँ’ (1987) प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
6. ‘जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है’ (1992) नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।
7. ‘चर्चित कहानियाँ’ (1994) सामयिक प्रकाशन, दिल्ली।
8. ‘मामला आगे बढ़ेगा अभी’ (1995) प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
9. ‘जीनावर’ (1996) किताब घर, प्रकाशन, दिल्ली।
10. ‘दि हाईना एण्ड शार्ट स्टोरीज’ (अंग्रेजी) (1998) ओशन बुक प्राइवेट लिमेटेड
11. ‘केंचूल’ (2001) प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
12. ‘भूख’ (2001) प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
13. ‘लपटे’ (2002) भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
14. ‘बयान’ (2004) भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
15. ‘प्रेमचंद की प्रेम कहानियाँ’(2005)
16. ‘चेहरे’ (2006)
17. ‘लकड़बग्घा’ (2006)
18. ‘आदि-अनादि’ भाग-एक (2007) सामयिक प्रकाशन, दिल्ली।
19. ‘आदि-अनादि’ भाग-दो (2007) सामयिक प्रकाशन, दिल्ली।
20. ‘आदि-अनादि’ भाग-तीन (2007) सामयिक प्रकाशन, दिल्ली।
21. ‘10 प्रतिनिधि कहानियाँ’ (2007)
22. ‘ताशमहल’(2008)
23. ‘21 श्रेष्ठ कहानियाँ’ (2008)
24. ‘दशरथ वनवास’(कन्नडा) (2008)
25. ‘दूर के ढोल’ (2009)
26. ‘चित्रा मुद्गल: संकलित कहानियाँ’ (2010)
27. ‘मेरे साक्षात्कार’ (2010)

28. ‘गेंद और अन्य कहानियाँ’(2010)

29. ‘दुलहिन’ (2011)

30. ‘चर्चित कहानियाँ’ (2011)

31. ‘भीतर का आयतन’ (2012)

32. ‘शून्य’ (2012)

33. ‘आग अजून बाकी आहे’(मराठी) (2012)

34. ‘मेरी प्रिय कहानियाँ’ (2013)

35. ‘पेंटिंग अकेली है’ (2014)

36. ‘डोमिन काकी तथा अन्य कहानियाँ’ (2014)

37. ‘प्रतिनिधि कहानियाँ’ (2014)

38. ‘आंगन की चिड़ियाँ’ (2014)

39. ‘चित्रा मुद्गल की लोकप्रिय कहानियाँ’ (2015)

40. ‘अपरीहरया कुछ’(2015)

41. ‘महेष दर्पण :चुनी हुई कहानियाँ’ (2015)

1.2.2 चित्रा मुद्गल के उपन्यास

1. ‘एक जमीन अपनी’(1990) सामयिक प्रकाशन, दिल्ली।
2. ‘आवां’ (1999) राज कमल प्रकाशन, दिल्ली पेपरबैक (2002) सामयिक प्रकाशन दिल्ली।
3. ‘गिलीगडु’ (2002) सामयिक प्रकाशन, दिल्ली।
4. ‘दि क्रूसेड’ (‘एक जमीन अपनी’ का अंग्रेजी अनुवाद)(2002) ओशन प्रकाशन, दिल्ली।
5. ‘माझी भूमि’ (‘एक जमीन अपनी’ का मराठी अनुवाद)
6. ‘आवां’ (मराठी अनुवाद) (2009)
7. ‘आवां’ (पंजाबी अनुवाद) (2010)
8. ‘हूरहूर’ (‘गिलिगडु’ का मराठी अनुवाद) (2013)
9. ‘पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा’ (2016) सामयिक प्रकाशन, दिल्ली।

10. ‘नकटौरा’ (2022) सामयिक प्रकाशन, दिल्ली।

11. ‘एक काली एक सफेद’ नामक बड़ा उपन्यास तीन खंडों में लिख रही है।

1.2.3. बाल उपन्यास

1.‘माधवी कन्नगी’ (1993) किताब घर, दिल्ली।

2. ‘मनी मैखले’ (2002) साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।

3. ‘जीवन चिंतामनी’ (2002) साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।

1.2.4 लेख संकलन

1. ‘तहखाने में बंध आईने अक्स’ (1988) अभिनव प्रकाशन।

2. ‘विचार संग्रह’ (1988)

3.‘बयार उनकी मुठ्ठी में’ (2002) कल्याण शिक्षा परिषद, दिल्ली।

4. ‘भीतर का आयतन’(2014)

1.2.5 नाटक

1. ‘पंच परमेश्वर और अन्य नाटक’ (2005) राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

2. ‘बूढ़ी काकी और अन्य नाटक’ (2005) राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

3. ‘सद्गति (2005) राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

1.2.6 संपादित पुस्तकें

1. ‘असफल दाम्पत्य की कहानियाँ’ (1987) प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

2. ‘टूटे परिवारों की कहानी’ (1987) प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

3.‘दूसरी औरत की कहानी’ (1988) प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

4.‘भीगी हुई रेत’ (1989) शिक्षा विभाग राजस्थान।

5. ‘पुरस्कृत कहानियाँ’ (1989) संतोष प्रकाशन, दिल्ली।

6.‘देह-दहेरी’ (2003) साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।

7.‘मुन्शी प्रेमचंद की कहानियाँ’ (2005) रोशनी प्रकाशन, दिल्ली।

1.2.7 अन्य अनुवादित साहित्य

1.‘गुजरात की श्रेष्ठ व्यंग्य कथाएँ’ पराग प्रकाशन, दिल्ली।

2. गुजराती, मराठी और इंग्लिश में एक सौ से अधिक अनुवाद कार्य।

3. कहानियों का अनुवाद अन्य भाषाओं में पंजाबी, आसामी, तमील आदि।

1.2.8 फिल्म निर्माण में योगदान

1. टेलिफिल्म ‘वारिस’ का दिल्ली दूरदर्शन के लिए निर्माण।
2. टेलिफिल्म ‘बावजूद इसके’ कहानी पर लखनऊ दूरदर्शन के लिए निर्माण।
3. फिचर फिल्म ‘प्रेतयोनी’ का निर्माण।
4. कहानी ‘रूना आ रही है’ और ‘प्रेतयोनी’ का निर्माण मंजु सींग के धारावाहिक ‘एक कहानी तथा और एक कहानी’ का निर्माण।
5. कहानी ‘अभी भी’ का धरावाहिक सीरीयल ‘मजधार’ में समाहित है।
6. ‘दशरथ का वनवास’ इस कहानी का धारावाहिक सीरियल रिश्ते का निर्माण झी.टी.वी. पर किया।
7. ‘सौदा’ इस कहानी का धारावाहिक सीरीयल ‘रिश्ते’ का निर्माण झी.टी.वी. पर किया।
8. बहुत से यरोपीयन भाषाओं में कहानियाँ प्रकाशित जैसे- अंग्रेजी, इंटालियन, जर्मन, झेकोस्लोव्हाकिया, जपानी, चाईनीज आदि।

1.2.9 शिक्षा संस्थानों में अध्ययनार्थ साहित्य

1. ‘एक जमीन अपनी’ एम.ए.राजस्थान विश्वविद्यालय।
2. ‘ग्यारह लंबी कहानियाँ’ ओसाका विश्वविद्यालय, जपान।
3. ‘ग्यारह लंबी कहानियाँ’ ब्रेली की ओर से आंध्रु शिक्षा केंद्र, मुंबई फॉर द स्कूल ऑफ ब्लाईंड।
4. कहानी ‘जब तक विमलाएँ है’ को समाहित वर्ण निरपराक प्रकाशन, यशवंतराव चव्हाण विश्वविद्यालय बी.ए. पार्ट 2 महाराष्ट्र।
5. कहानी ‘रिश्ते’ को विविधा पुस्तक में समाहित क्लास 11 वी एन.सी.ई.आर.टी. के लिए।
6. कहानी ‘अंवाम्’ 6 कक्षा के लिए, गुजरात।
7. कहानी ‘जीनावर’ बी.ए. के लिए, राजस्थान विश्वविद्यालय।
8. उपन्यास ‘आवां’ एम.ए.कोटा, विश्वविद्यालय, राजस्थान।
9. कहानी ‘डोमीन काकी’ 11 वी क्लास एन.सी ई.आर.टी. के लिए।
10. उपन्यास ‘पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा’ एम.ए. विश्वविद्यालय, गोवा।
11. उपन्यास ‘गिलिगडु’ बी.ए. विश्वविद्यालय, गोवा

1.2.10. कहानी साहित्य का सामान्य परिचय

1.2.10.1 आदि-अनादि भाग-1

दशरथ का वनवास(1973) – इस कहानी में चित्रा जी ने ‘रमानाथ’ के माध्यम से बाल मन पर होनेवाले पिता के कठोर अनुशासन के असर को दिखाया है। माँ और रमानाथ को हर गलती पर पिटना तथा घर में कठोर अनुशासन के कारण रमानाथ के मन में अपने पिता के प्रति द्वेष पैदा हुआ। पिता उसे कभी प्यार से बात तक नहीं करते थे। जो-जो रमानाथ माँगता पैसों की तंगी के कारण पिता उसे पूरी नहीं कर पातें। पिता की साइकिल चोरी से स्कूल में ले जाने तथा पंचर होने के कारण उसको बेंत से बहुत पिटा गया जिसके कारण वह चार दिन स्कूल नहीं गया। आगे के पढ़ाई के लिए रमानाथ को पिता के दोस्त के यहाँ रखा गया। यही कारण था कि नौकरी लगने के पश्चात रमानाथ गाँव में नहीं आता। शहर में सुधा से शादी करता है और अपने दोनों बच्चे टिनू

और मोना के साथ खुशी से रहता है। अपने बच्चों के बचपन को देखकर वह अपना बचपन जीता है। उनकी हर जरूरत पूरी करने में कोई कसर नहीं छोड़ता। सुधा उसे टोकती है। पर वह अपने बचपन का अभावग्रस्त जीवन अपने बच्चों को देना नहीं चाहता। पिता के बीमारी के अंतिम दिनों में भी वह घर नहीं लौटता। अंत में जब पिता द्वारा भेजा हुआ पार्सल में साइकिल को देखता है तो उसे अपने आप पर पछतावा होता है। वह पिताजी की भावनाओं को जान पाता है और मन ही मन टूटता है - "चि. बबुल ! सोचा था, तुम दफ्तर जाने लगोगे तब तुम्हें यह साइकिल भेंट करूँगा। तुम दफ्तर जाने लगे, मगर तुमसे भेंट नहीं हो पाई। तुम्हारी अमानत अब नहीं संभाल पा रहा, तुम्हारे पास भिजवा रहा हूँ।"[30] 'रामायण' में राम के वनवास जाने से दशरथ की मृत्यु होती है। पर यहाँ रमानाथ अपने पिता (दशरथ) को ही वनवास दे देता है।

दुलहिन- चित्रा जी ने पहले 'जहर ठहरा हुआ' शीर्षक नाम से इस कहानी को प्रकाशित किया था। बाद में शीर्षक बदलकर 'दुलहिन' रखा गया। इस कहानी में पुराने और नये विचारों के द्वंद्व को बहुत ही मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है। नायक की अम्मा अपने आठ संतान होने के बावजूद गर्भवती बनती है। अपने पोते-पोतियाँ, नाती होते हुए भी खुद दुलहिन बनकर घूमती है। अम्मा बिस्तर पर लगे बीमार आजी का खयाल रखती है। दुलहिन गर्भवती है यह जानकर आजी बहुत खुश होती है। लेकिन उनके बेटी, बहू अनी तथा नायक को शर्म महसूस होती है। जब नायक की बड़ी जिज्जी अम्मा को गर्भ गिराने के लिए कहती है तो अम्मा आग बबूला होती है। अम्मा को बहुओं से कोई लगाव नहीं था। नायक बेरोजगार होने के कारण वह सम्मिलित परिवार में रहने के लिए अभिशप्त है क्योंकि वह थीसिस के सिलसिले में व्यस्त था। अनी को घर में बहुत से कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके बावजूद वह बी.ए की पढ़ाई करती है। ढ़ाई साल पूर्व जन्मी नायक की बहन शन्नों को वो बहुत प्रेम करती है। आजी के मृत्युपरांत अम्मा को यह एहसास होता है कि वही इस घर में बड़ी है। इसलिए वह दूसरे ही दिन गर्भपात करने के लिए जाती है। "जिया नहीं रे छोटू... छांडी गयी हमका...अब हमका दुलहिन कहिको को पुकारी दइया ! को हमारी तीज त्योहार करी रे! हमरे बारे नेग न्योछावर धरी रे। आज हम बुढ़ा गइन रे छोटू, बुढ़ा गइन।"[31] यह सच है जब तक कोई बुज़ुर्ग का साया होता है तब तक परिवार में कोई बड़ा नहीं होता, लेकिन जब वह साया नहीं रहता तो अपने प्रौढ़ होने का एहसास होता है। इस कहानी के माध्यम से नई एवं पुरानी पीढ़ी की मानसिकता को उजागर किया गया है।

ट्रेन छूटने तक (1968) – यह कहानी शुभा नामक मध्य वर्गीय परिवार के लड़की की है। जो अपने पापा के मृत्यु के बाद घर का खर्च पूरा करने के लिए उसे पैकिंग में सर्विस करनी पड़ी थी। नौकरी करते हुए शुभा ट्रेन से

सफर करती थी। शुभा का भाई सुरेश एक तलाक शुदा औरत से शादी करके, उसके बच्चे के साथ घर से तथा अपनी जिम्मेदारियों से भाग गया था। फिर भी माँ को अपने बेटे के प्रति अंधे प्रेम के कारण गलतियाँ नजर नहीं आती थी। शुभा अपने परिवार के लिए सुबह से शाम तक काम करती है। शुभा को ट्रेन का इंतजार करते समय पिछली बातें याद आती है। शुभा रवि नामक लड़के से प्यार करती थी। परंतु रवि 'मजबूरी' शब्द की आड़ में मात्र पलायन करता है और किसी दूसरी लड़की से शादी करता है। यह सुनकर माँ बहुत खुश होती है क्योंकि माँ नहीं चाहती थी अन्य लड़कियों की तरह वह अपना घोसला बनाए। आज रवि उसे मिलने आने वाला था। उसने पत्र में लिखा था कि उसके और उसके पत्नी के मध्य तलाक की संभावना है और उसने शुभा से शादी करने का निश्चय किया था। इसलिए वह प्लेट फार्म पर ट्रेन छूटने तक रुकती है लेकिन परिवार के जिम्मेदारियों का खयाल आते ही वह ट्रेन में चढ़ती है। जिसके कारण वह अपने खुशियों का गला घोटती है। काम काजी महिला शुभा अंतर्द्वंद्व में फँसी होने के बावजूद भी रवि को प्रेम कर गृहस्थी बसाना चाहती है -"ट्रेन पकड़ने के लिए भागती हुई भीड़ का धक्का उसे लगातार लग रहा है। ट्रेन छूटने वाली है। शुभा को लगता है कि, कहीं ट्रेन छूट गई तो वह लेट हो जाएगी...और ...कहीं रवि सचमुच न लौट जाए।"[32]

सफेद सेनारा(1965) – इस कहानी में शुभा अपने ऊपर हुए अत्याचार का विरोध निडर होकर करती है। शुभा लेखक शरत बाबू की प्रेमिका है। शुभा अपनी कविता प्रकाशित करने के उनके कार्यालय में जाती है पर शरत बाबू उस कविता को नकल की कविता कहकर शुभा का अपमान करते हैं। उसके बाद उनकी अच्छी दोस्ती होती है। लेखक 'कस्बों का शहर' उपन्यास शुभा के साथ शिमला में लिखते हैं। जब लेखक लिखने के लिए बैठते तो शुभा सफेद सेनारा के फूल उसके कॉपी पर उड़ेल देती और उसके पन्नों पर इंद्रधनुष खिलता। 'कस्बों का शहर' की सफलता मिलती है। शुभा शरत के बच्चे की माँ बनने वाली यह जानकर भी गंधहीन सफेद सेनारा को कुचल देता है, 'मरो या सड़ो, मुझे इससे कोई मतलब नहीं' कहकर चला जाता है। शुभा बिन ब्याही माँ बन जाती है इसलिए वह अपने घर से अलग होकर बैंगलोर आती है। शुभा डी.पी. कालेज में हिन्दी की लेक्चरर बनती है। उसे बाद में पता चलता है कि शरत की पहली पत्नी उनके द्वारा उपेक्षित होकर गाँव में अपने माँ-बाप की सेवा कर जिंदगी के दिन काट रही हैं सिर्फ इसलिए क्योंकि वह अनपढ़ थी। शुभा शरत के दोहरे-तिहरे व्यक्तित्व को जानती है। जब शुभा को यह पता चलता है कि शरद एक धनाढ्य बाल विधवा से शादी करने वाला है तो उसे उस लड़की पर तरस आता है। शरत बाबू के दोहरे-तिहरे चरित्र को देखकर शुभा तय करती है कि, उनकी शादी में उन्हें अनमोल उपहार देगी। शुभा कमजोर नहीं हैं वह हार न मानकर अपने

सात साल के बेटे 'मुन्नू' को उसके महान पिता के बारे में बताती है और शरद के शादी में उपहार के रूप में 'मुन्नू' को देने का निश्चय करती है। "आपको देने के लिए उपहार निश्चित कर लिया है मैंने। जो कभी आपने मुझे सौंपा था वहीं...आपको शायद अनुमान न होगा...' मुन्नू' सात साल का हो गया है। मैंने उसे आपके बारे में बता दिया है। वह भी अपने महान पिता से मिलने को उत्सुक हैं।"[33]

केंचुल (1978)- इस कहानी में कमला अपने चार बच्चों की जिम्मेदारी अपने घर में शराब की भट्टी लगाकर उठाती है। उसके पति विष्नू को फैक्टरी से निकाल दिया गया है और वो हर वक्त शराब में ही डूबा रहता है। कमला की बेटी सरना धन अभाव के कारण सब्जियाँ बेचती है। उसी दरमियान सरना को कल्पू नामक युवक से प्रेम हो जाता है। यह जब सरना को पता चलता है तो वह सरना को मारती-पीटती है और विरोध करती है। कमला को नंदू याद आता है। नंदू ने भी उसके साथ संबंध रखा था और सरना का गर्भ उसकी कोख में रखकर अपने गाँव चला गया था। जहाँ उसकी पहली पत्नी तथा तीनों लड़कियाँ थी और वही उसकी मृत्यु हो जाती है। कमला का बाप जबरदस्ती उसकी शादी मामी के भाई विष्नू से करवाता है क्योंकि वह मामी को खुश रखना चाहता था। हालत से मजबूर कमला अपने परिवार की जिम्मेदारी उठाती है। परंतु अंत में जब कल्पू और सरना का एक दूसरे के प्रति गहरा प्रेम देखकर उसका गुस्सा पिघल जाता है और उनके शादी के लिए राजी होती है। "जल्दी कर शादी...देर नईं मांगता...भरोसा नईं तेरा...कभी मुलुक को गया तो वापस नईं आएगा तू...भैया लोगों का एतबार नईं मेरे को।"[34] इस कहानी में गरीबी, यौन शोषण तथा पानी की समस्या पर प्रकाश डाला है। पानी के लिए उनको घंटों पंक्तियों में खड़ा रहना पड़ता है। सरना के पिता के उमर का बनिया उससे गंदी बातें करता है। कमला विरोध भी करना चाहती है किंतु गरीब होने के कारण उसके एहसानों के तले दबे रहने के कारण चुप रहने के लिए अभिशप्त हो जाती है।

त्रिशंकु(1979) – 'त्रिशंकु' निम्न वर्ग के परिवार की त्रासदी की कहानी है। इसमें गरीबी, विपन्नता से उपजी त्रासदी की मार्मिकता अभिव्यक्ति की गई है। मुंबई के झोपडपट्टी में रहनेवाले परिस्थिति से ग्रसित किशोर बंडू की यह कहानी है। बंडू की माँ लोगों के घर काम करके घर चलाती है। इसके विपरीत उसका बाप फैक्टरी में काम के लिए जाता है और सारे पैसे शराब पीने में खर्च करता तथा घर पर आकर माँ से झगडा करके उसे मारता था। बाप की दहशत घर में थी। एक दिन उसने आवेश में कपडा कूटने वाला धोक्का उठा लिया और उसे पूरी ताकद से माँ के माथे पर दे मारा। माँ का माथा फट गया और लहूलुहान हो गया। यह देखकर बंडू की बहन कमला ने बाप की टाँगे जकड ली तो बाप ने उसे टाँग से एक ओर उछाल दिया। यह देखकर बंडू की माँ ने

कमला को बिल्डींग वाली जोशी बाई के यहाँ काम करने के लिए भेज दिया। माँ दिन-ब-दिन बीमार ही रहती है और पैसों की तंगी के कारण वह डॉक्टर के पास भी नहीं जाती है । माँ और बाप के झगडे दौरान बंडू को पता चलता है कि उसके बाप का किसी और के साथ अवैध संबंध है। वह माँ को खुश रखना चाहता है इसलिए पाठशाला की पढ़ाई छोड़कर परिस्थिति से लड़ने का फैसला करता है। सोसाइटी के सामने हमाली करता है, उससे बोझा उठाया नहीं जाता फिर भी काम करता है और बाल मजदूरी करने पर विवश होता है। बंडू रफीक से मिलकर ब्लैक में सिनेमा के टिकट बेचकर धंधा करता है और उसे पुलिस पकड़ लेती है तथा उसे तीन महीने की सजा के लिए 'डोंगरी सुधार गृह' में भेजा जाता है। जेल से छूटने पर उसे अपनी पडोसन लक्ष्मा अम्मा से पता चलता है कि उसकी माँ ने दूसरा विवाह किया है। "सीताबाई ने नया नौरा (दूल्हा) बनाया। वो तेरी मावसी का देवर होता न, नारायण शिंदे…उसी के साथ…मेरे को लगता, आज उसका रात पाली होएगा, तेर कू घरमेच मिलेगा।"[35] यह सुनकर वह स्तब्ध सा रहता है। अभागे बंडू की स्थिति फिर त्रिशंकु सी हो जाती है।

पाली का आदमी(1977)- 'पाली का आदमी' कहानी में चित्राजी ने रवि के माध्यम से एक ऐसे व्यक्ति का चित्र हमारे सामने खींचा है जो मजबूरी में अपने माँ-बाप के कहने पर शादी तो करता है पर वो उससे संतुष्ट नहीं है। लेकिन देह संबंधों के प्रति किशोरीय कौतूहल के चलते अनायास हो गए समागम से बच्ची को अपनाना तो दूर बल्कि देखना भी नहीं चाहता।वह नगर में आकर अमीर बनता है और उसे फुटपाथ पर चलने वाले लोग कीड़े-मकोड़ों की तरह लगते हैं। शहर में वह निरू से शादी करता है और अपनी लड़की सोनू के साथ खुशी से रहता है। जब पंद्रह सालों बाद लल्ली (पहले पत्नी की बेटी) की चिट्ठी मिलती है कि, 'आप मुझे प्यार नहीं कर सकते तो क्या आशीर्वाद देने भी नहीं आ सकते ?' यह लल्ली की दिल की पीड़ा थी पर निष्ठुर बाप उसके शादी पर ना जाने का निर्णय लेता है। अगर उसके अतीत के बारे में निरू को पता चलेगा तो वह सोनू को लेकर उसे छोड़कर चली जाएगी और वह उनके बीना जी नहीं सकता। 'जबरदस्ती थोप दिए गए फर्ज की जिम्मेदारी उसकी नहीं' कहकर चिट्ठी को फाड़ता है और सोनू की छोटी सी जिद पर उसके गुड़िया के विवाह के लिए काम से घर रहता है। यहाँ दूसरे ही पिता का रूप पाठक के सामने उभरता है। "पापा, हम तो भूल गए, आज हम आपको फैक्टरी नहीं जाने देंगे। हमारी गुड़िया का ब्याह जो है। कौन कराएगा उसका ब्याह ?...घबराकर उसने खिड़की बंद कर दी। सोनू को गोदी में लिए हुए ही वह टेलीफोन के करीब आया-फैक्टरी में आज अपने न आने की सूचना देने के लिए। "[36]

बावजूद इसके- प्रीति के संघर्ष की यह कहानी है । प्रीति का पति गोयल का उच्च वर्गीय लोगों का जीवन जीता था । उसके जीने के अपने तेवर थे । क्लब में एक दो बजे 'ब्रिज' जमा रहता । साथ में पीना-पिलाना भी खाना भी किस दोस्त के घर बड़े होटल से मँगवाते प्रीति को भी साथ लेकर जाते लेकिन वो ब्रिज सिख नहीं पाई, न व्हिस्की का 'दूसरा पेग' ले सकी । न ही उसे मि. खन्ना जैसे व्यक्ति द्वारा उसके खुले कंधे पर होंठ रखना गवारा था । इस 'इक्जिक्यूटिव' सभ्यता का विनिमय न उसे स्वीकार हुआ था न सह्य । इसका नतीजा झगडे और फिर मार-पीट में परिवर्तित हुआ । वह न अपने आप को बदल सकी ना गोयल को । उसके पौरुष पर उसे ऐब था । इसलिए प्रीति घरेलू हिंसा का शिकार हुई । वह गर्भवती थी तब उसे इतना मारा पूरे पीठ पर नीले धब्बे थे । सिर्फ उसका देवर उसे मानसिक रूप से सहायता करता है। जतिन उसे कहता है कि अपने बलबुते पर खड़े होकर जीने का प्रयास करें । जतिन ने प्रीति को चुनौती दी थी कि, एक दिन अपनी हत्या करवाओ इससे बेहतर है कि अपने भरोसे खड़े होकर जीने की कोशिश करो । जब बेटी मोना के साथ वे नये फ्लैट में जाते है तब भी उसका बर्ताव वैसे ही रहता है । डॉक्टर के लिए भी जब मोना असाध्य हो उठी तब भी मोना को वो विजिटिंग आवर्स में देखने के लिए आता था और संवेदना हीन अपने शब्दों में अपनी मजबूरी व्यक्त करता था कि जो कुछ करना है वो डॉक्टर को करना है । मोना के मृत्यु उपरांत प्रीति के स्वभाव में परिवर्तन आता है । प्रीति पर बरती गई अमानुषिकता गोयल की मानसिक ऐब मान लिए तथा मोना के प्रति बरती गई गैरजिम्मेदारी प्रीति को क्रूर उपेक्षा ही लगी जिसके कारण वो गोयल को कभी माफ नहीं करती । उसकी भाभी उसे टोकती है ,"घर से बाहर निकालकर चार अन्य लोगों का शोषण और लताड़ बरदाश्त कर सकती है । यह कैसा स्वाभिमान है ?" लात घूसों की चोट से भी अधिक पीड़ादायक जख्म होता है अधिकार च्युत होने का। वह पति से अलग होती है और अकेले रहने की चुनौती को स्वीकार करती है । वह गोयल से तलाक चाहती है । प्रीति गोल्डन कांटीनेंटल में रिसेप्शनिस्ट के पद पर है । इस नौकरी के लिए गैर शादीशुदा की आवश्यकता थी तो प्रीति ने वैसा ही आवेदन पत्र दिया । द्विवेदी ने उसे बताया कि पर्सनल डिपार्टमेंट में उनके पति गोयल ने वे दोनों शादी-शुदा होने का पत्र दिया है । द्विवेदी प्रीति को गेस्ट को एंटरटेन करने का प्रस्ताव रखता है । इसे सुनकर वह त्यागपत्र लिखती है । लेकिन बाद में वो सोचती है द्विवेदी तो हर दफ्तर के केबिन में मौजूद हो सकता है लड़ाई खुद की है तो जूझने की चुनौती वो स्वीकार करती है । "कोई अंत नहीं है !... कोई अंत नहीं है… उसके हिस्से में । तो जूझने की चुनौती क्यों न स्वीकारे ? मोहरों की क्यों इस्तेमाल हो ?"[37] इस कहानी में रचयिता ने पुरुष मानसिकता के केंद्र में स्त्री की देह, जो निरंतर पुरुषों की शिकार बन रही है । इस तथ्य को उजागर किया है ।

मामला आगे बढ़ेगा अभी- निम्न वर्ग की परिस्थिति तथा उच्च वर्ग के दिखावे के बीच में जुझते किशोर मोट्या की यह कहानी है। मोट्या का बूढ़ा नाना मोची गिरी करता है। जब चौकीदार तावडे अपना चप्पल का अंगूठा गठवाने के लिए आते है तो बूढ़ा मोट्या के बारे में बताता है कि उनका नाती मोट्या 15 साल का है मुनसीपालिटी की शाला में छठी तक उसे पढ़ाया है। उसका मन पढ़ाई पर नहीं है। मोट्या के पैदा होते ही उसके पिता ने दूसरी शादी की बूढ़े ने उसके माँ को दोहाजू लड़के से उसकी शादी की। मोट्या को भंडी-कटका के काम उसे औरतोंवाले काम लगते है और मोचीगीरी उसे पसंद नहीं है वो उसे दुनिया का घटिया काम लगता है। डब्बा–बोतल खरीदने बेचने का धंदा उसने छोड़ा क्योंकि यह धंदा मंदा चलता है। बूढ़े के गुजारिश पर चौकीदार ने मेट्या को सक्सेना के यहा गाडी धोने के काम पर लगाया। मोट्या को यह मर्दों वाला काम अच्छा लगता है। गाडी धोने के बाद वह मेमसाहब के सारे काम करता था। कालोनी में ऐसे बाते चल रही थी कि सक्सेना साहब किसी शायरा के चक्कर में हैं और दूसरी शादी के लिए मेमसाब से अलग होना चाहते है, मगर मेमसाब उन्हें तलाक देने को राजी नहीं है। मेमसाब मोट्या को दोपहर का खाना ही नहीं, खासी टिप्स भी देती थी। मेमसाब के घरेलू अशांति से मोट्या विचलित था। मोट्या का मन मेमसाब के प्रति सम्मान ही नहीं, ममत्व भाव भी पैदा हो गया था और विरोध में साब के प्रति उतनी ही प्रतिशोध की कडवाहट। मेमसाब उसे उन तमाम औरतों से भिन्न लगी, जो मुहल्ले के रिश्ते से उसे अपनत्व से दुलारती है। मेमसाब की औलाद न होने के कारण मोट्या उनको मम्मीजी कहकर पुकारने की छूट पाता और मेमसाब भी उसे गोद लेने की बात करती तो वह खुश होता था। बुखार के कारण वह सात दिन काम पर नहीं गया। तो सक्सेना उसके महीने के सात दिन का वेतन काटता है और मोट्या के हिसाब माँगने पर उसे चाटा मारता है किंतु मेमसाब चुप्पी साधी रहती है। इसी कारण मोट्या को उनका गुस्सा आता है और सक्सेना साब की सफेद टोयटा पर लपलपाती सरिया लेकर निर्ममता से प्रहार करते हुए भद्दी और अश्लील गालियों की बौछार करता है। यह मोट्या का विध्वंसक रूप देखकर लोग दूर खड़े रहते हैं, लेकिन मेमसाब उसके हाथों से बड़ी आसानी से सरिया लेती है। मोट्या शांत हो जाता है, “तुमने खाडा कटवा दिया न, मेमसाब…अपने सामने चांटा मारने कू दिया न !....मैं…मैं…।”[38] तभी वहाँ पर जमी भीड़ हिंसक रूप में उसपर टूट पड़ती है। उच्च वर्गीय लोगों की ह्रदय हीनता तथा मोट्या जैसे निम्न वर्ग किशोर का लगाव, प्रेम और विश्वास उनको ऐसी चुनौती देने के लिए तत्पर हो जाता है।

चित्रा मुद्गल को निम्नवर्गीय जीवन के सारे पहलुओं को सूक्ष्मता से चित्रित करने की अपार कुशलता प्राप्त है। पुष्पमाल सिंह इस पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए कहते है, “इस कहानी की मुख्य घटना

मोट्या के आक्रोश को केंद्र में रखकर झोपडपट्टी की छोटी जाति का जनजीवन पूर्ण विस्तार से उसके आर्थिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत हुआ है। मोट्या के नाना की आर्थिक स्थिति, नवयुवकों के अपने पेशे से घृणा और कहीं अच्छी नौकरी या ढंग का काम न पाने की व्यथा, जवान लड़की का प्रसव होते ही पति का छोड़ जाना और दोहाजू का से बिना बच्चे का स्वीकार करना, मोची की आमदनी और बढ़ती हुई वृद्धावस्था की निर्बलता - शक होता है कि लेखिका को कौन-सी परिस्थितियाँ मिली, जिनसे इस जीवन को इतने निकट से जाना परखा।"[39]

रूना आ रही है – यह कहानी बुआ भतीजी के रिश्ते में आई गलतफहमी के शिकार के कारण दोनों में दूरियाँ पैदा होती है। अंतर धर्मीय विवाह के कारण बुआ भतीजी के बीच आयी दूरियों को बुआ की बेटी उनको एक करने का प्रयास करती है। निमा की माँ बाबूजी की दूसरी पत्नी थी। मूल में निमा हुई जिसका चेहरा उसके पिता ने साल भर नहीं देखा। निमा से डेढ साल पीछे रूना होती है। सब रूना से प्रेम करते थे पर उससे कोई प्यार नहीं करता था इसीलिए वो रूना से द्वेष करती थी। इसके बावजूद रूना ही उसका कवच था। सब उसकी उपेक्षा करती है लेकिन रूना उसे हमेशा साथ देती थी। इन दोनों के बीच श्रीमंत आता है। श्रीमंत और रूना का एक दूसरे के प्रति लगाव बढ़ता है और वे एक दूसरे से शादी करने के लिए तैयार होते है। श्रीमंत की माँ अध्यापिका होती है। यह तय हुआ था कि रूना की शादी निमा का रिश्ता हो जाने के बाद होगी। अब रूना अपने और श्रीमंत के बीच निमा की उपस्थिति तक नहीं सह पाती। तभी सल्मा आपा से निमा की मुलाकात हो जाती है और उनके आत्मीय व्यवहार से वो खुश होती है। सलमा का भाई शैकत और निमा एक दूसरे को चाहते हैं। वो दोनों तय करते हैं कि रूना के ब्याह तक वो दोनों रुकेंगे। श्रीमंत के घरवाले रूना से रिश्ता तोडते हैं और यह बहाना बनाते है कि निमा किसी मुस्लिम लड़के के साथ सरे आम घूमती है और दोनों ने छिपकर ब्याह भी कर लिया है। ऐसे घर में वो कैसे रिश्ता करते। श्रीमंत की माँ अध्यापिका होते हुए भी वह शगुन वापस करती है। रूना ने इसका जिम्मेदार निमा को ठहरा दिया और आजीवन अविवाहित रही। जब रूना आ रही है यह खबर निमा मुनिया को देती है तो वह बताती है मैंने ही परसों तुम्हारी शादी की सालगिराह है न इसलिए उन्हें पत्र लिखा था। मुनिया के इस दोनों बुआ भतीजी को मिलाने की कोशिश करती है। तब निमा को पछतावा होता है यह वो क्यों नहीं कर पाई जो मुनिया ने किया। परिवार से कट जाने और काट कर अलग कर जाने के दर्द को निमा बखूबी जानती है। कहानी दो धर्मों के बीच वैवाहिक त्रासदी पर प्रकाश डालती है।

अपनी वापसी- चित्रा जी की कहानियाँ नौकरी पेशा काम काजी महिलाओं के साथ अपनी गृहस्थी में रसी-

पगी महिलाओं के परिवेश गत तनाओ को बहुत बारीकी और संवेदनशीलता के साथ चित्रित करती है।‘अपनी वापसी’ उच्च वर्गीय स्त्री के अकेलापन की कहानी है। शकुन अपने आपको पूरे परिवार में अकेला पाती है। बेटा बिनू कॉलेज जाता है, बेटी रिन्नी महँगी मॉडल है और पति हरीश उद्योगपति है पर शकुन के लिए किसी के पास समय नहीं है। “लेकिन, शायद उसकी परिभाषा गलत थी। माँ उपयोगिता का ही पर्याय है और वह ही उसकी अहमियत थी। उपयोगिता ही उनके मध्य पुल थी।‘जुड़ाव’ लगाव का पुल’ किंतु हरीश और उसके बीच तब कौन सा ऐसा पुल था जो तब जरूरी था और अब उसकी आवश्यकता नहीं रही ?”[40]

डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर शकुन के बारे में लिखते हैं- “‘अपनी वापसी’ की ढलती उम्र, उतरती और क्षीण होती जाने वाली सुख देने की ताकत के कारण परेशान शकुन प्रौढ़ावस्था की खास समस्या से पीड़ित है। पारिवारिक वास्तविकता के बीच उनकी व्यथा को चित्राजी ने गहरे स्तर पर पकड़ा है। अपने पति की उपेक्षा, सुंदर और जवान लड़की के प्रति सूक्ष्म सी डाह, पति और पत्नी के बीच मुक्त मित्र संबंधों में उत्पन्न निरर्थक किन्तु सालनेवाला सूक्ष्म, संदेह अपनी असमर्थता का बोध और सबके बीच उत्पन्न बढ़ता मानसिक और शारीरिक अस्वस्थ, शैथिल्य, अवसाद और आत्मकेंद्रितता ! चित्राजी ने यह व्यापक अनुभव बड़ी कलात्मकता से सम्प्रेषित किया है।”[41]

हरीश का दोस्त मेजर के साथ शकुन की बनती थी। वो शकुन की प्रशंसा करता, सलाह देता और बातें करता था। जब डिनर के लिए हरीश और शकुन मेजर के यहाँ जाते है तो मेजर अपनी व्यथा शकुन को कहता है तो उसे अपना ही चित्र दिखाई देता है। “ मैं इस दरमियान बहुत टूटा हूँ.... शकुन.... बहुत मरां हूँ.... बहुत सहेज के रखा है मैंने अपने को....यही सोचकर कि सुनिता को मेरी जरूरत न सही....आदिम और करुणा को तो है.... बच्चे कट गए.... सुनिता असंशय, विरक्ति, अपेक्षा और स्वार्थ की प्रति मूर्ति बन गई....मैं जीना चाहता हूँ....मैं जी नहीं पा रहा....।”[42]

डॉ. मंजु शर्मा के अनुसार, “चित्रा मुद्गल की कहानी ‘अपनी वापसी’ में आधुनिक परिवारों की समस्याओं का खुलकर वर्णन किया गया है। माँ अपने पुराने भारतीय संस्कारों को छोड़ नहीं पाती जिसके कारण पति और बच्चों को बीच उपहास की पात्र बनती है। बच्चों का बढ़ता हुआ आधुनिकता का मोह जब उससे सहन नहीं होता और वह आपत्ति प्रकट करती है तो वह परिवार से और ज्यादा कट जाती है।”[43] इस कहानी में शकुन इसका जब मेजर की व्यथा देखती है तो खुद के मन को समझाती है और अंत में ‘नहीं मैं जीऊँगी’ इस आशावाद

से वह घर लौटती है।

अनुबंध- फिल्मी दुनिया की सफलता तथा असफलता पर आधारित यह कहानी है। नरेश के मित्र ने कलात्मक फिल्म 'फिल्म वित्त निगम ' से ऋण लेकर बनाई थी। फिल्म सचमुच अच्छी बनी थी। पर व्यावसायिक हथकंडों से उसका वह बुद्धिजीवी मित्र एकदम अनभिज्ञ था, बस फिल्म बना–भर पाई। नरेश एक सुअवसर मिलते ही प्रादेशिक फिल्म का निर्देशन करता है। दूसरी फिल्म मात्र अपनी 'खा पी लेने' की ऐयाशी की गुंजाइश रखकर वो जरूर सफल होंगे और रातोंरात एक ऑफ-बीट फिल्म बनाने का सेहरा उसके सिर पर होगा लेकिन पर्याप्त चर्चा के बावजूद फिल्म डिब्बे में रही और वह फुटपाथ पर आता है। जानकी को चाल में रहना झोपडपट्टी में रहना लगता है। वह जानकी से बहस करता था कि इस बात को जिंदगी को महत्व देना चाहिए कि वह उसके जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति की पत्नी है। जानकी की ममेरी–चचेरी बहने भी उससे ईर्ष्या करती है। जब फिल्म बन रही थी तो बड़े फ्लैट में रहता था। पर फिल्म की असफलता से उसे मजबूरन चाल में रहना पड़ता है। जिसके कारण उसे हर बार जानकी ताना मारती है कि इससे बड़ा तो लखनऊ वाले घर का भंडार है। अशोक दा वाला प्रोजेक्ट के प्रति अपनी अभिरुचि जाहिर की तो उसे जानकी की प्रताड़ना सुननी पड़ती थी। नन्हे की चिट्ठी आई थी कि छोटे भाई मुन्ना की छाती में पैंच बताया है और पैसों की कमी के कारण माँ भी परेशान थी। नन्हे को उसके मामा के घर पढ़ने के लिए रखा था लेकिन उसका मामा शारीरिक शोषण करता है। नन्हे अपने भाई नरेश को उसे वहाँ से मुक्त करने के लिए कहता है। नहीं तो वो अपनी जान देने के बारे में लिखता है। नरेश को अपना बचपन याद आता है। उसके माँ के गुजरने के बाद उसके पिता उसे नाना नानी के यहाँ छोड़कर कलकत्ता चले गये थे। लेकिन नाना-नानी नरेश का शोषण करते है। एक दिन उसे बहुत मारते है जिसके कारण वो आत्महत्या करने के लिए जाता है लेकिन उसे रसूलपूर की चाची याद आती है। चाची उसके पिताजी को सब बताती है और तब से नरेश चाची के घर रहने लगता है। पिता दूसरी शादी करता है और उसकी सौतेली माँ उसे बहुत प्यार करती है, पर उसे चाची का प्यार अनमोल लगता था। बाबूजी के गुजरने के बाद माँ की स्थिति दयनीय हो जाती है। दुग्गल के समझाने पर वह अपने भाई नन्हे को चाल में लाने का फैसला करता है तथा अशोक दा के यहाँ एसोसिएट डायरेक्टर का काम करने के प्रस्ताव को स्वीकार करता है। इस कहानी में फिल्म जगत की प्रतिस्पर्धा और अंतर्द्वंद्व के मध्य मानव अनिश्चितता को प्रस्तुत किया गया है।

शून्य - शहरी जन जीवन में त्रिकोणीय प्रेम को अभिव्यंजित करती पारिवारिक विघटन तथा सरला की संघर्ष की यह कहानी है। घरवालों के दबाव में आकर सरला को राकेश से विवाह करना पड़ता है। विवाह के तुरंत बाद वह सरला को अपने और बेला के अवैध संबंध तथा उसके पति से तलाक मिलने पर शादी करने की बात बताता है। फिर भी सरला उसका साथ देती है। तीन वर्षों तक वे एक-दूसरे के प्रति शायद कर्तव्य बोध या शारीरिक भूख से जुड़े रहते है। बेला के प्रति राकेश की आसक्ति जानकर भी सरला उससे सचमुच प्यार करने लगी थी। राकेश शादी से पहले से ही बेला से प्यार करता था। माँ के दबाव में आकर उसने विवाह के लिए हाँ की थी। राकेश ने विवाह से पहले सरला के घर पर अपने और बेला के संबंध के बारे में चिट्ठी तथा फोटों भेजी थी पर घरवालों ने वो मजाक में लिया और सरला से छिपाया। बेला के कारण उन दोनों में कलह बढ़ गया और राकेश अमानुषिकता पर उतर आता है। वो कहता है, 'बेला अपनी जगह है और तुम अपनी जगह।' बेला विश्वास और सामर्थ्य पा रही थी और वह इसी विश्वास और सामर्थ्य के भरोसे अपने पति से लड़ रही थी।

पुष्पमालसिंह के अनुसार –"'शून्य' दाम्पत्य की टूटन को नारी मनोविज्ञान की कुशलता से चित्रित करती है। किन्तु कहानी की नायिका का यह निर्णय कि वह 'राकेश और बेला से अब कोर्ट में ही मिलेगी', आधुनिकता के तेवरों से युक्त है। उसकी यह पीडा कि 'क्या अतीत बन गए संबंध जिए गए सत्य को विस्मृत कर देते हैं ?' संबंधों को नारी की भावुक मनःस्थिति से देखने का एक अत्यंत सहज स्तर है जिसमें एक मनोवैज्ञानिकता है।"[44] पुष्पमाल सिंह मानते है कि समकालीन युग में नायिकाओं की मानसिकता हार माननेवाली नहीं थी। वह निर्णायक लड़ाई लड़ने के लिए सक्षम थी। चाहे उसे कानूनी प्रक्रिया से ही क्यों ना गुजरना पड़े।

वह राकेश से अलग होना चाहती है लेकिन अपने बेटे दीपू को साथ नहीं रखना चाहती है। इसलिए यह मामला अदालत तक जाता है और निर्णय राकेश के हक में होता है, बच्चा सात साल तक माँ के संरक्षण में रहेगा तथा खर्च राकेश देगा।

डॉ. वेदवती चौधरी सरला के बारे में कहती है-"कामकाजी होने के नाते वह अपने बालक दीपू को किसी भी कीमत पर रोकेश और बेला को नहीं देना चाहती। वह सुप्रीम कोर्ट तक लड़ने तैयार है। यदि कामकाजी न होती तो समझौता कर लेती।"[45]

तब से दीपू सरला की जिंदगी की पूर्णता और प्रवाह का पर्याय बन जाता है। वह दीपू को माँ-बाप दोनों का प्यार देती है और उसकी हर ख्वाइश पूरी करती है। डॉ.चंद्रकांत बांदिवडेकर के मतानुसार- "'शुन्य' में पुरुष प्रधान समाज में पुरुष के अहंकार और उसकी ज्यादती के अनेक पहलुओं के बीच चित्राजी ने भारतीय माँ की संस्कार शीलता के कारण उत्पन्न वेदना को ही सामने रखा है।"[46] उसने दीपू को समझा दिया कि उसके पिता विदेश में रहते है। राकेश सात साल पूरे होने से पहले बेला के कहने पर दीपू को अपने पास ले जाने के लिए आता है। "इसलिए नहीं कि सहसा उसके हृदय में पितृत्व का स्रोत फूट पड़ा या बेला ममतामयी हो उठी, बल्कि इसलिए लेने आए है कि अब उनके समृद्ध दांपत्य में एक ऐसा शून्य पैदा हो गया है, जिसे वे किसी उपाय से नहीं भर सकते- दीपू ही उसका एकमात्र विकल्प है"[47] क्योंकि दुर्घटना के कारण बेला अब कभी माँ नहीं बन सकती थी। बरसों से एक शून्य उसके जीवन का हमसफर रहा। अब वही शून्य के दर्द का अहसास वह बेला को देना चाहती है। सरला दीपू को अपने से दूर नहीं करना चाहती है और उसके लिए वो कानून से लड़ने के लिए तैयार है।

मंगला कप्पीकेरे कहती है कि- "कहानी की सरला स्थितियों के कारण पति को छोडकर आत्मनिर्भर होती है। 'स्व' के प्रति जागरूक होकर अपनी आत्मा और अस्तित्व की रक्षा करती है। वह पति के हाथ की कठपुतली बनने से इन्कार करती है। अपने अधिकार के लिए सुप्रीम कोर्ट तक जाने की तैयारी स्वीकारती है। उसका यह रुप विद्रोह को प्रकट करता है।[48]

डॉ. शीला रजवार के अनुसार -"पहले नारी को भावना की कसौटी पर कैसा जाता था किन्तु अब उसका मानदंड बौद्धिकता है। यह बौद्धिकता विद्रोह और निर्लिप्तता दो रूप में मई प्रकट हुई है।"[49]

चित्रा मुद्गल ने अपनी नई कहानियों द्वारा पति-पत्नी के विविध चित्रों द्वारा उनके संबंधों को स्पष्ट किया है। वर्तमान में नारी की बौधिकता के सहारे उसका परिवार एवं सामाजिक स्थान निर्धारित किया जा रहा है क्योंकि स्त्री पढ़-लिखकर अपनी बुद्धिमत्ता द्वारा होशियारी सिद्ध की है। उसमें अब आत्मविश्वास की भी कमी नहीं रहीं।

पेशा – यह पत्रकारिता जगत की कहानी है। जहां पर पत्रकार प्रणव अपने मित्र नरेंद्र को हर मुसीबत में साथ देता है। उसके अंदर की प्रतिभा को परिमार्जित करने का प्रयास करता है। नरेंद्र भी अपने परिवार द्वारा दुत्कारा तथा ठुकराया गया था। प्रणव का प्रशिक्षु-काल चल रहा था। संपादक बतरा द्वारा उन दोनों को स्तंभ लिखने

का अवसर मिलता है। पर उनकी शर्त यह थी, जो पहले 'ए' ग्रेड सितारे का नाम सुझाएँ तथा उसका साक्षात्कार लेगा उसको ही पत्रिका में स्तंभ लिखने का मौका मिलेगा। ताकि स्तंभ में पाठकों की रुची पैदा करें, जिससे पत्रिका की लोकप्रियता में निःसंदेह बढ़ोतरी हो। नरेंद्र संदीप मेहरा का नाम सुझाते है और उनका साक्षात्कार पर आधारित स्तंभ तैयार करने के लिए भागा दौड़ी भी करता है। प्रणव सोचता है कि मित्रता एक जगह है, पेशा अपनी जगह। मित्रता के कुछ उसूल हैं तो पेशे के भी कुछ उसूल हैं। उचित यह है कि दोनों की फाइलें अलग रखी जाए। "नरेंद्र उसका प्रतिद्वंद्वी बना इसलिए वो चुनौती को स्वीकार करें। यहाँ सिर्फ पैसों का मसला नहीं था, न ही ईर्ष्या-द्वेष का यह उसकी क्षमता और सामर्थ्य पर लगा प्रश्न चिन्ह है।"[50] इसलिए प्रणव सुप्रसिद्ध अभिनेता शिशिर कपूर का स्तंभ पिछले ही डाक में संपादक बतरा को भेजता है। जिसके कारण नरेंद्र का मौका चला जाता है तथा प्रणव को पत्रिका में स्तंभ लिखने का अवसर प्राप्त होता है। प्रणव यहाँ व्यवहारिक होता है, वह मित्रता से अधिक पेशे को महत्व देता है भले ही इसके लिए उसे अपनी मित्रता दांव पर लगानी पड़े।

लाक्षागृह- यह कहानी सुनीता जैसी बदसूरत लड़की की वेदना को प्रकट करती है। सुनीता के बदसूरती के कारण उसे रिश्ते ही नहीं आते। उसके छोटी बहनों की शादी हो जाती है। सुनीता काम पर जाती है और वह आत्मनिर्भर है। उसके भी शादी के अरमान है। लेकिन उसे अपनी बदसूरती के कारण अवहेलना ही झेलनी पड़ती है तथा उसके माँ की सत्ता के सामने चुप रहना पड़ता है। उसकी पड़ोसन भानूबेन का मंझला देवर देवेन्द्र जो जन्म से एक टांग से लाचार है वो सुनीता को चाहता है और सुनीता के घरवाले उनकी शादी के लिए तैयार होते है। लेकिन उससे शादी करने के लिए सुनीता इच्छुक नहीं होती। तभी सुनीता के विभाग में सिन्हा की नियुक्ति होती है। सिन्हा और सुनीता एक दूसरे से घुल मिल जाते हैं। सिन्हा सुनीता के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। वह अपने भविष्य के सपने देखने लगती है। वह अपना बैंक-बैलेंस सिन्हा के मकान के पिछे खत्म कर देती है। लेकिन जब स्वामिनाथन सिन्हा से सुनीता से शादी करने का कारण पूछते हैं, तो सिन्हा कहता है कि, "आठ सौ रुपये महीने कमाने वाली कहा मिलेगी ? सौदे की कोई शक्ल सूरत नहीं होती।"[51] सिन्हा जीवन और व्यवहारिकता को एक दूसरे का पूरक मानता है। सिन्हा सुनीता से नहीं बल्कि उसको नौकरी से मिलने वाले वेतन से विवाह करवा चला था। स्त्री कितने भी बड़े पद पर पहुँचे पर उसके शारीरिक सौंदर्य का आज भी बहुत महत्व है। सिन्हा केवल उसे दुधारू गाय जानकर अपना रहा था ताकि आजीवन वह उससे धन ऐंठता रहें। सिन्हा के परिवार वाले आशा से जो खूबसूरत है उससे उसकी शादी करना चाहते हैं। लेकिन पारिवारिक जिम्मेदारियों को अकेले ढो न सकने के कारण वह सुनीता के भावनाओं के साथ खेलता है। सुनीता को जब

यथार्थ का पता को चलता है तो वह नौकरी के लिए त्यागपत्र देती है और सिन्हा से शादी न करने का फैसला करती है। अंत में सुनीता विवश होकर देवेन्द्र के साथ शादी करने के लिए राजी होती पर तब उसे पता चलता है कि देवेन्द्र की शादी कहीं और तय हो गई है।

डॉ. मंगल कप्पीकेरे कहती है -"आधुनिक युग में कामकाजी महिला को पैसे कमानेवाली मशीन के रूप में देखा जा रहा है और उसका शोषण अलग तरीके से किया जा रहा है। इस शोषण प्रक्रिया को यदि स्त्री पहचान लेती है तो अपना बचाव कर सकती है। शोषण प्रक्रिया को यदि स्त्री पहचान लेती है तो अपना बचाव कर सकती है। शोषण के एक चक्र से बचने के प्रयास में वह दूसरे चक्र में फंसती है। स्त्री का जीवन एक करुण गाथा बनकर रहता है। सुन्नी की स्थिति ऐसी ही है।"[52]

'लाक्षागृह' की सुन्नी को नौकरी पेशा नारी का संसार और समस्याएँ लेकर चित्रित किया गया है। पुरुष प्रधान समाज में नारी शोषण के कई आयाम है।

शिनाख्त हो गई है – यह कहानी अभिभावकों एवं बच्चों के मनोविज्ञान के यथार्थ को उजागर करती है, साथ ही समसामयिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा व्यवस्था, निकटवर्ती संबंधियों और पडोसियों के कृत्रिम व्यवहार पर कटाक्ष करती है। कुकी अपने बेटे सोनू को स्कूल से न लौटने पर परेशान होकर अपनी दीदी तथा पति निखिल को फोन करती है। सोनू रोज स्कूल में जाते समय बहाने बनाता है और सुबह जब उसने ऐसा ही किया तो कुकी ने उसे डाटते हुए कहाँ कि, "चुपचाप बस्ता उठाओ और चलते बनो। परीक्षा सिर पर खडी है, नहीं जानते ? उठाते-उठाते मैं तंग आ जाती हूँ, और तू है कि उठ के ही नहीं देता। ...जैसे तुझे स्कूल नहीं सैर-सपाटे के लिए निकलना है और वो आगे यह भी कहती है कि ....उसे लेट होने पर लौटाया तो मैं तुम्हें घर में नहीं घुसने दूँगी समझे ?"[53] माँ के अपने किए पर पछतावा होता है और वो अपने बच्चे को मिलने के लिए तडपती है। निखिल पुलीस में रिपोर्ट दर्ज करके सारी जगह सोनू को ढूँढते है। यहाँ पर कुकी को औपचारिक सहानुभूति देने के लिए पोडौसी आते हैं। वो हमदर्दी कुकी को विकृत और घिनौनी लगती है , जिसमें सिर्फ संवेदन शून्यता ही दिखाई देती है क्योंकि वे धीरज देने के वजह उनको और भी भयभीत करते हैं। पोडौसी तथा दीदी के कहने पर कुकी नास्तिक से आस्तिक बन जाती है तथा बच्चे के लौटने के लिए सारे देवी-देवताओं को याद करती है। निखिल को एक बच्चे की शिनाख्त के लिए बुलाते है पर जब वह सोनू नहीं होता तो उनके जान में जान आ जाती है। रात में

एक आदमी सोनू को घर छोड़ने आता है और कहता है कि सोनू उसे जुहू बीच के सामने रोड पर रोता मिला था। सोनू को देखकर उसके माँ-बाप खुश हो जाते है।

अग्निरेखा - यह एक शंकालु स्त्री-मन की कहानी है। मनु प्रसव के दौरान अपाहिज होती है। उसका पति अमरेंद्र उसे बहुत प्यार करता है। वह इंजीनियर है और अपने बढ़ते काम के चलते मनु को समय नहीं दे पाता। फिर भी मनु के लिए दौड़ -भाग करके डॉक्टर आदि का इंतजाम करता है। मनु की सेवा करने के लिए उसकी बहन शशी को बुलाते है। मनु के पिता के गुजरने के बाद उसके मायके की स्थिति पूरी बदल जाती है। माँ को उसकी बहू हर दम ताने मारती रहती है। नौकरानी की खातिरदारी करती है ताकि वो घर से चली ना जाए लेकिन माँ को बैठने भी नहीं देती। इसलिए उसकी माँ शशी को मनु के पास भेजती है ताकि वो यहाँ पर पढ़े और मनू का खयाल भी रखें। शशी अपनी बहन का बहुत अच्छी तरह से खयाल रखती है। लेकिन मनू को शशी तथा अमरेंद्र के अवैध संबंध है यह शंका हर दम सताए रहती है। उसे अमरेंद्र तथा शशी का कार्य व्यवहार अपने खिलाफ एक षड्यंत्र महसूस होता है। मनू को शक है कि, उनकी देखभाल के बहाने शशी ने घर का दायित्व ही नहीं अपने कंधे पर उठा लिया बल्कि अमरेंद्र को भी हस्तगत कर लिया है। मनु को लगता है कि अमरेंद्र बदल गए है, इसलिए वे मनु पर शंकालु और संकीर्ण होने का आरोप लगाते हैं। मनु इस तनाव के कारण शरीर से ज्यादा दिमाग से अपाहिज हो जाती है। कहानी के अंत में मनु उन दोनों के बारे में सोचकर, सिरहाने रखी डायरी पर कुछ लिखकर , मेज पर से दवाइयों की शीशी मुंह में उडेल देती है। यहाँ एक स्त्री की मानसिकता को प्रस्तुत किया है जो अपाहिज होने के कारण अपने पति तथा बहन पर शक करती है। बीमार स्त्री की रुग्ण मनोदशा का सुंदर चित्रण किया गया है। शक एवं वहम ही सारी जिंदगी को नर्क बना देता है, जिसका कोई इलाज नहीं। मनु की शारीरिक व्याधि तो औषधियों से ठीक हो सकती थी पर उसकी शंकालु मनोदशा उसके दिलो दिमाग को और अधिक बीमार कर रही थी। इसी कारण वह घुट-घुट कर प्रत्येक क्षण मर रही थी।

1.2.10.2 आदि-अनादि भाग-2

वाइफ स्वैपी –इस कहानी में उच्च वर्गीय के द्वारा एक अलग अश्लील खेल के बारे में बताया गया है। मेजर अहलूवालिया अपने मित्र की पत्नी हिमानी से ड्रिंक पीने के दौरान अपनी बची कुची जिंदगी को अलमस्त जीने के लिए वे उन्मुक्त परिंदों की तरह विचरते जीवन के हर रस को घूँट-घूँट आजमाना चाहते हैं। उनके दोस्त नये खेल ईजाद किया करते हैं। उसी में से एक खेल का नाम ‘वाइफ स्वैपी’ यानी कि पत्नियों की अदली-बदली।

इस खेल में महीने के आखिरी शनिवार की शाम क्लब की प्रतीक्षित, ड्रिंक, डांस, डिनर पार्टी आयोजित होती है। देर रात तक जश्न-ए-हंगामा होता है। अंत में सभी सदस्य अपनी गाड़ी की चाबी बियर जग में सिरा देते हैं। कायदा यह होता है कि, जो सबसे पहले चाबी डालेगा वही सबसे पहले चाबी उठाएगा। वे सांस रोके, धड़कते दिलों से सभी चाबी उठाने वाले अपनी बारी का बेसब्री से इंतजार करते हैं क्योंकि जिस गाडी की चाबी जिसके पास होगी उस गाडी की मालिक की पत्नी यानी कि उनकी मलिका-ए-आलम उनकी उस खुशनुमा रात की लॉटरी होती है। चाभियाँ मिलने पर सभी खुश होते हैं मानों उनको खजाना मिल गया हो और जाम बनते ही चियर्ज फॉर वाइफ स्वैपी के नाम पर टकराते हैं। चाभी वाली गाडी की मालकिन लजाती-शरमाती बगल में आकर खड़ी हो जाती है। इस कहानी में मेजर अहलूवालिया को फलां की पत्नी मिलती है। जिसके साथ रात बिताकर मेजर को खूबसूरत अनुभव आया। लेकिन जब उनकी पत्नी उनसे दूसरे दिन पूछती है कि उन्होंने रात में उनको छूआ तो नहीं ना तो मेजर अपनी पत्नी की झूठी कसम खाता है। लेकिन उसे ऐसा लगता है जैसे उसने अपने पत्नी की कसम खाई वैसे उसकी पत्नी ने भी खाई है। यह संदेह उनके मन में आता है। "रखो मेरे सिर पर हाथ और खाओ कसम अपने सुहाग की कि तुमने उस गैंडे को कुछ नहीं..."[54] इस कहानी में पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर आरोप किया है लेकिन भारतीय संस्कार यहाँ के लोगों के मन में आड़े आते ही है। पूरी कहानी भूमंडलीकरण के नग्न यथार्थ की प्रस्तुति है।

लिफाफा – इस कहानी में बेरोजगारी की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। कहानी का पात्र अशोक काम न होने के कारण घर के सदस्यों द्वारा उपेक्षित बन जाता है। उसकी बहन अनु को ओबराय में रिशेप्सेनिष्ट की नौकरी करती है। इसलिए माँ उसके लिए कुछ ज्यादा ही चिंतित रहती है। माँ को वो गुड़िया ही लगती है। उसके हर नखरों को सर आँखों पर रखती है। अनु बगैर कुल्ला किए चाय पीती है, जब कि रात को सोते समय तकिये पर ढ़ेरों बदबूदार थूक उगलती है। दफ्तर जाते समय किसी सौंदर्य प्रतिस्पर्धा में जा रही वैसे सजती है। अनु को माँ और बाबूजी ने खुली ढील दे रखी है। वो तलाक शुदा मेहता के साथ घूमती है, उसे घर लेकर आती है और उसके माता-पिता को इसपर कोई आपत्ति नहीं होती है। अशोक उसे कही बार समझाता है लेकिन अनु उसे बेइज्जत करती है। जब से उसे नौकरी मिली है उसकी जबान बेलगाम सी हो गयी थी। इसके विपरीत अशोक की स्थिति दयनीय है। माँ उसके और अनु के बीच भेदभाव करती है, अनु को श्रेष्ठ तथा उसे गैरजिम्मेदार मानती है। उसके जल्दी उठने पर माँ को असुविधा होने लगती है, यह घंटे-भर तक पखाने में घुसा-बैठा क्या करता है ? उसी प्रकार अखबार भी सुबह उसे पढ़ने के लिए नहीं मिलता। इसलिए अशोक अनु तथा पिताजी

के काम पर जाने के बाद बिस्तर से उठता है। माँ उसके खाने के साथ, दूध भी एक ही बार देती है और अनु को दो बार दूध देती है, उसके कपडे भी समय पर नहीं धोती। डिग्रियों का पुलिंदा कंधों और खोपडियों पर ढोते हुए अशोक निराश, हताश तथा जीवन से विरक्त हो जाता है। उसके माता-पिता के कहने पर वह पिता के दोस्त डॉक्टर गुप्ता के पास सिफारिश लेकर जाता है लेकिन वो उसे घास तक नहीं डालता। ऐसे में उसकी दोस्त रेखा उसे मॉडलिंग करने के लिए प्रोत्साहित करती है और उसके क्लाइंट से मिलवाती है। वो अशोक नौकरी देने का आश्वासन देकर पैसों का लिफाफा पकड़ा देता है। अशोक लिफाफा तथा मिठाई का डिब्बा माँ के हाथ में पकड़ देता है। माँ भौचक्का रह गई और उसकी बेरोजगारी के दु:ख से सोई ममता अचानक उमड़ पड़ी। घर के सदस्यों में परिवर्तन आया। सब उसके खयाल रखने लगे तथा उसके हाल चाल के बारे में पूछने लगे। इस कहानी में नौकरी न करने पर अशोक को अवहेलना सहनी पडती है तथा नौकरी मिलते ही उसका उस घर में आदर होने लगा। "वास्तविकता जानते ही उनकी आँखों का रंग बदल गया। उसकी बेरोजगारी के दु:ख से सोई ममता अचानक उमड़ पड़ी।"[55] इस कहानी के माध्यम से चित्राजी ने बेरोजगारी की समस्या पर प्रकाश डाला है। पारिवारिक सदस्यों यहाँ तक कि माँ की ममता में भी अंतर पड़ जाता है जब पुत्र बेरोजगार हो। मनोविज्ञान के कई पहलू को स्पष्ट करती कहानी है 'लिफाफा'।

बंद – इस कहानी में मल्होत्रा साहब अपने काम के लिए शिक्षित नौजवानों पर शोषण करते हैं। 'मेनका' के संपादक मल्होत्रा साहब मुंबई बंद होने के कारण दफ्तर में नहीं आता है। लेकिन उनके दफ्तर में काम करने वाले हरीश, नवल और रमेश पर भूखे मरने की बारी आती है। मल्होत्रा साहब 'मेनका' के सहायक निर्देशक के पद पर नवल को नियुक्त कर उसे हरीश और रमेश के साथ दफ्तर में रहने के लिए कहते है। यह सुनकर नवल खुश होता है लेकिन जब मल्होत्रा साहब उनको सारा काम करने पर हर दिन के छ: रुपये देते हैं तो नवल को गुस्सा आता है। पर बेरोजगारी के कारण वे तीनों उनके इस शर्त पर जी रहे थे। मुंबई बंद होने के कारण सारी दुकानें बंद होती है। पैसे न होने के कारण ये तीनों अन्न के लिए तरसते हैं। इसलिए वे रैक्स में रखे अखबारों के ठूसे हुए बंडलों में से आधी-पौनी रद्दी बेच देते है। उसके उनको इक्कीस रुपया साठ पैसे मिलते है। उसी पैसों से वे खाना खाते हैं। दूसरे दिन मल्होत्रा साहब साफ सुतरा दफ्तर तथा रैक्स में कम रद्दी देखता है तो नवल उनको उनके न आने के कारण रद्दी बेचकर खाना खाने के बारे में बताते हैं। तो शोषक प्रवृत्ति का मल्होत्रा साहब उनके कल के तथा आज के किस्त काटकर उनके हाथों में दो रुपया थमा देता है। कहानी में पढ़े-लिखे नौजवान बेकारी

के कारण मल्होत्रा साहब का शोषण सहने के लिए विवश है। जिसे मनुष्य से ज्यादा अपनी वस्तुओं से प्यार है। समाज में स्थित शोषक एवं शोषित वर्ग की प्रवृत्ति को दर्शाया है।

इस हमाम में – 'इस हमाम में' कहानी मध्य वर्गीय परिवार में स्त्री की घुटन- संत्रास को उजागर करती है। कहानी में पुरुष वर्चस्व के अहं भाव के कारण स्त्री जीवन को नर्क तुल्य होने को दर्शाया गया है। प्रत्येक स्तर पर स्त्री शोषण, अत्याचार होता है चाहे वह मध्य वर्गीय स्त्री या निम्न वर्गीय। मध्य वर्ग में शोषण का सभ्य स्वरूप मानसिक यातनाएँ देना होता है जब कि निम्न वर्ग में आर्थिक विपन्नता और मारपीट है। इस कहानी की पात्र दीवा अपने पति के अंधविश्वास, रूढ़ि तथा पाखंड के बवंडर में घिरा उसका मन छटपटाता है। दीवा के पति सोमेश को घर से निकलते ही कचरे का खाली डिब्बा देखता है तो उसको अपशकुन प्रतीत होता है। इसलिए दीवा कचरे वाली अंजा से कहकर कचरे का डिब्बा तुरंत खाली करवाती है। जब इसके बारे में अंजा पूछती है तो दीवा अपने पति के स्वभाव बारे में बताती है। तो अनपढ़ अंजा जो आधुनिक विचारों की है वह कहती है कि पढ़ा-लिखा आदमी इन सब में विश्वास करता है। सोमेश को दीवा का अंजा से बात करना अच्छा नहीं लगता है। सोमेश ने दीवा से शादी जन्मपत्री तथा बत्तीस गुणों के मिलने पर ही की थी। एक बार सोमेश के दफ्तर के लिए निकल चुकने पर दीवा रूमाल देने के लिए पीछे से आवाज देती है, तो सोमेश उसे बांह से घसिटते हुए भीतर खींच ले गये और उसे जोर से धक्का मारते है जिसके कारण उसका सर दीवार से टकराता है। अंजा से मिलने के पश्चात उसमें विद्रोह की भावना जगती है। अंजा अपने पहले और दूसरे पति के बुरे बर्ताव के कारण उनको छोड़कर तीसरे पति के साथ रहती है। इतनी मुसीबतों को सहकर भी वह हार नहीं मानती। लेकिन उसके विपरीत दीवा अपने बेटे समीप को देखने के लिए तरसती है। अध्यापिका के लिए उसे नियुक्ति पत्र आता लेकिन पति उसे यह काम न करने पर दबाव डालता है। अंजा की कहानी सुनकर दीवा के मन में अपने पति के प्रति आक्रोश पैदा होता है। अंजा से ही उसे पता चलता है कि उनका पोडौसी मिस्टर पंजावन बहुत बड़ा स्मगलर है तथा तीन महीने जेल काटकर आया है और लोगों को यूरोप यात्रा पर गया था कहकर गुमराह करता है। उसी प्रकार केशव मेमसाहब नाच सिखाने के बहाने लड़कियों से धंदा करवाती है। दीवा इन सबसे अनभिज्ञ थी। दूसरे दिन अंजा की जगह एक आदमी के आने पर अंजा के बारे में पूछने पर वह कहता है कि, "आदमी और जगह बदलने से, जिंदगी थोड़े ही बदल जाती है।"[56] यह सुनकर वह स्तब्ध रहती है। दीवा में विद्रोह की लौ जल रह थी पर जब वह यह सुनती है तो अपने आपको घर में कुंठित रहना ही स्वीकार करती है।

मोरचे पर –यह एक संघर्ष रत स्त्री की कहानी है जिसका पति मरने पर भी अपने बच्चों को उनकी कमी महसूस नहीं कराती है। थल सेना के मुख्यालय से सूचना आती है कि, सुदीप अब जिंदा नहीं... कराची के बंदीगृह में महीनों पूर्व उसकी मृत्यु हो गई थी। यह खबर सुनकर रिन्नी को बहुत दुख होता है। लेकिन वह अपने बच्चे राजू और बिट्टी को खुश देखने के लिए साहस से काम लेती है। वह अपने बच्चों को इस घटना के बारे में नहीं बताती क्योंकि वे दोनों सुदीप से बहुत प्यार करते हैं और इसका उनपर बुरा असर भी पड़ सकता है। रिन्नी दोहरी जिम्मेदारी निभाने की कोशिश करती है। उसको हर दम अपने पति की याद आती है लेकिन वो अपने बच्चों को उसकी भनक नहीं लगने देती। रिन्नी अपने बच्चों को उनके मन चाहे जगहों पर घुमाती है। पिता की तरह उनको जो चाहिए वो खरीदकर देती है। बच्चे जहां भी जाते हैं अपने पिता को याद करते हैं। पिता के खालीपन को भरकर उनको खुशी देने के मोरचे पर वह रहती हैं। यह एक ऐसी आत्मनिर्भर औरत की कहानी है जो स्वयं दु:ख में रहकर बच्चों की दुनिया सुख से भरने की कोशिश करती है। पर इस मोरचे पर टिक पाना उसके लिए असंभव हो जाता है। राजू बिट्टी की ओर उन्मुख होकर बिफरा, " इडियट ! अकल है ? जब देखो तब जिद करने लगती है...डू यू थिंक, पापा इज विथ अज? जो कहेगी, सब मिलता जाएगा ?"[57]

गर्दी – यह कहानी आधुनिक तथा परंपरावादी विचारधारा की टकराव की कहानी है। कहानी का नायक अपने दोस्त उमेश के मृत्यु के उपरांत उसकी पत्नी राजी तथा उनके दोनों बच्चों को सहारा देता है। नायक जब मुंबई में नौकरी करने के लिए जाता है, तो गेस्ट हाऊस में किराएं पर रहता है। लेकिन उसका वहाँ दम घुटता है, वो वापसी के लिए लौटने ही वाला था कि उसे विकराल शहर की अजनबियत के बीच उसका मित्र उमेश का अपनत्व का स्पर्श मिलता है। वो उसे अपने घर ले जाता है। अचानक एक दिन उमेश की मृत्यु के बाद उसके परिवार पर आए संकट के कारण उन परिस्थिति में उनको अकेला तथा बेसहारा नहीं छोड़ना चाहता। इसलिए नायक राजी तथा बच्चों को सहारा देता है। नायक अपनी नौकरी करते हुए उमेश के परिवार की जिम्मेदारी भी उठाता है। राजी आत्मनिर्भर है वह नौकरी करती है। राजी की दो बच्चियाँ हैं, एक दस साल की रूना तथा छ साल की मीता। दोनों नायक से बहुत प्रेम करती है। लेकिन माँ उसे झूठी बीमारी का तार भिजवाकर गाँव वापस बुलाती है और राजी से दूर रहने के लिए अपने सिर की कसम खाने के लिए कहती हैं। अगर वह उनसे दूर नहीं रहा तो वे अपने बड़े बेटे की तरह नायक भी चीन के युद्ध में मारा गया ऐसे समझेगी। नायक को यह सारी घटनाएँ टैक्सी में सफर करते हुए याद आती है। नायक झूठी कसम खाता है लेकिन राजी को अपनाने का फैसला करता

है। समाज में औरत के विधवा होने पर उसे अनेक यातनाओं को सहना पड़ता है। यहाँ नायक के माध्यम से एक आदर्श रिश्ते एवं आधुनिक समय में पुरानी पीढ़ी की रुढ़िवादी आडम्बरयुक्त मानसिकता को प्रस्तुत किया है।

भूख- चित्रा जी की 'भूख' कहानी रोजी-रोटी पर आधारित है। लक्ष्मा अम्मा ६ महीने के छोटू को कलाबाई को देती है, जो दिन भर बच्चे को संभालती है और शाम को बच्चे के साथ पैसे भी देती थी। जिससे लक्ष्मा अम्मा का परिवार रात का भोजन करता था। दिड़ महीने बाद छोटू को तेज बुखार के कारण अस्पताल लेकर जाते हैं और वही उसकी मृत्यु होती है। डॉक्टर लक्ष्मा अम्मा से पूछते हैं, "बच्चे को खाने को नहीं देती थी क्या? बच्चा भूख से मर गया। उसकी आंतें सूखकर चिपक गयी थीं।... तब लक्ष्मा अम्मा को एहसास होता है कि, 'भिखारिन बच्चे को भूखा ही नहीं रखती थी, रोता नहीं तो चिकोटी काट-काट के रुलाती कि लोगों का दिल पिघल जाए।"[58] इस कहानी में लक्ष्मा की बेबसी लज्जित और स्तब्ध करने वाली है। उसके पास सिवाय पछतावे के कुछ नहीं बचता -" उसे दिखाई दे रही है दूध भरी बोतल... बिस्कुट का डब्बा ...चिपकी आंतें...और एक बच्चे की लाश !"[59] इस तरह यह कहानी झुग्गी-झोपडियों में रहने वाले गरीबों की विपन्नता भरी त्रासदी जनक जीवन को बयान करती है।

"जीवन की नग्नता और कड़वाहट का बोध कराती 'भूख' अविस्मरणीय रचना है जिसके विषय में भूगनाथ सिंह ने लिखा है कि, "लक्ष्मा की बेबसी लज्जित और स्तब्ध करनेवाली हैं। चित्रा मुद्गल का अनुभव यही है कि 'भूख' उनके लेखकिय जीवन में रोमांचक अनुभव बन कर आई।"[60]

इस कहानी में चित्रा मुद्गल ने पुंजीधर्मी महानगरीय में इंसानियत का क्या मूल्य है यह बता दिया है। उनके इस कहानी के बारे में चर्चा करते हुए श्रीनिवास श्रीकांत कहते है कि, "भूख कहानी में झोपडपट्टी जीवन की एक झंझोड देनेवाली तस्वीर है जिसे कथा से गुजरते हुए महसूस किया जा सकता है। इतना सजीव रेखांकन तभी किया जा सकता है। जब उसे करीब से देखा अनुभव किया गया है। इसके लिए चित्रा को इस स्तर की जिन्दगी के अनेक पहलू टटोलने पड़े होंगे।"[61]

'भूख' एक असहज परिवार को जिस भीषण परिस्थिति तक ले जाती है। इसका चित्रण मार्मिक चित्रा मुद्गल ने किया है। 'भूख' की माँ लक्ष्मा की विवशता कुछ और ही है। बड़े बच्चों की भूख मिटाने के लिए माँ अपने छोटे बच्चे को एक भिखारिन के हाथ किराए पर देती है। भूख के कारण उस बच्चे की मृत्यु हो जाती है। पारिवारिक जीवन की यह असहाय स्थिति अन्य कहीं नहीं मिलेगी।

चेहरे- इस कहानी में अपने चेहरे पर सज्जनता का मुखौटा पहने लोगों की मानसिकता को प्रस्तुत किया है। भिखारियों के दयनीय स्थिति का उद्धाटन हुआ है। साथ ही प्रशासकीय व्यवस्था को रचनाकार ने कटघरे में खड़ा किया है। इस कहानी के माध्यम से धन और दैहिक शोषण के संदर्भ व्यवस्था के प्रति बुलंद आवाज उठाई है। टिकट घरों पर पॉकेट मारी के कारण वहाँ के लोग परेशान है। इसीलिए नायक सावधान रहकर भिखमंगों पर नजर रखता है। उसका भी पर्स उसकी असावधानी के कारण भिखमंगों ने चुराई थी। नायक को समझ में नहीं आता है कि ये जो भिखमँगे टिकट घरों पर आकर टूट पड़े हैं, क्या सिर्फ यात्रियों की दया दृष्टि के पात्र बनने के खातिर।' नायक ने इन भिखमँगों के खिलाफ मौखिक और लिखित दोनों तरह शिकायत की थी। साथ ही स्थानीय अखबार में उसने टिकट घरों पर भिखारियों के बढ़ते उत्पात और यात्रियों की परेशानी को रेखांकित करते हुए कड़ा विरोध पत्र लिखा था। लेकिन सरकार यह समस्या सुलझाने में विफल हो गई थी। भीख माँगना मजबूरी नहीं न उसका ताल्लुक मात्र पेट भरने और तन ढकने से है। भीख माँगना लोगों का पेशा बन गया है। नायक स्टेशन इंचार्ज को भिखमंगों के बारे बताता कि भीख के लिए संस्पर्श गिडगिडाकर यात्रियों को ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें असावधान बनाते हैं, अधनंगे बैठकर ये ग्राहक फंसाती है, क्यों में यात्रियों की शक्ल में धंसे मौका पाकर जेब काटते है तभी एक बच्चा बूढ़े का पॉकेट मारकर भाग जाता है, तो भीड़ उसकी माँ को पकड़ती है और उनको वहाँ से निकालते हुए पुलिस के हवाले करने की धमकी देते हैं। तो वह भिखारिन कहती है, "दिखाई देगी मैं, देखाई देगी ...इदरीच बैठेगी ..ये जागा मेरी है और काय को नई बैठेगी। वो जो बड़े बाबू बैइठते आत मध्ये हफ्ता लेते मेरे से हफ्ता ! और ये भडुए ! कैसै पकडेंगे मेरेको , रात यारड में ले जाके..."[62] यह सुनकर नायक भौचक हो जाता है। जिन लोगों को रक्षक कहते हैं वे इनका भक्षक बनकर इन भिखमंगों पर शोषण करते हैं।

ताशमहल – पुनर्विवाह में आयी खोखली मानसिकता को इस कहानी में प्रस्तुत किया है। कहानी की नायिका शुभू अपने रक्ताल्पता से पीड़ित बच्चा तथा दो हफ्तों से टाइफाइड बुखार से पीड़ित बच्चे को अकेला घर पर छोड़ना नहीं चाहती है। डॉक्टर उसे तुरंत बच्चू को नर्सिंग होम में भर्ती करने के लिए कहते है, लेकिन 'एजुकेशन फॉर वीमन्स इक्वालिटी ' की कार्यशाला की जिम्मेदारी शुभू के कंधों पर होने के कारण वो निशीथ से घर पर बच्चू के पास रुकने के लिए विनती करती है। पर निशीथ का कहना 'टाइफाइड है कैंसर नहीं ! मर नहीं जाएगा बच्चू' यह सुनकर वह तिलमिला उठती है। ना इलाज से वो बच्चू को अपने सांस के पास रखकर ऑफिस के लिए जाती है। जब से रोनू पैदा हो गया निशीथ रोनू को ज्यादा प्यार करता है क्योंकि उनके और सास के

मुताबिक वह घर का वारिस है। शुभू ने निशीथ से स्पष्ट कहा था कि वह अपने और बच्चू के बीच किसी अन्य की गुंजाइश कतई नहीं पाती। निशीथ उसे आश्वासन देता है कि बच्चू तुम्हारे प्राणों का स्पदंन ही नही है, वह मेरे हृदय में संचारित हो रहा है। निशीथ बच्चू से प्यार नहीं करता है। लेकिन रोनू के आने से बच्चू का प्यार कम होता है। उसे लगता है कि उसे बच्चू दिवाकर की शक्ल में याद आता है। इसलिए वो बच्चू की उपेक्षा करता है। उसके साथ, सौतेला व्यवहार करता है। इसी कारण शुभू अपने शिमला में आए स्थानांतरण को स्वीकार करके इस पिता के झूठे रिश्ते से दूर जाती है। इस कहानी में पुरुष के सौतेला व्यवहार प्रस्तुत किया गया है। समाज की वर्चस्व वादी मानसिकता को दर्शाया गया है।

लेन- इस कहानी निम्न वर्ग की जुझारु और संघर्षशील स्त्री की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। महेंदरी लेन में पखाना धोने तथा कुडा फेंकने का काम करती है और उसका पति पूरा दिन धूप में रिक्शा चलाता है। फिर भी उसके घर की ऐसी दुर्दशा है कि बच्चों ने एक महीने से दाल-चावल को भी नहीं देखा है। महेंदरी के पति को अंधेरे में छुरा मार दिया जाता है। चार दिन के बाद दत्तूराम होश में आता है। दत्तूराम से पूछताछ के लिए पुलीस आते है लेकिन महेंदरी खूनी को पहचानती थी। इसलिए उसे पुलीस थाने खूनी के साथियों के पहचान के लिए बुलाते हैं। महेंदरी भी खूनी को फाँसी के फंदे तक पहुँचाना चाहती थी। इसलिए वह बयान देने के लिए तैयार होती है। इधर पुलीस चौकी तथा अस्पताल में जाने के कारण लेन वाली औरतें गंदगी को साफ न करने के कारण उसे भला-बुरा कहती है। सब चुपचाप सहनकर चुप रहती है। खूनी को तथा उसके साथियों को पुलिस पकड़ती है। लेकिन यहाँ पर महेंदरी के घर पर गुंडे आकर उसे समझौता करने के लिए धमकाते हैं और पैसे भी देते हैं। पर गुस्से में महेंदरी उनके पैसे लौटाकर उनको वहाँ से भगाती है। जब डॉक्टर द्वारा उसे पता चलता है कि उसका पति अब कभी रिक्शा खींच नहीं पाएगा। तो उसे अपने ऊपर आयी विपत्ति का अंदेशा होता है और महेंदरी गुंडों से पैसे लेकर समझौता करने के लिए तैयार होती है। "उन लोगों ने कहा था -'हम सुबह दस-ग्यारह के बीच आएंगे। और यही नौ बज रहे हैं।"[63]

"चित्रा जी की कहानियों में जिस प्रकार स्त्री की व्यथा कथा सर्वत्र दिखाई देती है, उसी प्रकार निम्नवर्गीय जीवन की भूख एवं अभाव का बयान भी सुलभ है। नारी जीवन के अभाव एवं संघर्ष एक प्रकार से अनादि काल से चलते है तो वैसे ही कुछ उपेक्षित वर्ग, जो हमारे समाज के मुख्यभाग है, वे भी कई प्रकार से प्रताड़ित है।"[64]

जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं – इस कहानी में राजनीति के दांवपेचों में भोली-भाली जनता की भावनाओं के साथ नेता खेलते हैं इसका उदाहरण प्रस्तुत किया है। सुख्खन भौजी ठाकुर सुमेर सिंह के घर चौका-बासन का काम करती है। उनका बेटा ललौना पोलियों के कारण चल नहीं पाता बल्कि बकुली के बैसाखी के सहारे चलता है। वह मदरसे में पढ़ने के लिए जाता है। उनकी स्थिति इतनी दयनीय है कि वो अपने बेटे का इलाज अच्छे डॉक्टर से नहीं कर पाती। ललौना की घायल काँखे इतनी हल्दी सोख लेती है कि अकसर दाल में चुटकी भर हल्दी छिड़काने की गुंजाइश नहीं बचती। पूरे निराशा के जीवन में आशा की किरण बनकर आए जगदंबा बाबू को वो भगवान मानती है। ठाकुर सुमेर सिंह उसे बताता है कि भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री जगदंबा बाबू ने 'विकलांग उद्धार समिति' गठित की है, उसके माध्यम से वो उनको स्वावलंबी बनाने का प्रयास करेंगे। अगले चुनाव के प्रचार के लिए समारोह के दिन जगदंबा बाबू गाँव में आते हैं और विकलांगों के लिए सिलाई की मशीनें, बैसाखियाँ, और पहिये वाली गाडियाँ बाँटते हैं। ललौना और सुख्खन भौजी पहियों वाली गाडी पाकर बहुत खुश होते हैं। लेकिन उसी रात सुमेर सिंह अपने गुंडों के साथ सुख्खन भौजी के घर आता है और उनसे कहता है कि, कल बीघापुर में 'विकलांग उद्धार समिति' में दूसरा समारोह है लेकिन प्रदान की जाने वाली गाडियाँ अब तक नहीं आई है। बिना उसके भावनाओं की कदर किए पहियों वाली गाडी लेकर चले जाते हैं। सुख्खन भौजी का मोह भंग होता है। इस कहानी में नेताओं के दिखावों के सामने सामान्य मनुष्य की छोटी सी इच्छा भी पूरी नहीं हो सकती। राजनीतिक नेताओं के प्रलोभनों में फंसकर मासूम ग्रामीण जन जीवन को ठगने की कहानी है।

दरमियान – यह नौकरी करती स्त्री तथा माँ के दायित्वों में बंधी आंकांक्षा की कहानी है। इस कहानी द्वारा काम काजी मध्य वर्गीय स्त्रियों की व्यथा-कथा को बयान किया गया है। आकांक्षा अखबार दफ्तर में काम करती है। घर, दफ्तर तथा यातायात की भागा दौड़ी में अचानक उत्पन्न मासिक धर्म की पीड़ा आकांक्षा को असमंजस में डालती है। वह सोचती है, 'क्यों हुई वह औरत जात ! औरत होना नरक है।' वह दफ्तर से घर जाने के लिए आई थी लेकिन इस मासिक धर्म के संदेह के कारण वह फिर से दफ्तर जाना नहीं चाहती क्योंकि दफ्तर के पुरुष यौन टिप्पणियों से वहाँ के माहौल को ईर्षा-द्वेष की प्रतिद्वदिता में उतर आते हैं। आकांक्षा को उसके पति का पूर्ण सहयोग है। अगर उसे देर होती तो वह बेटी मिना को लाने शिशु विकास केंद्र जाता। परंतु आज इसका पूर्वाभास न होने के कारण उसने सिराज को भी फोन नहीं किया। उस स्थिति में उसे शिशु विकास केंद्र जाना बहुत अटपटा लगता है। वह बेटी से बहुत प्यार करती है। आकांक्षा के आने के समय पर वह जोर-

जोर से रोती है। लेकिन सुबह से शाम तक मिनी चुपचाप रहती है। वह माँ-बाप के मजबूरियों को समझती है। आकांक्षा घर पहुँचकर नहाकर जल्दी शिशु विकास केंद्र जाती है। वहाँ पहुँचने के लिए वो अपनी सेहत का भी ध्यान नहीं रखती है। उसको लगता है कि मिनी रो-रो कर बेहाल हुई होगी तथा हेबेवाला उसे अपने बच्ची की दूसरी जगह प्रबंध करने के लिए कहेगी। लेकिन अंदर जाने पर वह आवक रह जाती है खिलौने के ढेर से घिरी मिनी खेलने में व्यस्त थी। इस कहानी में देड साल की मिनी अपने माँ–बाप की परेशानियों को देखकर अपने आप से समझौता करके खिलौनों में मन लगाकर माँ का इंतजार करती है।

फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती- यह तथाकथित विद्वान, सुसंस्कारी तथा सभ्य मानसिकता के कारण एक स्त्री की सहायता न करने के कारण उसके वेश्या बन जाने की मार्मिक कहानी है। कथा में लेखिका पत्रकार के रूप में फातिमाबाई के कोठे पर जाकर वहाँ पर देह व्यापार करने वाली औरतों की बातचित अखबार में छपवाने के लिए फातिमाबाई के कोठेपर जाती है। फातिमाबाई लेखिका से जरीना, रेश्मा, केतकी तथा शहताज से परिचय करके उनको सोच समझकर बोलने का इशारा देकर लौटती है। फातिमाबाई जाने से वातावरण दबाव मुक्त होता है। रेश्मा बताती है कि, वह बहुत गरीब घर की लड़की थी। खाने के लाले पड़ने के कारण सौतेली माँ उसे अधेड़ आदमी को बेच देती है। वह विरोध करती है तो उसे भूखा रखती है। सौतेली माँ के अत्याचारों के कारण वो घर से भागती है लेकिन दलाल उसे फातिमाबाई को बेच देते हैं। जब लेखिका केतकी को देखती है, तब उसे याद आता है यह तो शैला है, जो ट्रेन के सफर के दौरान मिली थी। शैला कहती है कि, वह उनकी ही कृपा से वेश्या बनने पर मजबूर हुई है। वह वेश्या होने का कारण बताती है। अपनी माँ-पिता की पिटाई के कारण वह घर से भाग गई थी। “आप अगर उस दिन मुझे अपने साथ लिए जाती तो आज मैं यहां हरगिज दिखाई न देती।”[65] लेखिका जागरूक विचारों वाली थी, बहला फुसला कर उसकी सच्चाई उगल सकती थी, माँ–बाप को समझा सकती थी लेकिन उन्होंने ऐसा न करके उसको टिकट मास्टर को सौंपा और वहाँ से भागने के कारण उसे गलत लोगों को काम देने के प्रलोभन से फातिमाबाई को बेच दिया। फातिमाबाई जोसफ जैसे आदमी से रात के पंद्रह रुपये लेती है। इस कथा में परिस्थिति से मजबूर हुई हर उस औरत में फातिमाबाई मौजूद है। जिनका कोई उनके मुसीबत के समय साथ नहीं देता और वो फातिमाबाई बनने के लिए मजबूर होती है। यहाँ इस कहानी में फातिमाबाई कोठे पर नहीं रहती बल्कि झूठी प्रतिष्ठा का मुखौटा पहने वह हर व्यक्ति में रहता है। जो इन औरतों को देह व्यापार करने के लिए मजबूर करती है।

जरिया – इस कहानी में एक लेखिका को जरिया बनाकर उनके घर रहकर उनको अनेक सपने दिखाकर अंत में आशा को निराशा में परिवर्तित करके व्यक्ति चला जाता है। कहानी बदलते समय में समाज में व्यावसायिक क्षेत्र की कूटनीति और छद्म को प्रस्तुत करती है। लेखिका अपनी कहानी 'यही जवाब है' यह रंगकर्मी विवेक बतरा द्वारा चुनी गयी है तथा वह उसपर टेलीफिल्म बनाने वाले हैं, यह खुशखबरी अपने पति निगम को देती है। उन दोनों के मध्य 'यही जवाब है' की प्रगति के संदर्भ में पत्र व्यवहार डेढ़ महीने से जारी था और विवेक अगले हफ्ते मुंबई आने की सूचना देता है। संवेदनशील लेखिका विवेक बतरा के संघर्ष की त्रासदी को महसूस करते हुए उसे मुंबई में दर-दर भटकने के वजह अपने घर पनाह देती है। रंगकर्मी उसे कहानी के बैठकों के दौरान दूरदर्शन की सुप्रसिद्ध निर्देशिका अमला भटनागर को कहानी पसंद आयी और वह स्वयं इसका निर्देशन करेंगी ऐसे कहता है। रंगकर्मी उनके घर में महीना भर रहकर अपना स्क्रीन टेस्ट देकर जब जाता है तो दूरदर्शन का कोई उत्तर न आने के कारण वह बतरा को पत्र लिखती है। तो बतरा उसके परिश्रम पर पानी फेरता हुआ लिखता है कि दूरदर्शन ने फिल्म की स्क्रिप्ट अस्वीकार कर दी है। यह पढ़कर उनको बहुत बुरा लगता है और वो अमला भटनागर को शिकायती पत्र लिखती है। अमला भटनागर लेखिका के आरोपों को खंडन करते हुए कहती है कि, 'विवेक बतरा ने उनसे कभी उसकी कहानी जिक्र किया, न उसे दूरदर्शन के लिए किसी फिल्म का अनुबंध सौंपा है।' वे अनुमान नहीं लगा पा रही कि वह कैसे ऐसे अंतर्गल भ्रम का शिकार हुई ... पत्र पढ़कर क्षुब्ध लेखिका विवेक बतरा के षड्यंत्र को नहीं जान पायी तो उसके पति ने उसे समझाया कि "किसी को इस शहर में अपनी पटरी साधनी होगी या किसी डेरे की तलाश ...बंदा तुरंत तुम्हारी कहानी पर नाटक लिखने लगेगा। तुम खुश .. अगर ऐसे में वह इस शहर में आना चाहेगा तो भला तुम उसे बाहर कैसे रहने दे सकती हो।"[66] इस कहानी में विवेक बतरा जैसे धोके बाज और अवसरवादी व्यक्ति के बारे बताया है जो अपने स्वार्थ के लिए लेखिका जैसे व्यक्ति को सपने दिखाकर उनको निराश करते है।

एंटीक पीस – यह कहानी चित्रा मुद्गल के 'आवां' उपन्यास का एक छोटा सा अंश है। इस कहानी में 'एंटीक पीस' के भावनात्मक लगाव तथा उसको दूर करने का एक कटू अनुभव यहाँ पर प्रस्तुत किया है। अपने पिता को लकवा मारने के कारण परिवार की जिम्मेदारी नीता पर आती है। नीता की माँ हमेशा उसकी भर्त्सना करती रहती है और उसके साथ अपने पति को भी कोसती रहती है। नीता की माँ का अपने ससुराल से ज्यादा अपने मायकेवालों को प्रेम करती है, खासकर कुंती मौसी। नीता के बाबूजी ने लायी साडियाँ उनको पसंद नहीं आती है बल्कि कुंती मौसी की उतरन उनको रास आती है। उनके बच्चों की वे उठते-बैठते बखान करती है। कुंती

मौसी के पोते के बरसे पर वो नीतू की पैजनी देती है, जो उसकी दादी की उसके पास आखिरी निशानी थी। नितू के माँ को किसी की भावनाओं का कोई मोल नहीं है। बाबूजी के पक्ष घात में पड़ते ही घर में पहले जैसी अवाती-जवाती न रही। छंटा-छूटा जो भी पारिवारिक हितैषी खैर-खबर लेने चला आता, चौकी पर सजे पानदान पर नजर पड़ते ही प्रशंसात्मक कौतूहल से भर उठता और उसे खानदानी कहते हुए ‘एंटीक पीस’ कहता। लेकिन जब नीतू का मौसेरा भाई इंद्र भैया की पानदान पर नजर जाती है और वह उसकी प्रशंसा करता है। तब नीतू की माँ उसके पति की भावनाओं की कदर न करते हुए अपनी साँस के चढ़ावे का पानदान इंद्र भैया के जन्म दिन पर भेट स्वरूप दे देती है। यह एक मध्य वर्गीय परिवार की दयनीय कहानी है। जहाँ माँ अपने हैसियत न देखकर अपनी बहन के ऐश्वर्य से ज्यादा प्रभावित होकर अपने परिवारवालों की भावनाओं को ठेस पहुँचाती है।

ब्लेड – इस कहानी में रामखिलावन परिवार की जिम्मेदारी के चलते अपने परिवार के दायित्व को निभाने के लिए बडे भाई की विधवा, उनके तीन मैडा-मौडी, खटिया पोक्ती अम्मा और घुघुनू समेत अपनी जगधरी के लिए ऊसर बंजर पांच बिगही खेत गाँव में छोड़कर शहर में आकर ड्राइवरी करता है। उसे पौडोसी गाँव के नथ्थू मल्लाह से बेटी घुघुनू की टाँग टूटने की खबर मिलती है। प्लास्टर करने के लिए पैसों की सख्त जरूरत के बारे में उसकी पत्नी चिट्ठी भिजवाती है। उसे काम करते पाँच महीने भी पूरे नहीं हुए थे, लेकिन वो हर बार अपने साहब से एडवांस मांगता पर उसे चुका नहीं पाता। इस बार भी अपनी बेटी के बारे में बताने पर साहब उसे एडवांस देने पर मना करके अपनी गाडी के सीटें बनवाने के खर्च को ज्यादा महत्व देते है। तब बेईमानी तथा चोरी का विरोध करनेवाला रामखिलावन अपनी बेटी की टूटी टांग के इलाज करने के लिए मोटर मैंकानिक सरदार से मिलकर पाँच पर सेंट कमीशन देने का वादा करके साहब की गाडी की सीटो को ब्लेड से उधेडकर पैसों का इंतजाम करता है। इस कहानी में वर्तमान दौर में उच्च एवं निम्न वर्ग के मध्य की खाई के मुंह को विपन्नता शोषण ने चौड़ा कर दिया यह बताया है। शोषित वर्ग निर्धनता एवं शोषण के कारण मक्कारी, चालबाजी, भ्रष्ट आचरण, अनैतिकता, निराशा, हताशा की स्थिति में पहुँच जाता है।

कहानी का रामखिलावन परिस्थिति के सामने विवश होकर यह रास्ता अपनाता है। वेदप्रकाश अमिताभ के शब्दों में,“ रामखिलावन सहाब के प्रति कृतघ्न नहीं है। वह साहब से दगा करना न चाहते हुए भी कमिशन खाने पर विवश है। वहीं रामखिलावन से सहानुभुति उपजने का कारण यह है कि वह खल पात्र नहीं है। जिंदगी की परेशानियाँ उसे ऐसा करने पर मजबूर करती है और निर्णय तक पहुँचते-पहुँचते वह अपने आप से भी कम नहीं लडता जो बाहर से कहीं अधिक भीतर चलती है।”[67]

सौदा – इस कहानी की मंगला अपने भविष्य की चिंता किए बिना निस्वार्थ भाव से गेंदा को न्याय दिलाने में मदद करती है। गेंदा काम मांगने के लिए सोहन के होटल में जाती है। वहाँ उसकी चंदू ड्राइवर से भेट होती है। वो उसे अपने सेठ के घर में पचास रुपये काम देने का आश्वासन देकर शहर लेकर आता है। चंदू ड्राइवर गेंदा को लालू दलाल को चार हजार में बेचकर उसका सौदा करता है। लालू दयाल गेंदा को धंदा करने के लिए मजबूर करते हुए उसे मारता-पीटता है। परंतु गेंदा उनकी नजर चुराकर खिड़की से कुदकर भागती है। लेकिन उसके पीछे लालू के गुंडे पडते है। वह अपनी रक्षा करने के लिए मंगला के घर में छिपती है। मंगला उसकी व्यथा सुनकर उसको आसरा देती है। जब गेंदा चंदू के चित्र को देखकर चीखती है। गेंदा को मंगला के चिखने की पता चलती है तो वह स्तब्ध रहती है क्योंकि चंदू ड्राइवर यानी मंगला के पति ने ही उसे बहला फुसला कर शहर में लाया था। मंगला झोपडपट्टी में रहने वाली स्त्री थी जिसे चंदू ने शादी करके शहर में लाया था। वह दोनों बच्चों के साथ अच्छी जिंदगी बीता रही थे। मंगला को अपने पति चंदू पर गुस्सा आता क्योंकि उनके घर में सुख-सुविधाएँ थी, वह स्त्री के देह-व्यापार से कमाई गई रकम से ही थी। "घर ! कैसा घर ? गेंदा की बलि के बिना पर जीवनदान प्राप्त करता घर ! चंदू के कुकृत्यों की चिनाई से मजबूत होती उस घर की दीवारे !"[68] मंगला 'दलित स्त्री उद्धार समिति ' संचालिका पटवर्धन ताई को गेंदा के बारे में बताने जाती है। उसे पता है कि अगर चंदू को पुलीस पकड़ती है तो वे रास्ते पर आ जाएंगे लेकिन वो पीछे नहीं हठती निस्वार्थ भाव से गेंदा जैसे अनेक स्त्रियाँ जो लालू दलाल के अड्डे पर धंदा करने पर मजबूर लडकियों को न्याय दिलाने के लिए पटवर्धन ताई के द्वार पर दस्तक देती है।यहाँ मंगला अपने परिवार के सुख से ज्यादा स्त्री के इज्जत को ज्यादा महत्व देती है। उसे अपने स्वार्थ के समक्ष स्त्री का सम्मान अत्यधिक महत्वपूर्ण लगता है।

वेदप्रकाश अमिताभ मानते है कि - "'सौदा' कहानी से ध्वनित है कि नारी चेतना केवल शिक्षित आधुनिकताओं तक सीमित नहीं है। इस चेतना की सार्थकता भी तभी हैं, जब यह अनपढ़ और पुरुष के निरंकुश एकाधिकार के नीचे दबी-पीसी नारी सोच का अंग बने।"[69]

चित्रा मुद्गल ने 'सौदा' कहानी के माध्यम से नारी के भिन्न रूप पर प्रकाश डाला है। गरीब बस्ती में रहनेवाली मंगला स्त्री होकर स्त्री के दुर्भाग्य में साझीदार क्यों बने ? यह सोचकर अपने एवं बच्चों की जिंदगी खतरे में डालकर गेंदा को बचा लेती है।

हस्तक्षेप – यह कहानी चित्रा मुद्गल के उपन्यास ‘एक जमीन अपनी’ का एक अंश है। इस कथा में दो सहेलियाँ नीता और अंकिता के माध्यम से विज्ञापन दुनिया से जुडे उपभोगतावादियों की मानसिकता को प्रस्तुत किया है। नीता को ‘आम्रपाली’ के विज्ञापनों का अनुबंध मिलता है। नीता के शो के दौरान अंकिता वहाँ से चली जाती है क्योंकि नीता शों के विज्ञापन में अश्लील कपड़े पहनकर काम करती है। उसी पर वह नीता को समझाती है कि आधुनिकता और स्वतंत्रता के नाम पर पुरुषों द्वारा ही अखबारों, पत्रिकाओं , विज्ञापनों, फिल्मों , पोस्टरों, स्लाइड्स के माध्यम से स्त्री को सौंपी जा रही है। स्त्री को अपने अधीन बनाने के लिए सामंती इरादों को वह इन हथकंडों से सिद्ध कर रहा है। तुम्हारी तरह आधुनिक शिक्षित स्त्री वर्ग पुरुष के बराबरी के दंभ में इस्तेमाल हो रही है। नीता फिल्मी परिवेश की ऊपरी चमक-दमक से प्रभावित होकर विज्ञापन का ग्लैमर अपनाती है क्योंकि वह रातोंरात नंबर वन का दर्जा हासिल करना चाहती है। अंकिता के समझाने से भी वो नहीं मानती। उन दोनों के विचारों में भिन्नता, सहमति-असहमति के कारण उनके दरमियान खाई सी आती है। अंकिता को लगता है नीता का अपना जीना, उसकी अलग जीवन शैली , पहने ओढ़ने का ढंग अलग है फिर भी अच्छी सहेली होने के नाते वो उसके जीवन में हस्तक्षेप करके उसको विज्ञापन जगत से सचेत कराना चाहती है। लेकिन नीता ने फिल्मी कैरियर को अपनाते के कारण उसे सब मिथ्या ही लगता है।

मुआवजा - यह कहानी कनिष्क विमान दुर्घटना में यात्रियों को बचाने का चेष्टा में जान की बाजी लगाने वाली विमान परिचारिका नीरजा मिश्र की सत्य घटना पर आधारित है। कहानी की पात्र शैलू के आत्मोत्सर्ग ने आतंकवादियों के समक्ष घुटने न टेककर कितने ही लोगों की रक्षा की और उन्हें आपातकालीन द्वार से बाहर निकालकर जीवनदान दिया। शैलू के इसी बहादुरी के पुरस्कार हेतु उसके परिवारवालों को सरकार द्वारा मुआवजा का परिपत्र भरने के लिए पिता को कार्यालय में बुलाया जाता है। माता-पिता शैलू की आखिरी इच्छानुसार उसके मुआवजे की रकम ‘वनिता आश्रम’ की असहाय स्त्रियों के स्वावलंबन हेतु देने के बारे में प्रेसवालों को बताते हैं। अखबार में यह खबर पढ़कर शैलू का पति सुमित शैलू से छ: वर्ष अलग रहने के पश्चात पत्नी के जमा पूंजी पर अपना हक जताने आता है। शैलू के पिता से सुमित कहता है कि-“मैं शैलू का पति हूँ, उसकी किसी भी प्रकार की संपत्ति पर मेरा अधिकार पहले बनता है । चाहे तिजोरी में रखूं या कूडे में झोक दूँ।”[70] मुआवजे के कागजात मैंने प्रमाणपत्र संहित एयर इंडिया के मुख्यालय में दाखिल कर दिए है। सुमित ने शैलू के साथ हमेशा अत्याचार किया। वो उसे घर में कठपुतली बनाना चाहता था। लेकिन शैलू आत्मनिर्भर होकर अपने माता-पिता के घर रहती है। शैलू ने न शोषण से समझौता किया, न शोषक से, न अपहरणकर्ताओं

से। इसलिए शैलू के पिता यह निर्णय करते हैं कि वे मुआवजे की रकम प्राप्ति का परिपत्र अवश्य भरेंगे। वे अपने बेटी से प्रभावित होकर उसके पति सुमित के स्वार्थी मनसूबों को असफल बनाते है।

प्रमोशन – इस कहानी में अपनी पत्नी के प्रमोशन पर ईर्ष्या तथा संदेह करते पति की मानसिकता का चित्रण किया है। सुभाष अपनी पत्नी ललिता पर संदेह करता है कि, डॉक्टर कोठारी और उसके बीच में अवैध संबंध है। ललिता को डॉक्टर कोठारी ने उसकी मेहनत, लगन और तत्परता के कारण पैकिंग विभाग की इंचार्ज बनाया। इसलिए ललिता बहुत खुश होती है और डॉक्टर कोठारी को अपने घर पर भोजन के लिए आमंत्रित करने के लिए सुभाष से कहती है। लेकिन सुभाष साफ झूठ बोलता है कि फोन कोई उठा नहीं रहा है, बल्कि डॉक्टर कोठारी ने फोन उठाया था। सुभाष को ललिता के प्रमोशन को लेकर अपनी आप बीती याद आती है। जब सुभाष स्थानीय कार्यालय में था तो वह अपने विभाग का राजा था। वर्तनी में अशुद्धियाँ करने पर रेखा को विभाग के सामने प्रताडित करता है। जब उसे अपनी गलती का एहसास होता है तो वह रेखा को दिलासा देने के लिए उसके पास पहुँचता है। लेकिन अपना आवेश वश संयम खोकर उसे अंक में भरता है। उस दिन के बाद वह अपने कमरे में रेखा को बुलाकर उसकी त्रुटियाँ सुधारता था। उन दोनों का रिश्ता इस कदर आगे बढ़ता है कि प्रिया गेस्ट हाउस के कमरा नंबर ग्यारह में रेखा को वह एक साथ दो खुश–खबरियाँ देता है कि उसका प्रमोशन हो गया है और वो बहुत जल्दी अपने साथ मुख्यालय में उसे भी बुला लेगा। सुभाष का संशय हर बार ललिता पर लांशन लगाता था। उसकी स्वभाव की असहिष्णु तथा सदैव अधिकारों की नोक-झोक मानकर वह अनदेखा करती है। लेकिन उसकी कुंठित टिप्पणियों का विरोध करते हुए वह कहती है- "पुरुष की पदोन्नति हो तो वह उसकी लगन और मेहनत का परिणाम है, स्त्री अगर अपनी लगन और परिश्रम से उन्नति करें तो वह उसकी अपनी प्रतिभा नहीं, किसी डॉक्टर कोठारी की अनुकंपा है... और बीच में शरीर आए बिना यह संभव नहीं !"[71] सुभाष जब ललिता को पारिवारिक हित के लिए काम छोड़ने के लिए कहता है। तब ललिता उसे करारा जवाब देती है कि, "न नौकरी मैंने तुमसे पूछकर की थी , न तुम्हारे कहने पर छोडूंगी।"[72] ललिता सुभाष की मानसिक कुंठाओं से मुक्त होने के लिए उसे छोड़कर चली जाती है।

जब तक बिमलाएं हैं – यह कहानी एक संघर्षरत जीवट औरत के त्रासदीपूर्ण जीवन को प्रस्तुत करती है। चित्रा मुद्गल 'उत्तर प्रदेशीय महिला मंच' की ऋचा जोशी निम्न वर्ग की कर्मठ, जुझारू, चेतना संपन्न महिला को मंच की ओर से अठारहवें स्थापना-दिवस पर देश के अन्य कोने से आयी स्त्री शक्ति की प्रतिमान महिलाओं के साथ सम्मानित करने के लिए चित्रा मुद्गल को एक औरत की संस्तुति भेजने के लिए कहती है। लेखिका के मन

में विमला के साहस और जीवटता का नाम कौंधती है। विमला फरीदाबाद की एक मलीन बस्ती में रहती थी। उसका पति गमकू जुएं में अपने पैसे उडाता था लेकिन विमला अपने दो बेटे तथा छोटी बेटी के लिए मौसम के अनुसार रोजगार बदलकर अपना घर चलाती थी। उसके बच्चे वही के एक सरकारी स्कूल में पढ़ते थे। एक दिन उसकी छोटी नाबालिग बेटी रात में पखाने गए हुए गायब होती है। बच्ची पखाने से न लौटने पर विमला उसे ढूँढने जाती है। उसके मदद के लिए कुछ लोग आते हैं। उसकी बेटी सुरसती बस्ती से लगते सफेदा के घने जंगल में अधमरी सी पड़ी थी। विमला हिम्मत नहीं हारती, वो बलत्कारी को सजा दिलाने के लिए पुलीस में रिपोर्ट दर्ज करती है। डॉक्टर के पास जाकर अपनी बेटी का इलाज करवाती है और दोषी को सजा दिलाती है। बिरादरी में विमला ने मुंह दिखाने के लिए लायक नहीं छोडा यह सोचकर गमकू विमला को बहुत मारता है और निष्ठुर होकर घर से भाग जाता है। बच्ची के तन के घाव भर गये थे पर मन के घाव भरने के लिए वहाँ से मयूर विहार से लगे चिल्ला गाँव में बसती है। जब लेखिका उसे यह सम्मान लेने के लिए कहती है, तो वो उस सम्मान को नकारती है क्योंकि वह नहीं चाहती कि उसके सम्मान से बेटी के मन में बलात्कारी का भयानक दृश्य फिर से उमडकर आएगा। बिमला एक निडर औरत है जो बिना किसी सहारे के अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देती है। लेखिका कहती है कि, “समाज में जब तक बिमलाएं हैं औरत की अस्मिता अपने अधिकार से वंचित नहीं रह सकती , न कोई उसे वंचित कर सकता है।”[73] बिमला के माध्यम से स्त्री चेतना का उदाहरण इस कहानी में प्रस्तुत होता है।

धनंजय कुमार के मतानुसार -“पति और समाज की उपेक्षा के बीच पूरी जीवटता के साथ अपनी मान और इज्जत को संघर्षरत बिमला की यह कहानी सचमुछ एक नजीर पुरुष वर्चस्ववादी समाज के ठेकेदारों के लिए और उनके लिए जो इस तरह के अपराधों को मौन होकर सहन कर जाते हैं।”[74]

बिमला यह सम्मान इसलिए नहीं लेना चाहती है कि जब भी उसकी बेटी वह तमगा देखेगी बलात्कार वाली घटना ताजी हो जाएगी, उसे चोट पहुँचेगी। लेखिका जब भी बिमला से मिलती है, नई शक्ति एवं स्फूर्ति से भर उठती है। वे सोचती है कि बिमलाएँ है औरत की अस्मिता अपने अधिकार से वंचित नहीं रह सकती और न कोई उसे वंचित कर सकता है।

1.2.10.3. आदि-अनादि भाग-3

अभी भी- इस कहानी में शिल्पा को ससुरालवालों द्वारा सताया जाता है। शिल्पा अपने पति मुकेश के साथ बहुत खुश होती है। जो पायलट है और घर में बीजी तथा उसके दोनों भाई सुरेश और अनील तथा बहनों को वही देखता है। मुकेश के मृत्युपरांत मुकेश ने शिल्पा के नाम पर किए पैसे कही वह अपने लिए खर्च ना करें इसलिए बीजी बडी होशियारी से अपने दूसरे बेटे सुरेश से उसके ब्याह का प्रस्ताव उसे एक सुनिश्चित भविष्य देने की दूरदर्शिता नहीं, बल्कि मुकेश के मरणोंपरांत प्राप्त रकम और संपत्ति को हथियाने का षड्यंत्र रचती है। शिल्पा के बाबूजी भी राजी होते है। शादी के बाद उस पर शोषण ही नहीं किया जाता उसे कही जाने की स्वतंत्रता होती, न कुछ करने के लिए आजादी। सुबह से रात तक वह पति, देवर, ननंदों की सेवा-टहल में खटती है। कितनी चतुराई से मुकेश के मरणोपरांत प्राप्त रकम को घर की अन्य जरूरतों के नाम पर उससे निकलवाया जा रहा था। उसपर दबाव भी डाला जा रहा था कि मुंबई के उप नगर की सोसाइटी में मुकेश ने उसके नाम से जो घर आरक्षित करवाया था, वह बेच दे।' देवर अनिल ने उसके पैसे ऐंठ-ऐंठकर अपने डी.डी.ए. का फ्लैट खरीद लिया है और दुकान भी लेना चाह रहा था। अनिल उसी के सिलसिले में उसके हस्ताक्षर चेक बुक पर लेना चाहता है पर जब वो इनकार करती है तो वह उसे बहुत मारता-पिटता है। उसका सिर दीवार को पटकता है और अंत में इस नाटक की सूत्रधार बीजी वहाँ पर पहुँचती है। उसकी बात न मानने पर जला देने की साजिश रचता है। जब शिल्पा को होश आता है तो वह अपने सामने बीजी को पाती है, जो उसे समझाती है कि उसके पिताजी पडोसी के कहने पर पुलीस लाए हैं। बीजी शिल्पा को समझाती है कि अनील नादान बच्चा है उसे माफ कर दो और पुलीस के पूछने पर चक्कर आने का बहाना बनाना। लेकिन शिल्पा इन ससुरालवालों के गंदे इरादों को भाँपकर नारी विरोध के स्वर में कहती है- "पडोसियों ने गलत इत्तला नहीं दी, बाबूजी ! मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो यहाँ से फौरन निकाल ले चलिए... अभी.. भी।"[75] शोषण के बावजूद नारी के साहस तथा चेतना को यहाँ पर चित्रित किया है।

लकड़बग्घा - चित्रा जी की 'लकड़बग्घा' कहानी वैधव्य प्राप्त नारी की त्रासदी की कहानी है जो हृदय को झकझोर देती है। पछांहवाली की छोटी सी इच्छा है कि उसकी बेटी पुनिया अपनी बहनों की बेटियों की तरह पढ़-लिखकर आगे बढ़े। उसके बदले वह लंबरदार के घर चौका- बासन करने के लिए तैयार है। वह लंबरदार से पुनिया के लिए याचना करती है-"हमका, पक्का प्रबंध चही.... पुनिया हमारी नाई जाहिल काहिल न

रही....आज हम चार अक्षर पढ़-लिखी होतिन तौ कोहू के आसरे चौका- बासन निबटाइत पडी रही होतिन ? हमार जिनगी कढिलत- घसिटत बीत गई, हमार नसीबा मगर हम अपनी बिटियाक पढ़ैबै....वहिका अपने बाप की नाई डकंदारी पढ़ैबै.... पुनिया डाकदर बनी ।"[76] यह सुनकर लंबरदार पछाहवाली पर बंदूक तानता है पर वह अपने इरादे पर अटल रहती है । उसका यह इरादा देखकर लंबरदार डर जाता है । उसे अपने जमीन के बटवारे की चिंता रहती है और उसी के लोभ के कारण वह लकडबग्घा का नाम देकर पछाहवाली को जान से मार देता है ।

जिनावर - चित्रा जी की 'जिनावर' कहानी में मनुष्य भूख के चलते कितना स्वार्थी बन जाता है यह दर्शाया गया है। मन की प्रेमधारा उस अग्नि के ताप से सूख जाती है और मनुष्य कठोर बन जाता है। अपने बच्चों, पत्नी से भी कहीं ज्यादा सरवरी (घोड़ी) पर प्रेम करने वाले असलम के मन के करुणार्द्र भाव का दर्शन हमें इस कहानी में दिखाई देता है । साथ ही व्यक्ति की संवेदनहीनता और खोखली मानसिकता को उजागर करता है । असलम अपनी आठ औलादों, पत्नी जुबैदा को सरवरी के तांगे के कारण उनके घर का चूल्हा जलता है, परंतु सरवरी की टाँग को ग्लेन्डरासन धोक्या रोग होने से उनके घर में फाके पड़ जाते हैं। फिर भी उसी हालत में उसे लेकर सवारियाँ बिठाता है। 'जिनावर उसकी जरूरत समझ ही नहीं रहा, एक के बाद एक सहयोग भी कर रहा है और एक वह है कि सब कुछ जानते-बुझते हुए भी उसके कष्टों से मुंह फेरे उसके ताप में अपनी रोटियाँ सेंक रहा हैं ।' कहानी के अंत में उसका रुदन जो दिशाओं को भी काँपता है- "नहीं, वह जुदा नहीं हुई..... उसके जुदा होने से पहले ही मैंने उसे मार दिया....मैंने उसकी मौत से सौंदा कर लिया .... जान-बुझकर उसे गाडी से भेड दिया ....यही सोचकर अपनी मौत तो वह मरेगी ही आगे पीछे....किसी गाडी से भेड दुँगा तो वह मरते-मरते अपनी कीमत अदा कर जाएगी....ये नोट ये नोट नहीं....मेरी सरवरी की बोटियां है बोटियां.....।"[77]

जानकी प्रसाद शर्मा कहते हैं –" लेखिका असलम यानी एक मजदूर का लुम्पनीकरण करके नहीं छोड़ देती, बल्कि उसे एक सकारात्मक दिशा देती है । कहानी में यह संकेत उभरता है कि गरीबी के कारण व्यक्ति में अस्थायी चारित्रिक विचलन तो आ सकता है, लेकिन अंततः उसमें मानविय तत्व बचा रहता है ।"[78]

आज भी कई असलम किसी ना किसी तरीके से आर्थिक अभाव के कारण त्रस्त होकर भ्रष्ट बनते है या समझौता कर लेते है । उनकी अभावों से ग्रसित परिस्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं पाया जाता है ।

स्टेपनी- यह कहानी कामकाजी स्त्रियों के सुखद जीवन के साथ खोखली गृहस्थी का मार्मिक दस्तावेज है। यह आभा की संवेदनशील कहानी है। आभा एक सरकारी मुलाजिम है। इसलिए शनिवार और इतवार उसको छुट्टी होती है और शनिवार को ही वह साग-सब्जी से लेकर लांड्री-धोबी, नाश्ते-पानी के लिए आवश्यक भागा-दौड़ी निपटा लेती है। विनोद की साझेदारी और सहयोग बस हाथी के दांत होते हैं। अधिक-से-अधिक वे पानी भरवा सकते है या नाश्ते के खातिर टोस्ट सेंक देंगे। बेटी चिंकी को क्रेंच में छोड़ने तथा वापस लाने का जिम्मा आभा का ही होता था। इसलिए नौकरानी बताशा को वो अपने घर पर काम पर रखती है। पर जब उसे पडोसन श्रीमती खन्ना द्वारा बताशा तथा विनोद के अवैध संबंध के बारे में पता चलता है। तो वह बताशा के परिवर्तित रूप को देखती है और विनोद का ही बताशा के प्रति सहानुभूति को महसूस करती है। इस बारे में जब वह विनोद से बात करती है तो उसे पता चलता है कि मयूर विहार में कितने ही प्लेटों में इस प्रकार देह व्यापार के धंधे चलते है जिससे वो आज तक अनभिज्ञ थी। आभा नौकरी और गृहस्थी के बीच पोर-पोर पीसती हुई देह को विनोद को प्रतिदिन संतुष्ट करने का सामर्थ्य नहीं जुटा पाती। वह बताशा को निकालना चाहती है लेकिन घर के कामों को देखकर वह बताशा को कुछ नहीं कहती। सरकारी नौकरी तथा घर की जिम्मेदारी में दोहरे चक्र में फँसी आभा के पास कोई विकल्प नहीं रहता। “गृहस्थी और आत्मनिर्भरता के मध्य अपने ‘स्व’ का संतुलन खोजते हुए कब वह अपने घर के लिए स्टेपनी हो गई और बताशा मुख्य चक्का- कौन जाने।”[79] यही आभा के जीवन की त्रासदी है।

बेईमान- परिस्थिति के कारणवश नन्हा बालक बेईमान होने के लिए मजबूर होता है इसका सजीव रूप प्रस्तुत किया गया है। बालक की माँ के मरने के पश्चात उसकी मामी उसका शोषण करती है। पूरा दिन ढोर-ढंगर तथा सानी-पानी करने पर भी वो उसे भरपेट खाना नहीं देती थी। इसलिए बालक घर से भाग जाता है। तीन दिन से प्लेट फार्म पर भूखे-प्यासे बालक को देखकर बाबू भाई उसे सहारा देता है और अपने बुकस्टाल के नीचे उसे सोने के लिए अनुमति देते है। बाबू भाई बालक को पत्रिका बेचने का काम देता है। उनका अपना कमीशन महत्वपूर्ण था, वो चाहे पत्रिका बिककर या लौंडे के हिसाब से काटकर। बालक के पास ढंग की निकर तक नहीं होती है। बाबू भाई नन्हे बालक का शारीरिक तथा मानसिक शोषण करते हैं। एक दिन बाबू भाई पैंसठ पत्रिकाएँ बालक के हाथों में थमा देते हैं और उसमें से तेरह वह बेचता है लेकिन तीन पत्रिकाएँ अनपढ़ तथा हडबडी के कारण एक महिला तथा टी.सी. मास्टर लेता है पर उसे पैसे न देकर डाँटकर भगाते हैं। इसी नुकसान के लिए बाबू भाई उसे काम से निकालने की धमकी देता है तथा उसके कमीशन तथा पगार के पैसे काटता है। बेचारा

बालक उनके पाँव पकडकर गिडगिडाता है। तब बाबू भाई बाकी की बची पत्रिकाओं का गट्ठा उसके हाथों में थमा देता है। बालक ट्रेन के एक सभ्य व्यक्ति द्वारा दिए हुए पचास रुपये का नोट छुट्टे लाने के बहाने लेकर भाग जाता है। बाबू भाई को उसके नुकसान के पैसे तथा अपने लिए बक्कलवाली निकर खरीदता है। बेरोजगारी, गरीबी तथा परिवार की स्थिति मनुष्य को बेईमान होने के लिए विवश करती है। कहानी भारत की गरीबी को प्रस्तुत करती है, लेकिन गरीबों से भी उनकी कमाई का जरिया झपट लेना, गरीब की संवेदना को खत्म करने के लिए काफी है। फलतः गरीब भी संवेदना शून्य होकर अमानवीय व्यवहार करने लगता है।

एक काली, एक सफेद – यह मन्नो जैसी ऐसी स्त्री की कहानी है जो अपने पति की आर्थिक स्थिति जानते हुए भी पडोसियों की बराबरी करने के लिए अपने ही पति पर अत्याचार करती है। मन्नो ग्रांट रोड के एक छोटे-से मारवाडी विद्यालय में पढ़ी थी लेकिन ग्रैजुएट होने के बावजूद मेनोलिंजा कॉन्वेंट में नौकरी के इंटरव्यू में अंग्रेजी के कारण मात खाती है। इसलिए वह अपनी बेटी कुहू को बांद्रा पश्चिम के नामी स्कूल में दाखिला करवाना चाहती है। उसके लिए मन्नो अपनी पडोसन से उधार पैसे लेकर कुहू का दाखिला मिसेज थामस के स्कूल में करवाती है। मन्नो अंग्रेजी की तरफदारी के कारण अपने पति रवि के कुल गोत्र का तिरस्कार करती है। अपने मुहल्ले में अपनी नाक ऊँची रखने के लिए कुहू को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाना चाहती है। यह केवल भाषा के लिए नहीं बल्कि मन्नों को अपनी स्टेटस की कुंठा ज्यादा होती है। रवि अपनी स्थिति से परिचित है इसलिए वो कुहू को रोज घर पर पढ़ाता है। मन्नो उस चादर की समाई बढ़ाने के लिए कहती है। पति का लुंगी-कुर्ता पहनना मुहल्ले में अपनी इज्जत उतरती महसूस होती। एक दिन ऐसे ही शाम को मन्नो के मना करने पर भी रवि कुहू को घुमाने ले जाना चाहता है, इसलिए मन्नो कुहू के गालों पर चाटे मारती है। जब रवि उसे रोकता है तो वह पगलाकर रवि के पेट में हुमककर लात मारती है। जिससे उनका सिर दीवार से सटी रखी चौकी से टकराया और चौकी पर सजी पीतल की मूर्ति उनके सिर में धस जाती है और वे खून से लहूलुहान हो जाते है। उनको डॉक्टर के कहने पर अस्पताल में पहुँचाया जाता है। लेकिन एक सुबह रवि अस्पताल से गायब होते है। उन्होंने तीन चिट्ठियों में अपने कंपनी तथा बैंक के खाते के पैसे अपने पत्नी के नाम लिख दिए। लेकिन मन्नो को अपने किए पर पछतावा तो दूर ऊपर से वह अपने पति पर पलायनवादी तथा गैरजिम्मेदार होने का आरोप लगाती है जबकि मन्नो के दो मुँहेपन को देखकर कुहू दंग रह जाती है।

प्रेतयोनि - 'प्रेतयोनी' में चित्रा जी साहसी छात्रा को प्रस्तुत किया है पर वही छात्रा अपने परिवार द्वारा बदलते व्यवहार से त्रस्त होती है। 'दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्रा कुमारी अनीता गुप्ता अपनी बहन के घर भोपाल से

लौटते समय कामुक टैक्सी चालक के हवस का शिकार हुई। साहसी अनीता ने बड़ी बहादुरी से वहशी टैक्सी चालक का सामना किया और उसके चंगुल से मुक्त हुई और पुलिस थाने जाकर टैक्सी चालक विरूद्ध रिपोर्ट दर्ज करवाई।' यह खबर अखबार में पढ़कर उसके परिवार वाले उसे कमरे में बंद करके रखते हैं। ताकि उनकी इज्जत मिट्टी में ना मिल जाएं। वह मानसिक रुप से शोषित होती है। ऐसी घटनाओं के लिए स्त्रियाँ ही दोषी ठहराई जाती है। न्यायिक अधिकार से अधिक महत्व परिवार वाले सामाजिक प्रतिष्ठा को बचाने के लिए एकजुट हो जाते हैं -"सारे किए-कराए पर पानी फेरकर धर दोगी तुम.... पंक में स्वयं ही नहीं डूबी, हमें भी लिसेडकर धर दिया !"[80] 'अपनी बेटी को आत्मनिर्भर करने के लिए दहेज में शिक्षा ही दूँगा' कहने वाला पिता सरहना करने आए फोन तथा अतिथियों को 'नीतू भोपाल में है' ऐसा कहता है। जब अपने माँ-बाप उसकी हिम्मत बढ़ाने के बदले उसे छिपाते हैं, तो वह अपने आपको गुनहगार पाती है और फाँसी का फंदा गले में डालती है। तभी वह उन छात्राओं के बारे में सोचती है जो उसके लिए आई.टी.ओ. स्थित पुलिस मुख्यालय के सामने विरोध प्रदर्शन के लिए एकजुट हो गए हैं। वह गले का फंदा निकालकर उनके साथ शामिल होने का निर्णय लेती है। सम्मिलित स्वयं के साथ ही युवा पीढ़ी को साहस भरा संदेश देने के लिए वह तैयार हो जाती है ताकि ऐसी संकट की घड़ी में कोई अन्य लड़की हिम्मत हारकर आत्महत्या ना करें।

डॉ. अर्चना मिश्रा कहती है-"चित्राजी के लेखन की सबसे बड़ी खासियत यह है कि उनके नारी चरित्र बलत्कारियों के खिलाफ संघर्ष कर अपने साहस द्वारा उचित समाधान वा परिचय देते हैं।"[81]

बाघ – प्रस्तुत कहानी में सांप्रदायिक दंगों के कारण मनुष्य में आए परिवर्तन रूप को दिखाया गया है। पुरोहित अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ मयूर विहार के फ्लैट में रहते हैं। लेकिन उस फ्लैट में रहना किसी को अच्छा नहीं लगता। उनका अपना पटेल नगर में पुश्तैनी मकान था। लेकिन माँ के मृत्यु के उपरांत उनका गोद-पला भाई बिल्ला उसका मकान का हिस्सा माँगता है और पुरोहित की दुर्घटना करने के लिए भी तैयार रहता है। इसलिए वे मयूर विहार आने के लिए मजबूर होते हैं। वहाँ उसे बस पकड़कर काम पर जाना पड़ता तथा उसकी बेटी जिस बस से जाती है उस बस में गुंडे मवालीगीरी तथा खून करने में पीछे नहीं हटते। इसी दहशत के मारे पुरोहित जी दूसरा फ्लैट लेने के बारे में सोचते हैं। उनका दोस्त 'ग' उसे दक्षिण दिल्ली में उसके मकान के ठीक पीछे वाली गली में 'ख' के मकान के बारे बताता है। मज़हब के दंगों के भय से 'ख' दूसरे मज़हब का होने के कारण अपना मकान कम दामों में बेचने के लिए तैयार है। पिछले साल भागलपूर में दंगे हुए थे, वो इस रामनवमी में हो सकते हैं। 'बस कुछ हफ्तों का खेल है। इसलिए 'ख' के तोते उड़ गए हैं। हमारी बिरादरी के बीच बच्चा

रहे तो रहे, मगर बाघ के सामने बंधी बकरी से।' पहले तो पुरोहित स्वार्थ वश मकान लेने के लिए तैयार होते हैं। बाद में उनको एहसास होता है कि उनका दोस्त 'ग' मनुष्य न होकर 'बाघ' जैसे सख्त नुकीले बालों वाला पशु है। वह अपना फैसला बदलता है और फ्लैट लेने के लिए मना करते हुए कहता है कि- "मैं आदमी ही बना रहना चाहता हूँ।"[82] मनुष्य आज धर्म के नाम पर एक-दूसरे से दूर हो रहे हैं। उसमें आ रही कड़ुवाहट तथा द्वेष की भावना ही 'बाघ' की तरह हिंसक जानवर की भाती लगती है। यह कहानी धर्म निरपेक्षता का ढोंग करने वाले अवसरवादी मध्य वर्गीय मनुष्यों की है।

नतीजा- इस कहानी में पुरबी दी के माध्यम से समाज सुधारक का एक नया रूप उभरकर आया है। वह वेश्याओं की बच्चियों को शिक्षा दिलवाकर नरकमय जीवन मुक्ति दिलाना चाहती है। सामान्य जन इन बच्चियों को सहज स्वीकार नहीं कर पाते तथा स्कूल में देखना तक पसंद नहीं करते, वहीं दूसरी ओर ये बच्चियाँ अपने पुराने परिवेश को भूला नहीं पाती हैं। उनका अध्ययन में मन नहीं रमता। पुरबी दी दिवंगत पति के मित्र साहा साहब की इकलौती बेटी थी। उसने न घर संसार बसाया न उसके बारे में सोचा बस एक ही धुन उनके सिर पर रात-दिन चढ़ी रहती, देह-व्यापार में लिप्त मजबूर स्त्रियों की संतानों को विशेष रूप से लड़कियों को उस नरक से बाहर खींच, उन्हें भविष्य की समर्थ, दक्ष, विवेक पूर्ण, आत्मनिर्भर स्त्री बनाना है, जो अपने होने का रजिस्टर स्वयं बने। पूंजी के अभाव में पुरबी दी ने अपने दोतल्ले के मकान को 'होम' में परिवर्तित कर स्थान की समस्या से छुटकारा पाया। पुरबी दी 'होम' बाल सुधार गृह की प्रमुख है। 'होम' में कुल सत्ताईस बच्चियाँ थी, जिन्हें लगातार डेढ़-दो वर्षों के माथाफोड परिश्रम के उपरांत नगरपालिका के स्कूल में दाखिल कराया गया था। छ:माही परीक्षा का नतीजा देखकर पुरबी दी परेशान होती है क्योंकि एक भी बच्ची उत्तीर्ण नहीं हुई थी। ऊपर से प्रिन्सीपल ने शिकायती पत्र भेजा था कि पढ़ाई में बच्चियों की घोर अरुचि है। इसीलिए पुरबी दी के साथ उनकी अन्य सहयोगीनियों के मन में नतीजों को लेकर दु:ख और तनाव का वितान तना हुआ था। होम की बच्ची शिवानी उसकी माँ सेक्स वर्कर थी, वो अब एड्स के चपेट में है। पियासी भी एक ऐसे ही सेक्स वर्कर की लड़की है जिसके माँ के दलाल ने उसे तीन हजार में एक ऐसी औरत को बेच दिया था, जो उसका धर्म परिवर्तन कर उसे जरीना नाम देना चाहती थी। उनके चंगुल से पुरबी दी ने पियासी को बचाया था। आज जब नतीजे देखे तो पुरबी दी एकदम से टूट गई। वह सोचती है- "उनका संघर्ष व्यर्थ जाएगा ? नचनियाँ बनेंगी। चेहरे लीप-पोत, माँ की भांति चौराहों पर खड़ी हो, ग्राहक फंसाएगी ? रिक्शे-तांगेवाली से फंस बच्चों जनेंगी...उफ कुछ नहीं बदल पाएगी वे…कुछ नहीं !"[83] बेवकूफ बच्चियाँ नहीं जानती कि उनका फेल होना भर नहीं है, उनका फेल होना

उनके मोरचे का ढहना है.. । अंत में जब पुरबी दी को रूमा के द्वारा लाए रत्ना और गौरी के पास होने के नतीजे कार्ड देखती है, तो उसे खुद के पास होने की खुशी होती है और रूमा को अंक में भर लेती है।

सुख- इस कहानी में नौकरानी की समस्या की ओर प्रकाश डाला है। सुमंगला बूढ़ी सासूजी तथा तीसरी कक्षा में पढ़ रही पंछी के साथ शांति कुंज में, नंबर दो की इमारत के सातवें माले पर दो शयनकक्ष वाले छोटे से फ्लैट में रहती है। सुमंगला जादवपुर विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान की प्रवक्ता है । सुमंगला के पति निर्मलेंदु सरकार ओएनजीसी में चीफ इंजीनियर थे और आसाम के तबादले पर पैंतालीस की छोटी-सी उम्र में, अचानक हुए प्रथम हृदय घात में चल बसे । ससूरजीने बनवाया गरचावाला मकान पुराने ढंग का था । वो किराए पर दिया था। उसे खाली करवाने के लिए उसे बहुत पापड बेलने पडे थे । पहली की नौकरानी सुमित्रा हमेशा चोरी-छुपे सुमंगला के घर का सामान लेकर जाती थी । इसलिए सुमंगला उससे तंग आ गयी थी । तबादलों के मानसिक दबावों के बावजूद सुख-सुविधा, एकांत, शांत वातावरण में रही सुमंगला को अपनी अडचनों से ज्यादा पंछी के संस्कारों की चिंता सताने लगी । नई व्यवस्था से पूर्णता असंतुष्ट और अप्रसन्न सासूजी का असहयोगी भाव शांतिकुज पहुंचते ही अधिक प्रखर हो उठा । वह अपनी गृहस्थी संभालने के साथ-साथ ईमानदार नौकरानी ढूंढ रही थी । फूली को सुमंगलाने काम पर रखा । उसका काम-धाम सुमंगला को अच्छा लगा । फूली पंछी की खाद्य सामग्री खाने लगती है तो सुमंगला उसपर तरस खाकर उसे कुछ भी नहीं कहती है । लेकिन दो हफ्ते बाद उसने यह महसूस किया कि फूली अपने काम में लापरवाह हो गयी है। सुमंगला उसकी हर माँगे पुरी करती है लेकिन फूली मुहफट्ट थी वह अन्यमनस्क होने लगी । काम छितरा पड़ा रहता, उचाट सी धाय बालकनी के खिड़की में चिपककर जा खड़ी होती । सुमंगला ने समूचे घर की जिम्मेदारी उसे सौंप रखी थी । दूसरी ओर यह बात कम संदेहास्पद नहीं कि संपूर्ण सुख-सुविधा और स्वतंत्रता से लैस उसके कम सदस्यों वाले घर में फूली का दिल नहीं लगता था । सुमंगला ने ठीक तरह से काम न करने पर फूली को डाटा तो वह घर छोड़कर चली जाती है । अपना पगार भी लेने नहीं आती है । जब सुमंगला सोनाली को फूली के काम पर न आने का कारण पूछती है तो सोनाली का जवाब सुनकर स्तब्ध रहती है- “फूली का यहाँ मन नहीं लगता कारण घर में कोई मर्द नहीं है।”[84]

इस कहानी में नौकरानी समस्या को प्रस्तुत किया है । वर्तमान में परिवार के सदस्यों को काम पर नौकरानियों को बहुत सुविधा देनी पड़ती है । उनका ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि वे अपने पैसा लेकर भी तेवर दिखाती हैं, फिर काम काजी महिला को तो घर परिवार के साथ-साथ नौकरी भी देखनी पड़ती है । इस कहानी

में चलते-चलते चित्राजी के फूली के माध्यम से नौकरानियों की ओछी मानसिकता पर भी करारा व्यंग्य कसा है। फूली के कारण सभी को दोष देना सर्वथा गलत भी है।

अढ़ाई गज की ओढ़नी - इस कहानी में फ्लैट संस्कृति तथा केबल टी.वी के दुष्परिणामों के कारण बच्चों में हो रहे मानसिक परिवर्तन को प्रस्तुत किया गया है। प्रिया पाँच साल की बेटी है और के.जी में पढ़ती है। एक दिन इक्कीस बच्चों के पिकनीक टेरिस पर होती है। तो उमा घरेलू औरत होने के नाते अपनी बेटी के लिए फ्रूटक्रीम तथा अन्य व्यंजन बनाती है। उसको प्रिया की माँगे बुरी नहीं लगती बस बुरे लगते उसके अटपटे से सवाल जो वो टी.वी. देखकर पूछती है। उमा अपनी बेटी प्रिया के पिकनीक के लिए उसकी सारी तैयारी करके उसे टेरिस पर भेजती है। प्रिया वापस आकर गुड्डे-गुडिया का खेल खेलने के लिए उमा के चढ़ावे की अढ़ाई गज की ओढ़नी ले जाती है। उमा उनको देखकर अपनी बचपन की स्मृतियों में तरल होती है। उमा ही बच्चों के पिकनीक के समर्थन में थी क्योंकि न गर्मियों के छुट्टियों में उनको सैर-सपाटे के लिए निकलने के लिए नहीं मिलता। इसलिए बच्चे घरों में बंद केबल से चिपके रहते हैं। छुट्टियों में गृहकार्य करने के साथ उन्हें अपने मनपसंद धारावाहिक भी देखने को होते। प्रिया अपने दोस्तों के साथ टेरिस पिकनीक मनाती है। उमा घर का सारा काम निपटाकर सुपरमार्केट जाने के लिए निकलती है लेकिन वो प्रिया को बताकर जाने के बारे में सोचती है। उमा सुपरबाजार जाने से पहले प्रिया को सुचित करना चाहती है इसलिए वो प्रिया से मिलने के लिए टेरिस पर जाती है। उमा जब बाल विवाह आयोजन में टेरिस पर नकली 'स्विट्जरलेंड' देखती है। जो बच्चों ने उन्हीं की अढ़ाई गज ओढ़नी से पानी की टंकी और दीवार के बीच चादर की तरह मानकर बनाया है। जिसके पीछे नन्ही प्रिया के ऊपर औंधा लेटा नन्हा सिराज 'हनीमून' की रस्म अदायगी में लीन था। यह सब देखकर वह किंकर्तव्यमुढ हो जाती है। इसमें सोसाइटियों में केबल के बढ़ते प्रभाव के कारण बच्चों में यौन-क्रिया के प्रति अस्वाभाविक ललक को प्रस्तुत किया है।

लपटें- यह सांप्रदायिक दंगों पर आधारित निम्नवर्गीय जीवन की त्रासदी बताती कहानी है। धर्म–जात को लेकर सांप्रदायिक दंगों के कारण एक निर्दोष को अपनी जान गवानी पड़ती है इसका चित्रण यहाँ हुआ है। अपनी पार्टी के लिए नेताजी अपने भाषण में निम्न लोगों के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए, हम अन्य प्रांतियों से शासित, शोषित हो रहे...क्यों ? 'बाहर के लोग' यहाँ आकर धंदा करते हैं और हमें उनके तले काम करना पडता है। इसलिए अपनी जात-बिरादरी की हित-चिंतना की खातिर, उनके अधिकारों के संरक्षण की खातिर नेता 'लोक सेना'

पार्टी गठित करते हैं। सामान्य जनता को वो अनेक आश्वासन देते हैं। 'लोक सेना' पार्टी के विकास के लिए दिल खोलकर चंदा देने का अनुरोध करते है तथा वे खुद याचक बनकर हर एक जात-बिरादरी के द्वार पर जाकर 'लोक सेना' का घडा भरने का निर्णय लेते हैं। नेता अपने गुंडों के साथ चाली में हर एक के द्वार पर जाकर उनकी संपत्ति लेकर उनको आशीर्वाद देकर पवित्र कर देता है। जन-जागरण का यह अनुष्ठान नेताजी ने चाली की प्रत्येक खोली में दोहराया सिर्फ रघुनंदन सहाय उर्फ दूधवाले भैया की खोली छोड़ते है। रघुनंदन अपनी पत्नी तथा दो जुड़वा लड़कियों के साथ रहते हैं। उनका अपने बड़े बेटे बब्बू को डॉक्टर बनाने का सपना है ताकि वे इस गरीबी से उभर सके। रघुनंदन चंदा देने से इनकार करते हुए कहते है कि "पार साल हुए चुनाव दंगों को भूल गई ? जब अपने धर्म के लोगों को सांप्रदायिक ताकतों के कातिलाना हमलों से बचाने की आड में इनकी पार्टी ने शामिल गुंडों ने उन्हीं पर नहीं, इन लोगों पर भी अपनी खुन्नस उतारी, साथ ही दुकानें लुटी तथा तबेले फूँके।"[85] जब नेता उनके द्वार पर नहीं आता तो उसकी पत्नी डर जाती है। उसकी पत्नी उसे समझाती है, जल में रहकर मगरमच्छ से बैर उचित नहीं। "उनके मनुआ को उन लोगों ने लपटों में नहीं झोंका...जहरा चुडीवाली ने अपनी नंगी आँखों से शेट्टी टीवीवाले की दुकान लूटने के बाद सत्तार चाली के छोकरे मनुआ को दबोच लपटों में झोंकते देखा है।"[86] जान है तो जहान हैं पैसों का क्या ? कमा लोगे ! बाल बच्चों की जान कमा सकते हो बोलो !' तब अपने परिवार के रक्षा के लिए रघुनंदन बब्बू के डॉक्टरी के दाखिले के लिए पेट काटकर रखे बाईस हजार नेता के चंदे से भी ज्यादा उसको अर्पित करके अपने घर पर लगे खूनी ठप्पे को मिटाने में सफल हो जाते हैं। यह कहानी साम्प्रदायिक वातावरण में कट्टर हिन्दुओं के मुखौटे को उतारता है साथ ही नेताओं के भावात्मक एवं कृत्रिम चरित्रों का पर्दाफाश करती है।

नीले चौखानेवाला कंबल- टिकैतिन कक्की की दु:ख-दर्द की यह कहानी है। टिकैतिन कक्की के पति की असमय मृत्यु होने पर वह सती होने का निश्चय करती है। परिवार वाले उसे कोख में पल रहे गर्भ का वास्ता देकर समझा बुझाकर शांत करते हैं। वह अपने एकमात्र पुत्र बचुआ को जीवन का आधार मानकर अपने दिन बिताती है। बचुआ दसवीं कक्षा में पढ़ता है। रात-दिन किताबों में उलझा रहता है तथा नतीजे में पूरे स्कूल में अव्वल आता है। टिकैतिन कक्की के पास बचुआ के लिए मातादीन द्विवेदी अपनी बेटी का रिश्ता लेकर आता है। वो खुद दहेज देने के लिए तैयार होते है किन्तु टिकैतिन कक्की उसे इनकार कर उसके बेटी की जन्म-पत्री मंगवाती है। उसे भी अपने बेटे की शादी करने की इच्छा होती है। इसलिए वो बिना बचुआ को बताए शादी के लिए सारे गहनों का प्रबंध करती है। एक दिन बचुआ स्कूल से समय पर न लौटने के कारण टिकैतिन कक्की परेशान

होकर उसकी खोज के लिए ठाकुर रामलिखावन के घर जाती है। जिनका बेटा रमेसुर बचुआ के स्कूल में पढ़ता है। लेकिन रमेसुर भी घर न आने के कारण उसके घरवाले चिंतित थे। ठाकुर उन दोनों के खोज के लिए मंगतू लठैत को स्कूल में भेजते हैं। बच्चों के आने की आशंका में वो बाहर आती है। तो रमेसुर टिकैतिन कक्की के छाती से लिपटकर प्रलाप करता है कि, "अनर्थ हो गया, ककिया ऽऽ? बचुआ का कत्ल हो गया हमारे धोके में। हत्यारे ने बचुआ को मार डाला।"[87] तो वह जड़ मूरत सी खड़ी ही अचेत भूमि पर ढह जाती है। जब उसे होश आता है तो अपने बेटे को दुल्हे का लिवाज पहनाकर गऊ दान करवाती है। बेटे के तेरहवीं के बाद टिकैतिन कक्की आत्महत्या करने का प्रयत्न करती है लेकिन उनकी बहन उनको हरिद्वार जाने की सलाह देती है। तब टिकैतिन कक्की अपने हिस्से की संपत्ति, बैल, जमीन, गहने सब लोगों में बाँट देती है। हरिद्वार जाने के पहले दिन गांव-जवार के कोढ़ी, अपंग, अनाथों को ठंड से रक्षा के लिए कंबल बाटने के लिए लाती है। उसमें से नीले चौखानेवाला कंबल टिकैतिन कक्की को बहुत पसंद आता है। उनको अपना बचपन याद आता है, जब बुआ के बच्चे नीले चौखानेवाले कंबल में सोते थे। एक दोपहरी वे बच्चों के संग उनके कंबल में घुस गयी, तो बुआ ने उनको डाटकर कंबल से बाहर निकाल दिया था। टिकैतिन कक्की ने अपनी जिंदगी से हार न मानकर दूसरों को जीने के लिए प्रेरित किया। इस कहानी में वैधव्य प्राप्त तथा बेटे बचुआ को अपनी जिंदगी का अवलम्बन मानकर जीनेवाली टिकैतिन कक्की के दर्द, पीड़ा एवं संत्रास का चित्रण किया है।

बलि- इस कहानी में ठाकुर बलभद्रसिंह अंधविश्वासी सामंतवादी स्वार्थ हेतु इतना नृशंस, निर्दयी और अमानवीय है जो अपनी आन के लिए करुआ की हत्या कर देता है। जमींदार पृथ्वी सिंह को संदेह था कि बँटवारे में दूर दराज के अनुपजाऊ खेत तथा कम संपत्ति मिलने का कारण उनके पितियाउत भाई कृपाल सिंह का हाथ है इसलिए वो दुर्घटना का रूप देकर उनकी हत्या करते हैं। इसलिए ठाकुर बलभद्र सिंह अपनी पुत्री शिवकला कुंवर का विवाह अकबरपुरवाले जमींदार कुंवर अनिरुद्ध प्रताप सिंह से करना चाहते हैं। उनके कुल में लगन-ब्याह रियासतों की भांवरे होती हैं, वर-वधू का गठजोड़ नहीं। इसीलिए ठाकुर बाल भद्र सिंह उन दोनों की जन्म-पत्रिका मिलाने के लिए 1008 स्वामी पंडित विंध्येश्वरी को अपने बखरी में बुलाते हैं। 1008 स्वामी पंडित विंध्येश्वरी, शिवकला मंगली है तथा विवाहोपरांत उसे वैधव्य आएगा ऐसे पत्रिका में देखकर बताते हैं। "इतना तो आप जानते होंगे कि मंगली का काट केवल मंगली है मलाल छोड़े। आपके लिए अनिवार्य है कि आप अपनी कन्या के सुदीर्घ सौभाग्य हेतु मंगली वर तलाशे।"[88] उसके निवारण हेतु स्वामी बताते हैं कि, गोपनीय रूप से आपको अपनी कन्या शिवकला कुंवर का विवाह किसी किशोर वर के साथ करना होगा और

बाद में उसकी 'बली' देनी होगी। ठाकुर बालभद्र सिंह अपनी पुत्री के वैवाहिक सुख तथा संपत्ति के लिए गुइंयादीन के तेरह वर्षीय बेटे करूआ को अपने पास रखकर, साढ़े तीन एकड़ की साग सब्जी, साढ़े तीन सौ रुपये देनेवाली फुलवारी का पट्टा पंचों के सामने उसके नाम करते हैं। ठाकुर बलभद्र सिंह करूआ की शादी अपनी पुत्री शिवकला से करके उसकी बली देते हैं तथा करूआ की मृत्यु को दुर्घटना का करार देकर शिवकला की दूसरी शादी करते हैं। अंधविश्वासी तथा स्वार्थ में लिपटें सामंतवादी लोगों के लिए सामान्य इंसानों की जान की कीमत बहुत सस्ती होती है यह इस कहानी में दिखाई देता है।

गेंद- इस कहानी में अपने ही परिवार से उपेक्षित वृद्धों की स्थिति तथा बिल्लू के माध्यम से ममत्व को तरसते बालक की वेदना को व्यक्त किया है। वृद्ध सचदेवा का बेटा विनय विदेश में अच्छे पद पर है और विदेशी बहूँ डॉक्टर है। लेकिन कभी वह सचदेवा से मिलने तो दूर पैसे भी नहीं भेजते ताकि वह श्रवण यंत्र खरीद सकें। अपने जिंदगी के अंतिम पड़ाव पर सचदेवा वृद्धाश्रम के अन्य वृद्धों के साथ जिंदगी बिताने पर विवश है। सचदेवा की सैर के दौरान बिल्लू से मुलाकात होती है। बिल्लू की गेंद फेंन्स के उसपार जाने के कारण वो सचदेवा को गेंद ढूँढने के लिए अंकल कहकर पुकारता है। सचदेवा उसे दादाजी कहकर पुकारने के लिए कहते हैं तथा गेंद न मिलने के कारण दूसरे दिन नया गेंद और बँट लाने के वादा करते हैं। बिल्लू की मम्मी डॉक्टर होने के कारण उनका ज्यादातर समय नर्सिंग होम में जाता है और उसके पापा उनसे अलग रहते हैं। इन दोनों के अलगाव के कारण बिल्लू प्यार के लिए तरसता है और वो प्यार दादाजी के रूप में सचदेवा से उसे प्राप्त होता है। वृद्धाश्रम में परिवार से अपमान, दुत्कार, उपेक्षा करने पर ये वृद्ध अपनी जीवन का अंतिम पड़ाव बिताने के लिए मजबूर है। आश्रम में रहने वाली सिद्धेश्वरी बहनजी ने एकमात्र मकान बच्चों के नाम लिख देने के अलावा इस शहर में होकर भी उनके घरवाले सिध्देश्वरी बहनजी के क्रियाकर्म के लिए नहीं आते क्योंकि, सिध्देश्वरी बहनजीने अपनी सोने की चुडियां और गले की भारी लड़ आश्रम को दान कर दी थी। इस आश्रम की चटर्जी दी सबसे कहती थी, "मरूं तो दाह-संस्कार जिससे करवा देना, नालायक बेटे को खबर न करना।"[89] लेकिन मातृत्व के कारण मौत के अंतिम क्षणों में चटर्जी दी अपने बेटे श्यामल का नाम लेती है। सावेत्री बहन चटर्जी दी की मृत्यु की खबर जब श्यामल को देती है, तो वह स्पष्ट कहता है कि, जो होना है आश्रम में ही होगा तथा बारह –एक बजे आश्रम पहुँचने का समय भी वही निश्चित करता है। सचदेवा चटर्जी दी के अंतिम संस्कार में जाने के लिए एंबुलेंस में बैठते तो है, लेकिन सहासा उसे बिल्लू को किया हुआ वादा याद आता है। सचदेवा एंबुलेंस से उतरकर अट्टा

मार्केट की ओर बिल्लू को क्रकेट किट लाने के लिए जाता है। इस कहानी में दादाजी तथा पोते के अनोखे रिश्ते को प्रस्तुत किया है।

पाठ- यह एक लघु कथा है। इसके माध्यम से गरीबों के अभाव को व्यक्त किया है। भविष्य में सरकार गिरने के संभावना में प्रदेश का जन सेवक स्वास्थ्य मंत्री के नाते अपने क्षेत्र के प्रत्येक सरकार स्कूल में दौरा करके प्रत्येक विद्यार्थी से सीधा संवाद करने का निश्चय करते हैं। जनसेवक स्कूल में जाते हैं। उनको स्वच्छता के बारे में बताते हैं। जनसेवक पाठशाला के प्रत्येक विद्यार्थी को एक बट्टी नहाने का साबुन, एक बट्टी कपडों का साबुन , संग खादी का बढ़िया–सा अंगोंछा भी उपहार स्वरूप प्रदान करते हैं। महीने-भर बाद जनसेवक मुआयने के लिए उसी स्कूल में आते हैं। लेकिन बच्चों में कोंई परिवर्तन नहीं आया था। उनके कपडे मैले थे, साथ ही दुर्गंध भी आ रही थी। जनसेवक के पूछने पर कि साबुन का उन्होंने क्या किया तो सब विद्यार्थी मौन साधे रहते हैं। जनसेवक परेशान होते हैं। वो फिर से तिसरी कक्षा के विद्यार्थी सतीश से पूछने पर सतीश कहता है कि, "साबून की बट्टी अऊर अंगोछा माई पंसारी की दुकानवा में ले जाके बेच आई ! क्योंकि 'माई कहत रही.. बट्टी अऊर अंगोछा के दाम से दू रोज का पिसान आएगा.. तू नहाएगा कि रोटी खाएगा ?"[90] यह सुनकर जनसेवक स्तब्ध रहते हैं।

अवांतर कथा- चित्रा मुद्गल ने अपने जीवन का किस्सा इस कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उन्होंने पिछले डेढ-दो महीने से उनके नाम के पत्रों को पढ़ना तो दूर, खोलना भी बंद किया है। खोलते हुए उनका संवेदनाशील हृदय कांपता है क्योंकि, खत खोलते ही किसी संस्था द्वारा किसी नये लेखक की किताब पर अपनी टिप्पणी पढ़ने का आमंत्रण निकल न पडे। मुद्गलजी आमंत्रण के प्रत्युत्तर स्वरूप जहाँ भी पहुँचती है, उनके संपादक पति का हुक्का वहाँ पहले से ही मौजूद होता है। "मैं निमंत्रण तो एक कहानी–लेखिका के ही रूप में प्राप्त करती हूँ, आयोजन में पहुँचती भी कहानी–लेखिका के रूप में हूँ, बोलती भी कहानी–लेखिका की तरह ही हूँ , मगर संगोष्ठी समाप्त होते-होते बन जाती हूँ केवल 'संपादक की पत्नी' ।"[91] जिस भी संगोष्ठी, पुरस्कार के लिए जाती नये युवा लेखक संपादक को देने के लिए रचनाएँ तौल देते थे ताकि वे उनकी रचनाओं के साथ न्याय करें। पर जब वो लिफाफें अपने पति को दे देती हैं, तो वे उनसे कहते है, "आप हमारी पत्नी हैं, ठीक हैं, पर हमारे दफ्तरी कामकाज में दखल देने का आपको कतई अधिकार नहीं हैं। हमारे पास रचनाएँ सही माध्यम से आनी चाहिए, न कि इस रूप में। आइंदा आप मेरे किसी काम में दखल नहीं देंगी, समझी ।"[92] वह सोचती है कि वो संपादक की पत्नी न होकर किसी और की पत्नी होती तो इस प्रकार अपमानित या ठगी न जाती। लेखिका की समस्या

मामूली नहीं हैं। वह समझ नहीं पा रही है कि ,' मैं अच्छा इसलिए बोलती और लिखती हूँ कि मैं एक सजग लेखिका हूँ, या इसलिए कि संपादक की पत्नी हूँ ! आखिर मुझे बोलने के लिए बुलाया जाता है या रचना तौलने के लिए ।' चित्रा मुद्गल ने अपनी जिंदगी की कशमकश यहाँ पर व्यक्त की हैं। इस तरह चित्राजी ने साहित्य जगत में भोगी अपने अनुभवों को कलम बद्ध किया है । उनके पति अवध नारायण मुद्गल 'सारिका' के संपादक थे उसी समय चित्राजी अपनी लेखनी के सहारे प्रतिष्ठित हो रही थी । संपादक की पत्नी एवं लेखिका दोनों एक साथ परिधान करना बहुत कठिन हो रहा था । उनका अस्तित्व धूमिल होने लगता है और लेखिका पर पति का संपादकत्व होना भारी पड़ रहा था । कई बार उन्हें उपेक्षित होना पडता है ।

तकिया- इस कहानी में मोनू की अंतर्वेदना एवं शहरी कामकाजी दम्पत्ति की व्यथा को प्रस्तुत किया है । मोनू की माता शिप्रा तथा पिता विनोद दोनों नौकरी करते हैं । इसलिए मोनू का ध्यान अम्मा को रखना पड़ता है । लेकिन अपनी सांस की सेवा करने के लिए अम्मा जाना चाहती है और शिप्रा को नौकरी छोड़कर मोनू की देखभाल करने के लिए कहती है । पर विनोद के कमाई पर घर नहीं चल सकता, सात हजार घर का किराया देना होता है, इन स्थितियों में बच्चे को संभालने के लिए नौकरों को ही रखना पड़ता है । शिप्रा को बहुत ढूँढने पर चर्च से मारग्रेट आया के रूप में मिलती है। वह मोनू का बहुत अच्छी तरह से खयाल रखती है । लेकिन कुछ दिनों बाद वो नेपाली ड्राइवर के साथ भाग जाती है । मारग्रेट के जाने की रात ही अचानक मोनू की तबीयत बिगड़ जाती है । शिप्रा उसे डॉक्टर के पास लेकर जाती है और बताती है कि, मोनू गोदी में चिपका रहता है लेकिन बिस्तर पर लिटाते ही चीखें मारकर रोने लगता है । मोनू का दर्द माता-पिता से देखा नहीं जाता इसलिए डॉक्टर मेहता उनके घर आकर परीक्षण करता है । मारग्रेट के पास बच्चा जिस बिस्तर पर सोता था वहा पर ट्रांजिस्टर ऑन करके सुलाते है । फिर भी मोनू चीखे भर कर रोने लगता है । अंत में डॉक्टर मेहताने रोते हुए बच्चे को करवट देकर थपकाया । थपकाते हुए दूसरा हाथ लंबा कर सिरहाने लगे पति-पत्नी के तकिये को करीब खींच लिया। एक तकिया उन्होंने बच्चे की छाती से चिपका दिया उसकी नन्ही बांह को तकिये के ऊपर टिका दिया और दूसरा तकिया उन्होंने उसकी पीठ से सटा दिया। ऐसे करने पर बच्चा गहरी नींद में सो गया । डॉक्टर ने शिप्रा से कहा, "बच्चे को कुछ नहीं हुआ बल्कि उसे माँ की छाती की गरमाहट चाहिए । काम में उलझी आया मारग्रेट ने उसे तकिये की गरमाहट सौंपी । बिना तकिये के बच्चा भला कैसे सो सकता है?"[93] यह सुनकर शिप्रा को अपने आप पर गुस्सा आया । नौकरी के चलते मोनू को वह अपने छाती से नहीं लगा पाती और उसी की गरमाहट के लिए मोनू तरसता है ।

जंगल – इस कहानी में जंगल के जानवरों के प्रति बालकों के प्रेम को दर्शाया है। पियूष अपनी माता तविषा और पिता शैलेश के मित्र के यहाँ जन्मदिन पर जाता है। उनके घर अनेक तरह के जानवर , चिडियाँ देखकर पियूष जिद करता है कि उसे भी घर में खरगोश और तोता चाहिए। दादी के साथ जाकर पियूष एक खरगोश का जोडा लाता है। उनका नाम सोनू और मोनू नाम रखता है। दोनों को वो बहुत प्यार करता है और उनके साथ खेलता है। एक दिन सुबह जब काम वाली कमला घर में झाडू-पोछा करने आयी तो बैठक बुहारते हुए उसकी नजर कठियावाडी सोफे के नीचे सो रहे सोनू पर पड़ी । उन्होंने उसे झकझोरा और उसकी टाँग पकडकर सोफे के नीचे से बाहर घसीट लिया। तविषा अचेत सोनू को देखकर घबरा गई और उसने डॉक्टर को बुलाया। डॉक्टर ने बताया कि सोनू के प्राण नहीं रहें। वह अपनी सांस मांडवी दिदी को सोनू की मरने की खबर देती है। माडवी दिदी जब शैलेश को बताती है तो वह सोनू को उठवाकर समाचार अपार्टमेंटस से लगे नाले में फिकवा देने के लिए कहते हैं। लेकिन मांडवी दिदी की यह इच्छा होती है कि घर के बच्चे की तरह सोनू का अंतिम संस्कार किया जाए तथा आसपास के जामादारों से मिट्टी खुदवाकर उसे जमीन में गाड दिया जाए। घर पहुँचकर वह देखती है कि सोनू के निस्पंद पडी देह के इर्द-गिर्द मोनू मंडरा रहा है और पियूष रो रहा है। पियूष दादी को मोनू के बारे में कही प्रश्न पूछता है और दादी उसका समाधान करने की कोशिश करती है। दादी सोनू मर क्यों गया ? दादी जवाब देती है, उसके दिल में गहरा दु:ख था। पियूष फिर से सवाल करता है – उसके दिल में दु:ख क्यों था? दादी बताती है, उसके माँ-बाप से उसे अलग कर दिया गया। दादी पियूष को समझाती है कि दुकानदार पशु-पक्षियों को बेचने के कारण जंगल में घात लगाकर अपने जाल में फंसा लेते है और उनको अपने माता-पिता से दूर करते हैं। पियूष को दादी की बात समझ में आती है। वो कहता है, मम्मी, चार दिन के लिए मुझे छोड़कर नानू के पास मुंबई गई थी तो मुझे बहुत दु:ख हुआ था। अंत में पियूष को यह एहसास होता है कि मोनू भी दु:खी है और वह उसे जंगल में छोडने के लिए तैयार होता है ताकि मोनू अपने माता-पिता के पास जंगल में खुशी से रह सके।

गिल्टी रोजेज – यह आजीवन कारावास प्राप्त दुखना तथा गुनाबाई की हृदयस्पर्शी कहानी है। चित्रा मुद्गल तथा अलका आर्य नागपूर के केंद्रीय कारागार में आजीवन कारावास या मृत्युदंड प्राप्त किसी महिला बंदिनी से मिलने की इच्छा प्रकट करती है। अधीक्षक एस.पी.चौधरी की स्वस्थ मानवीय सहानुभूति और सृजनशील कर्तव्य-भावना के कारण यह जेल कम, हस्तशिल्प प्रशिक्षण केन्द्र ज्यादा लगता है। यहाँ पर कैदी छोटे-छोटे समूह करके पायदान, चटाइयां, टोकरियां, रद्दी के लिफाफे बना रहे थे। चौधरी जी का कहना था, "रचनात्मकता

कैदियों को आत्मनिर्भर ही नहीं बनाती बल्कि मनोचिकित्सक की भांति अपराधी मनोवृत्ति को बदलने और सहज मानवीय मनोवृत्ति को परिष्कृत करने का काम भी करती है।”[94] दुखना अपनी इज्जत बचाने के लिए सौत के इकलौते जवान बेटे को छुरा मारती है। सौत और ससुर ने उसे शह दी थी और वह दुखना पर अत्याचार करके उसे घर से निकाल फेंकना चाहता था। ऊपर से उसकी ऐसी दुर्गति करने के लिए तैयार था कि सारे गाँव वाले उस पर थू-थू करें। इसलिए वो उसे छोरा भोंकती है। अब तो उसका पति उसके जेल से बाहर आने का इंतजार करता है ताकि उसके प्राण ले ले क्योंकि उसने उनको निरवंशी बना दिया। तब चौधरी जी उसके बाप का फर्ज अदा करते हुए कही पर अच्छी नौकरी देना का आश्वासन देता है। गुनाबाई भी आजीवन कारावास प्राप्त कैदी थी। नासीक में रहनेवाले गुनाबाई घरों में रसोई, चौका-बासन करके अपनी तीनों लड़कियों तथा पति का गुसर-बसर करती थी। किशोरी से युवा हो रही लड़की बडी बेटी छठे दर्जे में पढ़ती थी। उसका पति दारू पिकर जुआरी-शराबी ड्राइवरों को घर लेकर आता था। गुनाबाई अपने बेटियों को पढ़ा-लिखाकर आत्मनिर्भर बनाने का सपना देखती है। लेकिन उसका पति बड़ी बेटी को धंदे पर ले जाता है। इस आक्रोश में नरक से सदैव मुक्ति पाने के लिए गुनाबाई अपनी लड़कियों पर मिट्टी का तेल डालकर अपनी तीनों बेटियों को आग के हवाले करके अपने ऊपर भी मिट्टी का तेल डालती है। पडौसी उनको अस्पताल तो ले जाते है लेकिन गुनाबाई की तीनों बेटियों की मृत्यु हो जाती है। इसीलिए उसे आजीवन कारावास की सजा होती है। चौधरी ने गुनाबाई को पश्चाताप से छटपटाते देखा तो उन्हें मृत्यु से जीवन की ओर लाने के लिए सकल्पबध्द हो उठे। इसलिए वे उनको जेल में एक बृहत वृत्ताकार हिस्से में गुलाब के पौधे लगाने की अनुमति देते हैं। जिसमें गुनाबाई सुर्ख गुलाबों की क्वारियों को अपने प्यार से सींचती है। सुर्ख गुलाबों की सघनाहट के बीच लगी ऊँची तख्ती पर लिखे हुए शब्दों ने लेखिका को एकबारगी चौंकाया ‘गिल्टी रोजेस’। ये सुर्ख गुलाब गुनाबाई के स्वर्गवासी बेटियों के प्रतीक है। जिसे वो अपने हाथों से उगाकर अपना ममत्व उडेल देती है। नागपूर के केंद्रीय कारागार में शायद अब भी ‘गिल्टी रोजेस’ की क्यारियाँ हो। नहीं होंगी तो बस, उन पर अपनी छांह धरे तपस्विनी गुनाबाई ! वर्षों बाद जब लेखिका ‘गिल्टी रोजेस’ लिखने की सोचती है तब यूँ लगता है कि गुनाबाई का हाथ आहिस्ता से की कलाई धर लेती हैं, “क्यों मजाक कर रही है मेमसाब ! सच को तुम कहानी बनाने जा रही हैं।”[95] ये हार न मानकर आगे बढ़ी औरतों की संघर्ष की कहानी है।

हथियार – इस कहानी में माँ-बाप के तलाक के बाद ‘तन्वी’ के जीवन के कशमकश को प्रस्तुत किया है। तन्वी की माँ उसके पिता से तलाक लेकर डोंबीवली के एक छोटे से जूता कारखाने में मामूली अधिकारी से दूसरा

विवाह करती है। तन्वी का पिता उसकी माँ को बहुत समझाता है कि, वो अपनी बेटी के बीना नहीं जी सकता फिर भी उसके पिता को तन्वी के लिए तरसने, तडपने तथा रोने के लिए छोड़कर वह तन्वी को अपना हथियार बनाकर चली जाती है। तन्वी अपने पिता से बहुत प्यार करती है। उसके पिता ने दूसरी शादी नहीं की क्योंकि वो उससे बहुत प्यार करता है। वे दोनों एक-दूसरे से चोरी–छिपे मिलते हैं। तन्वी अपने सौतेले पिता से कभी बात नहीं करती तथा उसे अपना पिता भी नहीं कहती है। अकसर घर देरी से लौटने पर सौतेले पिता भी वही बहाना गढ़ते हैं, जो वो गढ़ती है। दीवारों को भेदने वाले माँ के बोल तन्वी ने सुने थे कि, कारखाने में किसी स्त्री के साथ चल रही प्रेमपींगों के चलते ही वे घर विलंब से लौटते है। माँ अपने किए पर पछताती है, जाने क्यों उस रंडुवे के प्रेम के झाँसे में आकर वे पसीज उठी और अपनी बसी-बसाई गृहस्थी उजाड़ ली। जब कि पहली पत्नी के ताई ने उन्हें फोन करके सतर्क किया था, सुनिता की मृत्यु दुर्घटना नहीं आत्म दाह था। तन्वी के पिता उससे घर आने के लिए आग्रह करते हैं। उन्होंने तन्वी के नाम पर अपनी वसीयत तैयार की तथा फ्लैट भी ले लिया। तन्वी रेलवे में काम करती है। माँ-बाप के बीच पीसती तन्वी अपने पिता से कहती है, "अब मैं बालिग हो चुकी हूँ 'पा' और अपने घर में रहना चाहती हूँ। आपके पास ही वन रूम-किचन किराए पर लेकर।"[96] इस प्रकार तन्वी अपने माता-पिता के अलगाव के कारण अकेले रहने का फैसला करती है। अब वह कानूनन बालिग भी हो चुकी है।

1.2.11 उपन्यास साहित्य का सामान्य परिचय

चित्रा जी ने अनेक कहानियों के माध्यम से पाठकों को विविध अनुभूतियों से भाव विभोर करके छोड़ा है। जब उन्होंने उपन्यास लेखन की ओर अपना मोर्चा बढ़ाया तो वे स्वयं से प्रश्न कर बैठी क्या मैं उपन्यास लिख सकती हूँ। वे ड्राईंग रूम में बैठकर लिखनेवाली लेखिका नहीं हैं। संघर्षमयी जीवन ने चित्रा जी को अनुभव की व्यापक दुनिया दी। जीवन की हर परिस्थितियों ने उन्हें स्वाभिमानी, शोषक के प्रति विद्रोही और शोषितों के प्रति दयालु बनाया। संघर्षमय जीवन से प्राप्त अनुभवों के कारण उनके रचना संसार में भोगा हुआ यथार्थ द्रष्टव्य होता है।

चित्रा मुद्गल के व्यक्तित्व के बारे में अनंत कुमार सिंह का कहना है,"चित्रा जी अत्यंत तेजस्वी एवं ओजस्वी व्यक्तित्व की स्वामिनी है।"[97]

इनके उपन्यासों का विषय क्षेत्र वर्तमान उत्तर आधुनिक मानव जीवन का यथार्थ का चित्रण है। जिसमें अधिकांशतः स्त्री के अस्तित्व बोध के साथ उसकी अस्मिता के संकट, आत्मसम्मान तथा उसकी पहचान के संकट के संघर्ष को सच होते हुए दिखाया गया है। प्रखर चेतना की संवाहिका चित्रा जी के पास अनुभवों का विपुल भंडार है। फिर भी उन्होंने कथा लेखन से लगभग पच्चीस वर्षों बाद उपन्यास लेखन प्रारंभ किया। इस संदर्भ में वे कहती हैं -“1965 में कायदे से पहली कहानी ‘सफेद सेनारा’ के प्रकाशन के साथ कथा लेखन में निरंतरता के बावजूद उपन्यास मैंने पच्चीस वर्षोंपरांत जाकर लिखा। इस दिशा में शायद मैं अपवाद लेखक भी हो सकती हूँ। अपने को खंगालने पर जो कारण हाथ लगता रहा – किसी भी आड़ से मुक्त होकर कि उपन्यास लेखन के लिए अपने समय-समाज से जिस सीमा तक मुठभेड करने की जरूरत है- नहीं कर पाई हूँ।”[98]

चित्रा जी द्वारा लिखित उपन्यासों का संक्षिप्त एवं सारगर्भित परिचय प्रस्तुत है -

1.2.11.1 एक जमीन अपनी-

कहानियों को लिखने के काफी अंतराल के बाद, लगभग पच्चीस वर्षों बाद चित्राजी ने अपना रुख उपन्यास लेखन की ओर किया। आज से लगभग 30 वर्ष पूर्व उन्होंने अपना पहला उपन्यास ‘एक जमीन अपनी’ लिखा था। इस उपन्यास में आपने आधुनिक युग में नारी शोषण के अनेक रुपों पर प्रकाश डाला है। घर-परिवार से लेकर दफ्तर-कार्यालयों तक किसी ना किसी रुप में नारी का शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं यौन शोषण होता था, होता जारी है। चित्राजी ने 30-35 वर्ष पहले स्त्री के शारीरिक-यौन शोषण का जो चित्र चित्रित किया है आज उसने अति-भयाण रुप धारण कर लिया है। आज आधुनिकता के नाम पर अश्लीलता बढ़ गई है। स्वतंत्रता के नाम पर फैशन की अंधी होड़ एवं प्रतिस्पर्धा में नारी का शोषण बढ़ गया है। व्यावसायिक उपभोगवादी संस्कृति में नारी केवल भोग की चीज बन गई है। दांपत्य जीवन के साथ-साथ दफ्तर-समाज में नारियों को अनेक संघर्षों का सामना करना पडता है। पति अपनी पत्नी को सीमित रखना चाहता है पर आधुनिक नारी स्वतंत्र रुप से अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहती है।

“‘एक जमीन अपनी’ चित्रा जी का 1990 में प्रकाशित प्रथम उपन्यास है, जो मध्यवर्गीय कामकाजी महिलाओं की अस्मिता की सफल-असफल तलाश की विभिषिकों का यथार्थ रूप में उघाड़ता है।”[99]

‘एक जमीन अपनी’ चित्रा मुद्गल का 1990 में प्रकाशित प्रथम उपन्यास है। जिसमें दो सहेलियों के माध्यम से विज्ञापन जगत के चकाचौंध की दुनिया को हमारे सामने उद्घाटित किया है। विज्ञापन जगत जो

बाहरी-तौर पर चमक-दमक से भरा है लेकिन भीतर ही भीतर वह दल-दल से भरा है। बड़ी चतुराई से वह अपने भीतर की गंदगी को चमकदार आवरण में बंद कर अपनी विकृति को पोस्टर्स, पत्रिकाओं, अख़बारों, फिल्मों, दूरदर्शन, स्लाइड्स के माध्यम से समाज में प्रस्तुत कर रहा है। संचार माध्यमों द्वारा प्रस्तुत स्त्री की छवि वास्तव में पुरुष प्रधान संस्कृति को ही प्रचारित कर रही है। आज नारी में आत्मविश्वास, बौद्धिकता, वैयक्तिक स्वतंत्रता की जागृति बढ़ गयी है। इसके साथ-साथ पुराने मान्यताओं का खंडन, अजनबीपन आदि दृष्टिकोण की भी प्रचुरता हुई।

इस उपन्यास के मुख्य पात्र अंकिता और नीता बंबई जैसे महानगर में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। अंकिता को केंद्रित कर और मॉडलिंग की दुनिया पर लिखे गए इस उपन्यास में एक स्वाभिमानी स्त्री के यथार्थ जीवन के कटु एवं भीषण संघर्षमय पक्ष को उजागर किया गया है। घरवालों के विरोध के बावजूद प्रेम-विवाह करने वाली अंकिता पति सुधांशु के असह्य व्यवहार से त्रस्त है। उसे अहसास होता है कि पति के घर में वह महज एक नौकरानी बनकर रह गई है, उसे लगता है,- "मैं सिर्फ गृहिणी ही नहीं हूँ... एक स्त्री भी हूँ... आखिर सुबह से रात के बीच कोई एक क्षण ऐसा नहीं हो सकता, जिसे मैं नितांत अपने लिए जी सकूँ... कागज कलम लेकर बैठ सकूँ। जो पढ़ना चाहती हूँ, पढ़ सकूँ... लिखना चाहती हूँ लिख सकूँ?"[100] पर पति से उसे निराशा ही मिलती है क्योंकि सुधांशु को लगता है,- "यह मेरा घर है... और यहाँ तख्ती वही लटकेगी जैसे मैं चाहूंगा... और सुधांशु ने उसकी कविताओं की कॉपी चिथड़े-चिथड़े कर कूडेदान में फेंक दी थी।'वह फटी-फटी आँखों से उन चिथड़ों को घूरती रह गई थी... उसे लगा था, यह कविता की कॉपी के चिथड़े नहीं हैं, उसके 'स्वं' को चिंदी-चिंदी कर कूडेदान में फेंक दिया गया है और अब वह अपने होने अधिक अनदेखा नहीं कर सकती।"[101]

अंकिता जीवन को जीना चाहती है बरदाश्त करना नहीं। इसलिए मजबूरन वह पति से अपना रिश्ता खत्म करती है। "...तुम्हारी ऐयाशियों और ज्यादतियों को सती-साध्वी बनी, माँग में सजाए झेलती जाना.... इस मुगालते में रहना कि मैं स्त्रीत्व की पूर्णता का भ्रम जीती रहूँगी- लो, इसी वक्त यह रिश्ता खत्म !"[102] अंकिता उससे रिश्ता तोड़कर अपने पैरो पर खड़े रहने का कठोर संकल्प करती है। अंकिता विज्ञापन जगत में एक नया इतिहास लिखना चाहती है। मुंबई जैसी चमक-दमक, अपराध और सेक्स के तांडव की नगरी में विज्ञापन फिल्मों के चक्रव्यूह में फँसकर भी किस प्रकार अपने अस्तित्व, चरित्र को बचाकर रहा जा सकता है, इसके लिए कितने

संकट झेलने पड़ते हैं, कैसी-कैसी अग्नि परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं, मनुष्य रुपी कैसे-कैसे खूँख्वार भेड़ियों से जूझना पड़ता है, अंकिता इसका आदर्श स्थापित करती है।

घर में वह अपने पति से टकराती है और मायके में भैया, भाभी और माँ की रूढ़िवादिता से। माँ की मृत्यु के पश्चात मायके में पारिवारिक संपत्ति के अपने हिस्से को त्यागकर उससे संबंधित कलह से उभरती है। अंकिता जैसी आज की नारी में अपने अस्तित्व की रक्षा करने की चेतना जाग गयी है। नौकरी करते समय भी उसे मि. मैथ्यू जैसा बॉस मिलता है, जो अपने किसी खाते के लिए अपने स्त्री को खातेदार के अपनी वासना की तृप्ति के लिए परोसने से नहीं हिचकता। इनकार करने पर अंकिता की नौकरी चली जाती है। पर वह हिम्मत न हारकर दूसरी नौकरी प्राप्त करती है और मालिक के भेस में छिपे इन देह के व्यापारियों को मुँहतोड जवाब देती है। इतना ही नहीं अपने चरित्र पर लांछन लगते देख मि. भोजराज को त्यागपत्र देने का साहस करती है। विज्ञापन की ग्लैमरवाली दुनिया में आने के लिए जहाँ लडकियाँ कोई भी शर्त स्वीकार कर सकती हैं, वहाँ अंकिता जैसी संघर्षशील युवती किसी की उंगली उठने पर त्यागपत्र देने के लिए सिद्ध हो जाती है।

इस उपन्यास की दूसरी प्रमुख पात्र नीता अपने नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व से भटक गयी है। मॉडलिंग में प्रवेश करते ही नीता के जीवन में एकदम अस्वाभाविक बदलाव आ जाता है। उसकी आर्थिक पिपासा की ललक बढ़ जाती है। इसीलिए नीता 'ऑब्जर्वेशन एडवरटाइजिंग' की पक्की नौकरी छोडकर 'पूर्णा' एजेन्सी में मॉडलिंग के क्षेत्र में प्रवेश करती है। जहाँ उसे बेहतर पद भी मिलता है। इससे उसका जीवन यौन-श्रृखलता, बलात्कार, भ्रष्टाचार जैसे सामाजिक विषमताओं से भर जाता है।

अंकिता नीता की तरह न तो पश्चिमी संस्कृति स्वीकृत करती है, ना ही अबला बनकर रहती है। वह इन दोनों प्रतिमा को साथ-साथ लेकर चलती है। अतः गिरिराज किशोर कहते है- "चित्रा मृद्गल के इस उपन्यास को भले ही ग्लैमर और विज्ञापन की दुनिया से जोडा जाए किन्तु मुख्यत: यह भारतीय स्त्री की मानसिक सीमा और उसके बाहरी जीवन के अंतर्द्वंद्व का उपन्यास है। खास तौर से अंकिता की संपूर्ण बुनावट भारतीय नारी की सोच के चारों तरफ बुनी गई है।"[103]

मॉडलिंग के क्षेत्र में उतरने से पहले नीता ने जो अनुभव किया था उसे वह अंकिता को इन शब्दों में व्यक्त करती है '...यह ग्लैमर की दुनिया है अंकू...। यहाँ जीने की, जी पाने की पहली शर्त है... विशिष्ट दिखना, विशिष्ट करना, विशिष्ट होना, विशिष्ट बनना, जो वास्तविकता नहीं है...। इसी कारण नीता आधुनिक पोशाकों

की सुविख्यात निर्माता कंपनी 'आम्र पाली' की विज्ञापन फिल्म शो में छह पुरुष मॉडलों के साथ एक मात्र प्रमुख मॉडल बनने के लिए बड़ी उत्सुकता से स्वीकार करती हैं। अंकिता का स्पष्ट मत है, -"अवगुण का जवाब अवगुण नहीं हो सकता अर्थात अवगुण चाहे स्त्री में हो या पुरुष में दोनों के लिए त्याज्य है 'स्त्री को समाज में समान अधिकारों के नाम पर इन्हीं उच्छश्रृखलताओं और अनुशासनहीनता की चाह है। प्रश्न उठता है नीतू जब से अवस्थाएँ मर्दों के लिए अनैतिक, अमानवीय, दुराचरण और निरंकुशताएँ है तो स्त्री के लिए उचित कैसे हासिल कर सकती है ? इन्हें अपना कर वह समाज में बराबरी का दर्जा कैसे हासिल कर सकती है ? स्त्री मर्द बनकर समाज में समानता चाहती है स्त्री बनी रहकर क्यों नहीं ? स्त्रीत्व के गुणों को बरकरार रखते हुए ? संघर्ष का यह गलत मोड़ है नीतू चेतने की जरूरत है... स्त्री की स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं चाहिए उन रूढ़ियों से मुक्ति नहीं चाहिए उन रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए जिन्होंने उसे वस्तु बना रखा है... तुम वर्जना हीनता के तर्क से लैस होकर पुरुष की उसी पीपासा को संतुष्ट करने जा रही हो, जो स्त्री को भोग की वस्तु मानकर उसे इस्तेमाल करता आया है और कर रहा है।"[104]

अपनी अस्मिता की खोज करने वाली नीता शादीशुदा सुधीर से संबंध रखती है और इसी स्वतंत्रता का फल बिन ब्याही माँ के रूप में मिलता है। वह भी अंकिता की तरह व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा खुलापन चाहती थी पर उसे मिलती है सिर्फ तनहाई, तनाव, असुरक्षा तथा मानसिक विकृतियाँ जो उसे आत्महत्या करने के लिए बाध्य करती है। उपन्यास के अंत में सुधांशु प्रायश्चित करते हुए अंकिता से उसे अपनाने को कहता है तो वह उसे बहुत ही करारा जवाब देती है, -"सुधांशु जी, औरत बोनसाई का पौधा नहीं है, जब जी चाहा, उसकी जड़े काटकर उसे वापस गमले में रोप दिया। वह बौना बनाए रखने की इस साजिश को अस्वीकार भी कर सकती है।"[105]

चित्रा जी ने इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ते आधुनिक भारत की दो स्त्रियाँ 'अंकिता' और 'नीता' के माध्यम से नारी मुक्ति स्त्री की अस्मिता की सही छवि प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। नीता जो श्रेष्ठ और महँगी मॉडल, कई पुरुष मित्र, मन चाहा करने की स्वतंत्रता पाकर भी टूट गयी। उसके विपरीत अंकिता के माध्यम से चित्राजी ने धैर्य, विवेक, साहस एवं अत्याचारों का प्रतिकार करते हुए पुरुष के अहंकार, धृष्टता और ओछी मनोवृत्ति को टकराते हुए स्त्री -पुरुष को एक ही तराजू पर तौलती हैं -'यदि घर में नहीं तो घर से निकलकर आत्मनिर्भर हो जाने के विकल्पों को खोजना चाहिए। इस तरह पूरा उपन्यास वैश्विकता के दौर में स्त्री विमर्श का नारा देता है। लेखिका ने नीता के जरिए स्त्री स्वतंत्रता के माध्यम से एक मिथ्या की धारणा को दूर करने की

कोशिश की है। के. वनजा के अनुसार, "इस उपन्यास ने विज्ञापन के क्षेत्र में परत-दर-परत खोलने के साथ स्त्री स्वातंत्र्य की नई व्याख्या दी है यानि की स्त्री द्वारा स्त्री की जमीन की तलाश।"[106]

'एक जमीन अपनी' में चित्रा मुद्गल ने परंपरागत रुढ़ियों के प्रति आलोचना प्रकट करते हुए वर्तमान युग की चुनौतियों को चित्रित कर उनकी तुलना भी की है। इस उपन्यास में उन्होंने विज्ञापन जगत से जुड़े कई सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं का विस्तृत विश्लेषण किया है। चित्राजी विज्ञापन जगत के संदर्भ में कहती है – "बाजार में आने वाले प्रत्येक नए उत्पादनों की सूचना संप्रेषण का माध्यम एकमात्र विज्ञापन ही देता है, किंतु आज अश्लीलता की हदें पार करता विज्ञापन जगत का वर्तमान परिदृश्य प्रतिस्पर्धा की होड़ में अपने मूल लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सामाजिक हितों को दरकिनार कर रहा है। सच कहें तो सबसे बड़ा नुकसान आधी आबादी का किया है और कर रहा है। विज्ञापन जगत बडे कौशल से आधुनिकता बोध की आड में आधुनिक जीवन शैली के प्रलोभनों को परोस उसे शार्टकट के रास्ते सिखा 'देह' की सजा से मुक्ति देने के बजाय उसे पुनः देह की परिभाषा में ही कैद कर रहा है। उपयोग और उपभोग की सोची-समझी राजनीति से बेखबर आधी आबादी अपने विरूद्ध रची जा रही इस चौंधियाहट-भरी साजिश में स्वयंमेव फंसती जा रही है। वस्तु का विज्ञापन करती हुई स्वयं वस्तु में तबदील होती।"[107]

'एक जमीन अपनी' के बारे में प्रकाश मनु की राय है- "इस उपन्यास में उन्होंने एक अपेक्षाकृत नए क्षेत्र- विज्ञापन की दुनिया के मारक झूठ और सच, दुर्वह आकर्षण और जगमगाती सफेदी के भीतर छिपे ईर्षा-मद-मत्सर की चिड़चिड़ाहट से हमें परिचित कराया है। और बोल्डनेस के साथ अपनी इच्छा के विरूद्ध पुरुषों की दुनिया में एक बिकाऊ चिज बनती स्त्री की नियति पर उँगली रखी है।"[108]

अंकिता एवं नीता इन दो पात्रों की सहायता से चित्रा मुद्गल ने 'एक जमीन अपनी' में विज्ञापन जगत की चकाचौंध के पीछे चलने वाली एक नई पर भ्रामक दुनिया के काले सत्य को दुनिया के सामने रखा है। इस विज्ञापन जगत में जितना हिस्सा पूंजी का है उससे अधिक हिस्सा नारी एवं उसके देह का है। विज्ञापन के इस नूतन व्यापार में नारी अपनी देह एवं प्रकृति के माध्यम से बाजार के मनमोहक संदेशों को उपभोक्ताओं तक पहुँचाती है एवं उस उत्पादक की वस्तुओं के दाम एवं खपत देखते ही देखते आसमान छूने लगते हैं। विज्ञापन जगत में वस्तु की गुणवत्ता या स्तरीयता को महत्व कम ही होता है उपभोक्ता तो विज्ञापन के सहारे ही उसका

मूल्य आँकता है। अतः उपभोक्ताओं की मानसिकता को देखकर विज्ञापन जगत स्त्री देह-अंग प्रदर्शन द्वारा विज्ञापनों का प्रस्तुतीकरण करता है एवं उत्पादकों का प्रोडक्ट देखते-देखते चल पड़ता है।

चित्रा मुद्गल ने 'एक जमीन अपनी' उपन्यास में विज्ञापन की बाहरी दुनिया की अपेक्षा आंतरिक दुनिया की संवेदनाओं को कुशलता के साथ चित्रित किया है। विज्ञापन जगत का असली चेहरा तो परदे के पीछे की स्त्रियों की वर्क फोर्स से उजागर होता है।

1.2.11.2 आवां

'आवां' चित्राजी का दूसरा उपन्यास है, जो उन्होंने ट्रेड युनियन से जुड़ी रहने के कारण प्रेरित होकर लिखा है। उनका श्रमिक परिवारों से दीर्घ समय तक रिश्ता रहा है। उन्होंने अपनी आँखों देखी घटनाओं एवं श्रमिकों की दुर्दशाभरी जिंदगी का सच्चा वर्णन 'आवां' में किया है। किस तरह मजदूर अपनी बस्तियों की छोटी- छोटी सुविधारहीत झोंपडियों में रहकर रोटी-कपड़ा-पानी के लिए तरसता था। मुश्किल से दो जून की रूखी- सूखी रोटी परिवार के लिए जुटाना भी उसके लिए कठिन था। सरकार केवल झोपडियों-बस्तियों का टैक्स वसूलने के लिए थी, उनके बुनियादी जरूरतों की ओर ध्यान देने के लिए सरकार के पास समय नहीं था। नल को पानी आना भी इन लोगों के लिए उत्सव जैसा था। पाखाने के लिए ग्रामीण लोगों की तरह ही इनकी अवस्था थी, मजदूर पुरुष, स्त्रियां, बच्चें लोटा लेकर झाडियों के बीच बैठते थे।

'आवां' लिखने के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए चित्राजी कहती है, "'आवां' लिखने का उद्देश्य तथा कथित पढ़े-लिखे लोगों को मजदूरों की दयनीय स्थितियों और विसंगतियों से परिचित कराना ही है। धनाधारित नगर भी दो भागों में विभक्त है। एक ओर पूंजीपतियों की गगनचुंबी अट्टालिकाएँ हैं तो दूसरी ओर उनके नीचे दबी झुग्गी झोपडियों में निवास करनेवाले लोग नरकीय जीवन जीने को विवश है।"[109]

चित्राजी ने ट्रेड युनियन के माध्यम से कुछ वर्षों तक कार्य किया। उनका संबंध डॉ. दत्ता सामंत से था। वे उनके साथ कार्य करती थी। एक समय वे मीरा ताई की संस्था 'जागरण' से भी जुड़ी जो घर काम करनेवाली मजदूरों की पत्नियों की संस्था थी। यह संस्था उनके बुनियादी हक लड़ाई लड़ती थी। वे 'जागरण' के कार्यालय में बैठती थी। मजदूरों के लिए धरने पर बैठती थी। पर जब मजदूरों ने हिंसा का मार्ग अपनाया वहीं भूखे मजदूरों के आक्रोश को उन्होंने पहली बार देखा। दूसरी बात का उन्होंने सूक्ष्मता से निरीक्षण

किया वह थी यूनियनों की अपनी प्रतिद्वद्विता, अंतर्विरोध और उसमें गिरोहों की ठेकेदारी। उसी समय मीरा ताई की निर्मम हत्या हुई, न केवल हत्या बल्कि उन्हें बेइज्जत भी किया। चार गुंडोने मिलकर मीरा ताई की देह से उनके कपड़े फाड़ दिये और पीठ में छुरा भोंक दिया। स्त्रीत्व को अपमानित किए जाने की चोट उनके मानस पर पड़ी तब से लेखिका ने केवल 'जागरण' के माध्यम से काम करने का सोचा।

चित्राजी 'आवां' के लिखने के संबंध में कहती है, "शायद मीरा ताई की निर्मम हत्या के साथ ही उन विसंगतियों को रेखांकित करने का कोई बीज अवचेतन में दबा रह गया होगा, वरना क्या मैं इस उपन्यास को लिख पाती !"[110]

ट्रेड यूनियन, मजदूर आंदोलन एवं स्त्री-विमर्श को केंद्र में रखकर लिखा गया चित्रा मुद्गल का 'आवां' बीसवीं सदी के अंतिम दशक की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह उपन्यास मजदूर संगठन जो कभी पूंजीवादी व्यवस्था से लढ़ने के लिए बने थे कैसे पूंजीपतियों के हाथों बिक गए हैं इसका यथार्थ अंकन करता है। साथ ही महा नगरीय जीवन में निम्न मध्य वर्गीय महिलाओं की आर्थिक दुर्दशा और यौन शोषण का बेबाक चित्रण उपन्यास के विषय को विस्तार देता है। चित्रा मुद्गल के शब्दों में -"'आवां' के माध्यम से मैं पढ़े-लिखे लोगों को यह बताना चाहती हूँ कि जो लोग मात्र दिहाडी पर जी रहे हैं, वे कैसी यातनाओं से गुजरते हैं, उनकी पीड़ा कथा है।"[111]

लेखिका ने इसमें काम काजी महिलाओं की समस्याओं को न सिर्फ सुंदर ढंग से चित्रित किया है बल्कि उसे अंत तक लड़ते दिखाया है। स्त्री को घर से बाहर निकलने तथा निर्दिष्ट स्थान पहुँचने के बीच तक पुरुष अत्याचारों और यौन पिपासा का कैसे सामना करना पडता है, इसका यथार्थ चित्रांकन 'आवां' की निम्न पंक्ति में निहित है-"भीड़ से उसकी मुलाकात जब भी होती, उसके धड से उसे सिर गायब मिलता और उसके संभलते न संभलते वह धड अचानक कोंचनी कुहनियों, सरसराती उँगलियों, लोलुप कनखियों, सिसकारी भरती छुअन में तबदील हो अपने करीब दबोचते-चांपते संभोग को उदिप्त होने लगता।"[112]

'आवां' मुंबई की पृष्ठभूमि पर अंकित है। 'आवां' की नायिका नमिता पांडे 'कामगार आघाडी' में ट्रेड यूनियन का करने वाले मजदूर नेता देवीशंकर पांडे की बेटी है, जो एक श्रमिक आंदोलन के दौरान हुए जानलेवा हमले में बच तो गए लेकिन लकवे के कारण बिस्तर पर पडे रहने पर अभिशप्त हो जाते हैं। उनकी पत्नी क्रूर और कर्कशा है, जो उन्हें ही नहीं अपनी बड़ी बेटी नमिता को भी हमेशा जली-कुटी सुनाती रहती है।

माँ-बेटी ‘श्रमजीवा’ संस्था में पापड बेलने का काम करके किसी तरह गृहस्थी की गाडी को चलाने की कोशिश करती हैं।

‘आवां’ उपन्यास में लेखिका ने राजनीतिक षड्यंत्रों को प्रस्तुत किया है- “वर्तमान विकृत भ्रष्ट राज्य व्यवस्था मानवता के रेशे-रेशे खोलनेवाली चित्राजीने ‘आवां’ की विशाल औपन्यासिक संरचना में श्रमिक संगठनों के चित्रण के रूप में नेताओं, माफिया गिरोह के आतंक और ट्रेड यूनियनों के भीतर के मर्मांतक झगड़ों आदि सभी बहुविध पक्षों को बड़ी कलात्मक भंगिमा में प्रस्तुत किया है।”[113]

नमिता को मजदूर यूनियन ‘कामगार आघाडी’ की नौकरी दे देते हैं। बेटी जैसा मानते और कहते हुए भी एक दिन अन्ना साहब उसका यौन शोषण करते हैं। बेटी के हम उम्र वाली नमिता से अश्लील व्यवहार ही नहीं करता पर उसे धौंस भी देता है कि -“पिता समान हूँ मैं तुम्हारे, पिता नहीं हूँ... हाथ मत छुड़ाओ। जैसा कहूँ करती चलो...।”[114] नमिता का मोह भंग हो जाता है और वह ‘कामगार आघाडी’ छोडकर अन्यत्र नौकरी ढूँढती है।

लोकल ट्रेन की यात्रा के दौरान एक दिन अचानक नमिता की मुलाकात मैडम अंजना वासवानी से होती है। आभूषणों का व्यापार करने वाली यह महिला नमिता को नौकरी देती है। जिसमें लिपिकीय कार्य के साथ-साथ आभूषणों की मॉडलिंग भी करनी होती है। इस काम के लिए वह नमिता को ऊँचा वेतन देती है, महँगे उपहार प्रदान करती है और आभूषण डिजाइनिंग के विशेष पाठ्यक्रम हेतु हैदराबाद भेजती है।

‘आवां’ में अंजना वासवानी को उपभोगक्तावादी प्रदर्शित किया गया है – “उपन्यास में सुविधाओं की नमिता के वर्गीय चरित्र को भिगो- भिगोकर अंजना वासवानी जैसे बड़े लोगों ने न केवल उसे बाजार के लिए प्रलोभित किया वरन् छद्म प्यार के सपने दिखाने वाले संजय कनोई नेभी अंततः उच्चवर्गीय स्वार्थ का प्रतिनिधित्व किया।”[115] मैडम अंजना वासवानी उसे संजय कनोई जैसे धन पति के स्वर्णिम जाल में फँसा देती है।

नमिता के पात्र पर प्रकाश डालते हुए चित्राजी कहती है- “इससे पहले बचपन में उसके मौसाजी ने उसके साथ गलत व्यवहार किया था। नमिता ने उसके बारे में अपनी माँ से शिकायत भी की थी और उसके माँ ने लोकोपवाद के कारण उसे मुंह खोलने से मना किया था। यह नमिता का करीबी रिश्ता था। कामगार आघाड़ी में मजदूर नेता अन्ना साहब अपनी कामेच्छा की पूर्ति के लिए उसे हस्तमैथुन के लिए विवश करते हैं,

तो वह प्रत्यक्ष रुप से उनका विरोध इसलिए भी नहीं कर पाती क्योंकि वह जिन निम्न मध्यमवर्गीय परिस्थितियों में बड़ी हुई है, उसमें उसकी माँ की दोहरी मानदंडों की साइक्लोजिकल भूमिका और दमन व्याप्त है। लेकिन वह सांकेतिक भाषा में विरोध अवश्य करती है। वह झाँसी के रानी के रूप में पैदा नहीं हुई है। चेतना ग्रहण कर रही है।"[116]

उधर कामगार आघाडी में अन्ना साहब जो करते हैं, सो करते हैं, एक दलित श्रमिक और उभरता नेता पवार नमिता से विवाह कर खुद को अन्ना साहब के समानांतर बड़ा नेता बनने के सपने पालने लगता है। नमिता उसे पसंद करती हैं लेकिन पवार के जाति वादी जाल में फँसना उसे मंजूर नहीं। पवार अस्पताल में बाबूजी की देखभाल हेतु रूकता है, रात में वहीं अस्पताल में ठहरता है। बाबूजी भर्ती है उन दिनों वह नमिता से राजनीति के संबंध में खूब बाते करता है। उसके मुख से लेखिका ने तत्कालीन राजनीतिक विचारों को प्रस्तुत किया है। "पवार स्वयं को दलित कहता है। उसे अन्नासाहब ने इसलिए संभाल रखा है ताकि कभी वह चुनाव में दलितों के वोट पाए। पवार भी अन्नासाहब की पॉलिसी को खूब समझता है पर स्वयं का लाभ होना तय है यह सोच अन्नासाहब से जुड़ा रहा। पुष्पमाल सिंह के मतानुसार दलित समस्या पर विभिन्न कोणों से कामगार आघाडी में पवार की उपस्थिति के माध्यम से विचार किया गया है। पवार को इस वर्ग को युग-युग की पीड़ा है कि उन्हें सवर्ण समाज ने बहुत प्रताड़ित किया। गाँव के झाड-झंखाड तक सवर्णों की मिल्कियत थे।"[117] इसी दरमियान नमिता के पिता की मृत्यु हो जाती है।

नमिता विवाहित पर निःसंतान संजय कनोई के जाल में फँसती है। जिसकी परिणति उसके गर्भवती होने में होती है। अन्ना साहब की हत्या का समाचार पाकर वह सन्न रह जाती है और सदमे से गर्भपात हो जाता है। नमिता खुद भी माँ बनने की इच्छुक नहीं थी। गर्भ गिरने को संजय कनोई नमिता के ही किसी प्रयास का कारण समझकर फट पड़ता है,- "जानती हो ? बाप बनने के लिए मैंने तुम्हारे ऊपर कितना खर्च किया ? उस मामूली औरत अंजना वासवानी की क्या औकात कि तुम्हारे ऊपर पैसा पानी की तरह बहा सके ? उसका जिम्मा सिर्फ इतना भर था कि वह मेरे पिता बनने में मेरी मदद करें और सौदे के मुताबिक अपना कमीशन खाए।"[118]

आहत नमिता पाठ्यक्रम अधूरा छोड़कर मुंबई वापस आती है। वह अपनी माँ के साथ न रहकर मजदूर किशोरीबाई के साथ रहती है और 'कामगार आघाडी' के लिए काम करने का निर्णय लेती है।

नमिता के कई रूप 'आवां' में दिखाई देते हैं- "कई दृष्टियों से वह हिन्दी में आज का उपन्यास कहा जा सकता है। आज का आदमी, आज की औरत, आज की जिंदगी, आखिर नमिता को ही न जाने कितने मोडों से गुजरना पडता है, एक निम्न मध्यम वर्ग की दब्बू और दलित युक्ति से लेकर मजदूर संगठन की कार्यकर्ता, एक मॉडेल, एक धनाड्य उद्योगपति की प्रिया से सब आज की स्त्री के अनेक रूप है।"[119]

उपन्यास में कई कथाएँ, उप कथाएँ हैं। एक तरह से संपूर्ण उपन्यास नारी पर होनेवाले अत्याचारों का दस्तावेज है। नारी ही नारी पर अत्याचार करती है, जैसे नमिता की माँ। नमिता पर मौसाजी द्वारा किए गए अत्याचार की आवाज को दबा देती है क्योंकि बेटी से अधिक अपनी अमीर बहन कुंती से मिलने वाली थोडी सी आर्थिक सहायता की ही उसे अधिक फिक्र है।

सुनंदा की कथा के माध्यम से लेखिका ने हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिकता तथा नारी विमर्श का एक अनोखा प्रभावशाली चित्र खींचा है। सुनंदा एक मुसलमान लड़के सुहैल से प्रेम करती है। दोनों की शादी होने में धर्म आडे आता है। सुनंदा कुआँरी माँ बन जाती है। सुहैल की माँ चाहती है कि सुनंदा इस्लाम धर्म कबूल करें तभी उन दोनों की शादी होगी। पर सुनंदा अपने हिन्दू धर्म को छोडना नहीं चाहती। सुनंदा कहती है कि, "सुहैल ने प्रेम करने के समय तो ऐसी कोई शर्त नहीं रखी थी ? जो शर्त पहले नहीं थी बाद में क्यों बने ?"[120] सुनंदा बिना धर्म परिवर्तन के शादी करने के लिए तैयार होती है। वह हिन्दू होकर मुसलमान से शादी करने के लिए राजी थी, क्योंकि वह हिन्दू-मुस्लिम एकता को धर्म से ऊपर देखना चाहती थी। पर उसे न्याय नहीं मिलता बल्कि उसकी हत्या की जाती है।

स्मिता और नमिता सहपाठिनी है। स्मिता एक हिम्मती, ईमानदार, स्पष्टवादी, संघर्षशील नारी का प्रतीक है। उसका बाप मटका किंग और एक नंबर का शराबी है। शराब के नशे में वह स्मिता की बडी बहन को यौनाचार के लिए घसीट लेता है। इसलिए स्मिता अपने बाप से नफरत करती है। स्मिता के मन में अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाने की एक दहकती चिनगारी प्रस्फुटित होती है जो उपन्यास में आगे जाकर लपटों का रूप धारण करती है। स्मिता के शब्दों में, "जिस दिन नौकरी मिल जाएगी मुझे नमी, बाप-रूपी इस राक्षस को मैं सीढ़ियों से ढकेल स्वाभाविक मौत मरने पर विवश कर दूँगी।"[121] स्मिता का यह दृढ़ विश्वास है कि अपनी पिता की मृत्यु के बाद ही उसके परिवार को शांति नसीब हो सकती है।

चित्राजी ने ‘आवां’ के माध्यम से औद्योगिक नगरी मुंबई में स्थित कई ट्रेड-युनियनों के संघर्ष एंव राजनिति पर प्रकाश जाता है। “बंबई जैसे औद्योगिक एवं व्यावसायिक महानगर के लाखों मजदूरों और उनके ट्रेड युनियनों की समस्याओं पर एक सक्रिय कार्यकर्ता हैसियत से उनके नेताओं और उनके पारस्पारिक कलह और अंतर्विरोधों का भीतरी परिदृश्य प्रस्तुत किया है। जो हिन्दी कथा साहित्य में दुर्लभ है।”[122]

‘आवां’ उपन्यास वास्तविकता की भूमि पर टिका, देखे-सुने, जाने-बुझे पात्रों से युक्त उत्कृष्ट कोटि का उपन्यास है।‘आवां’ उपन्यास मजदूरों के बीच अंतर्विरोध, राजनीति, षड्यंत्र और निकृष्ट हथकंडों, आपसी मनमुटाव आगे बढ़ने की होड़ और पूंजीपति वर्ग के शोषण का उत्कृष्ट चित्रण करता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने मजदूर आंदोलनों की सीमाओं का सटीक चित्रण किया है। साथ ही स्त्री सरोकारों के प्रति गहरी चिंता और भावुक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। स्त्री उत्पीडन का यह अभिन्न दस्तावेज है। यह यथार्थता से जुड़ा हुआ एवं लेखिका ने अनुभव किया हुआ आम जन चरित्रों से युक्त सर्वोच्च कोटि का उपन्यास है। व्यापक अनुभव के आवे में पकाए जाने के कारण उपन्यास श्रमिक आंदोलन तथा नारी शोषण के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यथार्थ अभिलेख है।

‘आवां’ में वर्णित समस्याओं को लेकर अपने साक्षात्कार में वे बताती है कि- ‘आवां’ अपने समय काल का ‘आवां’ है। आजादी के बाद सत्ता लोलुपता की जिस होड़ में अंध महत्वाकांक्षी भारतीय राजनीति और नौकरशाही भ्रष्ट हुए हैं, उसने मध्यम वर्ग के स्वयं को लगभग ठगा हुआ महसूस करने वाले चरित्र को भी चारित्रिक पतन के रास्ते पर ही नहीं घसीटा, बल्कि सर्वहारा के हित चिंतक मजदूर संघटनों के नेतृत्व को भी, उसी पंक में घसीट उन्हें सत्ता के समीकरणों का मोहरा बना लिया। ‘आवां’ खुलासा है उस परिणति का जिसकी हमने कभी कल्पना नहीं की थी। नमिता देवी शंकर पांडे उसी सर्वहारा के प्रतीक है।”[123]

जिसप्रकार से प्रेमचंदजी ने गोदान में भी ग्रामीण एवं शहरी कथा का वर्णन किया था। उसी की तर्ज पर चित्राजी ने ‘आवां’ में मुंबई की अविकसित प्रदेश की जिंदगी के साथ शहरी उच्चवर्गीय जीवन को प्रस्तुत किया है। उपन्यास की प्रत्येक छोटी-बड़ी घटना पाठक को चलचित्र देखने का अहसास करती है। उसकी नजरों के सम्मुख जीवंत पात्र प्रत्यक्ष खड़े हो जाते हैं। इस उपन्यास में मुम्बई एवं परिसर का इतना अचूक वर्णन किया है इसे पढ़कर पाठक बेहिचक लोकल द्वारा मुंबई दर्शन कर सकता है।

'आवां' चित्राजी का एक बृहत उपन्यास है । इस उपन्यास में उन्होंने नायिका नमिता के माध्यम से मुंबई शहर की झोपडपट्टी में रह रहे गरीब मजदूर जिनके नसीब में दो जून की रोटी भी मुश्किल है के साथ-साथ मुंबई के धनी, हीरे जवाहरात के सौदागरों की जिंदगी पर भी प्रकाश डाला है । यह उपन्यास अमीरों एवं गरीबों की मानसिकता को सटीकता से प्रस्तुत करता है ।

1.2.11.3 गिलिगडु –

'गिलिगडु' यह चित्राजी का लघु उपन्यास है, जिसमें आज के पीढ़ी के नौजवानों की एकल परिवार के प्रति ज्ञान के कारण वृद्ध लोगों की त्रासदी को चित्रित किया गया है । इस उपन्यास में दो वृद्धों की व्यथा को बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है । चित्रा जी का यह तृतीय उपन्यास है, पहले दोनों उपन्यासों में आपने विज्ञापन जगत एवं राजनीति के दांवपेंचों को उजागर किया था । यह उपन्यास कुछ अलग विषय को प्रकाशित करता है । आज के गतिशील अथवा प्रगतिशील संगणक युग में हर व्यक्ति पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों से पिंड छुड़ाना चाहता है । संयुक्त कुटुंब पद्धति से अणु परिवार की ओर सभी भागना चाह रहे हैं ताकि किसी को कोई बंधन ना हो । अपने मन के मुताबिक निर्बंध जीवन जीने की चाह में माता-पिता को वृद्धाश्रम में रखा जा रहा है और घर में बच्चों को खेलने, मन बहलाने कुत्ते-बिल्लियों को रखा जा रहा है ।

आज की उपभोगता वादी संस्कृति का सूक्ष्म वर्णन मुद्गल जी ने किया है । आज 'इस्तेमाल करों एवं फेंको' संस्कृति का चारों ओर बोलबाला है, जिस तरह किसी वस्तु का प्रयोग होने के बाद बेहिचक फेंक दिया जाता है, उसी तरह वृद्धों की ही हालत बन गई है । पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के कारण भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों का ह्रास हो रहा । एक सौ करोड लोगों को उत्पाद के रुप में प्रयोग करने हेतु हमें प्रेरित कर प्रयोग किया जा रहा है । समाचार पत्रों, टेलिविजन द्वारा भारतीयों के मानस पर निरंतर दबाव बनाकर उनकी संस्कृति को नष्ट किया जा रहा है।

आजीवन अपने परिवार एवं संतानों के लिए अपना सर्वस्व दांव पर लगाने वाले माता-पिता की समस्या आज भारतीय समाज का ज्वलंत समस्या बनी हुई है । वृद्धों की उपेक्षा हो रही है । उन्हें वृद्धाश्रमों में रखा जा रहा हैं । कई प्रसंग तो ऐसे है कि माता-पिता की संपत्ति हथिया लेने के बाद उन्हें रेल्वे स्टेशन-बस स्टेंड पर छोड़ दिया जाता है । वृद्धों की उपेक्षा एवं दयनीय स्थिति में सरकार को इस संदर्भ में कड़े कानून बनाने पड़े पर कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । वृद्धाश्रमों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए मेरे साक्षात्कार में चित्रा जी ने

बहुत ही सोचनीय बात पर प्रकाश डाला है–“विदेशों में जो ओल्ड एज होम बने हुए है कुछ इस तरह की व्यवस्था यहां भी जैसे जरूरी होने जा रही है। यह देखकर दुःख होता है जब वृद्धाश्रमों में कुछ अतिरिक्त कमरों का निर्माण होता है ना 25 बिस्तर के लिए पाँच हजार एप्लीकेशन्स व्यवस्थापकों के पास पहुँच जाती है। उन पाँच हजार एप्लीकेशन्स में बड़े-बड़े ओहदों पर रह चुके अधिकारियों के अलावा सामान्य वरिष्ठ नागरिक भी है, जिन्होंने अपने प्रोविडेंट फंड को लगाकर अपने और परिवार के लिए घर बनाया था और औलादों को ऊंची से ऊंची तालीम दिलवाई थी।”[124] कुछ ऐसी ही स्थिति से गुजरे थे कर्नल स्वामी एवं बाबू जसवंत सिंह।

उन्होंने अपने साक्षात्कार में बताया है कि उन्हें यह प्रेरणा बेंगलुरु के मिस्टर राव से मिली। “वे कहने लगे कि बूढ़े वे होते हैं जिनकी जिंदगी में चहचहाहट नहीं होती। मैं रोज चिड़ियों के कलरव से गुजरता हूं। बात आई-गई हो गई। वे यदा-कदा फोन करते। दिल्ली मिलने आते। राव साहब जब-तक घर में रहते, घर के किस्से सुनाते रहते। फिर उनसे संपर्क नहीं रहा। सालों बाद सेंसर बोर्ड की एक बैठक में बेंगलोर जाना हुआ, तो सोचा राव सहाब से भी मिलूंगी। जहाँ बैठक थी उससे थोड़ी दूर ही उनके घर का पता था। एक ब्रेड बेचनेवाले के पास जाकर पूछा यहाँ मिस्टर राव रहते हैं ? बहुत जोर डालने पर वह बोला, अच्छा वे ट्वीन्सवाले। मैंने हां कहा। तो उसने गंभीर मुद्रा में बताया कि, मैडम वे तो अकेले ही रहते हैं। उनका पूरा परिवार तो बीस-बाईस वर्ष पहले ट्रेन दुर्घटना में खत्म हो गया था। पहले दिल्ली में कहीं नौकरी करते थे। अब तक तो वे सो चुके होंगे। मैंने अपना कार्ड दुकानदार को दिया कि वह उसे राव साहब को दे दे जिससे वे संपर्क कर सकें।...10 दिसंबर को मेरे जन्मदिन पर कार्ड आया। यह बात 1988 की है।...राव साहब के घर फोन लगाया तो काफी देर तक किसी ने नहीं उठाया। फिर कई प्रयत्नों के बाद किसी ने उठाया और बताया ‘मैडम, राव साहब तो दो दिन पहले ही गुजर गए। इस बात ने मुझे बहुत कचोटा। तो कर्नल स्वामी यही मिस्टर राव है – कल्पना के अनेक स्ट्रोकों से रचित।”[125]

‘गिलिगडु’ दो वृद्धों की कथा है, जो सैर के समय प्रातः अनायास मिलते हैं और एक-दूसरे में अपनी संवेदना और स्वरूप का प्रतिबिंब ढूँढते हुए आत्मीयता की तरह संस्पर्श पाकर अंतरंग मित्र बन जाते हैं। साथ-साथ दिल्ली दर्शन, खरीदारी, रेस्तरां में डिनर, सैर के अतिरिक्त उनकी साझी जिंदगी में शामिल हो जानेवाले वे कुछ अविस्मरणीय पल हैं, जिनके साथ अपने-अपने राज खोलती भावुक तरलताएँ जुड़ी हैं। इतना होते हुए दोनों की दुनिया बिल्कुल अलग है।

कानपुर से सेवानिवृत्त इजीनियर बाबू जसवंत सिंह अपनी पत्नी के निधन के बाद बिल्कुल अकेले हो जाते हैं। बाबू जसंवत सिंह को उनका बेटा नरेंद्र गाँव से शहर लेकर आता है। वृद्धावस्था में क्षीण होती शारीरिक शक्ति और जर्जर देह अनेक रोगों को आमंत्रण देती है। जसवंत सिंह भी भयंकर बावाशिर का शिकार है। वे रोज रात में त्रिफला की फुकी इस आशा और भ्रम से लेते हैं कि उनकी अगली सुबह तकलीफ रहित होगी लेकिन रोग है कि उन्हें छोड़ने का नाम नहीं लेता। आज परिवार में बुजुर्गों की स्थिति क्या है, इसका चित्रण वास्तविकता एवं रागात्मकता से व्यंजित किया। जसंवत सिंह के कमरे में टॉमी को बाँधा जाता हैं, बाबूजी डरते हैं, 'आखिर कर यह जानवर है उसका क्या भरोसा कही झपट ना पडे' यह अपनी परेशानी नरेंद्र से कहते हैं। टॉमी को पॅसेज में बांधना शुरू होता है, बहू को कुत्ते को बाहर बाँधना अच्छा नहीं लगता। टॉमी फैशन और प्रतिष्ठा का प्रतीक रूप में घर में पालित पोषित है। लेकिन उसके नित्य कर्म को ध्यान रखना परिवार का नहीं, वृद्ध जसवंत सिंह का दायित्व है।

बहू सुनयना की इच्छा हैं कि बूढ़ा ससुर टॉमी को रोज घुमाने के लिए ले जाए और वह नहीं जाते तो बहूँ ससुर को टोके बिना नहीं रहती। परिवार में जसवंत सिंह की स्थिति कुत्ते से भी बदतर और हीन है। टॉमी को टी.वी पर 'आज तक' चैनल पसंद नहीं। जब टॉमी गुर्राकर अपनी नाराजगी जाहिर करता है तब बहू ससुर का पक्ष लेने के वजह टॉमी के पक्ष में उन्हें टोकती है,- "कोई म्यूजिक चैनल लगा दीजिए न बाबूजी! आज तक क्या है। घंटे चलता ही रहता है।"[126] बूढ़े ससुर को क्या पसंद है क्या पसंद नहीं यह नहीं पुछा जाता। चाय पीने के तुरंत बाद ही झांककर पूछा जाता है कि, -'दलिया का डिब्बा खाली पड़ा है सांझ से पहले नहीं आ सकता। नाश्ते में वे क्या चीला खाना पसंद करेंगे।' औरों ने चीला खाने से इनकार किया होगा तो चीला उनको नापसंद हैं, यह प्रकट करने की उनकी औकात नहीं है। क्योंकि वे घरवाले नहीं घर में आकर रहने वाले है।

उनकी पत्नी ने तो हमेशा बच्चों की पसंद का खयाल किया था, किंतु आज उनकी पसंद का कोई मतलब नहीं। उम्र के मुताबिक बूढ़े लोग कई बाते भूल जाते हैं। 'बाबूजी आप रोज सुबह अपने कमरे की बत्ती बंद करना भूल जाते हैं। 'भूला गया होगा' बाबू जसवंत सिंह ने टूटी आवाज में जवाब दिया था मगर बहू सुनयना के कानों ने उनकी आवाज के टूटे पन पर भी गौर नहीं किया। भूल जाने से बिजली का मीटर तो नहीं खामोश बैठेगा।' इस प्रकार बुजुर्गों की हरकत पर छोटी सी बात का भी बतंगड बनाया जाता है। उनके लिए किसी को बिछे रहना जरूरी नहीं लगता। टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। इसलिए सोसाइटी में उनके घर का रुतबा बढ़ता

है। जसवंत सिंह के चलते उनका रुतबा कलंकित हुआ। परिवार वाले जसवंत सिंह की उपेक्षा करते हैं, वे बाहर प्यार ढूँढते है।

कर्नल स्वामी जसवंत सिंह का एक पिता से अधिक खयाल रखते हैं, उन्हें जाँगिग के लिए जूते खरीदकर देते हैं। बाबू जसवंत सिंह की तरह वे अपने परिवार में आत्म दया का शिकार नहीं है बल्कि प्रतिदिन वह अपने साथी को अपने परिवार के ऐसे किस्से बताते रहे हैं, जिनके केंद्र में वे स्वयं होते हैं। उनकी चर्चा में उनके बेटे नारायण, बहू माधवी और अनुश्री और खास तौर से दो जुड़वा पोतियाँ को वे 'गिलिगडु' कहते हैं, मलयालम में नन्ही चिड़ियों को किलिकलु कहते हैं, जिसका हिंदी करण उन्होंने 'गिलिगडु' किया है। उनकी बातों को सुनकर ऐसा लगता है घर में उनके बिना पत्ता भी न हिलता हो।

बाबू जसवंत सिंह को पारिवारिक घुटन से मुक्ति दिलाने के लिए कर्नल स्वामी अपने साथ सिनेमा दिखाने, शराब पीने तथा उनकी हर इच्छा का पूरा ध्यान रखते हैं। वे उनके अभिन्न मित्र बनने के बावजूद भी उनका मजाक उड़ाते हुए कहते हैं, -"सच तो यह है कि दोस्त, आपको दु:ख ओढ़ने-बिछाने की आदत पड़ गई है। साधारण बात प्रखर हो उठती है। दरअसल यह कुछ और नहीं है मिस्टर सिंह, बूढ़ों की शासन न कर पाने की कुंठा है।"[127] निःसंदेह उपन्यास में बूढ़ापे की त्रासदी के साथ उसकी चाह, इच्छा. अभिलाषा, हताशा, कुंठा को रचनाकार ने उसकी यथार्थता को उत्कृष्टता से चित्रित किया है।

जीवन मूल्य बदल गए हैं बच्चों को अपने माँ-बाप टूटे हुए मेज कुर्सी की समान लगते हैं, 'जो उन्हें कहीं डाल दिया जाए। ऐसा ही करने की कोशिश नरेंद्र करता है। वह अमेरिका जा रहा है, शालिनी और नरेंद्र तय करते हैं कि बाबूजी को 'आनंद निकेतन' वृद्धाश्रम में रख देंगे, यह सुनकर जसवंत सिंह बीमार पड़ते हैं, सोच विचार करके कि अपने ही मुझे वनवास देने का षड्यंत्र रच रहे हैं।

उनको लगता हैं, घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं। एक टॉमी और दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह। घूमने के दौरान कर्नल स्वामी गैर हाजिर मिलते हैं, तो जसंवत सिंह जब तेरहवें दिन उनसे मिलने उनके घर पहुँचते हैं तब वहाँ उनकी पड़ोसी मिसेज श्रीवास्तव से कर्नल स्वामी के बारे में जानकर उनके पैरो तले की जमीन खिसक जाती है। कर्नल स्वामी का तो बारह दिन पहले ही सीढ़ियों से उतरते समय दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया था। उनके परिवार के बारे में पुछने पर सुनने को मिला, 'वहाँ न तो गिलिगडु रहती थी, न उनकी बहु, न बेटे।' कर्नल स्वामी अपने जिस बेटे श्रीनारायण की हरदम प्रशंसा करते रहते थे,

वास्तव में उसी बेटे ने पैसों लालच में उनकी पिटाई की थी और जिसे रोकने के लिए पड़ोसियों को पुलिस की मदद लेनी पड़ी थी। अपनी जिस नृत्यांगना बहू अनुश्री की प्रशंसा में उनकी जबान थकती नहीं थी, वास्तव में वह अपनी डेढ़ साल की जुड़वा बेटियों को छोड़कर अपने नृत्य गुरू के घर जा बैठी थी। अपनी जो पोतियों गिलिगडु अर्थात कुमुदिनी कात्यायनी की प्यार भरी शरारतों का वे हर दम बखान करते रहते थे वास्तव में उन्हें हैदराबाद के होस्टल में भेजा गया है और उनसे मिलने के लिए कर्नल को बिना किसी रिश्तेदार को खबर किए चोरी-छिपे जाना पड़ता था। उनके जीवन को लेकर मिसेज श्रीवास्तव कहती है कि, -"ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई औलाद नहीं।"[128] कर्नल स्वामी के जीवन की त्रासदी पूर्ण दास्तान सुनकर कानपुर लौट जाने का निश्चय करते हैं तथा अपनी वसीयत बदलकर कानपुर की संपत्ति सुनगुनिया (जो उनकी नौकरानी है) के नाम करने का निर्णय लेते हैं। यही नहीं वसीयत में अपने दाह संस्कार का अधिकार भी वे अपने बेटे नरेंद्र को न देकर सुनगुनिया के बेटे अभिषेक आसरे को देंगे ऐसे लिखते हैं।

'गिलिगडु' उपन्यास में आज के महानगरीय जीवन में वृद्धों की त्रासदी को चित्रित किया गया है। वास्तव में जनरेशन गैप जीवन को कष्टकर और दु:खदायी बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ता। वर्तमान पीढ़ी संवेदनाओं से अधिक महत्व तकनीकी विकास एवं वास्तविकता को देती है। वे केवल अपने एकल परिवार के साथ रहना पसंद करते हैं। मजबूरन संपत्ति के लालच में बुजुर्गों को परिवार के साथ रखते हैं पर किसी टॉमी से बदतर हालात में। कह सकते हैं कि, 'गिलिगडु' बदलते पारिवारिक आयाम पर आधारित आधुनिक दौर का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

यह एक तरह का भारतीय संस्कृति पर हमला ही है। धीमे जहर की भाँति वैश्विक सत्ताएँ अपने उत्पाद बेचने हेतु विविध माध्यमों से भारतीय समाज एवं संस्कृति को तोड़ना चाह रहे हैं। संयुक्त परिवार को तोड़ने पर एक से चार-पाँच परिवार बनते जा रहे हैं और उत्पाद की खपत बढ़ रही है। 'गिलिगडु' के बारें में बताते हुए चित्रा जी कहती है, "'गिलिगडु' तेरह दिन की कहानी है और इस शिल्प को मैंने उपन्यास में प्रतिकात्मक रुप में अपनाया है। एक संपूर्ण जीवन को उसके स्पंदहीन होते ही जैसे हम तेरहवीं कर उसके वजुद को भौतिक जगत से विदाई देते हैं, ठीक उसी प्रकार वर्तमान की उपभोगतावादी संस्कृति के चलते अनुपयोगी

मान हमने अपने बुजुर्गों को उनके जीवित रहते घर से निकाल देकर उन्हें वृद्धाश्रम में रहने के लिए विवश कर मानवीय संवेदना और मूल्यों की तेरहवीं कर दी है। ”[129]

इस तरह हम देखते हैं कि चित्रा जी ने ‘गिलिगडु’ उपन्यास का आत्मकथात्मक शैली में अभिनव शिल्प से रचना की। इसमें जसवंत सिंह कर्नल स्वामी का तेरह दिनों तक इंतजार किया। एक-एक अध्याय एक-एक दिवस के समान है। लघु आकार के बावजूद इसमें वर्तमान की ज्वलंत समस्या को चित्रित किया गया है। यह एक प्रतीकात्मक उपन्यास है। फंतासी शैली इस उपन्यास की विशेषता है। सब कर्नल की कहानी में घुल मिल जाते हैं पर यथार्थ का पता चलने पर दु :खी होते हैं। कथा के भीतर दूसरी कथा का निर्माण कर इस उपन्यास को सबसे ज्यादा प्रभावात्मक बनाया गया है। यह समकालीन उपन्यासों में निःसंदेह नया प्रयोग है। इसका अंत भी बेजोड़ है। परंपरावादी बाबू जसवंतसिंह परंपरा को तोड़ने का साहस प्रकट करते हैं और अभी तक के अभिशप्त जीवन से मुक्ति पाकर सुखद जीवन का रास्ता खोलते हैं। यहां उपन्यासकार यह संकेत करना चाहती है कि मनुष्य के सामने जो विकल्प है उसे चुनकर उन्हें अपनी जिंदगी के रास्ते को सुलभ बनना चाहिए। परंपरा एवं रूढ़ियों पर बिलखना नहीं, उन्हें तोड़कर जीवन को जीना है। ‘गिलिगडु’ निःसंदेह जीने यह स्फूर्ति प्रदान करानेवाला उपन्यास है।

1.2.11.4 पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा

चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास में एक विशिष्ट विषय को केंद्र बिंदु बनाकर बहुत ही संवेदनात्मक पद्धति से लिखा है, जिसमें समाज में दुर्लक्षित किन्नरों के भावजगत पर प्रकाश डाला है। इस उपन्यास को पढ़कर मनुष्य के मन में किन्नरों के प्रति जो मलिन प्रतिमा है वह साफ होने में मदद मिलती है एवं उनके प्रति जो घृणा एवं भय है, वह भी दूर होता है। किन्नरों के प्रति मन के कोने कहीं ना कहीं मानवता एवं सहानुभूति के भाव जागृत होते हैं। चित्रा जी को ‘पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा’ के लिए 2018 प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। उनकी इस रचना को काफी सराहा गया।

चित्राजी भी पहले किन्नरों के प्रति उपेक्षा भाव ही रखती थी। वे कहती हैं-“पहले मैं भी किन्नरों को सामान्य नजरिए से ही देखती थी। मसलन अन्य लोगों की तरह जब ये ट्रेन, बस, बाजार में पैसे मांगने आते थे तो मना कर देती थी। उनके प्रति किसी तरह की संवेदना नहीं थी। एक दिन नई दिल्ली रेल्वे स्टेशन पर ट्रेन

में एक किन्नर चढ़ा जिसका नाम नरोत्तम था। बातचीत में जब उसने अपनी कहानी बताई। तो मेरी आंखें नम हो गई और मेरा नजरिया भी बदल गया।"[130]

समाज में स्त्री एवं दलित ये दोनों वंचित होते थे पर उन्हें घर से निकाला नहीं जाता था, पर किन्नरों का यथार्थ कुछ और ही है। उन्हें घरवाले ही घर से निकाल बाहर कर देते हैं ताकि उनपर कोई कलंक ना लगे। उनके परिवार के अन्य लड़के-लड़कियों के विवाह में कोई रूकावट ना आए। कई जगह तो उन्हें किन्नरों को सौंप दिया जाता है, कहीं उनकी मृत्यु की खबर फैलाकर गुमनाम जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है। उन्हें तालियाँ पीटकर भीख माँगना पड़ता है। उन्हें अपनी सुरक्षा के लिए लोगों के मन में भय के भाव पैदा करना पड़ता है। उनका कोई-ना-कोई गॉड फादर होता है। जिसे वे 'गुरु माँ' या 'सरदार' मानते हैं। उनका संगठन भी बहुत प्रबल होता है। अधिकतर सामान्य नागरिक उनके डर से ही पैसे देकर पिंड छुड़ा लेते हैं। संप्रति कुछ लोग उनको दान देने में आगे बढ़ रहे है जिसके पीछे भावना यह है कि उनकी दुआ बहुत फलती है। कई महानगरों में 'बधावा' मांगने का चलन भी है। जब किसी के घर बच्चे के जन्म का मंगल प्रसंग हो, चाहे विवाह हो किन्नर आकर अपना 'बधावा' अधिकार पूर्वक माँगते हैं और घर वाला भी खुशी-खुशी शगुन के रुप में उन्हें भेंट देता है। इतना होने के बावजूद भी उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिलती। वर्तमान में कुछ बिरले किन्नर राजनीति में पार्षद, विधायक या सांसद के पद तक पहुंच रहें है। अभी-अभी हमने देखा है कि मंजम्मा जोगती को पद्मश्री पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

अशिक्षा एवं समाज से कट जाने के कारण अधिकतर किन्नर राह भटक जाते हैं। गुंडागर्दी, दादागिरी, नशा आदि बुरी आदतें उन में पाई जाती हैं पर चित्रा जी ने किन्नरों को 'वंचितों से भी वंचित' माना है। 2011 की जनगणना में जब किन्नरों के लिए 'मेल', 'फिमेल' छोड़ 'अदर्श' कॉलम प्रचलित किया तब उन्होंने इसका काफी विरोध किया। वे रेडियो टॉकीज राइटर्स जर्नी में दिए गए इंटरव्यू में बताती है- "सन 2011 की जनगणना में जब जीरो अदर्स कॉलम में इन्हें रखा गया तो मैं स्तब्ध रह गई। आरक्षण सहित अन्य मुद्दे सामने आने पर उपन्यास लिखने का निर्णय लिया।"[131]

चित्राजी ने 'पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपरा' में विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली उर्फ दिकरा के माध्यम से किन्नरों की त्रासदी को यथार्थ पूर्वक चित्रित किया है। वंदना बेन एवं हरेद्र भाई के तीन बेटे हैं- सिद्धार्थ सबसे बड़ा जिसका विवाह हो चूका है, उसकी पत्नी का नाम सेजल है। विनोद मंझला है। पाठशाला में अध्ययन

करनेवाला मेधावी छात्र है। पाठशाला के सहयोगियों में हर क्षेत्र में आगे रहने वाला है विनोद उसकी अभिलाषा गणितज्ञ बनने की है। छोटा भाई मंजुल अभी पढ़ता है। विनोद को उसकी माँ से बहुत लगाव है। विनोद जननांग विकलांगता का शिकार है। बचपन से ही उसे लिंग नहीं है। “यह उपन्यास मुंबई में रहने वाले परिवार के बच्चे विनोद की कहानी है जो जन्म से ही जननांग की विकृति का शिकार है। ...माँ वन्दना उसकी शारीरिक विकृति के कारण ही उसके प्रति कुछ अधिक मोहविष्ट है। कुछ बड़ा होने पर साथ के बच्चों के साथ खेलने पर उसे भी अपनी इस शारीरिक न्यूनता का बोध होता है। एक दिन ऐसे ही बच्चों के साथ खेलकर लौटने के बाद वह माँ से पूछता है -‘मेरे नुन्नू क्यों नहीं है बा ?’ यह सवाल ही वस्तुतः इस उपन्यास का केन्द्रीय सवाल है। जो विनोद उर्फ बिमली के माध्यम से इस उपन्यास के साथ पूरी सामाजिक संरचना के आगे अपने भयावह आकार में खड़ा होकर बढ़ता जाता है।”[132] माता-पिता इसी कारण परेशान एवं दुःखी रहते थे कि आगे चलकर उसका क्या होगा ? एक बार तो किन्नरों को भनक लग गई थी कि इनके घर एक बालक में जननांग विकलांगता है तो कुछ किन्नर घर में आकर विनोद को देखने की मांग करने लगे। उसका जननांग बताने पर ही वापस जाएंगे ऐसा कहा गया। तब जबरन मंजुल को सामने कर उसका जननांग देखकर असमाधान प्रकट करते हुए वे कहकर गए कि वो वाला तो उम्र में अधिक है, अभी तो जा रहे है पर वापस आएंगे।

“उपन्यास इस बात को प्रबलता से रेखांकित करता है कि हमारा समाज जब तक यौन केन्द्रित बना रहेगा, तब तक यह समस्या बनी रहेगी। यौन केन्द्रित समाज से मुक्ति ही इस उपन्यास का स्वप्न है और इसका केंद्रिय कथ्य भी।”[133]

यह उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखा होने के बावजूद कौतूहल एवं उत्साह वर्धक है। पाठक इसमें रममान होकर भावनाओं में बह जाता है। पत्रों का आदान-प्रदान माँ वंदना बेन एवं विनोद में होता है। देखने में तो केवल विनोद के पत्र आते हैं पर वंदना बेन के जवाबों का उल्लेख विनोद करता रहता है। विनोद और माँ वंदना बेन में बहुत अधिक लगाव है। किशोर वयीन विनोद हर बात, हर राज अपनी माँ अर्थात बा को बताए बिना नहीं रहता, यहाँ तक की पड़ोस में रहने वाली ज्योत्सना, जिससे वह बहुत प्यार करता था, उसका जिक्र भी नहीं छिपाता। उसे केवल ‘बा’ ही नहीं बल्कि अपने पिताजी, भाइयों एवं भाभी की भी बहुत याद आती है, उन सब के लिए वह चिंतित रहता है।

एक दिन माता-पिता, भाई विनोद को दिल पर पत्थर रख किन्नरों को सौंप देते हैं और समाज एवं

पाठशाला में बता देते हैं कि एक सड़क दुर्घटना में विनोद की मृत्यु हो गई। वंदना बेन को छोड़ सबके लिए विनोद मृत है। यहाँ तक कि सिद्धार्थ उसकी माँ के कमरे में लगी तस्वीर तक निकालने लगता है क्योंकि उसकी पत्नी गर्भवती है बार-बार फोटो पर नजर पड़ने पर कही जननांग दोषी पुत्र सेजल को ना ठहर जाए। वह सोनोग्राफी करवा कर अपने होने वाले बच्चे का लिंग जाँचता है। उसे उस घर से घृणा हो जाती है। वह माता-पिता को अकेला छोड़ अलग रहता है, जिससे विनोद बहुत दुःखी है।

विनोद एक दो बार फोन करता है पर अन्य सदस्यों के आने से 'बा' उससे बात करने में असमर्थता दर्शाती है। विनोद अब मुंबई से दिल्ली सरदार के किन्नरों के गुट का सदस्य है। वह माँ से आग्रह कर पोस्ट बॉक्स लेने प्रवृत्त करता है जिसका नंबर 203 मिलता है। इसी पोस्ट बॉक्स से माँ मंदिर जाते समय चिट्ठी लेकर पढ़ती है।

विनोद में स्त्री प्रवृत्ति नहीं है, इसलिए वह किन्नरों के गुट की लाख जबरदस्ती और प्रताड़ना के बावजूद उनके अनुकूल नहीं हो पाता और मेहनत करके जीता है। वह सवेरे गाड़ियां धोने का काम करता है। वहीं पर पूनम नाम की किन्नर भी रहती है। वह विनोद का खयाल रखती है। पूनम जोशी बहुत सुंदर है, सुंदर नृत्य भी करती है। निरक्षर है पर दिल की नेक है। वह विनोद को सरदार से नम्र एवं मिलकर रहने कहती है। उसे चाय-नाश्ता बनाकर देती है। विनोद को कम्प्यूटर भी सीखना है एवं अपनी आगे की पढ़ाई भी करनी है। वह इग्नू में प्रवेश लेता है। उसकी पढ़ाई एवं कम्प्यूटर सीखने की छटपटाहट देख पूनम विधायक जी के घर पोते के जन्म पर 'बधावा' नाचने गई। तब उनसे बात करती है। वे उसे मिलने बुलाते है।

विधायक जी प्रतिदिन 'जनता-दरबार' लगाते हैं सो विनोद जब मिलने गया तब भी जनता दरबार ही लगा था। उन्होंने विनोद का स्नेह से वार्तालाप किया। विनोद ने अपनी अंग्रेजी भाषा की झलक भी वहाँ दिखाई जिससे विधायक जी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने उसे ढाढ़स बंधाते हुए कहा- "जिल्लत की जिंदगी तू नहीं जीना चाहता, पुत्तर ! बुलंद हौसला है तेरा। तेरे जज्बे को सलाम।"[134] वे अपना अतीत बताकर विनोद की भावनाओं को जागृत करते हैं। विनोद के मन में उनके प्रति आदर और स्नेह के भाव जागृत हो जाते हैं। विधायकजी उसकी योग्यता देखकर उसे कम्प्यूटर क्लास में दाखिला दिलाते हैं। साथ ही अपने पी.ए तिवारी को आदेश भी देते हैं कि सप्ताह भर में विनोद का कम्प्यूटर क्लास में भर्ती हो जाए। वे कहते हैं – "तिवारी जी, हम जनता के सेवक हैं सेवक। जनता ऊंची-नीची नहीं होती। न अन्धी, न लूली-लंगडी, न छूत-अछूत, न किन्नर। जनता, जनता

है। सब बराबर हैं हमारी नजर में। समझे।"[135]

किन्नर शब्द सुनकर विनोद की अवमानना सुलग उठती है। जिसका जिक्र वह 'बा' को लिखे पत्र में करता है – "बा, बा, बा…तर्क है उसका। सुनने में किन्नर शब्द भले ही गाली न लगे मगर अपने निहितार्थ में वह उतना ही क्रूर एवं मर्मान्तक है, जितना हिजड़ा। किन्नर की सफेदपोशी में लिपटा चला आता है, उसकी ध्वन्यान्मकता में रचा-बसा। कोई भूले तो कैसे भूले ?"[136]

पूनम जोशी भी प्रसन्न होती है कि विधायकजी बिमली से अच्छे से मिलें। कम्प्यूटर कोर्स के साथ-साथ ही वह इग्नू से आगे की पढ़ाई करता है। विधायक जी की कृपा से वह कम्प्यूटर सीखने के बाद प्रतिमाह 7000 के हिसाब से उसे विधायक जी नौकरी भी देने वाले है। विनोद अधिकारपूर्वक माँ से झगडता भी है चिट्ठियों में कि उसे घर से निकालने में उनका भी हाथ है। वह अन्य किन्नरों से नाराजगी प्रकट करते हुए पत्र में कहता है, "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आंख नहीं हो। तुम्हारे हाथ-पैर नहीं हैं। हैं, हैं, हैं, सब वैसा हीं है, जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने-देने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं ! सोचो। बच्चे तुम पैदा नहीं कर सकते मगर पिता नहीं बन सकते, यह किसने नहीं समझने दिया तुम्हें?...मनोरंजन कि दक्षिणा पर नहीं। हिकारत की दक्षिणा जहर है, जहर। तुम्हें मारने का जहर।"[137]

विनोद अकेला है किन्नर होकर उनके रंग में रंग नहीं पा रहा था बल्कि उन्हें अपने रंग में ढालने की प्रयास कर रहा था। पूनम जोशी पर उसका खासा प्रभाव पड़ा था। उसके स्वभाव में कुछ परिवर्तन आए। वह लिखने-पढ़ने की इच्छा भी रखकर बिमली अर्थात विनोद से सीख रही थी।

किन्नरों की विशेषता थी उनकी संघटन शक्ति। वे गुरु परंपरा के अधीन रहकर दीक्षित होकर एकता को बनाए रखते थे। वे नए जननांग विकलांगों की टोह में रहते थे ताकि उनकी संख्या बढ़ती रहें। विनोद ने पाया कि वे भीतर से खोखले और डरे हुए होते हैं। इसलिए ये चाहते हैं कि जिस विशेष परिभाषा में उन्हें मंडित किया गया है, उसी रुप में ही सही, उनकी भी एक संगठित उपस्थिति समाज में बने। उनकी ताकत में इजाफा हो। वे भले ही भीख न मांगते हो। पर उसने भी एक अंहभावना का पुट दिखाई देता है। कभी-कभी कहीं कोई बहस हो जाए तो इनकी गर्वोक्ति भी सूनने को मिलती है "तुम दस आए नो हम सौ जमा होंगे।" अर्थात इनकी संगठन शक्ति एवं एकता ही इनका सुरक्षा कवच है।

विनोद कम्प्यूटर कक्षा जाता है। सरदार उससे उतना खुश नहीं क्योंकि वह किन्नरों के किसी गुणधर्म को प्रकट नहीं करता है, भीख मांगने, तालियाँ बजाकर नहीं घूमता है पर सरदार उसके मामले में कुछ उदार भी है, जिसका एक कारण विधायक जी विनोद पर बनी कृपादृष्टि। सरदार अनेक अनैतिक काम भी करता है। कभी नशाखोरी, कभी किसी की सुपारी लेने में दलाली, तो कभी-कभी तो ड्रग्स का व्यापार, जिसमें वह एक बार रंगे हाथों पुलिस के हत्थे चढ़कर जेल गया था। विधायक के साथ ऐसे लोंगों की जमती है क्योंकि उन्हें राजनीति में सभी को मोहरा बनाना पडता है। पूनम विनोद, सरदार और विधायक जी तीनों के बीच समन्वय बनाए रखती है ताकि विनोद को कोई कष्ट ना हो। पूनम दिल की साफ एवं निष्पाप थी।

इधर सिद्धार्थ अलग रहता है। 'बा' बहुत अरमानों से सेजल की जचगी की प्रतीक्षा कर रही है। पर दोनों अपने आप में रहें हैं। सिद्धार्थ को माता-पिता की जगह ससुराल वाले अधिक पसंद है। एक दिन बा और मंजुल बड़े अरमानों से पालना खरीदकर बिना बताए ही उनके फ्लैट पर जाकर उन्हें चकित करने का सोचते हैं पर सिद्धार्थ एवं सेजल के साथ सेजल के माताजी है और तीनों भी अधिक खुशी प्रकट नहीं करते। पालना स्टोर रूम में रख दिया जाता है। उन्हें सेजल की माँ यह बताकर और एक झटका देती है कि कल सवेरे सात बजे हम सेजल को लेकर बलसाड़ जा रहे हैं जचगी के लिए। बा के सारे अरमानों पर पानी फिर जाता है वह दुःखी हो घर लौटती है। विनोद भी नानू बाबा के आगमन की प्रतीक्षा में आतुर है। विनोद फोन करता है पता चलता है लड़का हुआ है। बा भी बलसाड में है। विनोद की खुशी का ठिकाना नहीं रहता कि वह चाचा बन गया।

विनोद को विधायक जी नौकरी पर रख लेते हैं। उसे रहने के लिए तलघर में एक कमरा भी देते है। कार्यालय एवं निवास एक ही जगह होने के कारण विनोद को सुविधा होती है। विनोद के मन सरदार के प्रति घृणा के भाव हैं क्योंकि वह जानता है-"असामाजिक तत्वों के हाथ की कठपुतली बनने में जितनी भूमिका किन्नरों के संदर्भ में सामाजिक बहिष्कार-तिरस्कार की रही है, उससे कम उनके पथभ्रष्ट निरंकुश सरदारों और गुरुओं की नहीं।"[138]

फिर विनोद सरदार के बारे में उलटा सीधा कहता है उसके फर्जी वोट डालने की बातें करता है। आधार कार्ड पर बात करता है जिसमें मेल-1, फिमेल-2, 0-अदर से उसका विरोध है। वह किन्नरों के संदर्भ में कहता है-"जरूरत है सोच बदलने की। संवेदनशील बनाने की। सोच बदलेगी, तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कलंक मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें घूर में नहीं फेंकेंगे। ट्रांसजेंडर के खांचे में

नहीं ढकेलेंगे। यह पहचान जब उन्हें किन्नरों के रूप में जीने नहीं दे रही समाज में तो सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद जाने देगी? किन्नरों के रूप में समाज में उन्हें उस खांचे में सदियों पूर्व ढकेल कर रखा हुआ हैं। उसी रूप में उन्हें आरक्षित करके सरकार अभिभावकों को अपराधमुक्त कर खुली छूट दे रही है। पैदा होते ही वह लिंग दोषी बच्चों को ट्रांसजेंडर जमात के हवाले कर दें। छुट्टी पा ले अपनी जिम्मेदारी से।"[139]

तिवारी जी पूनम और विनोद को बताते हैं कि अगले सप्ताह विधायक जी का पारिवारिक कार्यक्रम का आयोजन होने वाला है। विदेश से उनका भतीजा आ रहा है। उसका जन्मदिवस भी है। उसके उपलक्ष में वह 'गेट टुगेदर' भी करना चाहता है। उसके पुराने साथी भी जुड़ेंगे। विधायक जी की इच्छा है कि डीजे तो रहेगा पर भारतीय संस्कृति की झलक एवं पहचान बताता शास्त्रीय नृत्य-गायन का भी कार्यक्रम हो। कलाकारों को खर्च दिया जाएगा। पूनम को वे कत्थक नृत्यांगना के रूप में आमंत्रित करते हैं। वह ग्यारह हजार फीस देने तैयार हो जाते हैं।

तिवारी जोश में उससे किन्नरों के अधिकारों के प्रति उकसाते हैं, ताकि उसे जोश भर जाए। इस मेधावी किन्नर के सहारे उसे राजनीतिक मुहरा बनाकर विधायक जी नया खेल खेलने जा रहे थे। इसी मकसद के लिए विधायक जी ने उसे सरदार के अड्डे से उठाकर अपने कार्यालय में पनाह दी थी। उसके मन के असंतोष एवं जोश का वे पूरा-पूरा लाभ उठाकर किन्नर का वोट बैंक अपनी पार्टी की झोली में डालना चाहते थे। तिवारी जी आगे फिर कहते हैं कि हमारा मूल मकसद किन्नरों को आरक्षण का है। चारों ओर से यह मांग उठेगी तो सरकार भी आरक्षण का सोचेगी। हम खोखले आक्रोश को सोशल मीडिया से जोड़ देंगे। वे कहते हैं विनोद का भी यही सपना है कि किन्नरों का भला है। तब विनोद असमंजस में पड़ कर पुछता है मैं न आपकी पार्टी का सदस्य हूं, न कि सामाजिक कार्यकर्ता, न नेता, मैं यह मुहिम कैसे चला सकता हूं। तब उसकी आंतरिक शक्ति जागृत करते हुए विनोद से कहता है-"तुम्ही हो सकते हो, तुम्हीं विनोद। विवेकपूर्ण सोच है तुम्हारे पास, सामाजिक अंतर्विरोध को समझते हो। असन्तोष गहरे कूट-कूटकर भरा हुआ है तुम्हारे भीतर।...बिरादरी की दुर्दशा से खिन्न तुम स्वयं चाहते हो बिरादरी के भीतर आत्मनिर्भरता का स्वाभिमान जगे। कैसे पहुंचाओगे उन सभी तक यह संदेश ? मंच मिल रहा है तो उपयोग करो। लपक लो अवसर। बुद्धिमानी इसी में है। विनोद जिम्मेदारी उठाने से पहले शिक्षा पूरी करने के छटपटाहट सामने करता है। तब तिवारी जी उसे खुदगर्ज-स्वार्थी करार देते हैं कि स्वयं की पढ़ाई के खातिर समस्त किन्नर समाज को वह कुएं का मेंढक बने रहने के लिए विवश कर रहा है।

उन्हें उसी दलदल में रखना चाहता है। उसे उकसाया जाता है कि दलितों के लिए आम्बेडकर पैदा हो सकता है, तो किन्नरों के लिए विनोद क्यों नहीं पैदा हो सकता है। फिर वह किन्नर के रूप में अपनी पहचान छिपाना चाहने की बात कहकर उस पर प्रहार करते हैं। आज विधायक जी के माध्यम से तिवारी ने विनोद को किन्नरों की रक्षा में प्रस्तुत करने का बीड़ा उठा लिया था।

विनोद पहचान छिपाने की बात पर क्रोधित हो कहता है पहचान छिपाना तो सरदार तुलसीबाई के ठिकाने पर नहीं मिलता। मैं सामान्य मनुष्य की भाँति उन्हीं के बीच सिर उठाकर जीना चाहता हूँ। हां सार्वजनिक मंच पर बोलने की कूवत मुझमें हैं या नहीं इसी कारण झिझक रहा था। पहले से पता होता तो अभ्यास कर लेता।

चंड़ीगढ़ का सबसे बड़ा कामुनिटी हॉल विनोद के नाम से बुक है। स्थानीय एवं राष्ट्रीय प्रेस आमंत्रित है। इलेक्ट्रानिक मीडिया और प्रिंट मीडिया दोनों उपस्थित रहने वाली है। सोशियल मीडिया तो खूब रंग लाएगी। इस किन्नर सभा के सभापति, मुख्य अतिथि और बीज वक्ता विनोद ही है।

विनोद बा का स्मरण कर मन ही मन उनके चरण स्पर्श कर खचाखच भरे हॉल में प्रवेश करता है। वहाँ उसे कई मासूम बच्चे बैठे दिखाई दिए। सभी ने तालियां पीटकर विनोद का स्वागत किया। विनोद ने सभी को अपने वश में कर लिया अपना विषय एक किन्नर के रूप में दिया। विनोद, बिन्नी, विमली के रूप में। साथ ही उससे चौथे स्तंभ को अंग्रेजी में संबोधित किया और कहा कि किन्नरों के आचरण और हावभावों को सुर्खी न बनाए, उसे मानवीय परिप्रेक्ष्य में सहानुभूतिपूर्वक उनके तिरस्कृत जीवन की चुनौतियों को समझने की कोशिश भी करें। प्रेस को चाहिए कि वे किन्नरों की पीड़ा को, वंदना को यातना को संवेदनशील हृदय की अपेक्षाओं को समझे। तत्पश्चात उसने हिन्दी में बोलना प्रारंभ किया। उसने किन्नरों का दर्द अपनी वाणी में समेटते हुए कहा कि इन्होंने भी माँ की कोख से ही जन्म लिया है। इन्हें माँ के दूध से, दोस्तों सहपाठियों से, पढ़ाई से वंचित कर दिया गया है। ये भी डॉक्टर-इंजीनियर बनना चाहते थे। आत्मनिर्भर होकर घर-परिवार की जिम्मेदारी में हाथ-बाँटना चाहते थे, माता-पिता की सेवा, बहन की राखी, तीज-त्यौहार करना चाहते थे। पर मनुष्य होकर भी वे मनुष्य कर्म और सामाजिकता से बहिष्कृत कर दिए गए। उन्हें अपशकुन एवं कलंक माना गया। इस सबका एकमात्र कारण उनकी जननांग विकलांगता है। वे लिंग दोषी हैं संतान पैदा नहीं कर सकते। संभोग नहीं कर सकते। कई कैमरों में विनोद की तस्वीरें खींची जा रही थी। बच्चे, बूढ़े, जवान किन्नर सभी की रो रहे थे। प्रेस

की आंखें नम हो गई थी।

विनोद ने कहा कि हम किन्नरों की अगली सभा दिल्ली में करेंगे, अपनी मांगो को लेकर। जन्तर-मंतर में सभा होगी। मैं अनशन पर बैठूंगा। आप सभी की राय ली जाएगी, समस्याएं सुनी जाएंगी। वह भावावेश में अथवा जानबूझकर आरक्षण का मुद्दा छोड़ घर वापसी पर जोर देता है। वह ससम्मान घर वापसी चाहता है। वह सरकार से अपील करता है कि लिंग दोषी बिरादरी की घर वापसी सुनिश्चित करें। कानून बनाएं। अभिभावकों को बाध्य करें कि लिंग दोषी बालकों को समाज से बहिष्कृत ना करें बल्कि अपने साथ रखें। बहिष्कृत किन्नर जिस भी उम्र के पड़ाव में हो उन्हें अपने घर में रखें। वह सभी से अपील करता है अपने मन में झांकने की। अपनी बाल्यावस्था को याद करने की उसके भीतर की रुदन को सुनने की। वह किन्नरों की समस्याओं एवं दु:खों को सबके सम्मुख रखता है। वह किन्नरों की दैन्यावस्था को प्रकट करते हुए कहता है कि मनुष्य तुम्हें इनसान नहीं समझते। आपके जीने-मरने से उन्हें कोई अंतर नहीं पड़ता। अंधेरे के बावजूद भी वे आपकी मैयत को कंधा देने नहीं पहुंचते। आँसू नहीं बहाते। जिनके नवजात शिशुओं को ढूंढकर नाच-गाने आशीष देने तुम पहुँचते हो उन्हीं के घर दूसरे रोज पहुंचते पर घर का दरवाजा बंद कर दिया जाता है। वह उन्हें कहता है इस अपमान को झेलने से इनकार कर दीजिए। इससे अच्छा है परिश्रम करें, कुली बनिए। मिस्त्री बनिए, मजदूरी कीजिए। तुम्हें भी परिश्रम की कमाई की रोटी की मिठास का पता चलेगा। सारा सभागृह सुबक रहा था। विनोद के भाषण से सभी को प्रभावित कर दिया। प्रेस ने विनोद के साथ किन्नरों को भी घेर लिया। विनोद ने कल प्रेस कांफ्रेंस रखने की बात रखी।

तिवारी जी चुपचाप सुनते रहें और आवेशपूर्ण विनोद बोलता चला गया। उसने कहा किन्नरों के हित में सरकार को हक देना पड़ेगा, भीख नहीं। वह कहता है कि किन्नरों को उनके वर्गानुसार आरक्षण देना चाहिए अनुसूचित जनजाति हो तो अनुसूचित में रखा जाए। पिछड़ा वर्ग और विकलांगों के भाँति उनका वर्गीकरण करना चाहिए। वह कहता है कि ये सब समाज के घोर वंचित वर्ग है। लिंग दोषी नहीं। बाकायदा स्त्री-पुरुष है। वह कहता है -"लिंग दोषी सभी लिंग से स्त्री-पुरुष नहीं है तो क्या मनुष्य नहीं है ? पेशाब भी करते है, पाखाने भी जाते हैं। हां, उन सबकी तरह वीर्य नहीं उगल सकते। मैथुन नहीं कर सकते। इसका मतलब यह नहीं कि ये मनुष्य नहीं है ?"[140] प्रेस कांफ्रेंस भोजन के बाद समाप्त होती है।

चंडीगढ़ पहुंचते ही जनता दरबार में तिवारी जी से मुलाकात हुई। विनोद गड़बड़ में अपने कमरे

में जाकर सारे काम निपटाने की सोच रहा था पर तिवारी जी ने कंधा थपथपाते हुए कहा जिस गाड़ी में आए उसी में होली फैमिली हास्पिटल चले जाओ। पास भी दिया ताकि पेशंट से मिलना संभव हो। विधायक विधान सभा गए है यह जानकारी भी दे दी। विनोद को लगा बीजी तबीयत खराब हो पर तिवारी जी ने पूनम आई. सी. यू. में होने की बात कही। अस्पताल में पहुंचते ही अधमरी अवस्था में पड़ी पूनम की हालत गंभीर होने पर विधायक जी ने यहाँ भरती करवाया। अभी कुछ ही देर में ऑपरेशन होगा कहकर सरदार निकल गया। विनोद ने पूनम के माथे को सहलाया। वात्सल्य भाव से छूते हुए पुछा यह हाल कैसे हुआ। अधमुंदी आँखों से पूनम के होंठ हिले कल शाम डांस फार्म हाउस में खत्म होने...इतना ही कह पाई नर्स ने विनोद को बाहर कर दिया ताकि वह ऑपरेशन की तैयारी कर सके।

सायरा, चंद्रा और मंजू विनोद को मिले। चंद्रा विनोद को लेकर कैंटीन आई सारी हकीकत बयान की। किस तरह विधायक के भतीजे और उसके दोस्तों ने पूनम के साथ बर्बरता पूर्वक पाश्विक व्यवहार किया, जिसके कारण उसकी इतनी बुरी हालत हुई। कार्यक्रम समाप्त होने के बाद रात्रिभोज था। पूनम फार्म हाउस के कमरे में पोशाक बदलने गई। उसके पीछे ही विधायक जी का भतीजा और उसके चार दोस्त जबरन कमरे से घुस आए और हिजड़ों का गुप्तांग देखना है ऐसा कहकर जबरदस्ती करने लगे, जितना चाहे पैसा देने की बात भी कही। पाँच हैवान और नाजुक सुकुमारी पूनम। छटपटाती, लात-घूंसों से परे धकेलती पूनम ने स्वयं को मुक्त करने की कोशिश की। पर वहशी-दरिंदों ने उसे उठाकर झुलाते हुए उसे बेरहमी से फर्श पर चित्त पटक दिया। मुंह में चुनरी ठूंस दी। जननांग की तस्वीरें खींची गई। जननांग के साथ छुरी-कांटे को लेकर विक्षिप्तता पूर्ण व्यवहार किया गया। पाँचों पर हैवानियत छाई हुई थी। पांचों ने अनैतिकता पूर्ण हवस की आग बुझाई। एक हिजड़े के साथ बलात्कार भी नहीं कहा जा सकता पर जो कुछ हुआ वह हैवानियत को शर्मिंदा करने वाली घटना थी। पूनम का देह और सारा कमरा खून से सना पड़ा था। विनोद उत्तेजित उठता है कहता है मेरे हाथ कट्टा होता तो भून डालता सबकों। फिर स्वयं को संयमित करता है-"लेकिन, पोर-पोर टूट जाने के बाद भी लड़ाई के मेरे हथियार जुदा हैं। इस लोमहर्षक घटना के बाद भी उन हथियारों से मेरा भरोसा उठा नहीं। आवेश और विवेक गुत्थमगुत्था हो रहे हैं मेरे भीतर।"[141]

विनोद को चंडीगढ़ में बिरादरी के लोगों के उत्साह ने आत्मविश्वास बढ़ा दिया था। अचानक चन्द्रा को याद आता है कि कल रात पूनम के फोन पर मुम्बई से विनोद की मां का फोन आया था। पूनम ने बताया था

कि तुम्हारी मां की तबीयत ठीक नहीं है। तुम्हें याद कर रहीं है। विनोद मुम्बई के नंबर पर फोन लगाता है पर केवल घंटी बजती है। वह बेसब्र एवं बेचैन है। उसके मन में कई विचार कुशंकाएं आ रही हैं। पूनम का ऑपरेशन सफल रहा। सबसे पहले सरदार अंदर गया फिर उसके आने के बाद विनोद। वह उसके कान में कहता है जल्दी अच्छी होने के लिए और साथ ही कहता है उसे हराने वालों को माफ नहीं किया जाएगा। पूनम भी हामी भरती है। चंद्रा से पूनम का फोन ले विनोद माँ के आए नंबर पर फोन करता है। बलसाड़ में सेजल भाभी की माँ से बात होती है। वह झुठा नाम बताकर बात करता है। पोता होने की खबर मिलती है। तनाव के कारण ब्लड प्रेशर की समस्या थी। डॉक्टर कह रहे थे कि हृदयघात हो सकता है। एंजियोग्राफी हेतु मंजूल और हरिन्द्र भाई उन्हें मुम्बई ले गए।

पूनम जोशी को विशेष कमरें में भेजा गया। विनोद उससे अकेले मिलने हेतु सीधे उसी कमरे में पहुँचा। पूनम होश में थी। नाम पुकारते ही उसने पुछा तुम अभी यही हो। अपनी बा के पास मुम्बई जाना था। हवाई जहाज से चले जाओ। विनोद सेजल की माताजी से उसके घर का पता लेता है। वह पूनम को बताता है कि पता मिल गया। पूनम उसके जाने के प्रबंध हेतु सत्रह हजार रुपए चंद्रा से लेकर ई टिकट बनवाने कहती है।

तिवारी पूनम को बातें करने से मना करते हैं। कहते है एक दो दिनों में चला जाएगा। थका हुआ भी है। फिर उसे भारतीय किन्नर आंदोलन का नेतृत्व भी करना है, फिर मुम्बई जाने पर मां को कुछ हो गया तो वह सूतक में अटक जाएगा। निजी क्षति से कहीं बड़ी है समुदाय के हितों की रक्षा। वे कहते हैं कि चंद्रा के पैसे क्यों फिजूल खर्च किए जाए। वे विनोद से भी नाराजगी जताते कहते हैं कि पूनम जीवन-मरण के प्रश्न से जूझ रही है। ऐसी नाजुक हालत में तुमने मां की बीमारी बताई ही क्यों चाहो तो विधायक जी यहीं से फोन कर मुम्बई के बड़े से बड़े अस्पताल में भर्ती करवा देंगे।

विनोद क्रोधित हो कहता है इलाज के लिए मेरे पिताजी सक्षम है। मैं आंदोलन से भी मुंह नहीं मोड़ना चाहता हूँ पर आस्तीन के विषधरों को मैं कभी क्षमा नहीं कर सकता। तभी सरदार प्रवेश करता है। पूनम कहती है मीटिंग आगे पीछे भी हो जाएगी पर मां फिर नहीं मिल सकती विनोद को जाने दो। सरदार विनोद का हवाई जहाज का टिकट बनवाकर लाता है। उसे तुरंत निकलने कहता है। तिवारी जी उसे एयरपोर्ट छोड़ने की व्यवस्था करते हैं। विनोद कशमकश में है एक तरफ बा है दूसरी ओर पूनम जोशी। विनोद माँ से मिलने के लिए निकलता है।

विनोद मुम्बई पहुँचता है पर अपनी बा को नहीं मिल पाता क्योंकि उसकी हत्या करके उसका शव मीठी नदी से मिलता है। अंडरवर्ल्ड से नाता जोड़ उसकी हत्या बताई जाती है। उधर उसी दिन उसकी मां की मृत्यु हो जाती है पर वह मरते समय अपना माफीनामा लिखकर सारे समाचार पत्रों को प्रकाशित करवाने कहती है विशेष तौर पर टाइम्स ऑफ इंडिया क्योंकि विनोद यह समाचारपत्र पढ़ना पसंद करता है। स्वर्गवासी मां उससे लोकापवाद के भय से किन्नर चम्पाबाई को सौंपकर दुर्घटना में मौत का नाटक रचने की माफी मांगती है। उसे घर लौटने भी कहती है। वह पिताजी ने तीनों भाइयों के नाम संपत्ति की रजिस्टर वसीयत की जानकारी देती है। मुखाग्नि तीनों पुत्र करने की बात करती है।

इस उपन्यास के संबंध में डॉ. अनु पाण्डेय का कहना है, “इस उपन्यास में कई ऐसे नवीन पहलू उभर कर सामने आते हैं जिससे लोगों में इस समुदाय के प्रति संवेदनशील होने की प्रेरणा मिलती है। फिर चाहे वह विनोद का कोसो दूर रहते हुए भी अपने परिवार, पिता, माँ और भाई आदि के लिए प्रेम हो या उनकी समस्याओं के प्रति चिंता। विनोद के एक-एक पत्र में लिखे गए उसके विचार, प्रत्युत्तर में उसकी माँ वंदना की मन:दशा, विनोद के प्रति उसका प्रेम, विनोद द्वारा की जाने वाली परित्यक्त किए जाने की उलाहना तो माँ द्वारा उसकी अपनी विवशता आदि उनके आत्मीय संबंधों की प्रगढ़ता को उजागर करते हैं।”[142]

किन्नरों के विषय को प्रकाशित करने के साथ ही चित्रा जी ने ओछी राजनीति पर भी अपनी लेखनी चलाई है। किस तरह विनोद को भविष्य में उपयोग में लिया जा सकता है इसकी योजना बनाकर उसे विधायक जी अपने यहां नौकरी देते हैं और एक किन्नर के रूप में उसे वोट बैंक के लिए किन्नर सम्मेलन में खड़े कर देते हैं बीज वक्ता बनाकर। सियासती लोगों का लक्ष्य केवल वोट बैंक तक ही हैं उन्हें मानवीय गरिमा दिलाने में नहीं है। पहले तो विनोद में संभावना देखकर उसे राजनीतिक आश्रय दिया जाता है पर जब वह आरक्षण की भीख न मांगकर उनमें स्वाभिमान जगाकर घर वापसी की बात करता है तो उसकी हत्या कर दी जाती है।

मधुरेश के अनुसार,“‘पोस्ट बॉक्स नं 203 नाला सोपारा’ का महत्व समाज की तीसरी सत्ता को उपेक्षा और तिरस्कार के अंधेरे से बाहर लाकर उसकी सहज मानवीय पहचान के लिए किये जाने वाले संघर्ष में निहित है और यही दरअसल वह मुकाम है जहाँ खड़े होकर चित्रा मुद्गल को गले लगाकर शाबासी दी जा सकती है।”[143]

चित्राजी इस उपन्यास का अंत दु:खात्मक तो किया ही है पर दारुण भी है। इस उपन्यास के माध्यम से चित्राजी ने किन्नरों के जीवनयथार्थ पर प्रकाश डालते हुए उनके प्रति समाज के मन में न केवल सहानुभूति बल्कि प्रतिष्ठा भी स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने यहाँ सिद्ध किया है कि वे केवल जननांग विकलांग है पर उनमें एक अदद मस्तिष्क कार्य करता है। वे भी मेधावी होते हैं। उनकी भी भावनाएँ सामान्य मनुष्य की तरह ही होती है और दलदल में रहते हुए भी वे मन से निश्चल एवं निष्पाप भी होते हैं। जहां पूनम जैसी नेक दिलो-दिमाग की किन्नर का वर्णन है वहीं सरदार के काले कारनामों का भी बखान किया गया है।

चित्रा मुद्गल का यह उपन्यास,"तृतीय प्रकृति अर्थात थर्ड जेंडर समुदाय की संवेदना को प्रस्तुत करता हुआ नए कलेवर की समुदाय की संवेदना के प्रस्तुत करता हुआ पत्राचार शैली में रचित एक बहुत गंभीर रचना है हिजड़ा पुत्र बिन्नी एवं उसकी माँ के मध्य पत्राचार के माध्यम से हिजड़ों के जीवन से संबंधित व्यक्तिगत एवं सामाजिक सरोकारों को पाठकों के समक्ष परत-दर-परत खोलते हुए उदात्तता के उच्च स्तर पर पहुँचती है।"[144]

वर्तमान युग में समाज तेजी से आगे बढ़ रहा है। समाज में व्याप्त अंधविश्वास, रुचियां, वर्ग-वर्ण भेद, छुआछूत आदि से राहत एवं मुक्ति मिल रही है। पर किन्नरों के जीवन में कुछ भी परिवर्तन नहीं आया है। वे आज भी उपेक्षित जीवन जी रहे हैं। आज समाज उनसे घृणा करता है। वे स्वाभिमानपूर्वक जीवनयापन नहीं कर सकते। उन्हें कोई नौकरी नहीं देता। समाज का उनके प्रति नजरिया परिवर्तित नहीं हुआ है। आज उन्हें मुख्य प्रवाह में लाना आवश्यक है। किसी किन्नर को नायक-नायिका बना कर लिखी गई यह हिन्दी का पहला ही उपन्यास सिद्ध होता है। इससे पहले पात्रों के रूप में कई जगह किन्नरों का वर्णन मिलता है पर चित्रा जी ने विनोद और पूनम के पात्रों को अमर किया है वे सदैव पाठकों के दिलों में रहेंगे। इस उपन्यास को पढ़ने पर पाठकों के मन में किन्नरों के प्रति घृणा कुछ कम होती है। उनके प्रति सहानुभूति, कुछ अंश प्रेम या निकटता प्रतीत होती है। आखिर वे भी हमारी ही तरह मनुष्य ही है। उनके अस्तित्व बोध को हमें समझना होगा तभी उनके सुनहरे भविष्य की हम आशा कर सकते हैं। 'पोस्ट बॉक्स नं. 203- नाला सोपारा' यह उपन्यास किन्नरों के नारकीय जीवन की यथार्थ दास्तान तो है ही, पर उनके प्रति समाज में प्रेम को कोंपलें उगाने वाला उपन्यास भी है। यह उपन्यास उन्हें नारकीय जीवन से मुक्त करने में मील का पत्थर साबित हो सकता है।

भूमंडलीकरण के दौर में समाज बड़ी द्रुत गति के साथ आगे बढ़ रहा है, समाज में परिव्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों, वर्ग-वर्ण भेद बाल विवाह, विधवा विवाह, छुआछूत आदि से थोडी बहुत राहत एवं मुक्ति जरूर मिली है पर किन्नरों के जीवन में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं आया है। समाज में उनकी स्थिति अस्पृश्य भी बदतर है। पूरा भारतीय समाज उन्हें हीन दृष्टि से देखता है। उन्हें केवल लिंग भेद के कारण समाज से काटकर बेघर कर दिया जाता है। इस परिवर्तित होते हुए समाज में उनके अस्तित्व बोध को समझना होगा तभी उनके सुनहरे भविष्य की हम आशा कर सकते हैं। 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' चित्राजी की भूमिमण्डलीकरण के दौर में किन्नरों के नरकीय जीवन की यथार्थ दास्तान है।

चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास में एक विशिष्ट विषय को केंद्र बिंदु बनाकर बहुत ही संवेदनात्मक पद्धति से लिखा है, जिसमें समाज में दुर्लक्षित किन्नरों के भावजगत पर प्रकाश डाला है। इस उपन्यास को पढ़कर मनुष्य के मन किन्नरों के प्रति मन में जो मलिन प्रतिमा है वह साफ होने में मदद मिलती है एवं किन्नरों के प्रति जो घृणा एवं भय है, वह भी दूर होता है। किन्नरों के प्रति मन के कोने कहीं ना कहीं मानवता एवं सहानुभूति के भाव जागृत होते है। चित्रा जी 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' के लिए 2018 प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। उनकी इस रचना को काफी सराहा गया।

निष्कर्ष:

अतः कह सकते हैं कि चित्रा जी का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा का धनी है। उन्होंने अपने साहित्य में समाज के हर एक वर्ग को हमारे सामने उद्घाटित किया है। चित्राजी ने अपने साहित्य में निम्न-मध्य वर्ग का चित्रण किया है, अन्याय का विरोध किया है, तो कही अंधविश्वास को मानने वाले समाज को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। उनके पात्र चेतना शील, प्रगतिशील, उनमें नीडरता की वृत्ति मुखर है, सुधारवादी दृष्टि है, वे किसी के अधीन रहना नहीं चाहते, यही सब इसी कारण है कि उनका परिवेश ही आधुनिक मान्यताओं को मानने वाला है। इनकी रचनाएं भूमंडलीकृत परिवेश में नव स्त्री के नव निर्माण की हिमायती रही है।

चित्रा मुद्गल की कथा-साहित्य का मुख्य सरोकार समकालीन जीवन स्थितियों में मनुष्य के भीतरी संसार का उद्घाटन है। यातना चाहे नारी की हो या सर्व हारा की, किसी वृद्ध की हो या बच्चे की चित्राजी उसके जड़ तक जाने की कोशिश करती है और व्यवस्था के सभी पहलुओं के साथ मनुष्य के पारस्परिक संबंधों में, उनके अंतर्जगत में झाँकती है। आपके रचनाओं में क्रूर, अमानवीय जन विरोधी चरित्र बार-बार उभरता है। एक

कथाकार की ऊर्जावान उपस्थिति आप इन कहानियों में पाएंगे जहाँ बाहरी दिखावा नहीं भीतर का आवां है। मुद्गल के कथा-साहित्य में भाषा का वेग, मिथक, बिंब, प्रतीक आदि का सार्थक प्रयोग और आपकी तल्लीनता इन्हें विशेष बनाती है। इनमें जहाँ चित्र और रंग का संयोजन होता है ये कहानियाँ बेहतरीन कला-कृतियाँ बन जाती है। उनके कहानी तथा उपन्यासों के पात्र आज भी कई वर्षों बाद सजीव लगते हैं। पाठक को लगता है कि यह तो उसकी स्वयं की कहानी है। आप द्वारा चित्रित अनेक कहानियों के पात्र समाज में हमारे अडोस-पडोस में दृष्टिगोचर होते हैं। मुंशी प्रेमचंदजी के बाद इतने सजीव पात्रों के सटीक निर्माण करने में चित्रा मुद्गलजी सफल रही है।

आप समकालीन दौर की सशक्त महिला रचनाकार है। आपकी रचनाओं में काल सापेक्ष क्रूर यथार्थ को बहुत ही पैनेपन से उकेरा गया है। इन रचनाओं का लेखन आपने समाज के लोगों के जीवन को बहुत निकट से देख-परखकर किया है। आपने जिन्दगी को कई कोणों से देखा है, अनुभव किया और सहज संवेदनाओं के साथ अभिव्यक्त किया है। अंत में कह सकते है कि चित्रा मुद्गलजी अपने आप में श्रेष्ठ रचनाकार है। उनका कथा-साहित्य सराहने योग्य है जो पाठक को सोचने और विचार करने के लिए प्रवृत्त करता है।

संदर्भ सूचि

1. सहाय डॉ. साकेत. वातायन संगोष्ठी.
2. मुद्गल चित्रा. भूमिका, आदि अनादि, पृ.9
3. सिन्हा डॉ. सुरेश. हिन्दी उपन्यास. पृ.389
4. मुद्गल चित्रा. मेरे साक्षात्कार. पृ. 177
5. चित्रा मुद्गल से दिल्ली स्थित उनके निवास स्थान पर साक्षात्कार. दि.27 जून,2004
6. मुद्गल चित्रा. 'नवभारत'. दिल्ली, 18 दिसंबर, 1994
7. मुद्गल चित्रा. जिनावर. सवाल दर सवाल
8. मुद्गल चित्रा. जिनावर(भूमिका). पृ.7
9. मुद्गल चित्रा. जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं. पृ. 4
10. मुद्गल चित्रा. जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है. पृ. 4
11. मुद्गल चित्रा. मेरी रचना प्रक्रिया, जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है
12. मुद्गल चित्रा. लकडबग्घा. पृ.11
13. मुद्गल चित्रा. लकडबग्घा. पृ.11
14. मुद्गल चित्रा. लकडबग्घा. पृ.11
15. मुद्गल चित्रा. मेरे साक्षात्कार. पृ.177-178

16. मुद्गल चित्रा. मेरे साक्षात्कार. पृ.86
17. मुद्गल चित्रा. लकडबग्घा. पृ.13
18. मुद्गल चित्रा. लकडबग्घा. पृ.13
19. मुद्गल चित्रा. लकडबग्घा. पृ.15
20. मुद्गल चित्रा. 'नवभारत'. दिल्ली, 18 दिसंबर, 1994
21. मुद्गल चित्रा. आवां. पृ.5
22. उपाध्याय, करुणाशंकर. आवां विमर्श. पृ.263
23. दत्त दीक्षित, दामेदर . सुजाता. सितंबर,1993,पृ.39
24. मुद्गल चित्रा. मनोरमा.जुलाई 1994
25. मुद्गल चित्रा. देश देश की लोककथाएँ .पृ.5
26. मुद्गल चित्रा. आजकल पत्रिका हीरक जयंती वर्ष दिसंबर 2004, पृ.35-36
27. मुद्गल चित्रा. लोकशासन. 19 जुलाई,1995
28. सुमन क्षेमचंद्र. साहित्य विवेचना. पृ.15
29. मुद्गल चित्रा. चर्चित कहानियाँ पाठकों की सत्ता से
30. मुद्गल चित्रा. दशरथ का वनवास, आदि अनादि 1. पृ.27
31. मुद्गल चित्रा. दुलहिन, आदि अनादि 1. पृ.40
32. मुद्गल चित्रा. ट्रेन छूटने तक, आदि अनादि 1. पृ.47
33. मुद्गल चित्रा. सफेद सेनारा, आदि अनादि 1. पृ. 54
34. मुद्गल चित्रा. केंचुल, आदि अनादि 1. पृ.71
35. मुद्गल चित्रा. त्रिशंकु, आदि अनादि 1. पृ. 98
36. मुद्गल चित्रा. पाली का आदमी, आदि अनादि 1. पृ.107-108
37. मुद्गल चित्रा. बावजूद इसके, आदि अनादि 1. पृ.126
38. मुद्गल चित्रा. मामला आगे बढ़ेगा अभी, आदि अनादि 1. पृ. 140
39. सिंह, पुष्पमाल. समकालीन कहानी रचना, पृ.124
40. मुद्गल चित्रा. अपनी वापसी, आदि अनादि 1. पृ. 166
41. बांदिवडेकर, चंद्रकांत. सारिका . पृ. 16-30 अप्रैल 1984, पृ.70
42. मुद्गल चित्रा. अपनी वापसी, आदि अनादि 1. पृ.173-174
43. शर्मा, डॉ. मंजु. साठोत्तरी महिला कहानीकार (पारिवारिक विघटन के संदर्भ में). पृ.14
44. सिंह, पुष्पमाल .समकालीन कहानी रचना,मुद्रा. पृ.सं.127
45. चौधरी, डॉ. वेदवती. नवम दशक की कहानियों में कामकाजी नारी की भूमिका. पृ.208
46. बांदिवडेकर चंद्रकांत. सारिका. 16 अप्रैल 1984, पृ.71
47. मुद्गल चित्रा. शून्य, आदि अनादि 1. पृ. 210
48. कप्पीकेरे, डॉ.सौ. मंगला. सोठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी. पृ.151

49. रजवार डॉ. शीला. स्वातंत्रोत्तर हिंदी कथा साहित्य में नारी के बदलते सन्दर्भ . पृ. 124

50. मुद्गल चित्रा. पेशा, आदि अनादि 1. पृ. 226

51. मुद्गल चित्रा. लाक्षागृह, आदि अनादि 1. पृ.239

52. कप्पीकेरे, डॉ.सौ. मंगला. साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में नारी. पृ. 159

53. मुद्गल चित्रा. शिनाख्त हो गई है, आदि अनादि 1. पृ.247-248

54. मुद्गल चित्रा. वाइफ स्वैपी, आदि अनादि 2. पृ.19

55. मुद्गल चित्रा. लिफाफा, आदि अनादि 2. पृ.34

56. मुद्गल चित्रा. इस हमाम में, आदि अनादि 2. पृ.60

57. मुद्गल चित्रा. मेरचे पर, आदि अनादि 2. पृ.78

58. मुद्गल चित्रा. भूख, आदि अनादि 2. पृ.107-108

59. वही

60. मुद्गल चित्रा. चर्चित कहानियाँ, पाठकों की सत्ता से. पृ.39

61. श्रीकांत लेखा- श्रीनिवास. यथार्थ एवं गल्प की सजीव संरचना. हिमप्रस्थ जानकी 2003, पृ.75,

62. मुद्गल चित्रा. चेहरे, आदि अनादि 2. पृ.116

63. मुद्गल चित्रा. लेन, आदि अनादि 2. पृ.153

64. वनजा के. चित्रा मृद्गल : एक मूल्यांकन. पृ.135

65. मुद्गल चित्रा. फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती, आदि अनादि 2. पृ.192

66. मुद्गल चित्रा. जरिया, आदि अनादि 2. पृ.204

67. अमिताभ वेदप्रकाश. समीक्षा. जुलाई-सितंबर 1993, पृ.22

68. मुद्गल चित्रा. सौदा, आदि अनादि 2. पृ.238

69. अमिताभ वेदप्रकाश. समीक्षा. जुलाई-सितंबर 1993,पृ.22

70. मुद्गल चित्रा. मुआवजा, आदि अनादि 2. पृ.252

71. मुद्गल चित्रा. प्रमोशन, आदि अनादि 2. पृ.263

72. मुद्गल चित्रा. प्रमोशन, आदि अनादि 2. पृ.264

73. मुद्गल चित्रा. जब तक बिमलाएं हैं, आदि अनादि 2. पृ.272

74. कुमार, धनंजय. राष्ट्रीय सहारा. 11 नवंबर 2002

75. मुद्गल चित्रा. अभी भी, आदि अनादि 3, पृ.21

76. मुद्गल चित्रा. लकड़बग्घा, आदि अनादि 3, पृ.32

77. मुद्गल चित्रा. जिनावर, आदि अनादि 3, पृ.52

78. शर्मा, जानकी प्रसाद . समकालीन भारतीय साहित्य. मई-जून 1997, पृ. 156]

79. मुद्गल चित्रा. स्टेपनी, आदि अनादि 3. पृ.64

80. मुद्गल चित्रा . प्रेतयोनि, आदि अनादि 3. पृ.105

81. मिश्रा, डॉ. अर्चना. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में युग चिंतन.पृ.39

82. मुद्गल चित्रा . बाघ, आदि अनादि 3. पृ.124
83. मुद्गल चित्रा . नतीजा, आदि अनादि 3. पृ.132
84. मुद्गल चित्रा . सुख, आदि अनादि 3. पृ.151
85. मुद्गल चित्रा . लपटें, आदि अनादि 3. पृ.175
86. मुद्गल चित्रा . लपटें, आदि अनादि 3. पृ.178
87. मुद्गल चित्रा . नीले चौखानेवाला कंबल, आदि अनादि 3. पृ.190
88. मुद्गल चित्रा . बलि, आदि अनादि 3. पृ. 206
89. मुद्गल चित्रा . गेंद, आदि अनादि 3. पृ.221
90. मुद्गल चित्रा . पाठ, आदि अनादि 3. पृ. 231
91. मुद्गल चित्रा . आवांतर कथा, आदि अनादि 3. पृ.233
92. मुद्गल चित्रा . आवांतर कथा, आदि अनादि 3. पृ.237
93. मुद्गल चित्रा . तकिया, आदि अनादि 3. पृ. 246
94. मुद्गल चित्रा . गिल्टी रोजस, आदि अनादि 3. पृ. 255
95. मुद्गल चित्रा . गिल्टी रोजेस, आदि अनादि 3. पृ.262
96. मुद्गल चित्रा . हथियार, आदि अनादि भाग 3. पृ.272
97. सिंह, सं. अनंत कुमार .जनपथ. पृ.78
98. मुद्गल चित्रा . एक जमीन अपनी. पृ.6

99. सिंह पुष्पमाल. शीराजा. अगस्त- सिंतबर-1991, पृ. 7

100. मुद्गल चित्रा . एक जमीन अपनी. पृ.24
101. वही.पृ.24
102. वही. पृ.24
103. किशोर गिरिराज. संडे ऑब्जर्वर, 2 जून 1991.पृ. 14
104. मुद्गल चित्रा . एक जमीन अपनी. पृ.214-215
105. वही. पृ.235
106. वनजा के. चित्रा मुद्गल : मूल्यांकन. पृ. 38
107. मेरे साक्षात्कार, चित्रा मुद्गल, पृ.39)
108. मनु प्रकाश. हिन्दुस्तान. नई दिल्ली, 17 फरवरी 1991

109. पंकज से चित्राजी की बातचित . राष्ट्रिय सहारा, 29 अप्रैल 2001

110. मुद्गल चित्रा . प्रस्तावना, आवां. पृ.9
111. सिंह सं.अनंतकुमार . जनपथ, पृ.78

112. मुद्गल चित्रा . आवां. पृ.13

113. मिश्रा डॉ.अर्चना. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में युगचिंतन
114. मुद्गल चित्रा. आवां. पृ.136
115. लोकायतन-परितोष चक्रावर्ती, 31 दिसंबर 2003, पृ. 49
116. मुद्गल चित्रा. मेरे साक्षात्कार. पृ. 210
117. सिंह पुष्पमाल. हिन्दी गद्य इधर की उपलब्धियां. पृ. 42
118. मुद्गल चित्रा. आवां. पृ.539
119. मोहन विजय. भेद खोलेगी बात ही… पृ. 166
120. मुद्गल चित्रा. आवां. पृ.112
121. मुद्गल चित्रा. आवां. पृ.43
122. पाण्डेय इन्दुप्रकाश. हिन्दी के अधुनातन नारी उपन्यास . पृ. 218
123. मुद्गल चित्रा. मेरे साक्षात्कार. पृ.92
124. मुद्गल चित्रा. मेरे साक्षात्कार. पृ.68
125. मुद्गल चित्रा. मेरे साक्षात्कार. पृ. 114
126. मुद्गल चित्रा. गिलिगडु, पृ.11
127. मुद्गल चित्रा. गिलिगडु. पृ.93
128. रंजन प्रभात. मेरे लेखक, मेरे सवाल, मुलाकात
129. मुद्गल चित्रा. मेरे साक्षात्कार. पृ.40
130. मेरे लेखक, मेरा सवाल-प्रभात रंजन, मुलाकात
131. रेडियो टॉकिज-रायटर्स जर्नी मुलाकात
132. अनुसंधान (त्रैमासिक शोध पत्रिका), अक्टूबर-दिसंबर 2017, पृ.7-8
133. (www-wekipedia.com)
134. मुद्गल चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपारा. पृ.39
135. मुद्गल चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपारा. पृ.42
136. मुद्गल चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपारा .पृ.42
137. मुद्गल चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपारा. पृ.50
138. मुद्गल चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपारा. पृ.86
139. मुद्गल चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपारा. पृ.112
140. मुद्गल चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपारा. पृ.195
141. मुद्गल चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपारा. पृ.207
142. मेहरा, सं. डॉ. दिलीप. हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर समाज. पृ.183-184
143. खान, सं.डॉ.एम.फ़ीरोज. थर्ड जेन्डर :कथा आलोचना. पृ.100
144. सिंह, डॉ. विजेद्र प्रताप. हिन्दी उपन्यासों के आइने में थर्ड जेंडर. पृ.145

द्वितीय अध्याय

2. संवेदना: अवधारणा एवं स्वरूप

ज्ञानराशी के संचित कोष को साहित्य कहा जाता है। अनेक भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली किसी भाषा का अगर अपना निज साहित्य नहीं हो तो उस भाषा का विकास एवं आदर नहीं होता है। किसी भी भाषा की संपन्नता उसकी मान-मर्यादा उसके साहित्य पर ही निर्धारित होती है।

डॉ.मुकुन्द द्विवेदी के अनुसार "समाज और साहित्य का बड़ा ही घनिष्ठ संबंध होता है। साहित्य में ही जीवन प्रतिबिम्बित होता है। साहित्यकार संवेदनशील मनुष्य होता है, वह समाज में रहता है। सामाजिक परिस्थितियाँ उसे प्रभावित करती हैं। अत: वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की किसी भी विधा को क्यों न चुने, उसमें युगचेतना के स्वर उभर ही जाते है। किसी युग-विशेष की चेतना में भी कई धारायें पाई जाती हैं। इसका कारण यह है कि एक ही युग में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा वह उनकी निजी संवेदना के अनुरूप ग्रहण की जाती है। संवेदना के स्तरों में विविध स्तर होने के भी कई कारण है जिनमें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ प्रमुख है। लेखक की अपनी एक अलग संवेदना होती है, जिसके द्वारा वह साहित्य में अपने को अभिव्यक्त करता है।"[1]

मनुष्य के हृदय में संवेदना ही ऐसी भावना है जो उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है, ऐसी बात नहीं है कि संवेदना केवल मानवों में ही पाई जाती है पर अन्यों की तुलना में मनुष्य सर्वाधिक बुद्धिमान एवं सहृदय पाया गया है। संवेदना रहित मनुष्य समाज से कटकर रह जाता है। संवेदना एक पवित्र भावना है। अन्य व्यक्ति चाहे वह परिचित हो या अपरिचित, की पीड़ा या दु:ख देखकर संवेदनशील मनुष्य के हृदय में सहानुभूति उपजती है, यही सहानुभूति संवेदना का प्रारंभिक रूप होता है।

दु:खी मनुष्य जब किसी की सहानुभूति का पात्र बनता है तब उसका हृदय और अधिक भाव विह्वल एवं करुण हो उठता है, जिससे वह अपने दु:ख के सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त होता है एवं कुछ अवधि के पश्चात उसके मन की टीस कम होती है और वह हलका महसूस करता है। अतः कहा जा सकता है क्रुरातिक्रुर व्यक्ति के दिल में प्रवृत्ति का भी कम अधिक प्रमाण में संवेदना पाई जाती है। तब ही तो दुष्ट प्रवृत्ति का मानव भी पिघलता है। संवेदना मन की एक अवस्था है।

2.1. संवेदना: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

संवेदना मनुष्य के मस्तिष्क की एक विशेष अवस्था है, जिसके कारण वह स्वयं के साथ-साथ दूसरों की अनुभूतियों को महसूस करने की क्षमता रखता है। मानवीय संवेदना अनेक स्वरूपों में पाई जाती है। कभी करुणा से तो कभी सहानुभूति से या प्रेम एवं क्रोध द्वारा भी संवेदना प्रकट होती है। संवेदना को अनुभूति या सहानुभूति भी कहा जाता है। संवेदना द्वारा जीवन का व्यापक अनुभव दृष्टव्य होता है। संवेदना का अर्थ निम्नवत् दर्शाया गया है-

संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभम् में संवेदना के अर्थ को इस प्रकार विश्लेषित किया गया है। सम्+विद्+युच (प्रत्यय)[2] वेदना शब्द में सम् उपसर्ग लगाने से संवेदना शब्द की संरचना हुई।

मानक हिन्दी कोश के अनुसार "किसी के प्रति विशेष सहानुभूति को संवेदना कहते है। किसी भी प्राणी के प्रति हमारे मन में जो भी सहानुभूति के विचार या कृति होती है उसे ही संवेदना कहते है।[3]

हिन्दी शब्द कोश में संवेदना का अर्थ बताते हुए कहा है कि "सुख-दु:ख की अनुभूति या प्रतीति, शरीर के अंगों में उत्पन्न प्राकृतिक संवेदना।"[4]

बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार, "अनुभूति, सहानुभूति, दु:ख या संवेदना प्रकट करने की क्रिया या भाव : दु:ख की अनुभूति। यह सिद्धांत या मत है कि हमें समस्त ज्ञान की प्राप्ति संवेदना से ही होती है। किसी पदार्थ या वस्तु का अनुभव करने की गहराई जो नवलेखन में चर्चित होता है।"[5] उसी प्रकार संवेदना को स्पष्ट करते हुए इस कोश में लिखा है कि "किसी के दु:खादि से दु:खी होना सहानुभूति कहलाता है "[6]

वर्धा हिन्दी शब्दकोश में संवेदना को मनुष्य के दु: ख से जोड़ा है- "मन में होने वाला बोध या अनुभव, किसी के शोक, दु: ख, कष्ट या हानि को देखकर मन में उत्पन्न वेदना, दु: ख या सहानुभूति, दूसरे की वेदना से उत्पन्न।"[7]

यहाँ संवेदना शब्द साहित्य और मनोविज्ञान दोनों विषयों से ग्रहण किया गया है।

शब्दार्थ विचार कोश के अनुसार "सनसनी (सेन्सेशन) मूलत : हमारी वह शारीरिक स्थिति है जिसमें आश्चर्य, भय आदि के कारण हमें ऐसा जान पड़ता है कि हमारे संवेदन सूत्रों में रक्त का संचार कुछ तीव्रता पूर्वक एवं सन-सन करता हुआ होने लगा है। परंतु अपने परवर्ती एवं बहु प्रचलित अर्थ में इससे हमारी वह मानसिक

स्थिति सूचित होती है जो किसी आकस्मिक एवं बहुत ही विलक्षण घटना घटित होने पर उत्पन्न होती है और हमारे मनोवेगों को शुद्ध करती। ऐसी घटना दूर की भी हो सकती है और पास की भी, भले ही प्रत्यक्ष रूप से हमारा उससे कोई विशेष संबंध न हो जैसे किसी बड़े राजनीतिक नेता की हत्या के कारण आसपास के प्रदेशों में और कभी-कभी दूर देशों में भी सनसनी फैल जाती है।"[8]

शब्दार्थ विचार कोश में संवेदना एवं सहानुभूति को पर्याय के रूप में ही स्वीकृत किया है -"इस वर्ग के शब्दों का प्रयोग ऐसे अवसरों पर होता है जब हम अपने किसी आत्मीय या परिचित को विशेष कष्ट या विपत्ति में पड़ा हुआ देखकर यह बहते हुए उसे धैर्य दिलाने या शांत करने का प्रयास करते है कि तुम्हारे इस दु:ख से हम भी बहुत दु:खी है और यदि यह दु:ख कम करने में हम कुछ सहायक हो सकते हैं, तो उसके लिए प्रस्तुत है।"[9]

वैज्ञानिक परिभाषा कोश में "संवेदना मनोविज्ञान, कला, साहित्य, शास्त्र आदि में इंद्रियों का ऐसा व्यापार हैं जिसकी अनुभूति तो होती है, परंतु जिसकी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती।"[10]

यहाँ पर संवेदना की मनोवैज्ञानिकता बताई गयी है।

अभिनव पर्यायवाची कोश में संवेदना को इस प्रकार व्याख्यायित किया है -"संवेदना को यहाँ ज्ञानेंद्रियों की अनुभूति ही संवेदना है। इस सरल रूप में परिभाषित किया गया है। "[11]

मानविकी पारिभाषिक कोश में 'सेन्सेशन' का अर्थ निम्नवत दिया गया है -"संवेदी तंत्रिकाओं के माध्यम से बृहद् मस्तिष्क के संवेदनात्मक केंद्रों पर किसी उद्दीपन की तत्कालीन अनुक्रिया। यह अनुक्रिया मस्तिष्क में किसी भी गत अनुभूति के जाग्रत होने के पूर्व घटित होती है; उसका ज्ञान नहीं होता है। वस्तुतः विशुद्ध संवेदना एक मनोवैज्ञानिक कल्पना मात्र है, व्यक्ति जब भी किसी उत्तेजना के सम्पर्क में आता है वह इसे किसी ना किसी रूप में, यह रूप चाहे जितना भी अस्पष्ट क्यों न हो, जान लेता है।"[12]

संवेदना को एक मनोवैज्ञानिक कल्पना माना गया है। उत्तेजना के कारण इसका पता चलता है।

अंग्रेजी विश्व कोश के अनुसार - "Sympathy is in itself feeling felt and become possible only after human reason began its operations" (सहानुभूति स्वयं महसूस करनेवाला भाव है, जो तभी संभव होता है जब मानवीय अथवा विवेक बुद्धि अपना कार्य आरंभ करती है।)[13]

हिन्दी साहित्य कोश में संवेदना की परिभाषा निम्नवत दी गई है -"साधारणतः संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। मूलतः वेदना या संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेंद्रियों का अनुभव है। मनोविज्ञान में भी इसका यही अर्थ ग्रहण किया जाता है। उसके अनुसार संवेदना उत्तेजना के देह रचना की सर्वप्रथम संचेतन प्रतिक्रिया है। उदाहरण – हरी वस्तु हरे रंग को देखने की उत्तेजना मात्र है। उत्तेजना का हमारे मन पर मस्तिष्क तथा नाडी तंतुओं द्वारा प्रभाव पड़ने पर ही हमें उसकी संवेदना होती है। संवेदना हमारी मन के चेतना की वह कूटस्थ अवस्था है जिसमें हमें विश्व की वस्तु विशेष का बोध न होकर उसके गुणों का बोध होता है। प्रौढ़ व्यक्तियों में यह संवेदना प्रायः असंभव हो जाती है; यद्यपि साधारणतः अंग्रेजी में 'सिम्पैथी' या 'फेलो फीलिंग' कह सकते हैं; किन्तु मनोविज्ञान में 'सेंन्सेशन' के रूप में इसका प्रयोग होता है।"[14]

हिन्दी साहित्य कोश में ज्ञानेंद्रियों के अनुभव को संवेदना कहा गया है। यहाँ हमें वस्तु नहीं अपितु उसके गुणों का बोध होता है।

समाजशास्त्र विश्व कोश के अनुसार "दूसरे व्यक्तियों की अनुभूतियों तथा प्रेरकों के प्रति इस प्रकार प्रतिक्रिया प्रकट करना जैसे वो स्वयं की हो, सहानुभूति कहलाती है। यह एक प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के उद्वेगों को अपने ही समझने लगता है। परिणामतः दूसरे के सांवेगिक व्यवहार उसके सांवेगिक व्यवहार में बदल जाते है। दुखी व्यक्ति का दृश्य दर्शन के लिए इतना उत्तेजक होता है कि दर्शक के मस्तिष्क में समान चिंतन धारा बहने लगती है।"[15]

इस प्रकार संवेदना के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि दूसरे के प्रति दु:ख देखकर तथा दूसरे के सुख का भागीदार बनकर जो अनुभूति प्राप्त होती है उसे ही संवेदना कहते है।

2.1.1 संवेदना: विभिन्न विद्वानों का मत

परिभाषित व्याख्याओं के साथ ही विभिन्न विद्वानों ने भी संवेदना को परिभाषित किया है। जो निम्नवत् है –

डॉ. नगेंद्र के मतानुसार "साहित्यिक रचना में रचनाकार किसी विषय के संदर्भ में सुखात्मक या दु:खात्मक तादात्म्य अनुभव करता है। उस विषय के बारे में अपने मन की ही अभिव्यक्त करता है और इसी प्रतिक्रियात्मक क्षमता को साहित्य में संवेदना की संज्ञा दी जाती है।"[16] डॉ. नगेंद्र कहते हैं कि केवल पाठक ही

नहीं बल्कि रचना करते समय रचनाकार जिस विषय पर चिंतन करता है, उसमें उसका सुखात्मक अथवा दु:खात्मक आंतरिक संबंध स्थापित हो जाता है। वह उस विषय के बारे में अपने दिलो-दिमाग से जो प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करता है उसे ही संवेदना कहते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के ने संवेदना के दु:ख को जोड़ते हुए कहा कि, "संवेदन शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दु:ख पर कष्टानुभव के अर्थ के अर्थ में आया है। मतलब यह है अपनी किसी स्थिति को लेकर दु:ख का अनुभव करना संवेदना है।"[17] शुक्ल जी संवेदना को अपने दु:ख में होनेवाले कष्ट के अनुभव से संबद्ध करते हुए कहते है कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दु:ख का अनुभव करना ही संवेदना है। वे संवेदना को केवल कष्ट या दु:ख की अनुभूति ही मानते है।

आनंद प्रकाश दीक्षित संवेदना को परिभाषित करते हुए कहते है कि "संवेदना उत्तेजना के संबंध में देहरचना की सर्व प्रथम सचेतन प्रक्रिया है, जिसमें हमें वातावरण की ज्ञानोप्लब्धि होती है।"[18] दीक्षितजी मानव मन की सचेतन प्रक्रिया को संवेदना मानते हैं। आप कहते हैं कि संवेदना हमारे शारीरिक अवयवों दी जानेवाली सर्वप्रथम सचेतन प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया द्वारा हमारे आसपास के वातावरण का बोध होता है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी संवेदना को निम्नवत् व्याख्यायित करते है-"आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास के आमुख में 'जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन' की बात कहीं थी। आज की भाषा में चित्तवृतियों के संप्रेषण को संवेदना कहा जाएगा।"[19]

डॉ. रामचंद्र वर्मा संवेदना को परिभाषित करते हुए कहते है कि "किसी के शोक, दु:ख, कष्ट या हानि के प्रति सहानुभूति ही संवेदना है।"[20]

जब हम किसी व्यक्ति के दु:ख, कष्ट या हानि, प्रताड़ना को देखते है तब उस व्यक्ति के प्रति जो सहानुभूति जागृत होती है उसे ही संवेदना कहते है।

धीरेंद्र वर्मा ने संवेदना पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि, "संवेदना हमारी मन की वह कूटस्थ अवस्था है जिसमें विश्व की वस्तु विशेष का बोध न होकर उसके गुणों का बोध होता है।"[21]

संवेदनशील व्यक्ति गुण ग्राहक होता है, वह गुणों को ग्रहण कर उसके प्रति अपने मन के भाव प्रकट करता है।

शेखर शर्मा प्रतिपादित करते है कि -“संवेदना कृतिकार एवं सहृदय पक्ष का प्रतिनिधित्व करती है। संवेदना समाज, परिवेश और मन: स्थिति धरातल पर होने वाले साझे अनुभव पर निर्भर करती है।”[22]

संवेदना पर केवल रचनाकार के मनोदशा का प्रभाव नहीं बल्कि समस्त समाज परिवेश का भी प्रभाव होता है। समाज एवं परिवेश के अनुकूल संवेदना होती है।

अज्ञेय ने संवेदना को निम्नवत परिभाषित किया है। वे मानते है कि संवेदना के सहारे ही जीव दृष्टि स्वयं के साथ दूसरों का संबंध जोडती है - “संवेदना वह यंत्र है जिसके सहारे जीव दृष्टि अपने से इतर सब कुछ के साथ संबंध जोड़ती है। वह संबंध एक साथ ही एकता का भी है और भिन्नता का भी क्योंकि उसके सहारे जहाँ जीव दृष्टि अपने से इतर जगत को पहचानती है वहाँ उससे अपने को अलग भी करती है।”[23]

डॉ.रामदरश मिश्र स्पष्ट रूप से कहते है कि “साहित्य का मूल संबंध मानव की संवेदना से है। संवेदना के बिना साहित्य नहीं बनता चाहे उसमें बुद्धिवाद का कितना ही ऊहापोह क्यों ना हो, दर्शन की नई-नई भंगिमा क्यों ना हो। बुद्धि, दर्शन, चिंतन, ज्ञान, विज्ञान – सबको पहले जीवन में आत्मसात होना पड़ता है, आत्मसात होकर मानव संवेदना का अंग बनना पड़ता है, तभी शक्तिशाली साहित्य की सृष्टि होती है।”[24]

शक्तिशाली, सर्वोच्च साहित्य की निर्मिती के लिए बुद्धिवाद नहीं अपितु संवेदना को प्राधान्य होना चाहिए। भले ही साहित्य में बुद्धिवाद का कितना भी प्रभाव क्यों ना हो, दर्शन की विविध शैलियों का प्रयोग किया हो पर संवेदना के बिना उत्कृष्ट साहित्य लगभग असंभव है। मिश्रजी कहते है कि शक्तिशाली साहित्य सृष्टि के लिए बुद्धि, दर्शन, चिंतन, ज्ञान, विज्ञान सबको पहले जीवन में ग्रहण कर के मानव संवेदना का अंग बनना पड़ता है।

गजानन माधव मुक्तिबोध का मानना है कि भले ही संवेदना मानसिक प्रतिक्रिया है परंतु उसके साथ दृष्टिकोण भी अंतर्भूत होता है। “मानसिक प्रतिक्रिया में संवेदना अंतर्भूत है किन्तु उसमें दृष्टि या दृष्टिकोण भी अंतर्भूत है।”[25]

संवेदना की व्याख्या करते हुए रवींद्र श्रीवास्तव जी कहते है कि, “अनुभूतियाँ अपनी मूल प्रकृति में अव्यवस्थित एवं संघटनरहीत होने के कारण अतार्किक होती है। संवेदनाएं तरलावस्था में होने के कारण

अनिर्धारित एवं अपूर्व रहती है और जीवन दृष्टि भाव जगत से संबद्ध होने के कारण अबौद्धिक कथ्य का निर्माण करती है।"[26]

श्रीवास्तवजी मानते है कि, अनुभूतियाँ अतार्किक हो सकती है पर संवेदनाएँ तरलावस्था में होने के कारण अनिर्धारित होती है जो अबौद्धिक कथ्य का निर्माण करती है। संवेदना मन-हृदय से उपजने के कारण निर्मल एवं शुद्ध होती है, इसमें दिखावा या बनावटीपन को स्थान नहीं होता है। ये कोई सोची समझी बात नहीं होती। तब ही तो चलचित्र देखते समय भी हमारे मन में उस सिनेमा के नायक-नायिका से तादात्म्य संबंध स्थापित होने के कारण उनके प्रति विविध संवेदनाएं निर्मित होती है। हम उससे कुछ समय के लिए एकरूप हो जाते हैं। उस पात्र के साथ हँसते-रोते हैं। यही संवेदना का प्रभाव है जब कि बौद्धिक पक्ष कहती है कि ये तो सब नकली है, झूठ है, केवल सिनेमा है पर तब तक हम कई बार संवेदना में बहकर हमारे विविध इंद्रियों द्वारा उस पर प्रतिक्रियाएं दे चुके होते हैं।

तपेश चतुर्वेदी संवेदना को परिभाषित करते हुए कहते है- "आज साहित्य जगत में संवेदना का अर्थ विस्तार हो गया है, परिणाम स्वरूप साहित्य में इसका प्रयोग बढ़ा है। यदि विश्लेषणात्मक देखा जाए तो ज्ञात होता है कि संवेदना उस काल्पनिक अनुभव की व्याख्या का प्रयास है जिसमें सहज एवं सात्विक रूप से किसी पदार्थ में आत्मस्वरूप का प्रक्षेपण हो। संवेदना की प्रक्रिया में कवि देखे हुए पदार्थ एवं उसकी स्थितियों, गतियों, आदि को पूर्णतः आत्मसात करता है। इसलिए संवेदना वह अनुभव है जो कवियों द्वारा अपने व्यक्तित्व तथा अपनी भावनाओं को बाह्य जड-चेतन पदार्थों के प्रति कल्पना के माध्यम से प्रक्षेपण द्वारा तादात्म्य का स्थिति में उत्पन्न होती है।"[27]

यहाँ पर स्पष्ट किया गया है कि, वर्तमान में संवेदना का साहित्य में अधिक प्रयोग दिखाई पडता है। संवेदनशील रचनाकार प्रकृति एवं आसपास की घटनाओं को आत्मसात कर उसे अपनी अनुभूति द्वारा संवेदनशीलता के साथ साहित्य के रूप में प्रस्तुत करता है जिसे पाठक स्वयं की अनुभूति मानकर ग्रहण कर उसी तरह की मनोदशा में आ जाते है, जिसमें रचनाकार होता है।

सुरेश ऋतुपर्ण के अनुसार साहित्य और संवेदना के सह संबंध को स्पष्ट करते हुए सुरेश ऋतुपर्ण का कहना है कि, "संवेदनशीलता का आधिक्य साहित्यकार को एक सामान्य जन से अलगाता है। साहित्य

अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील होता है। बाह्य जगत के साक्षात्कार से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के संवेदनाओं में परिणत कर लेता है और फिर उन्हीं संवेदनाओं के चित्र बनाकर उन्हें अपने साहित्य में प्रस्तुत कर देता है।" [28]

साहित्यकार सामान्य जन से अधिक संवेदनशील होता है। वह विचारों को संवेदनाओं के रूप में परिवर्तित करता है एवं उन संवेदनाओं को साहित्य में चित्रित करता है।

डॉ.शिवदत्त शर्मा के मतानुसार "संवेदना शरीर की उस शक्ति, गुण अथवा योग्यता को कहा जा सकता है, जिसके आधार पर व्यक्ति को देखने, सुनने, सुंघने, समझने तथा अनुभव करने का ज्ञान होता है। अतः जीवन का व्यापक अनुभव, ज्ञान या अनुभूति ही संवेदना है।"[29]

हमें जीवन में ज्ञानेंद्रियों द्वारा जीवन का व्यापक अनुभव, ज्ञान अथवा अनुभूति प्राप्त होती है, उसे ही संवेदना कहते है।

आदित्य नारायण तिवारी का मानना है कि "संवेदना वह मानसिक प्रक्रिया है, जिससे हमें किसी उत्तेजना के गुण मात्र की चेतना होती है।"[30]

तिवारीजी भी संवेदना को उत्तेजना की चेतना मानते है। उत्तेजना के कारण ही संवेदना का निर्माण होता है। यह एक मानसिक प्रक्रिया है। यहाँ उत्तेजना जितनी अधिक होती है, संवेदना भी उतनी ही अधिक बढ़ती है।

डॉ. राजेंद्र कुमार संवेदना को व्याख्यायित करते हुए कहते है कि "संवेदना विशुद्ध ऐंद्रिय संवेदना का पर्याय नहीं है। ऐंद्रिय संवेदना बाह्य यथार्थ के ऐंद्रिय प्रभावों को ग्रहण करते हैं, वह उनकी इयत्ता है। संवेदना इनसे कुछ आगे की चीज है। ऐंद्रिय प्रभावों का ग्रहणशीलता के स्तर पर प्रभाव न रहना बल्कि आंतरिक यथार्थ के अनुभव में ढल जाना और फिर बृहत्तर किंतु सूक्ष्म अंतर्बोध या किसी भाव दृष्टि से उसका संयोजित होना। इस पूरी प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप जो चीज उभरती है वस्तुतः उसी को संवेदना का नाम दिया देना चाहिए।"[31]

डॉ. राजेंद्र कुमार का मानना है कि संवेदना बाह्य इंद्रियों द्वारा दी जाने वाली प्रथम प्रतिक्रिया नहीं होती है, वह प्रतिक्रिया तो केवल उस्फूर्त प्रतिसाद कहलाता है। पर जब किसी घटना का प्रभाव आंतरिक यथार्थ के अनुभव द्वारा दिलो दिमाग से ली जानेवाली क्रिया है, उसे ही संवेदना कहते है।

साहित्य की रचना करते समय साहित्यकार अपने कृति के साथ सुख-दु:ख का रिश्ता बना लेता है एवं इसी तादात्मकता के साथ मन की प्रतिक्रिया प्रकट करता है। इसी प्रतिक्रिया को संवेदना कहते है।

संवेदना की महत्ता प्रकट करते हुए डॉ. उषा यादव कहती है कि, "आज साहित्य के धरती पर न जाने कितने वाद फल-फूल रहें हैं। उनमें से कई से हमारा सैद्धांतिक मतभेद हो सकता है, पर जब हम उनके साहित्य का पर्यावलोकन करते हैं, तो हमारा मन उनमें रमे बिना नहीं रहता है। कारण यह है कि सारे मतभेदों के बावजूद हमें वहाँ संवेदना का प्रगाढ़ रंग एवं गहन अन्विति मिलती है। हाँ जिस साहित्य में मानव संवेदना को मूल आधार न बताकर वाद-विशेष का दर्शन एवं बोध चित्रित होने लगता है, विरोधी रुचि वाले उसमें अरुचि रखने लगते हैं। उन्हें उसमें मानव मानव को जोड़ने वाली एकत्व विधायिनी संवेदना की जगह मात्र विकल्प- विधायिनी बुद्धि का अस्तित्व परिलक्षित होता है।"[32]

डॉ. उषा यादव जी संवेदना को विविध वादों को जोड़नेवाली एकता की कड़ी मानती है। जिस साहित्य में संवेदना होती है, वह साहित्य मतभेद होने के बावजूद पसंद किया जाता है।

डॉ. श्री रंजिनी के अनुसार "साहित्य में संवेदना ज्ञानेंद्रियों की अनुभूति के साथ ही मन की भाव प्रणवता एवं प्रतिक्रियात्क शक्ति है। संवेदना मन की वह समता है, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभावों को ग्रहण करती है और जिसे लेखक अपनी भाषा के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाता है। संवेदना लेखक की चेतनाभूति और सहानुभूति है, लेखकिय संरचना का मूलभूत प्रेरक तत्व है। क्षमता और प्रभावों के भिन्नता के आधार पर संवेदना के विविध आयाम हो सकते है।"[33]

डॉ.हंसराज भाटिया संवेदना को स्पष्ट करते हुए कहते है कि "संवेदना ऐसी सरलतम मानसिक प्रक्रिया है जो विभिन्न ज्ञानेंद्रियों से आविर्भूत होती है। ये संवेदनाएं शारीरिक और मानसिक दोनों है, संवेदना ज्ञानात्मक संबंध का सर्वप्रथम और सरलतम रूप है।"[34]

मानव की शारीरिक एवं मानसिक भूमिका के द्वारा संवेदना को स्पष्ट किया गया है। संवेदना विविध ज्ञानेंद्रियों द्वारा निर्माण होती है। संवेदना को ज्ञानात्मक संबंध का सरलतम रूप बताया गया है।

डॉ. शलभ के मतानुसार "साधारण संवेदना सृष्टि नहीं रचती है क्योंकि वह संवेग मात्र होती है, सच्ची संवेदना कलानुभूति बन जाती है, वस्तु के वास्तविक कर्म को उद्घाटित करती है, अतः उसका असर भी पुरज़ोर होता है।"[35]

संवेदना अब मूल अर्थ पीछे पड़ रहा है। कुछ शब्द एवं अर्थ समय के प्रवाह में बदले हुए मूल अर्थ को खो बैठते हैं एवं साहित्यिक परिवेश में वे एक नए अर्थ की ओर इंगित करते हैं। जैसे कि संवेदना का मूल अर्थ है ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव या ज्ञान ना होकर उसे मानसिक प्रक्रिया के अंतर्गत लिया जा रहा है। जिससे इसका अर्थ सहानुभूति है। साथ ही डॉ. शलभ जी के अनुसार सहानुभूति या संवेदना को प्रकट करने में किसी ना किसी उत्तेजक की उपस्थिति को अनिवार्य माना गया है। उत्तेजना जितनी अधिक संवेदना भ उतनी ही बढ़ेगी अर्थात किसी प्रसंग की परिवेशीय परिस्थिति या किसी घटना की भयावहता जितनी बढ़ेगी शोक, दु:ख, कष्ट के प्रति संवेदना भी उतनी ही बढ़ेगी।

डॉ.सुरेश सिन्हा ने संवेदना की परिभाषा देते हुए लिखा है- "संवेदना से अभिप्राय है वह अनुभूति प्रवणता, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभावों को ग्रहण करने की क्षमता से पूरित होती है। इसका अर्थ यह भी होता है कि कोई साहित्य किन भावनाओं की प्रतीति हमें करा सकने में समर्थ होता है। भावनाओं के ये स्तर विविध होते हैं। वह आधुनिक बोध भी हो सकता है या मानव अस्तित्व की बुनियादी विवशताएं भी। वह व्यक्ति स्वतंत्र की भावना भी हो सकती है या यथार्थ के नए तत्वों की अन्विति भी। संवेदना का धरातल चाहे जो हो अभिव्यक्ति उसे साहित्य के माध्यम से ही मिलती है। नई अनुभूति, नई भाषिक अर्थवत्ता अनुभवों का नया संयोजन तथा मानव संबंधों के परिवर्तन की सूक्ष्म परख आदि से ही साहित्य की संवेदना स्पष्ट होती है। भाषा, भाव और प्रेरणा- तीनों ही प्रत्येक काल में साहित्य की संवेदना को नई अर्थवत्ता प्रदान करते है।"[36]

नई अनुभूति, नई भाषिक अर्थवत्ता अनुभवों का नया संयोजन तथा मानव संबंधों में परिवर्तन आता है। आज भूमंडलीकरण के इस युग में जहाँ मानव जीवन कुंठित एवं तनाव ग्रस्त होता जा रहा है, वहाँ ये भाव भीनी संवेदनाएं साहित्यिक अभिव्यक्ति पाकर मानव मन को उदात्त बनाती है और मानव संबंधों को संवेदनाओं से उजागर करती है। रचनाकार की अनुभूति ही उसकी रचना में आकर रूप ग्रहण करती है।

2.1.2 पाश्चात्य विचारकों की संवेदना संबंधित परिभाषाएं -

टी.एस.इलियट का मानना है कि, "रचनाधर्मी संवेदना समाज को नूतन अनुभूतियाँ प्रदान करती है, परिचित अनुभूतियों का नवीन बोध कराती है और जिन अनुभूतियों को हम जानते हैं, किन्तु जिनकी अभिव्यक्ति के लिए हमें शब्द नहीं ज्ञात है उन्हें अभिव्यंजना प्रदान करते है। इसके परिणाम स्वरूप हमारी चेतना का विस्तार और संवेदनशक्ति का परिष्कार होता है।"[37]

बर्ट्रंड रसेल - बर्ट्रंड रसेल एक बहुश्रुत ब्रिटीश दार्शनिक, तर्कशास्त्री एवं गणितज्ञ थे। उन्होंने संवेदना की परिभाषा निम्नवत् प्रस्तुत की है-

1. वे सब जिनका कारण भौतिक हो और प्रभाव मानसिक हो, उन सबको हम संवेदनाओं के रूप में परिभाषित कर सकते है।

2. हमारी बोधवृत्ति के स्मृति-रहित तत्व संवेदनाएं है।

3. मानसिक जगत और भौतिक जगत जहाँ एक-दूसरे से मिलते है वहाँ संवेदनाएं होती है।[38]

बर्ट्रंड रसेल के अनुसार जब हम किसी वस्तु या घटना को देखते है तब उसका प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर होता है। वह मानसिक प्रभाव ही संवेदना कहलाता है। हमारे मस्तिष्क पर उस व्यक्ति या घटना को देखने पर पड़नेवाला प्रभाव के अनुसार संवेदना के प्रकार को निर्धारित करता है। रसेल अपनी संवेदना की व्याख्या को स्पष्टता मानसिक एवं भौतिक अवस्था के अनुसार निर्धारित करते हुए जब मानसिक एवं भौतिक अवस्था का मिलन होता तो तभी संवेदना प्रकट होती है ऐसा कहते है। प्रथम अवलोकन में ही हमें अपनी आदत, अपेक्षा एवं भाष्य के अनुरूप संवेदना को निश्चित कर उसके मर्म को समझना चाहिए और उस मर्म को दिखाना भी आवश्यक है। यहाँ रसेल मर्म को महत्वपूर्ण मानते है।

जॉर्ज बर्कले - जॉर्ज बर्कले एक एंग्लों-आयरिश दार्शनिक थे। वे आयरलैंड के एंग्लिकन चर्च के क्लोयन के बिशप थे। संवेदना को व्याख्यायित करते हुए जॉर्ज बर्कले कहते है कि, "इंद्रिय संवेदन के प्रत्यय कल्पना के प्रत्ययों को की अपेक्षा अधिक सबल, सजीव तथा स्पष्ट होते है। उनमें उसी प्रकार अधिक स्थायित्व व्यवस्था तथा संगति है तथा ये ऐसे ही अविहत रूप से बिना किसी क्रम के उद्दीपन नहीं होते…जैसा कि वे प्रत्यय होते है, जो मानवीय संकल्पों के कार्य होते है, प्रत्युत निरंतर क्रम अथवा श्रृंखला में प्रस्तुत होते है- जिसमें

प्रशंसनीय परस्पर संबंध उनके प्रणेता की बुद्धिमत्ता तथा सहृदयता का पर्याप्त पुष्टीकरण होता है। अब ये निश्चित अधिनियम अथवा स्थापित विधियाँ, जिनमें मन, जिस पर हम निर्भर है, हमारे अंदर इन्द्रियानुभूति के प्रत्य उद्दीप्त करता है प्रकृति के नियम कहलाते है तथा हम उन्हें अनुभव से सीखते है। यहीं हमें सीखाता है कि वस्तुओं के सामान्य क्रम में अमुक प्रत्यय के साथ अमुक-अमुक अन्य प्रत्यय आते है।"[39]

जॉर्ज बर्कले अपनी परिभाषा में मन को अधिक महत्व देते हुए कहते है कि मन ही हमारे अंदर इंद्रिय अनुभूति द्वारा प्रत्यय को उद्दीप्त करता है। ये प्रत्यय काल्पनिक प्रत्यक्षों की अपेक्षा अधिक दीर्घकालीन होते है। अनुभवों द्वारा हम सीखते है। इंद्रिय संवेदन प्रकृति के नियमों में परिचित भी कराते है। इंद्रिय संवेदन ज्ञान का प्रथम सोपान है। उसी के द्वारा हम कल्पना करते है। कल्पना से आकलन होता है और यही आकलन विचारों में परिवर्तित होते है। उसके बाद ज्ञान का अनुभव होता है और हम ज्ञान के आधार पर उपयोजन कर सकते है। ज्ञान के बढ़ने से बुद्धि का उदय होता है।

हमारी सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभावों को ग्रहण करने की क्षमता ही संवेदना है। इस संवेदना की अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से ही संभव है। साहित्य की नई अनुभूति तथा मानव संबंधों के परिवर्तन की सूक्ष्म परख आदि से ही साहित्य की संवेदना स्पष्ट होती है। साहित्य की संवेदना को नया आयाम देने का कार्य भाषा, भाव एवं प्रेरणा करते हैं।

सारांशत : कह सकते है कि, "किसी के प्रति विशेष सहानुभूति को संवेदना कहते है। मन में होनेवाले अनुभव या बोध अनुभूति, किसी को कष्ट में देखकर स्वयं भी उसी प्रकार की बहुत कुछ उसी प्रकार की वेदना का अनुभव करना। इस प्रकार का दु:ख या सहानुभूति प्रकट करने की क्रिया के भाव को संवेदना कहते हैं।"

जब किसी रचनाकार की वेदना इतनी घनीभूत हो जाती है कि उसके मन में मैं और पर का भेद समाप्त हो जाता है। किसी भी पात्र के सुख-दु:ख, उसके जीवन चरित्र की घटनाएँ लेखक को अपने ऊपर घटित होती हुई सी प्रतीत होती है और वो सहजता से उन्हें अभिव्यक्त करता है। साहित्य में ये संवेदना इतनी परिष्कृत होती है कि ये समसामयिक होते हुए भी सार्वभौमिक, सार्वकालिक मार्गदर्शक बन जाती हैं। जिन्हें संवेदनशील हृदय पढ़कर या सुनकर आनंदित होता है।

साहित्यकार सामाजिक तो होता ही है साथ ही साथ वह संवेदनशील भी होता है। सामाजिक परिस्थितियाँ उसे निरंतर प्रभावित करती रहती है। वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए विविध विधाओं को चुनता है, जिसमें युग

चेतना के स्वर उसके रचना में पाएँ जाते है। एक ही युग चेतना भी भिन्न-भिन्न विचारधारा के व्यक्तियों द्वारा अपनी निजी संवेदना के अनुरूप ग्रहण की जाती है। साहित्यकार समाज में रहते हुए समग्र दृष्टिकोण का प्रस्तुतिकरण करता है। वह पहले तथ्यों को देखता है, समझता है, परखता है फिर जड़ तक पहुँचकर उसका विश्लेषणपूर्वक सार प्रस्तुत करता है।

2.2 साहित्य और संवेदना:

संवेदना के कारण ही साहित्य में जान आती है वह पाठकों को अपना लगता है। पाठक स्वयं के सुख-दु:ख को भूलकर साहित्य के सरोवर में इस तरह डूब जाता है कि वहाँ वर्णित सुख-दु:ख को अपना लेता है। संवेदनशील साहित्यकार संवेदना के महत्व को जानता है क्योंकि संवेदना की प्रखरता ही साहित्य को श्रेष्ठ बनाती है। सामाजिक गतिविधियों से प्रभावित साहित्यकार अपनी मन की अनुभूतियों को शब्द देने के लिए बाध्य हो जाता है चाहे वे सुखात्मक हो या दु:खात्मक। रचनाकार के मन की संवेदनाएं गद्य अथवा पद्य की पंक्तियाँ बनकर कागज पर उतरकर साहित्य का रूप धारण करती है। साहित्य द्वारा ही पाठक की संवेदना परिष्कृत होती हैं।

संवेदनशील व्यक्ति का ज्ञान, चिंतन, दर्शन, विज्ञान सब पहले जीवन में आत्मसात होता है, फिर मानव संवेदना का अंग बनकर शक्तिशाली साहित्य के रूप में सामने आता है। साहित्य प्रायः मानव हृदय से संबंधित होता है क्योंकि सृजन धर्मी की संवेदना हृदय से निकलकर सीधे पाठक के हृदय तक पहुँचती है। इस प्रकार संवेदना का विस्तार होता है और इस विस्तार का माध्यम साहित्य है। एक संवेदनशील साहित्यकार किसी घटना का इतना सटीक वर्णन करता है कि पाठक का हृदय पिघलकर आँसुओं की धारा के साथ बहने लगे। वह दूसरों के सुख-दु:ख तथा अनुभूतियों को इस प्रकार वर्णित करता है कि वे हमारा सुख-दु:ख बन जाता है, साहित्यकार परोक्ष घटना को वर्तमान में तथा सूक्ष्म भाव को स्थूल रूप में प्रस्तुत कर देता है।

साहित्यकार मानव मन की अनुभूतियों को अपने साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान करता है और ऐसे साहित्य को पढ़ते समय पाठक यह अनुभव करता है कि उसके द्वारा पढ़ी जा रही कृति जैसे उसके लिए ही लिखी गई हो या उसके जीवन से संबंधित हो। वह ऐसी कृति बार-बार पढ़ता है और हर बार के पाठ में उसका बौद्धिक विकास, उम्र के साथ अर्जित अनुभव और परिवेश की चुनौतियाँ उस कृति के अर्थ को नए आयाम प्रदान करती है, एवं सुख का अनुभव कराती है। “समाज की जो अनुभूति लेखक को होती है, वह रचना प्रक्रिया में आने पर

कुछ और बदल जाती है। कृति के रूप में उसका स्वतंत्र अस्तित्व हो जाता है। अपनी कृति को पूरा कर लेने पर कभी-कभी लेखक को स्वयं बहुत ही सुखद आश्चर्य होता है, क्योंकि वह एक अनोखी और अप्रत्याशित परिणिति पर पहुँच जाता है।"[40]

मनुष्य की संवेदना को सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश विविधता प्रदान करते हैं। साहित्यकार में युगीन चेतना के स्वर उभरते हैं, जो उसी युग द्वारा रूढ़ी बन चुके मूल्यों को तोड़ने का प्रयास करते हैं। यही स्वर मनुष्य को समाज, परिवार एवं राजनीति में फैली द्वेष भावना, गुट बाजी, भ्रष्टाचार अनैतिकता आदि से आदि से हार न मनाकर उससे संघर्ष करने तथा नए जीवन मूल्यों की स्थापना करने के लिए प्रेरित करते है क्योंकि, "मनुष्य न केवल एक जीव वरन् मन, बुद्धि संपन्न प्राणी भी है, इसलिए उसकी संवेदना जैविक धरातल पर हीन रहकर मन-बुद्धि की भूमि पर सक्रिय होती है, जिससे उसका स्वरूप जैविक संवेदना से अधिक विशिष्ट हो जाता है। मनुष्य की संवेदना इस भूमि पर पहुँचकर मात्र प्रतिक्रियात्मक न होकर चिंतन से भी जुड़ती है।"[41]

आज वैयक्तिक स्वार्थ एवं आर्थिक भावना को जीवन में प्रमुख स्थान देने के कारण नैतिक मूल्यों में कमी पाई जा रही है। मनुष्य का व्यक्तित्व द्वंद्वात्मक और इस द्वंद्व का कारण मानव मन की इच्छाएं है। जिसके कारण उसके मन में अंतर्द्वंद्व होता है। मानसिक तनाव के कारण व्यक्ति सही-गलत निर्णय नहीं ले पाता। आज रिश्ते-नाते संवेदना आदि सब कुछ उलझ चुका है। अत्याचार में वृद्धि हो रही है। अनैतिक संबंध, जीवन जीने की स्वतंत्रता का सार्थक उपभोग बन गया है। अतः अवसाद की प्रवृत्ति बढ़ रही है। युवा-पीढ़ी अर्थ, विसंगति के कारण दिशाहीन हो रही है। समाज में नैतिकता, मानवीय-मूल्य, संवेदना और सामाजिक व्यवहार का कोई स्थान नहीं रहा है। अतः आज प्रत्येक व्यक्ति बाहरी एवं आंतरिक परिस्थितियों से संघर्ष करता दिखाई पड़ रहा है। समाज में टूट रहें इन जीवन-मूल्यों और सामाजिक व्यवस्था के इस खोखलेपन को साहित्यकार अपने साहित्य में अभिव्यक्त कर रहा है।

साहित्यकार सृजनात्मक कार्य करते समय किसी विषय के संदर्भ में सामान्य जन के भाव से तादात्म्य स्थापित कर अपने मन की प्रतिक्रिया सार्वजनिक तौर पर व्यक्त करता है और व्यक्त करने के पश्चात वह प्रतिक्रिया सामान्य जन की बन जाती है। यही प्रतिक्रियात्मक क्षमता साहित्य में संवेदना कहलाती है। इस तरह साहित्य और संवेदना का अभिन्न संबंध है।

2.3 संवेदना के विविध रूप:

साहित्यकार सामाजिक एवं संवेदनशील होता है । वह सामाजिक परिस्थितियों से सदैव प्रभावित होता रहता है। युग चेतना उसके साहित्य को प्रभावित किए बिना नहीं रहती है। संवेदना का निम्नवत वर्गीकरण किया जा सकता है –

1) स्थायविक संवेदना - ग्रंथि और मांसपेशियों के संचालन से स्थायविक संवेदना उत्पन्न होती है।
2) विशिष्ट संवेदना – जिस संवेदना से विश्व के विभिन्न पदार्थों को पहचाना जा सकता है एवं जो बाहरी उत्तेजना से उत्पन्न होती है उसे विशिष्ट संवेदना कहते है। यह संवेदना विशेष अवयव से संबंध रखती है और प्रत्येक ऐसी संवेदना दूसरी इंद्रिय संवेदना से पृथक की जा सकती है। इसके घ्राण, रस, त्वचा, दृष्टि तथा आंतें संवेदना आदि भेद हैं। इन्हीं संवेदनाओं द्वारा हमें विश्व के पदार्थों का ज्ञान होता है।
3) अंकरावयव संवेदना – प्राणी के शरीर की आंतरिक अवस्था के कारण उत्पन्न होनेवाली पाचनक्रिया, रक्त संचार और वास-प्रस्वास आदि के अवयवों से संबंधित संवेदनाएं अंकरावयव संवेदना कहलाती है।[42]

संवेदनाएं ऐसी सरलतम मानसिक प्रक्रिया है जो विभिन्न ज्ञानेंद्रियों द्वारा अभिभूत होती है। संवेदनाएं शारीरिक भी है और मानसिक भी। पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसा कहा जा सकता है कि ज्ञानात्मक संबंध का वे सर्वप्रथम और सरलतम रूप है।

मनोविज्ञान के माध्यम से मानव के मानसिक जीवन का अध्ययन तो किया जा सकता है, साथ ही परिवेश से उत्पन्न हुए अलग-अलग प्रकार के उत्तेजक मन पर जो प्रभाव डालते है उनका महत्व भी मनोविज्ञान के माध्यम से समझा जा सकता है। मनोविज्ञान में संवेदना को आठ भागों में वर्गीकृत किया गया है।[43] जो निम्नवत् है -

1) दृष्टि संवेदना
2) ध्वनि संवेदना
3) प्राण संवेदना
4) स्पर्श संवेदना
5) स्वाद संवेदना

6) मांसपेशीय संवेदना

7) आंतरिक संवेदना

8) संतुलन संवेदना

उपरोक्त संवेदनाओं को ऐंद्रिय संवेदनाएँ भी कहा जा सकता है। यही संवेदनाएँ बाद में अनुभव द्वारा वैचारिक संवेदनाओं में प्रतिफलित होती है। साहित्य में स्वायविक संवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओं का अधिक प्रयोग होता है। भावुक व्यक्ति अधिक संवेदनशील होता है क्योंकि उसमें जागृत संवेदनाएँ अधिक होती है।

मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार संवेदना के आठ रूप बनाएँ गए है –

1) चाक्षुक संवेदन

2) श्रवण संवेदन

3) घ्राण संवेदन

4) स्वाद संवेदन

5) स्पर्श संवेदन

6) संतुलन का संवेदन

7) गति संवेदन

8) आंगिक संवेदन

उपरोक्त सभी संवेदनों की घटित होने की प्रणाली एक ही है। किसी संवेदन का विश्लेषण करने पर निम्न स्तर मिलते है –

1) उद्दीपन की उपस्थिति

2) ग्राह केंद्रीय पर उद्दीपन का प्रभाव

3) ग्राह केंद्रीय में तंत्रिका आवेग की उत्पत्ति

4) तंत्रिका आवेग का ग्राह केंद्रीय से संलग्न संवेदी तंत्रिका विशेष द्वारा मस्तिष्क के संवेदनात्मक केंद्र में पहुँचाना।

5) केंद्र की तंत्रिका कोशिकाओं में एक प्रकार का परिवर्तन या संवेदना।[44]

प्रमुखत: संवेदना शारीरिक एवं मानसिक अनुभूति है । यह अनुभूति हमें देखकर, सुनकर, पढ़कर स्पर्श कर के ग्रहण होती है । साहित्यकार के सृजन का आधार यही संवेदनाएँ होती है । नवीन धारणाओं या विचारों का प्रभाव समाज पर पड़ता है और यह प्रभाव साहित्यकार की रचनाओं में भी दिखाई पड़ता है । रचनाकार अपनी रचनाओं में संवेदना की अभिव्यक्ति करते हुए परिवेश, देशकाल, वातावरण तथा वर्तमान मानसिकता को भी महत्व दे सकता है ।

इस प्रकार साहित्यिक संदर्भ में संवेदना के विविध रूप मिलते है । जैसे-

1) वैयक्तिक संवेदना
2) सामाजिक संवेदना
3) राजनीतिक संवेदना
4) धार्मिक संवेदना
5) सांस्कृतिक संवेदना’
6) आर्थिक संवेदना
7) साहित्यिक संवेदना [45]

2.3.1 वैयक्तिक संवेदना – कोई भी संवेदनशील व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को सामाजिक मान्यताओं में ढालने का प्रयास करता है, वह व्यक्तिगत रूप से किसी घटना या व्यक्ति का वर्णन निजी तौर पर स्वयं की वैयक्तिक संवेदना रूप करता है । वह पात्रानुरूप एवं प्रसंगानुरूप जो सुख-दु:ख का अनुभव करता है उसे अपने विचारों द्वारा प्रकट करता है एवं अपनी लेखनी द्वारा संवेदना व्यक्त करता है । यहीं संवेदनाएं वैयक्तिक संवेदनाएँ कहलाती है।

वर्तमान युग में चारों ओर आधुनिकता एवं पूंजीवाद का बोलबाला है । मनुष्य निरंतर प्रगति करते हुए वह चंद्रमा पर पहुँच गया है पर अपने स्वयं के घर में वह अकेला पड रहा है । आज व्यक्ति ‘स्व’ तक

ही सीमित हो चुका है। वह संस्कार एवं नैतिक मूल्यों की उपेक्षा कर रहा है। वह भौतिकतावादी तथा अमानवीयता के कारण संवेदनहीन हो गया है। दूसरों की सुख-दु:ख की अनुभूति को वह नजरंदाज कर रहा है।

समाज से होने पर भी वह अपना अलग अस्तित्व चाहता है। आज के हिन्दी साहित्य में वैयक्तिक संवेदना को स्थान मिला है, जिससे व्यक्ति की मैं प्रवृत्ति दिखाई पडती है। साहित्यकार अपने साहित्य में व्यक्ति की घुटन, पीड़ा, अनास्था, स्वार्थपरता एवं कटु अनुभवों का चित्रांकन कर रहा है।

2.3.2 सामाजिक संवेदना - सामाजिक संवेदना वैयक्तिक संवेदनाओं से जुडी होती है क्योंकि व्यक्ति समाज का आधार होता है। समाज एवं व्यक्ति एक दूसरे के सहारे ही पनपते हैं। समाज के बिना व्यक्ति एवं व्यक्ति के बिना समाज का अस्तित्व अकल्पनीय है। जैसे समाज में परिवर्तन या बदलाव होता है, वैसे-वैसे व्यक्ति की संवेदना भी परिवर्तित होती रहती है। जो संवेदना हमें समाज, समाज की परंपराओं, रूढ़ियों, मान्यताओं से अवगत कराती है उसे ही सामाजिक संवेदना कहते हैं। व्यक्ति एवं समाज एक ही सिक्के के दो पहलू माने जाते है।

आज समाज भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, छल कपट, छुआछूत, सांप्रदायिकता एवं वर्गों में जकड़ा हुआ है। अन्य समस्याएँ जैसे पर्यावरण, प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी आदि को देखकर व्यक्ति शोकग्रस्त होता है, इनके विरुद्ध आवाज उठाना ही सामाजिक संवेदना है। जिस युवा वर्ग को राष्ट्र निर्माण एवं विकास करना है वह रोजी रोटी की तलाश में व्यस्त एवं त्रस्त है। भ्रष्ट राजनीति ने समाज को जाति केंद्रित कर दिया है। जहाँ सामाजिक एकता टूट रही है, वही नैतिक मूल्य भी खतरे में है। स्वकेंद्रित दृष्टिकोण एवं पारिवारिक संबंधों के बिखराव के कारण व्यक्ति की सोच अर्थ में केंद्रित बन गई है। आज जहाँ नारी का आर्थिक रूप से स्वतंत्र अस्तित्व है वहाँ उसके दाम्पत्य जीवन में अलगाव एवं विघटन भी हुआ है। आज समस्त समाज का आधार ही परिवर्तित हो चुका है।

साहित्यकार समाज में व्याप्त बुराइयों से निजात दिलाने हेतु समाज को पुनर्गठित और देश की संस्कृति को पुनर्जागृत करने का प्रयास करता है। एक समृद्ध साहित्यकार अपनी कलम से समाज, देश, राष्ट्र के समक्ष आवाज उठाता है। प्रत्येक युग का साहित्य सामाजिक समस्याओं से जुड़ा होता है। समाज में व्याप्त विसंगतियों, रूढ़ियों, विडंबनाओं, अंधविश्वास आदि को साहित्यकार मानवीय संवेदना के गहरे रूप से व्यंजित करता है।

2.3.3 राजनीतिक संवेदना – राजनीतिक संगठन लोगों को सामान्य हितों की जानकारी देते है । उनके राजनीतिक अधिकार एवं कर्तव्यों की रक्षा करते हैं । उसके निर्माण एवं विकास का प्रयत्न करना ही राजनीतिक संवेदना है । साहित्यकार का परिवेश राजनीति सो प्रभावित रहता है । राजनीतिक घटनाएँ एवं परिस्थितियाँ युग विशेष के परिवेश को प्रभावित करती रहती है । वैदिक युग से ही प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से ही साहित्यकार का संबंध राजनीति से रहा है । राजनीति विषयक विभिन्न मान्यताएँ समय-समय पर विद्वानों द्वारा स्थापित की जाती है । प्राचीन काल में राज शासन का संचालन करता था । राजा का शारीरिक एवं मानसिक रूप से शक्तिशाली होना आवश्यक था । साहित्यकार राजनीति, राजा के कर्तव्य, सेवा, युद्ध, नीति, अस्त्र तथा राष्ट्रप्रेम के संबंध में अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करता था ।

संस्कृत के आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने राजा राम एवं उनके संबंध में अपनी संवेदनाओं को विस्तार के साथ चित्रित किया है । महाभारत में वेद व्यास ने राजनीतिक संवेदनाओं को बाह्य पटल पर अंकित किया है। भक्तिकाल में भक्त शिरोमणि तुलसीदास जैसे महान कवि ने राम एवं उनके राज्यवर्णन के माध्यम से अपनी राजनीतिक संवेदनाओं को व्यक्त किया है । रीतिकाल के आचार्य केशव स्वयं राजनीतिक थे । छायावादी एवं प्रगतिवादी युग में राजनीतिक साहित्य का वर्णन पाया जाता है ।

राजनीतिक संवेदना में विभिन्न मत प्रवाहों वाले भिन्न-भिन्न संघटनों के क्रिया-कलापो एवं व्यक्तियों के आपसी संबंधों को भी सम्मिलित किया जा सकता है । इन संबंधों में नारी का विशेष महत्व है । राजनीतिक संवेदना के कारण ही आधुनिक भारत में इंदिरा गांधी एवं प्रतिभा पाटील प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति पद पर विराजमान हो सके । अन्य बहुत सी स्त्रियाँ राजनीतिक क्षेत्र में बढ़-चढ़कर भाग लेकर अपनी संवेदना का परिचय दे रही है । आज राजनीति पर धर्म आदि का बुरा प्रभाव पड़ रहा है । राजनीतिक दल जातिगत आधार बन रहे हैं। ऐसे हालत को देखकर मन दु:खी होता है । एक संवेदनशील व्यक्ति ही ऐसे अनुभव कर सकता है और इन बुराइयों के विरोध में आवाज उठा सकता है । यही राजनीतिक संवेदना साहित्य में अपना स्थान बना लेती है क्योंकि राजनीति का साहित्य से गहरा संबंध है । प्रेमचंद ने राजनीति को साहित्य की मशाल अर्थात दिशा दर्शक माना है । एक संवेदनशील या साहित्यकार राजनीति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता और यही प्रभाव उसके साहित्य में प्रस्तुत होता है । कोई भी साहित्यिक अपने समय की राजनीति से प्रभावित होता है ।

2.3.4 धार्मिक संवेदना : भारत का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में ईश्वर की आराधना करता है। हमारा देश एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। भिन्न-भिन्न धर्म के होते हुए भी यहाँ के लोग एक-दूसरे के धर्म का आदर करते हैं। एक-दूसरे के साथ मिलकर रहते हैं, सुख-दु:ख में एक-दूसरे का साथ देते हैं। मिलकर उत्सव, त्यौहार मनाते हैं। धर्म का मूल स्रोत है आस्तिकता। यह भावना पर केंद्रित होता है। श्रद्धा से पलता है और विश्वास से पुष्ट होता है। हमारा देश आस्तिकवादी देश है। यही कारण है कि इस देश में धार्मिक भावना पूर्ण विकसित रूप से परिलक्षित होती है।

आज धर्म के नाम पर अत्याचारों में वृद्धि हो रही है। मानव के हृदय में प्रेम, उदारता, सहानुभूति जैसी भावनाएँ लुप्त हो रही है। नैतिकता एवं मानवता मानों गायब हो गई हो। इसका कारण यह है कि लोगों में धार्मिक संवेदना नहीं रही हैं। धर्म मनुष्य को भौतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर सोचने के लिए विवश करता है। इस भावना का विकास धार्मिक संवेदना द्वारा ही संभव है। यह भावना पुरुष-नारी, अमीर-गरीब सभी में एक समान होती है। धर्म द्वारा व्यक्ति को आत्मज्ञान होता है। जिससे वह दूसरों को अच्छी तरह समझकर राष्ट्रीय एकता के लिए बढ़ावा देता है। अतः धर्म ही मानव में सामंजस्य के भाव जागृत कर उसके जीवन को आदर्श बनाता है और ऐसा तभी हो सकता है यदि हम एक-दूसरे के धर्मों की निंदा ना करें, सभी धर्मों को एक समान समझे और किसी धर्म विशेष को किसी पर जबरन न थोपें। प्रत्येक धर्म को उच्च बनाने धर्म निरपेक्षता के लिए जो प्रयत्न किया जाता है वही धार्मिक संवेदना है।

2.3.5 सांस्कृतिक संवेदना - "आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक संघटन, नैतिक परंपरा और सौंदर्यबोध को तीव्रतर करने की योजना; ये सभ्यता के चार स्तंभ है। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती है।"[46]

संस्कृति का शाब्दिक अर्थ उत्तम बनना, संशोधन करना या परिष्कार करना। शाब्दिक दृष्टि से संस्कारों द्वारा जो भाव जीवन में कृति रूप में प्रकट होते हैं, उन्हें संस्कृति कहा जाता है। आदर्श व्यक्तित्व की ओर अभिमुख करने की वृत्ति को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति मानवीय मूल्यों का दर्पण है। इनकी रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। मनुष्य को जानवर से अलग करने में संस्कृति विशेष महत्वपूर्ण है; इसलिए संस्कृति को समझना विशेष रूप से साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में नितांत आवश्यक है। परिष्कार और परिमार्जन संस्कृति के मूल तत्व है, जो इसे सभ्यता से अलग कर के मौलिक स्वरूप में स्थापित करते हैं।

सांस्कृतिक संवेदना को बनाएं रखने के लिए सांस्कृतिक मूल्य उपयोगी होते है, जो मानवीय अवस्थाओं में जुड़े होते है।

सांस्कृतिक संवेदना का उन्नत रूप साहित्य ही है। सांस्कृतिक मूल्य श्रेष्ठ साहित्य के सृजन के आधार बनते हैं और अमर साहित्यिक कृतियाँ हमारे संस्कृति को नया रूप देती है। साहित्य संस्कृति को लीपीबद्ध कर उसे स्थायित्व प्रदान करता है। इस तरह एक साहित्यकार संवेदनशील होता है। इसी के कारण ही सांस्कृतिक मूल्यों का प्रचार करता है।

संस्कृति का लक्ष्य व्यक्ति और समाज के सम्मुख ऐसे आदर्शों, गुणों को रखना होता है जो उनके अनुसार जीवन निर्माण करके व्यक्ति तथा समाज के लिए मंगल साधना कराने में सहायक हो। सांस्कृतिक संवेदना के कारण ही मनुष्य संस्कृति को उच्च एवं आदर्श रूप देने में एक जुट रहता है।

अतः साहित्य में संवेदना अनेक रूपों में चित्रित होती है। मूलतः साहित्य में रचनाकार की सांस्कृतिक संवेदना बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

2.3.6 आर्थिक संवेदना- हमें जीवन के जिन चार पुरुषार्थ बताएँ गए है उनमें अर्थ भी एक पुरुषार्थ है। यह मानव जीवन की धुरी एवं ऊर्जा का स्रोत है। अर्थ जीवन का महत्वपूर्ण मूल्य और समाज की रीढ़ की हड्डी है। अर्थ उत्पादन के साधनों, सामान वितरण, अर्थ भाव से उत्पन्न स्थितियों,विसंगतियों और समस्याओं का ज्ञान और अनुभूति ही आर्थिक संवेदना का कहलाती है। आधुनिक युग में अर्थ के प्रति मनुष्य का लोभ बढ़ता ही चला जा रहा है। जिससे सामाजिक संबंध बिखर रहे हैं। अर्थ की अपेक्षा जीवन को भयावह बना देती है। पाश्चात्य भौतिकवादी जीवन दर्शन से प्रभावित होकर आज व्यक्ति अर्थतंत्र के जाल में फंसता जा रहा है कि हर मोड़ पर उसे अर्थ की चिंता लगी रहती है।

आज सामाजिक संबंधों में बिखराव आ रहा है। पारिवारिक एवं सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है। संयुक्त परिवार तो मुश्किल से दिखाई पड़ रहे हैं। पैसों की इस अंधी दौड़ में इंसान ने हैवान का रूप धारण कर लिया है। उसे अपने समक्ष सभी रिश्ते-नाते खोखले लगते हैं। ऐसे हालात को देखकर अथवा इनके प्रति दु:ख अनुभव करना ही आर्थिक संवेदना है। आर्थिक संवेदना द्वारा ही इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

2.3.7 साहित्यिक संवेदना – मनुष्य एक सामाजिक एवं भावप्रधान प्राणी है। समाज में रहते हुए उसने सुख-दु:ख, हर्ष-शोक, भय-विस्मय की अनंत अनुभूतियों का ग्रहण किया एवं उसे प्रकट करने, अभिव्यक्त करने की

लालसा जागृत हुई एवं वह लिखने लगा। इस तरह साहित्यकार बने। साहित्यकार पहले साधारण मनुष्य होता है। उसके परिवेश में कुछ ऐसी विशेष घटनाएँ घटित होती है जो उसे लिखने को बाध्य करती है। उसका संबंध व्यक्ति और समाज दोनों से होता है। साहित्यकार जनसामान्य की अपेक्षा अधिक सहृदय एवं संवेदनशील होते हैं। वही साहित्य लाभकारी होता है जो संपूर्ण मानवता को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करता है। समाज में फैली कुरीतियों, बुराइयों को समाप्त करने का जोश भरता है। हमें जीवन में आगे बढ़ने के लिए साहित्य की आवश्यकता होती है। हरदयाल जी के अनुसार,“ जिनकी इंद्रियाँ सर्वाधिक संवेदनशील है वह दूसरे पदार्थों, वनस्पतियों, प्राणियों के संपर्क में निरंतर आता है और इस संपर्क के कारण उसमें अनुकूल या प्रतिकूल प्रतिक्रिया अनिवार्यता जागृत होती है। ”[47]

जब हमारा हृदय उदार और संवेदनशील होगा, बुद्धि सूक्ष्म सार ग्रहणी होगी और संकल्प महान और शुभ होगा तब ही हमारी राजनीति, अर्थनीति, नवनिर्माण की योजनाएं सभी के लिए कल्याणकारी साबित होती है। इस कार्य के लिए सामान्य साहित्य नहीं बल्कि कविता, कहानी तथा उपन्यास की रचना करनी पड़ेगी। साहित्य के प्रति इतनी चिंता, उदारता ही साहित्यिक संवेदना है।

अतः संवेदना हमारे अंतर्मन और चेतन अवस्था की वह स्थिति है जिसमें किसी भाव को महसूस करने के पश्चात उत्तेजना उत्पन्न होती है और हम उत्तेजित होकर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं अर्थात संवेदना ज्ञानेंद्रियों की अनुभूति है, जो प्रथम सचेतन प्रतिक्रिया के रूप में उपस्थित होती है।

2.3.8 मानवीय संवेदनाओं के विविध रूप

साहित्यकार अति संवेदनशील प्राणी होता है। सामाजिक परिस्थितियाँ उसे निरंतर प्रभावित करती रहती हैं। युग चेतना के स्वर उसके कृतियों में अनिवार्य रूप से दिखाई पड़ते है। वह युगीन यथार्थ को अपनी संवेदना एवं व्यक्तित्व के साँचे में ढालकर एक नया रूप देता है। साहित्यकार समाज में रहता है परंतु वर्तमान पत्र के संवाददाता के भाँति मात्र तथ्यों का संकलन और प्रस्तुतिकरण नहीं करता। वह पहले तथ्यों को देखता, समझता, परखता है फिर जड़ तक पहुँचकर उनका विश्लेषणपरक सार प्रस्तुत करता है। वह सार को पकड़कर पाठकों तक उसे पहुँचाता है। पाठक हो या समीक्षक उसमें इसे पकड़ने की क्षमता होनी चाहिए। साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से पाठक पर पूरा नियंत्रण पा लेता है, उसकी संवेदनाओं को झिंझोडकर बाहर खींचने का सामर्थ्य उसमें होता है। प्रतिदिन वर्तमान पत्र में समाचारों से करोना से मृत व्यक्तियों का समाचार जितना

विचलित नहीं करता उतना किसी रचनाकार की कृति में किसी परिवार के एक भी व्यक्ति के मृत्यु का रचनाकार की प्रस्तुति को पढ़ते है तो उससे अधिक द्रवित हो उठते हैं। रचनाकार की लेखनी उस व्यक्ति के परिवार के दायित्व, उसकी पत्नी एवं बच्चों के दु:ख का इस तरह वर्णन करती है कि हम बहुत अधिक दु:खी हो जाते है हमारे आँसू बरबस टपक पड़ते हैं।

2.3.8.1 रागात्मक संवेदना – मानव हृदय के राग-विराग, हर्ष-द्वेष, प्रेम-घृणा, क्रोध-प्रति हिंसा आदि नाना भावों को रचना में प्रस्तुत करना ही रचनाकार की रागात्मक संवेदना है। इसका विश्लेषण करते हुए रामचंद्र जी तिवारी कहते है कि, "लौकिक और अलौकिक से संबद्ध अपने विचारों को जब वह अंतर के समूचे भावोद्वेग से सिंचित कर प्रस्तुत करता है, तभी रागात्मक संवेदना तीव्रतर होती है।"[48] सस्ती भावुकता एवं रहस्य विधायिनी कल्पना की पुनरावृत्ति में रागात्मक संवेदना का लोप होता है। रागात्मक प्रमुखत: द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, घृणा आदि भावों से संबंधित है। किसी घटना, प्रसंग या वस्तु को देखकर हमारे मन में राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि भावों की निर्मिति होती है।

रागात्मक संवेदना ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। जो सुख में हँस नहीं सकते, दु:ख में रो नहीं सकते, हँसने को हलकापन और रोने को कमजोरी समझते हैं, उनमें जीवन कहाँ रहा है, यह तो मानवीय संवेदनाओं का गला घोंटने की चेष्टा हुई है।

संवेदना के तीन उप भेद है –

क) संयोगात्मक संवेदना

ख) वियोगात्मक संवेदना

ग) मूल प्रवृत्तिपरक संवेदना

घ) मानवेतर प्रेमपरक संवेदना

क) संयोगात्मक संवेदना

डॉ. उषा यादव के अनुसार "संयोग-वियोग जीवन के दो पक्ष हैं। संयोग के मधुर क्रीड़ा क्षणों के अनंतर वियोग की दाहकता भी अगर मनुष्य को झेलनी पड़े, तो इससे मिलन के भावभीने क्षणों की मधुरिमा घट नहीं जाती। उनकी स्मृति फूलों की सुवास की तरह चिरकाल तक मानव-हृदय को अनुरंजित करती रहती है।"[49]

डॉ. उषा यादव मानती है कि,जीवन में सुख-दु:ख की भाँति ही संयोग और वियोग भी आते जाते है। वियोगात्मक संवेदना के पश्चात संयोगात्मक संवेदना का आना उसकी महत्ता शत-प्रतिशत बढ़ा देता है। संयोग काल में मनुष्य का मन अति उत्साही होता है। वह कल्पना में भी वियोग की बात नहीं सोचता है। संयोग की घड़िया उसमें दृढ़ता पैदा करती है कि वह वियोग के क्षणों में दृढ़तापूर्वक मुकाबला कर सकें।

ख) वियोगात्मक संवेदना

वियोगात्मक संवेदना मनुष्य की परीक्षा की घड़ी होती है। इसके चलते कुछ लोग टूट जाते है। वियोग सदैव पीड़ादायी होता है। आपसी तालमेल के अभाव, मतभेद, अंहभावना के कारण दो व्यक्तियों को वियोग से गुजरना पड़ना है। कभी-कभी अन्य सदस्यों द्वारा पैदा की गई गलतफहमी भी वियोगात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है। जब इस वियोग काल में अधिक समय तक समाना करना पड़े तब उसका दु:ख कल्पनातीत हो जाता है। डॉ. उषा यादव के अनुसार "वियोग तभी पीड़ादायी होता है, जब दो प्राणियों में प्यार, जुड़ाव, अपनत्व रहा हो। जब संग-साथ मन में कोई चाहत न जगाए, तो बिछोह भी मन को वीतराग ही रखेगा।"[50] जब एक-दूसरे में कोई लगाव ना रहा हो, अपनापन ना हो तब साथ-साथ रहकर भी कोई लाभ नहीं, उसमें तो वियोग ही बेहतर होता है।

ग) मूल प्रवृत्तिपरक संवेदना

मूलप्रवृत्तियाँ मानव में जन्मजात पाई जाती है। जो कार्य बिना सीखे प्राकृतिक प्रेरणाओं के आधार पर होते है वह मानव की मूल प्रवृत्तियाँ कहलाती है। भूख-प्यास, दु:ख-सुख, गुस्सा, संवेदना आदि।

डॉ. उषा यादव के अनुसार, "मूलप्रवृत्तियों का आशय उन आदिम वृत्तियों पर है, जिनके कारण जाति विशेष के सभी प्राणी एक ही ढंग से, बिना सीखे हुए क्रियाओं की श्रृंखला संपादित करते हैं। परंतु यह बात कीट-पतंग, पशु-पंक्षियों आदि के संदर्भ में तो सत्य ठहरती है, मनुष्य के संदर्भ में नहीं। मनुष्य के संदर्भ में कहा जा सकता है कि, मूलप्रवृत्तियाँ वे वृत्तियाँ है, जो जन्मजात होती है तथा जिनके कारण व्यक्ति एक विशिष्ट प्रकार का आचरण करता है।"[51]

मूलप्रवृत्ति की व्याख्या करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में कहा गया है कि, " बुद्धि, शिक्षा और संस्कृति के फलस्वरूप लक्ष्यों तथा उनके प्राप्ति साधनों के मौलिक आदिम रूपों का उदात्तिकरण और प्रस्फूटन हो

सकता है, किन्तु मूलप्रवृत्ति परिष्कृत और संस्कृत कितनी ही क्यों ना हो जाए, उसका नाश कभी नहीं होता। मानवीय चरित्र, साहित्य, कला, धर्म आदि की नींव की ईंटें मूलप्रवृत्तियाँ है।"[52]

हिन्दी साहित्य में मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाओं के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं जो निम्नवत है –

1.करुणापरक संवेदना – दूसरों के दु:ख-दर्द को देखकर मनुष्य में जो संवेदना जागृत होती है, वह करुणापरक संवेदना कहलाती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि, "क्रोध जिनके प्रति उत्पन्न होता है, उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिसके प्रति उत्पन्न होती है, उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है।"[53]

करुणा के प्राप्ति के लिए पात्र में दु:ख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं होती। मनुष्य के अंतःकरण में सात्विकता की ज्योति जगानेवाली यही करुणा है। सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करुणा का प्रसार आवश्यक है। प्रिय के वियोग में जो दु:ख होता है उसमें कभी-कभी दया या करुणा का भी कुछ अंश मिला रहता है।

चित्रा मुद्गल ने 'मोरचे पर' इस कहानी में पिता सुदीप युद्ध में शहीद हो जाता है, उसकी पत्नी दो बच्चों को संभालती है। इस कहानी में कई कारुणिक दृश्यों का चित्रण किया गया है। "उनके सहमें कंठ भरने लगे। ममा के रुदन का कारण वे नहीं जानते थे, पर उनके लिए इतना पर्याप्त था कि ममा रो रही है तो वे चुप कैसे रह सकते है। अंकल ने उनकी ओर करुणा से देखा। संकेत से उन्हें कट बुलाया और उन्हें बाजुओं में भरकर चूम लिया। -"अरे पागलो ! तुम्हें क्या हो गया तुम क्यों अपना मन छोटा करते हो ?"[54]

'सौंदा' इस कहानी में जब गेंदा को पता चलता है कि गेंदा को किसी ड्राइवर ने गाँव से लाकर शहर में दलाल के हाथों बेच दिया है और वह भागकर उसके घर शरण के लिए आई तब उसे कहती है, "बड़ी मुश्किल हुई अपने को समेटकर गेंदा का ढाढस बंधाने में -"छि:छि: बहुत बुरा हुआ तेरे साथ... " अपना भी गला भर्राता हुआ हो आया - "जी छोटा मत कर कोई ना कोई रास्ता निकलेगा।"[55]

2.क्रोधपरक संवेदना - क्रोध या गुस्सा एक भावना है। दैहिक स्तर पर क्रोध करने पर हृदय की गति बढ़ जाती है। यह भय से भी उपजता है। क्रोध मानव के लिए हानिकारक होता है। इससे व्यक्ति की सोचने समझने की क्षमता लुप्त हो जाती है।

सामाजिक जीवन में क्रोध की जरूरत पड़ती रहती है। सामाजिक जीवन में क्रोध की जरूरत बराबर पड़ती रहती है। यदि क्रोध ना हो तो मनुष्य दूसरों के द्वारा पहुँचाए जानेवाले बहुत से कष्टों का उपाय ही नहीं कर पाएगा। क्रोध दु:ख के चेतन कारण के साक्षात्कार से होता है। क्रोध का वेग इतना प्रबल होता है कि कभी-

कभी मनुष्य यह भी विचार नहीं करता कि जिसने दु:ख पहुँचाया है उसमें दु:ख पहुँचाने की इच्छा थी या नहीं। क्रोध शांति भंग करने वाला विकार है।

चित्रा मुद्गल की विविध कहानियों में क्रोधपरक संवेदना का वर्णन पाया जाता है। 'जब तक बिमलाएँ है' इस कहानी में जब बिमला अपने पति के बारे में दीदी को बताती है कि वह उत्तर काशी में रह रहा है। पर उसे इतना ही समाधान है कि जहाँ भी है जिंदा तो है। वह कहती है, "गुस्सा कम नहीं था नालायक पे। बेलज्ज के मुंह चुरा के भागते ही विचार आया था कि लौंढे से चुडियाँ तोड़ अपने के रांड बेवा मान लू, फिर ढीली पड़ी तो आखिर यह सोच के कि जैसा भी है, छोरा-छोरी का बाप ठहरा। उनसे उनका बाप कैसे छीन लू दीदी !"[56]

'लेन' इस कहानी में क्रोधपरक संवेदना का प्रसंग लेखिका ने चित्रित किया है। जब मबहेंदरिया के पति पर चाकू हल्ला होता है। वह अस्पताल में दाखिल है। मबहेंदरिया थाने में रपट लिखवाती है। बड़े साहब बयान लेने अस्पताल आते है।"लोगों की उपस्थिति और अस्पताल के कायदे-कानून से अप्रभावित हो उसके सब्र और विवेक का बांध अचानक ढह पड़ा। वह बिलखती, रुदन करती बदहवास ही चीखने लगी, "मेरे से पूच्छो, साब ! मैं पेचाण सकती हूं उसे, साब...मैं ओ माणस को कैसे भूल सकती हूं, जिसने मेरे सुहाग को... मेरे बाल-बच्चों के आसरे को मिटाणा चाहा ! मैं उस हत्यारे को लाखों-करोड़ों में पिचाण सकती हूं ... मेरे सामने हाजिर करो उसे। ढेले मार-मार कुत्ते की जाण ले लूंगी...उसकी बोटी-बोटी मुहल्ले के कुत्तों को खिलाऊंगी।"[57]

3.घृणापरक संवेदना – मनुष्य को कुछ विषय रुचिकर एवं कुछ अरुचिकर प्रतीत होते हैं। इन अरुचिकर विषयों को अपने से दूर रखने की प्रेरणा करने वाले दु:ख को घृणा कहते हैं। घृणा का विषय इंद्रिय या मन के व्यापार में संकोच उत्पन्न करता है। हम अत्याचारी पर क्रोध एवं व्यभिचारी से घृणा करते हैं। कभी-कभी एक ही व्यापार से एक आदमी को घृणा मालूम हो रही और दूसरे को नहीं। जैसे दल बल सहित भरत को वन में आते देख निषाद राज को भरत के प्रति घृणा उत्पन्न हो रही है तो श्रीराम को नहीं।

सभ्यता या शिष्टता के व्यवहार में घृणा उदासीनता के नाम से छिपाई जाती है। दोनों में जो अंतर है वह प्रत्यक्ष है। जिस बात से हमें घृणा है, हम चाहते है वह बात न हो, पर जिस बात से हम उदासीन है उसके विषय में हमें परवाह नहीं रहती वह चाहे हो या न हो।

'लिफाफा' इस कहानी में बेरोजगार अशोक की कहानी पर प्रकाश डाला है। इस कहानी में उसकी बहन अनु नौकरी करती है। माँ उसका बहुत ध्यान रखती है। अशोक उससे घृणा करते हुए

कहता है, "यह जो बगल वाले पलंग पर चौतेरी-सी पाँच फिट चार इँच औरतनुमा लड़की औंधी पड़ी हुई है वह माँ को गुड़िया लगती है। गुड़िया बगैर कुल्ला किए चाय पीती है जब कि रात भर मुंह खोलकर सोती और तकिये पर ढ़ेरों बदबूदार थूक उगलती। अभी कोई पास बैठ जाए तो मुंह से उठता बदबू का भभका उसे टिकने न दे।"[58]

'इस हमाम में' कहानी में कचरा लेकर जानेवाली बाई अंजा अन्य फ्लौट वालों का दिवा के समक्ष वर्णन करती है, "बोत ऊँचा-ऊँचा लोग रहता है आपके पड़ोस में। चौंतीस लंबरवाली वो केशव मेम सा'ब है न। आपको तो यईच पत्ता होगा कि वो नाच-वाच सिखाती हय...डांस का किलास चलता है उसका। पर असल में..." कहते -कहते अंजा संकोचवश तनिक ठिठकी, "धंधा करती है छोकरियों का ! उनका घर का कचरे के साथ बोत सारा फैमिली प्लानिंग पड़ा रेता हय...क्या बोलेगा, छिह !" घृणा से मुंह बिचकाकर उसने जैसे किसी त्रस्त होकर नाक सिकोड़ी।"[59]

4.ईर्ष्यापरक संवेदना – ईर्ष्या एक ऐसा भाव है, जिसकी उत्पत्ति आलस्य, अभिमान और नैराश्य के योग से होती है। जैसे दूसरे के दु:ख को देखकर दु:ख होता है, वैसे ही दूसरों के सुख को देखकर जब दु:ख होता है तब उसी भाव को ईर्ष्या कहते है। अपने से दूर रहनेवाले व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या जल्दी नहीं पनपती किंतु अपने परिचित या निकट रहनेवाले व्यक्ति के लिए ईर्ष्या का तुरंत उदय होता है। यह एक अनावश्यक विकार है। यह व्यक्ति विशेष होती है। समाज में जहाँ दो व्यक्तियों में तुलना की संभावना हो वही ईर्ष्या उत्पन्न होती है।

ईर्ष्या इतनी कुत्सित वृत्ति है कि सभा, समाज में, मित्र-परिवार में, एकांत में कहीं भी स्वीकार नहीं की जाती। लोग अपना क्रोध, भय, घृणा, लोभ स्वीकार करते। यदि हमें ईर्ष्या के कारण किसी की प्रशंसा अच्छी नहीं लगती हो तो हम बड़े गंभीरता से उसके दोषों एवं त्रुटियों को प्रस्तुत करते हैं।

'वाइफ स्वैपी' कहानी में जब मेजर अहलूवालिया मिसेज फला के साथ रात गुजार कर प्रात: अपनी पत्नी से अनुभव साझा करते तब उसकी पत्नी अनु का ईर्ष्यापूर्ण वक्तव्य दृष्टव्य होता है। "वो तो तुम एकदम सही कह रहे। वाकई अचरज होता है यह देखकर कि उनके क्लब में दाखिल होते ही सारे मर्द बीवियों को छोड़ उनके इर्द-गिर्द मक्खियों से भिनकने लगते हैं। आखिर है क्या उस घमंडिन में -सिवा एक गोरी चमड़ी के ?"[60]

5.अहंभावना – अहंकार का शाब्दिक अर्थ है अहं की स्वीकृति या अपने होने की अनुभूति। अहं भावना एक स्वाभाविक एवं जन्मजात प्रवृत्ति है। दूसरे शब्दों में 'मैं हूँ' यह महसूस कराना ही अहं भावना है। अपने होने की

अनुभूति एक सापेक्षिक क्रिया है। यह अनुभूति हमें तभी होती है जब हम अपने से पृथक किसी व्यक्ति, वस्तु, भाव को अनुभव करते है। जीवित प्राणी अहं भावना से मुक्त नहीं हो सकता। यह तो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

'मैं' के भाव को दूसरे पर थोपने की कोशिश है अहं भाव। चित्रा मुद्गल ने 'ताशमहल' कहानी में अहं भाव को उजागर किया है। पति निशीथ पत्नी द्वारा अपने पहले पति से उत्पन्न बच्चे को आँख की किरच समझता है। वह यह तक कहने से नहीं चुकता कि, "इस घर में अपने और तुम्हारे बीच इसे मैं और नहीं बर्दाश्त कर सकता।"[61]

'प्रमोशन' कहानी में पुरुष अहंकार को दर्शाया है। भारतीय समाज में पुरुष को कुछ भी करने की खुली छूट होती है। अय्याशी या व्यभिचार भी उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। "पति यदि प्रमोशन पाए तो उसकी मेहनत व लगन, पत्नी तरक्की करें तो वह किसी अर्थात डॉ.कोठारी की अनुकंपा है...और बीच में शरीर आए बिना यह संभव नहीं !"[62]

6.दैन्यपरक संवेदना – जब स्वयं को छोटा समझा जाता है, तब ही दीनता का भाव दिखता है। भक्त अपने आराध्य के सम्मुख सदैव दैन्यपरक संवेदना प्रस्तुत करता है। दूसरों की करुणा जागृत करने के उद्देश्य से व्यक्ति अपने दीनता का प्रदर्शन करता है।

'भूख' कहानी में एक अभावग्रस्त माँ भूख से पीड़ित अपने बच्चे को भिखारिन को इस उम्मीद से दे देती है कि उसे कुछ खाने को मिलेगा। सांझ के समय बालक की दशा बिगड़ जाती है और नृशंस अत्याचार एवं भूख की ताब न सह पाने के कारण बच्चे के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। "डॉक्टर ने पल-भर लक्ष्मा को भेदती नजरों से देखा, फिर रूक्ष स्वर में बोले, "बच्चे को खानो को नहीं देती थी क्या ? बच्चा भूख से मर गया ...उसकी आंतें सूखकर चिपक गई थी।"[63]

'सौदा' कहानी में गेंदा जब दलाल के चंगुल से भार निकलती है एवं उसका पीछा करने वाले व्यक्तियों को चकमा देकर, दारुण अवस्था में घर में घुसती है तब दैन्य संवेदना का चित्रण मिलता है। "फूटती हिचकियों को बरबस सुआए ओठों में भींचने की असफल कोशिश करती हुई वह विगलित-सी उसके पैरो में दोहरी हो आई - "बड़ी मुश्किल से पिरान बचाय के भाग हैं... इज्जत बचाय लो हमारी... हमरी माई समान हो... तोहर उपकार जिनगी-भर न बिसरब....दारुण रुदन द्रवित कर गया।"[64]

7. लोभपरक संवेदना – लोभ प्रथम संवेदनात्मक अवयव है, किसी वस्तु का बहुत अच्छा लगना, उससे सुख या आनंद का अनुभव होना । वह आनंद स्वरूप है । इसे ही कोई अच्छी वस्तु के प्रति लोभ कहते है । "किसी प्रकार का सुख या आनंद देनेवाली वस्तु के संबंध में मन की ऐसी स्थिति को जिसमें उस वस्तु के अभाव की भावना होते ही प्राप्ति, सानिध्य या रक्षा की प्रबल इच्छा जाग पड़े तो लोभ कहते है।"[65]

जिस प्रकार लोभ से सानिध्य की इच्छा उत्पन्न होती है, उसी प्रकार सानिध्य से भी लोभ निर्मित होता है ।

'ब्लेड' कहानी में एक गरीब जरूरतमंद ड्राइवर रामखिलावन की मानसिकता दर्शाई गई है । उसकी पुत्री घुघुनू को प्लास्टर चढ़वाने के लिए अस्पताल ले जाना है । वह एडवांस माँगता पर साहब मना कर देते है। वह गाड़ी लेकर मैकेनिक के पास जाता है । मैकेनिक उसमें लोभपरक संवेदना जागृत करते हुए कहता है, "बड़े भोले बन रिए डिरेवर सा'ब ! लो, मतलब समझाए दे रिया मैं । देख, साहब गाड़ी चलाता नईं...किदर क्या कल-पुरजा, उसको पता नईं ! तू हफ्ते में कुछ भी नुस्क बना के गाड़ी घंटे-डेढ़ घंटे-भर इधर ला के खड़ा कर दिया कर। हर फेरे के पांच परसेंट पक्के ।"[66]

8.भयपरक संवेदना – जब हमें पता चलता है कि कोई परेशानी आनेवाली है तब एक प्रकार का आवेगपूर्ण मनोविकार होता है । उसे ही भय कहते है । भय भारी दोष माना जाता है और कायरता या भीरुता कहलाता है। यदि दु:ख का कारण चेतन होगा और यह समझा जाएगा कि उसने जानबुझकर दु:ख पहुँचाया है, तभी क्रोध होने पर भय के लिए कारण निर्दिष्ट होना जरूरी नहीं, इतना भर मालूम होना चाहिए कि दु:ख या हानि होगी ।

'सौदा' कहानी में रात के समय जब मंगला अकेली पटवर्धन ताई के घर निकलती है के घर निकलती है । उसे रास्ते में बहुत भय लगता है । "अचानक चौड़ी मांग-सी कढ़ी बीचोबीच वाली सड़क के आखिरी छोर पर उसे तीन परछाइयां डोलती, आगे बढ़ती दिखाई दीं । भय से गला सूख आया । फुर्ती से किनारे लगी मेहंदी की बेतरतीब बाड़ के पीछे दुबक ली । सांस दबाई । करीब से गुजरे तो उनकी बतकही ने उसे तनिक सहज किया।"[67]

'ब्लेड' कहानी में जब रामखिलावन गाड़ी में नई सींटे डलवाने जाता है एवं वह ईमानदार होते हुए भी कमिशन का सोचता है तब उसे बहुत भयप्रद अहसास होता है । "आगे वह कुछ कहने को हुआ तो अचानक उसे अपना गला सूखता महसूस हुआ । भीतर स्वयं से ही हाथापाई शुरू हो गई । ठीक वैसी ही सनसनी-भरी

धुकधुकी सीने में घुमड़ती महसूस हुई जैसे वह किसी चीज को लोगों की आंखें बचाकर जेब में डाल लेने की फिराक में हो और पूरी सतर्कता से निकल भागने की भी…यह चोरी है ! बेईमानी है !"[68]

9.कामपरक संवेदना – साहित्य में कामपरक संवेदना का चित्रण पाया जाता है। दांपत्य जीवन में सफल यौन संबंधों का अपना महत्व होता है। काम की अनुभूति का व्यापक एवं निसंकोच चित्रण होना चाहिए परंतु साहित्यकार की साहसिकता प्रदर्शन के लिए किया जाने वाला ऐसा लेखन रचनाकार की निकृष्ट मनोभावना का प्रतीक है। "प्रेम भले ही एक आदिमा अनुभूति हो, शरीरी-अशरीरी दोनों कोटि का हो, किन्तु उसके नाम पर वासना का नग्न चित्रण करना किसी साहित्यकार के लिए उचित नहीं है। एक संभोग चित्र को व्यापकता से प्रस्तुत करने का समर्थन नहीं किया जा सकता। साहित्य यथार्थ का कुत्सित चित्रण नहीं करता, वह उसकी सूक्ष्म कलात्मक संकेतों द्वारा प्रस्तुति करता है।"[69]

लेखिका ने 'मोरचे पर' इस कहानी के माध्यम से दांपत्य जीवन के कामपरक संवेदना का उत्कृष्ट चित्रण किया है। "कोरा ? … जरा हमारा खयाल रखा करो…अपने -आप करीब आकर और प्यार करके।' आहिस्ता से एक हथेली रेंगती उसे कमर से घेर लेती ! करीब सटाकर तेजी से गरदन घुमाती और उसके खुले कंधे पर होंठ टिका देती। वह मादक तंद्रा में सिहरती झपकने लगती।"[70]

वहीं चित्रा मुद्गल ने 'आवां' उपन्यास में अन्नासाहब एवं अंकिता के माध्यम से हस्तमैथुन का चित्रण किया है, जो अनुचित लगता है। "कैसी बेवकूफी कर रही हो ? …तुम बस इतना भर करो। आओ मेरी जांघ पर आकर बैठ जाओ। अच्छा रहने दो। जैसी बैठी हो वैसा ही रहो। अपने हाथ भर को मेरे नियंत्रण में दे दो।"[71]

घ) मानवेतर प्रेमपरक संवेदना – मानवेतर प्रेमपरक संवेदना के दो रूप मिलते हैं :

1) मनुष्य का जड़ वस्तुओं से संबंध

2) मनुष्य का मनुष्येतर चेतन प्राणियों से संबध।

1) मनुष्य का जड़ वस्तुओं से संबंध – जड़ वस्तुओं के प्रति मनुष्य में रागात्मक संबंध पाए जाते हैं। प्रकृति में पाए जाने वाले विविध जड़ वस्तुओं से यह लगाव देखा जाता है। परिसर में पड़े हुए किसी पत्थर से भी मनुष्य का संबंध बन जाता है। प्राकृतिक सुषमा को देखकर तो मनुष्य उसी में रममाण हो जाता है। उसके कण-कण में अद्भुत सौंदर्य बिखरा होता है। किसी पीपल के पत्तों को अपनी पुस्तक में महीनों संभालकर रखना भी नई बात

नहीं है। यह भी जड़ वस्तुओं के प्रति संवेदना ही दर्शाता है। महानगरों का दिन-रात दौड़ना ट्रैफिक, गगनचुंबी इमारतें, बस, ट्रेन का वर्णन भी मनुष्य का जड़ वस्तुओं से संबंध बनाता है।

2) मनुष्य का मनुष्येत्तर चेतन प्राणियों से संबध – मनुष्य का मनुष्य के समान ही अन्य मनुष्येत्तर चेतन प्राणियों से संबंध होता है। कोई कुत्ता, बिल्ली, तोता, कबुतर पालते है। तो किसी का अनुराग गाय-भैंस से भी होता है। वे उन पशु-पक्षियों को पारिवारिक सदस्यों की तरह रखते हैं। कभी-कभी तो पाया जाता है कि अपने स्वयं के बच्चों से अधिक लगाव व अपनापन इन प्राणियों के साथ होता है।

महादेवी वर्मा ने तो आजीवन अनेक पशु -पक्षियों के साथ समय व्यतीत किया है। उनके कई संस्मरण चित्रित किए है जिनके द्वारा इन प्राणियों के साथ उनके संबंध दर्शाते है। ये संस्मरण अमर हो चुके है फिर 'गिल्लू गिलहरी' हो या 'नीलू कुत्ता'। आज मनुष्येत्तर चेतन प्राणियों से सहसंबंध रखना अनिवार्य लग रहा है क्योंकि सयुक्त परिवार ना रहने के कारण अकसर मनुष्य अकेलापन एवं तनाव महसूस कर रहा है। पारिवारिक सदस्यों के पास एक-दूसरे से मिलने, बैठने या वार्तालाप के लिए समय नहीं है। कम से कम ये प्राणी तो साथ देते हैं।अनेक संशोधन सिद्ध कर रहे है कि इन प्राणियों के साथ रहकर तनाव में कमी पाई जा रही है और मन शांति भी मिलती है।

उपरोक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि कहानियों एवं उपन्यासों द्वारा मूलप्रवृत्तिपरक संवेदना के अत्यंत सुंदर-सजीव चित्र उपस्थित किए है। इसमें मानव मन में उदित होने वाले काम, क्रोध, मोह, लोभ, घृणा और भय जैसी मनोविकारों की झाँकी दृष्टिगोचर होती है।

2.3.8.2 सुखात्मक संवेदना – साहित्य की आत्मा रस है और रस में आनंदप्रदायी होने का भाव समाहित है। इस तरह संपूर्ण साहित्य ही सुखदायी हुआ। वस्तुतः सुख बाहर कहीं नहीं होता। वह तो व्यक्ति के मन में निवास करता है, उसे खोजने की दृष्टि व्यक्ति में हो तो सुख की खोज में बाहर जाने की आवश्यकता नहीं होगी वह मन में अंतर्निहित सुख को तुरंत खोज लेता है। प्रसन्नता की चमक सूर्य की उन ज्योर्तिमय किरणों जैसी है, जो अपने उदय के साथ ही दूर-दूर तक फैले दु:ख तिमिर को मिटा देती है। पारिवारिक जीवन में यदि गरीबी, अभाव, वैषम्य और तज्जन्य कलह है तो जीवन में सरसता का संचार करनेवाले खुशी के क्षण भी है। प्रेमचंद जी के 'गबन' से चक्की पीसते हुए जाँत का गीत गाती दो महिलाओं यह आनंदानुभूति देखिए, "जब दोनों एक कड़ी गाकर चुप हो जातीं, तो जाँत का स्वर मानो कंठ ध्वनि से रंजित होकर और भी मनोहर हो जाता था। दोनों के

हृदय इस समय जीवन के स्वाभाविक आनंद से पूर्ण थे- न शोक का भार था, ना वियोग का दु:ख। जैसे दो चिड़ियाँ प्रभात की अपूर्व शोभा में प्रसन्न होकर चहक रही हो।"[72]

साहित्य में पाए जानेवाले आनंद को परमानंद के समकक्ष माना जाता है। प्राकृतिक सौंदर्य के सानिध्य में आकर व्यक्ति की चेतना महाचेतना में एकाकार होने लगती है। सुख, कहीं दूर नहीं, आदमी के मन में है।

दार्शनिकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से सुख के स्वरूप पर विचार किया है। नीतिवादियों ने सुख-दु:ख का संबंध क्रमशः धर्म और अधर्म से जोड़ा है। अनके अनुसार जो धर्म है वही सुख है और जो अधर्म है वही दु:ख है। अर्थात यहाँ सुख साध्य है और सुख की सार्वभौमिकता यहाँ स्वयं सिद्ध है। सुख आशावादी है और दु:ख निराशावादी। सुखवादी मानव जीवन का प्रयोजन सुखभोग मानता है और दु:खवादी मानव दु:ख वेदना को ही जीवन का सर्वस्व मानता है। साहित्य में सुखवाद श्रृंगाररस की प्रधानता के रूप में और दु:खवाद करूण रस की प्रधानता के रूप में अवतरित होता है।

सुखात्मक संवेदना के चार भेद हैं (क) पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध संवेदना (इससे दाम्पत्य जीवन, प्रेम विवाह तथा शिक्षा से प्राप्त सुख की अभिव्यक्ति होती है।), (ख) राजनीतिक जीवन से सम्बद्ध संवेदना (भ्रष्टाचार, बेईमानी, झूठ फरेब तथा इसी तरह की अन्य उपलब्धियों को केंद्र में रखा जाता है।) (ग) आर्थिक जीवन से सम्बद्ध संवेदना (अमीरी-गरीबी का वर्ग संघर्ष) तथा (घ) धार्मिक जीवन से सम्बद्ध संवेदना (हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध, सदाचार और धर्ममूलक संवेदना)।

(क) पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध संवेदना

परिवार संस्था भारतीय संस्कृति में अनन्य साधारण महत्व रखती है। पति-पत्नी के मधुर संबंधों की परिणति सुखी दांपत्य जीवन में होती है। पारिवारिक जीवन से संबद्ध संवेदना में सबसे पहला महत्वपूर्ण निकाय दांपत्य जीवन माना गया है।

1. दांपत्य जीवन - दांपत्य जीवन को सामाजिक महत्व प्राप्त है। सुखात्मक संवेदना यही से उपजती है। पति-पत्नी एवं बच्चों के मधुर रिश्तों की वजह से दांपत्य जीवन सुखी बनता है। सुख-दु:ख में मिलकर सोच समझकर उठाएं गए कदम ही सुखात्मक संवेदना को चालना देते है। आज-कल के मशीनी युग में प्रेम एवं सफल यौन

संबंधों के बिना सुखी दांपत्य जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते है। अतः सुखी दांपत्य जीवन ही पारिवारिक सुखानुभूति की सफलता की कुंजी है।

2. प्रेम विवाह – वर्तमान में स्त्री घर से बाहर निकल रही हैं। वह अपने पैरो पर खड़ी रहने का भरसक कोशिश कर रही है। प्रत्येक क्षेत्र में नारी अग्रसर हो रही है। अब सचमुच में परिवार रूपी गाड़ी के दो पहिये पति-पत्नी है यह ...हो रहा है। अब तक पुरुषों की ही हुकूमत चलती थी। अब महिला या पुत्री को भी चर्चा करने, निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त हो गया है।

जब स्वयंपूर्ण एवं स्वावलंबी स्त्री प्रेम विवाह हेतु परिवार से निवेदन करती है तो परिवार के लोग भी उसके साथ खड़े हो रहे है। तब जाति-पाति के निर्बंध शिथिल हो रहे हैं। जिससे प्रेम विवाह को बढ़ावा मिल रहा है और प्रेम विवाह की परिणति सुखी दांपत्य जीवन में सहायक होती है। कभी-कभी देखा जाता है कि अति शीघ्रता में लिए गए निर्णयों के कारण प्रेम विवाह आपस के वैमनस्य और कटुता में परिवर्तित होते है।

3. शिक्षा – आज शिक्षा पर सभी का ध्यान होता है। अभिभावक चाहते है कि उनके बच्चे पढ़-लिखकर उच्च शिक्षा ग्रहण करें एवं अपना जीवन सुख एवं आनंदपूर्वक बिताए। शिक्षित परिवार में सदैव सुख ही बरसता हो ऐसी संभावना ना होने पर भी सदस्यों की समझदारी बढ़ जाती है। वे धैर्यपूर्वक सभी के हितों के लिए निर्णय लेते हैं। इसी कारण सुखात्मक पारिवारिक जीवन हेतु शिक्षा का अन्यन साधारण महत्व होता है। शिक्षित महिला के स्वावलंबन के कारण उसे भी परिवार एवं समाज में मान-सम्मान, स्नेह, पद, प्रतिष्ठा मिलती है। वह आर्थिक रूप से भी प्रगत होती है।

(ख) राजनीतिक जीवन से सम्बद्ध संवेदना

राजनीतिक जीवन को चित्रित करते अनेक प्रसंगों को साहित्य में पाया जाता है। आज सामान्य नागरिक भी अपने राजनीतिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग हो गया है। उच्च आर्थिक वर्गीय हो अथवा निम्न सभी राजनीति से प्रभावित पाए जाते है। देश भर में घटने वाली राजनीतिक घटनाओं, विविध दाँव पेंचों का वर्णन साहित्य में भरा पड़ा है। राजनीति में अपना वर्चस्व सिद्ध करने हेतु विविध हथकंडे नेता स्वयं अपनाते है। विपक्ष की निंदा करते हैं। विविध आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक प्रश्नों को सुलझाने अथवा उलझाते हेतु दंगे करवाते हैं। वोट बैंक मजबूत करने हेतु गलत प्रचार करते हैं। जनता के हित को ध्यान में ना रखते हुए स्वयं का विकास करना ही नेताओं का उद्देश्य बन गया है।

लगभग सभी नेता भ्रष्टाचार से लिप्त हो चुके हैं। पैसों के लिए वे गुंडे पालने-पोसने लगे हैं। इसी कारण देश में भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि आदमी दोहरा जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर हो गया है। जहाँ जिसे मौका मिल जाए वह भ्रष्टाचार में अपने हाथ काले कर स्वयं के वारे-न्यारे कर लेने की सोच रहा है। इससे प्राप्त सुख चिरकाल नहीं टिकता है, वह क्षणिक होता है। आज-कल के राजनेताओं को सोचना चाहिए कि स्वार्थ में अंधा होना इंसानियत के लिए बहुत घातक है। बेईमानी, झूठ-फरेब, धोकाधडी से दिन-प्रतिदिन भ्रष्टाचार में वृद्धि हो रही है।

(ग) आर्थिक जीवन से सम्बद्ध संवेदना

इस संवेदना में अमीर एवं गरीब वर्ग का संघर्ष ही मूल कारण पाया जाता है। अमीर इतना धनवान होता है कि दिन-ब-दिन उसकी संपत्ति बढ़ती जाती है और गरीब को दो जून की रूखी-सुखी रोटी भी नसीब नहीं होती। दोनों भी सुखी नहीं है। धनवान संपत्ति की अधिकता के कारण परेशान तो गरीब पैसों के अभाव से परेशान। साहित्य में इसी अभाव को आर्थिक जीवन से सम्बद्ध संवेदना के रूप में चित्रित किया गया है। बढ़ती महंगाई के कारण सामान्य नागरिक परेशान है। चित्रा मुद्गल जी की कहानियों एवं उपन्यासों में आर्थिक जीवन से सम्बद्ध संवेदनाएं पाई जाती है। आज संपत्ति ही समाज में प्रतिष्ठा दिलाती है। समाज में अमीरों एवं गरीबों के बीच की खाई दिन-ब-दिन बढ़ती चली जा रही है। अब इसे पाटना असंभव लग रहा है।

(घ) धार्मिक जीवन से सम्बद्ध संवेदना

धार्मिक जीवन से सम्बद्ध संवेदना का चित्रण भी साहित्य में पाया जाता है। इसमें अस्पृश्यता, हिन्दू-मुस्लिम संबंध, सदाचार और धर्ममूलक संवेदना को समाविष्ट किया जा सकता है। छुआछूत की भावना में अब कमी आने लगी है। धर्म के नाम पर धर्म के नाम पर कहीं भी प्रवेश बंद नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के प्रभाव से छुआछूत प्रथा काफी हद तक कम हो गई है। ग्रामीण परिवेश में अब भी यह भेदभाव किया जाता है। गांवों की रचना ही कुछ इस तरह की होती है कि वहां यह भेदभाव पनपता है।

हिंदू-मुस्लिम संबंधों पर तो अगणित साहित्य प्रकाश डालता है। ये दोनों कितना भी करीब आए, कितने भी पक्के मित्र हो पर जातीयवादी संघर्ष समय ये आमने-सामने खड़े हो जाते है। मामूली सी बात पर एक-दूसरे का खून पीने उतावले हो जाते है। विविध अत्याचार करते है। बस्तियाँ तक फूँक देते है। आज आज़ादी के 75 वर्षों बाद भी इनकी धार्मिक कट्टरता कम नहीं हो पाई है। कुछ बिरले आदर्श उदाहरणों को छोड़े दे तो साहित्य इनके संघर्ष में भरा पड़ा है।

सदाचार को मन से स्वीकारें तब ही उसका लाभ होता है। उसे हिन्दी साहित्य में एक उदात्त भावना के रूप में चित्रित किया गया है। सदाचार के बारे में उषा प्रियंवदा कहती है-"मनुष्य का अच्छा आचरण वह पूंजी है, जिसे वह विश्व रुपी बैंक में जमा करता है और अगले जन्म में उस धनराशि को बाहर निकालता है। जो आदमी बैंक में एक पैसा भी जमा नहीं करेगा वह कैश क्या खाक कराएगा ?"[73] सदाचार से संबंधित पुरानी मान्यताएं परिवर्तित हो रही है। अब व्यक्ति को महत्व दिया जा रहा है। यदि सामने वाला कष्ट दे राह है तब उसके साथ सदाचार वाला बर्ताव अनावश्यक लग रहा है।

भारतीय समाज में अभी भी धर्ममूलक प्रथाओं के रूप में अलौकिक शक्ति, कर्मवाद, भाग्यवाद, अंधविश्वास, झाड़-फूंक, ओझा आदि को महत्व दिया जाता है। जिसमें धर्ममूलक संवेदना का प्रचार-प्रसार होता है। इसका चित्रण भी कई प्रसंगों में पाया जाता है। भले ही दुनिया संगणक युग में विचर रही हो पर धार्मिक रीतिरिवाज में कमी नहीं पाई जाती है।

2.3.8.3 दु:खात्मक संवेदना - दु:खात्मक संवेदना वह होती है जो अपनों के बिछुड़ने से उत्पन्न होती है। सामाजिक विघटन के कारण पारिवारिक लोगों में बदलाव आता है। रिश्ते नातों में परिवर्तन दिखाई देता है। परिणाम स्वरूप परिवार का विघटन, पारिवारिक जीवन की समस्या, मानसिक घुटन, उत्पीड़न, तनाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती है।

दु:ख का विलोम सुख है। इस अनित्य जगत में ये दोनों परिवर्तनशील है। एक की अनुभूति के लिए दूसरे का अनुभव भी आवश्यक है। इसीलिए सुखात्मक संवेदना के साथ दु:खात्मक संवेदना को साहित्य समान महत्व दिया गया है। सुख और दु:ख का चक्र ही जीवन है। साहित्यकार दु:खात्मक संवेदनाओं की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। उनमें टूटे हुए हृदय एवं बहते हुए आँसुओं के प्रति विशेष आकर्षण होता है। इसीलिए प्रेमचंद जी इसका विश्लेषण बहुत ही सुंदर शब्दों में किया है, "जिसे संसार दु:ख कहता है वहाँ कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि ये विभूतियाँ संसार चाहे कितना ही मोहित कर ले, कवि के लिए यहाँ जरा भी आकर्षण नहीं है, उसके मोद और आकर्षण का वस्तु तो बुझी हुई आशाएँ और मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आँसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों से उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन, जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता है।"[74]

नारी जीवन की घनीभूत पीड़ा को जयशंकर प्रसाद की कलम ने बहुत कौशल से चित्रित किया है। कन्यादान एवं बिदाई विवाह की इन रस्मों का क्षण बहुत ही मार्मिक होता है। इसका भी चित्रण पाया जाता है। हिन्दी साहित्य में दु:खात्मक संवेदना की अत्यंत भावप्रवण अभिव्यक्ति हुई है।

इसके तीन भेद दिए गए हैं-(क) संयुक्त परिवारों का विघटन, (ख) पारिवारिक जीवन की समस्याएँ-जैसे दोहरे जीवन की त्रासदी, घुटन, युवा पीढ़ी की स्वार्थपरता, संदेहशीलता, ईर्ष्या, पति-पत्नी दोनों की कार्यशीलता, नारी-शोषण, दाम्पत्य-विषयक, दहेज-प्रथा, सामाजिक रूढ़ियाँ आदि। (ग) यथार्थवादी अभिव्यक्ति।

(क) संयुक्त परिवारों का विघटन

वर्तमान में विविध कारणों से संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ है। कभी नौकरी तो कभी व्यवसाय, कभी बच्चों की शिक्षा कभी आंतरिक कलह, जगह की कमी। संप्रति अधिकतर लोग स्वातंत्र्य चाहते है, जिसके चलते अपने बीवी-बच्चों को लेकर संयुक्त परिवार से बाहर चल पड़ते है और उनके नजरों में यही चैन की सांसे लेने का एकमात्र उपाय होता है। वे किसी प्रकार का बंधन नहीं चाहते हैं। इसका न दिखने वाला कारण भूमंडलीकरण भी है। जब तक परिवार बढ़ेंगे नहीं तब तक मार्केट में बिक्री को प्रोत्साहन नहीं मिलता है। इसी वजह से विविध कारणों से परिवारों पर सांस्कृतिक आघात कर उसके टुकड़े करने से व्यापारिक जगत को लाभ मिलता है।

औद्योगिक विकास के कारण भी गांवों में झुंड के झुंड शहरों की ओर बढ़ रहे हैं। इसी कारण संयुक्त परिवार नष्ट होने के कगार पर है। स्वच्छंद जीवन की आकांक्षा के कारण एकल परिवार बढ़ रहे हैं। भले ही फिर कई कठिनाइयों का सामना क्यों ना करना पड़े। एकल परिवार के सदस्य तनाव में रहते है। उनके भावात्मक विकास में कमी पाई जाती है।

(ख) पारिवारिक जीवन की समस्याएँ

आज पारिवारिक जीवन में कई समस्याएं मुंह उठा रही है। तनाव, संत्रास में हर कोई पीड़ित है, छटपटा रहा है। महंगाई, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, चाचा-भतीजा वाद, बढ़ती जनसंख्या आदि के कारण सामान्य नागरिक दु:खी है। अति महत्वाकांक्षा के कारण भी मनुष्य स्वयं को निराशा के अंधेरे गर्त में डाल देता है। चौबीसों घंटे दौड़-धूप करने पर भी उसे संतोष-समाधान नहीं मिलता है। एक के बाद एक भौतिक सुविधाओं के लिए मृग जाल के छलावे में दौड़ता रहता है। आज परिवार की न्यूनतम आवश्यकताएं केवल रोटी, कपड़ा और मकान ना रही। परिवार के लिए सुख-सुविधाएं जुटाने में ही मनुष्य समस्याग्रस्त हो रहा है।

स्वयं के परिवार में तीन-चार सदस्यों के होने के बावजूद भी मनुष्य घुटन महसूस कर रहा है। पति-पत्नी, बच्चों का मुक्त वार्तालाप बंद हो चुका है। मनुष्य को झूठी शान-शौकत एवं प्रतिष्ठा के लिए भले ही घर में फांके पड़ रहे हो पर सुट-बुट, गाड़ी में रहना पड़ता है। इस दोहरे जीवन के कारण दु:खों में वृद्धि होती है।

आज युवा-पीढ़ी अपने में ही मस्त रहती है। उसमें परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति चाह या स्नेह की भावना में बहुत कमी आ गई है। वह अपने घर परिवार के उदासीन रहता है। स्वयं के स्वार्थ हेतु परिवार से युवा पीढ़ी रिश्ता बनाए रखती है। आज-कल तो युवाओं क्या बच्चों को भी अपना सच्चा साथी या मित्र मोबाइल ही लग रहा है। घंटों आभासी दुनिया में रहनेवाले को वास्तव की दुनिया से कुछ लेना देना नहीं रहा है।

दु:खात्मक परिस्थिति के लिए संदेहशीलता एवं ईर्ष्या भी जिम्मेदार है। एक बार मन में शंका का कीड़ा घूस जाए तो फिर वह व्यक्ति अच्छे-बुरे सभी को संदेह की नजरों से देखता है और अपने जीवन का चैन खो बैठता है। ईर्ष्या तो दु:ख की जड़ है। मनुष्य के मन में ईर्ष्या के बीज पल जाए तो उसे सभी से जलन होने लगती है। यहां तक उसका अहंभाव घरेलू सदस्यों से भी ईर्ष्या करने पर मजबूर कर देता है। सारे परिवार को कष्ट भुगतना पड़ता है।

पति-पत्नी दोनों अगर कार्यशील हो, नौकरी करते हो तब तो काफी दिक्कतें बढ़ जाती है। दोनों पैसा कमाते है। दोनों में अहंभाव होता है। महिला पर दोहरी जिम्मेदारी आन पड़ती है। काम के साथ-साथ घर के सारे काम निपटाने पड़ते है। बच्चों के अलग हाल होते है। अपने बच्चों को घर में छोड़कर जाना पड़ता है। उनका सर्वांगीण विकास नहीं होता। प्रेम नहीं मिलता, संगी- साथी नहीं मिलते वे चिड़चिड़े हो जाते है।

नारी शोषण भी हर जगह पाया जाता है। केवल कामकाजी ही नहीं घरेलू महिलाएं भी इसका शिकार होती है। अनेक रूपों में यह पारिवारिक जीवन के लिए समस्याएं खड़ी कर देता है। दहेज प्रथा अब भी कायम है। इसके कारण कई माता-पिताओं का सुख चैन खो गया है। लाड़-प्यार से पाली गई पुत्री के लिए माँ-बाप बहुत कुछ देते है पर ससुरालवालों की लोभी वृत्ति उसे सुखी नहीं रहने देती। वे निरंतर मांग करते रहते है। मायके वालों का जीवन दूभर हो जाता है।

पति-पत्नी का दांपत्य जीवन में तालमेल और समायोजन आवश्यक है। यदि उनका रिश्ता सहज ना हो तो पारिवारिक जीवन में कई समस्याएं आती है जो दु:ख को न्योता देती है। प्राचीन काल से चली आ रही सामाजिक रूढ़ियों के कारण भी परिवार में अलगाव पैदा होता है। इन्हीं कारणों से दु:खात्मक संवेदनाएं साहित्य में अपनी जगह जमा पाई है।

(ग) यथार्थवादी अभिव्यक्ति

आज के साहित्यकार केवल सुखात्मक या काल्पनिक विषयों को नहीं बल्कि यथार्थवादी अभिव्यक्ति करने में आज सभी क्षेत्रों में यथार्थ चित्रण करते है। दु:खात्मक संवेदना की यथार्थवादी अभिव्यक्ति करने में आज सभी धन्यता मान रहे हैं। व्यक्ति का अकेलापन, पीड़ा, संत्रास आदि दु:खात्मक संवेदनाओं का यथार्थवादी चित्रण पाया जा रहा है। आज का आदमी जिस दु:खात्मक परिस्थितियों से गुजर रहा है। जो कठिनाइयाँ वह महसूस कर रहा है। उसका यथार्थवादी चित्रण आज के साहित्य में पाया जाता है।

उपर्युक्त समग्र विवेचन से मानवीय संवेदना के रागात्मक, सुखात्मक, दु:खात्मक स्वरूप का परिचय होता है, परंतु मानव के अंतस के गूढ़तम सत्यों को समझना और उसे शब्दों में परिभाषित करना कठिन कार्य है। मानवीय संवेदना का मन की अतल गहराइयों में छिपी करुणा, दया एवं सहानुभूति से है। हिन्दी साहित्य में मानवीय संवेदना का आयाम बहुत व्यापक है। युगों से मानवीय संवेदना की जो धारा निसृत हुई, वह अटूट भाव से निरंतर बह रही है।

निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि किसी के मन से उपजी विशेष सहानुभूति को संवेदना कहते है। संवेदना ज्ञानेंद्रियों की अनुभूति ही होती है। मनुष्य उत्तेजित होकर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है वहीं संवेदना कहलाती है। संवेदना के विविध रूप पाए जाते है। साहित्य और संवेदना का अटूट रिश्ता होता है। संवेदना के कारण ही साहित्य में जान आती है। मनुष्य की संवेदना को सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विविधता प्रदान करते है। साहित्य में संवेदना अनेक रूपों में चित्रित होती है। वास्तव में लेखक की व्यक्तिगत संवेदना ही साहित्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संदर्भ सूचि

1. द्विवेदी, डॉ.मुकुन्द. हिन्दी उपन्यास युगचेतना और पाठकीय संवेदना. पृ.2
2. चतुर्वेदी, द्वारिका प्रसाद. झा, तारिणीश. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभम्. पृ.236
3. वर्मा, रामचंद्र. मानक हिन्दी कोश (पाँचवां खंड). पृ.237
4. बाहरी, सं.डॉ.हरदेव. हिन्दी शब्द कोश, पृ.435

5. बृहत् हिन्दी कोश. पृ.1145
6. बृहत् हिन्दी कोश. पृ.1227
7. वर्धा हिन्दी शब्दकोश. पृ.991
8. शब्दार्थ विचार कोश. पृ.523
9. शब्दार्थ विचार कोश. पृ.526
10. कपूर, डॉ.बदरीनाथ . वैज्ञानिक परिभाषा कोश. पृ.215
11. अभिनव पर्यायवाची कोश. पृ.406
12. मानविकी पारिभाषिक कोश. पृ.247
13. Encyclopaedia American Vol.26, pg.no.168
14. हिन्दी साहित्य कोश. पृ.862
15. समाजशास्त्र विश्व कोश. पृ.404
16. डॉ. नगेंद्र. मानविकी पारिभाषिक कोश-साहित्यखंड. पृ.232
17. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. पृ.692
18. दीक्षित, आनंद प्रकाश . हिन्दी साहित्य कोश भाग-1. पृ.856
19. चतुर्वेदी, रामस्वरूप. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, भूमिका
20. वर्मा, डॉ. रामचंद्र. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर. पृ.977
21. वर्मा धीरेंद्र. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1). पृ.707-708
22. शर्मा, शेखर.समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक. पृ.24-25
23. अज्ञेय. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य. पृ-17
24. मिश्र, डॉ.रामदरश. आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि. पृ.23
25. मुक्तिबोध गजानन माधव. एक साहित्यिक की डायरी. पृ.136
26. शुक्ल, देवेंद्र . कविता में विशेषण आधुनिक संदर्भ. पृ.17
27. चतुर्वेदी, तपेश. कविता में संवेदना का स्वरूप. पृ.112
28. वर्मा, सं.रामचंद्र. मानक हिन्दी कोश खंड-5. पृ.237
29. शर्मा, डॉ.शिवदत्त. संवेदना की अवधारणा एवं उसके प्रकार. पृ.246
30. तिवारी, आदित्य नारायण. शिक्षा मनोविज्ञान भाग-1. पृ.556
31. नया प्रतीक- वर्ष 2, अंक 5, मई 1975, पृ.27-28
32. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.12
33. डॉ. श्री रंजिनी. कथासाहित्य एवं शिल्प. पृ.116
34. भाटिया, डॉ.हंसराज. सामान्य मनोविज्ञान. पृ.254
35. डॉ. नगेंद्र. मानविकी पारिभाषिक कोश. पृ.248
36. सिन्हा, डॉ.सुरेश. हिन्दी उपन्यास. पृ.57
37. त्रिपाठी राममनोहर. हिन्दी कविता :संवेदना और दृष्टि. पृ.36-37

38. बोरा राजमल. भाव, उद्वेग और संवेदना. पृ.116
39. बोरा राजमल .संवेदना और सौंदर्य. पृ.45
40. द्विवेदी, डॉ.मुकुंद. हिन्दी उपन्यास: युगचेतना और पाठकीय संवेदना. पृ.37-38
41. त्रिपाठी, राममनोहर. हिन्दी कविता :संवेदना और दृष्टि. पृ.37-38
42. हिन्दी साहित्य कोश, पृ.863
43. डॉ.नगेंद्र. मानविकी पारिभाषिक कोश. पृ.248
44. डॉ. नगेंद्र. मानविकी पारिभाषिक कोश. पृ.248
45. पांडेय, रामशकल. शिक्षा मनोविज्ञान. पृ.76
46. द्वेवेदी, डॉ.हजारी प्रसाद. अशोक के फूल. पृ.80-81
47. हरदयाल. साहित्य और सामाजिक मूल्य. पृ.26
48. तिवारी रामचंद्र. हिन्दी गद्य साहित्य. पृ.121
49. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यास कारों की मानवीय संवेदना.पृ.112
50. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.118
51. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.119
52. सोबती कृष्णा. जींदगीनामा. पृ.100
53. शुक्ल रामचंद्र -चिंतामणि भाग-1. पृ.44
54. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.72
55. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.233
56. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.266
57. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.135
58. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.21
59. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.59
60. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.17
61. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.127
62. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.263
63. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2, पृ.107
64. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.231
65. शुक्ल रामचंद्र. चिंतामणि भाग-1. पृ.69
66. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.225
67. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.235
68. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.227
69. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.120
70. मुद्गल चित्रा. आदि-अनादि भाग-2. पृ.68

71. मुद्गल चित्रा. आवां. पृ.136

72. प्रेमचंद. गबन. पृ.209

73. प्रियंवदा, उषा. पचपन खंभे, लाल दीवारें. पृ.84

74. प्रेमचंद. गोदान. पृ.198-199

तृतीय अध्याय

3. चित्रा मुद्गल के कहानी साहित्य में संवेदना

सृष्टि के आरंभ काल से ही मानव मन जीवन के संघर्ष और कौतूहल में रमता रहा है। मानव मन की यह रमण वृत्ति न कभी तृप्त हुई न हो सकती है। सृष्टि के विशाल रंगमंच पर पदार्पण करते ही उसकी विराटता को देखकर वह विस्मय विमुग्ध हो उठा और अपनी लघुता के प्रति साशंक अपनी विभीषिका में वह आदर्श की कल्पना में डूबने लगा और इसी कल्पना की भूमि पर भावना का विकास हुआ। साथ ही विकसित भावना की अभिव्यक्ति के लिए भाषा प्रादुर्भूत हुई। जीवन के विविध क्षेत्रों में उतरकर अभिव्यंजना ने मनोरंजन तथा रसोद्रेक के अनेक पथ निर्मित किए।

रस में झूमते रहने की इसी इच्छा से ही आदिकाल से मानव मन ने कथा साहित्य की सृष्टि करने की प्रेरणा मानव को दी। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है कि वह जो कुछ देखता है, सुनता है, स्पर्श करता है और अनुभव करता है उसे अभिव्यक्त किए बिना उसका कुतूहल शांत नहीं होता। अपनी इसी आपबीती को कल्पना के सहारे गढ़ने की प्रवृत्ति उसमें निर्माण हुई, परिणामस्वरूप वह मनुष्य के जीवन की घटना चक्र का पुराण, इतिहास एवं कल्पना जगत से सजीव चित्र उपस्थित करने लगा जिसका साहित्य में कथा या कहानी के रूप में नामोल्लेख हुआ।

कहानी साहित्य की सबसे प्राचीन विधा है। इसके मूल में जिज्ञासा एवं अभिव्यक्ति दो प्रबल मनोवृत्तियाँ कार्य करती हैं। सभ्यता के प्रारंभिक काल में जब मनुष्य ने भाषा सीखी होगी तब मनोगत अनुभवों को दूसरों को अभिव्यक्त करने एवं उनके अनुभव सुनने के लिए कहानी का आशय लिया होगा।

भारतीय कथा साहित्य का इतिहास बहुत प्राचीन है। कहानी का प्राचीन स्वरूप हमें वेदों में मिलता है। ऋग्वेद में पुरूरवा और ऊर्वशी का आख्यान है। उसके उपरांत उपनिषद, पुराण, बौद्ध जातक आदि में कहानी का प्राचीन रूप मिलता है। रामायण, महाभारत में भी अनेक कथाएँ हैं। पंचतंत्र, हितोपदेश, सिंहासन बत्तीसी, बेताल पच्चीसी, भोज प्रबंध आदि कहानी संग्रह प्राचीन कथा परंपरा के सुंदर उदाहरण है।

कहानी साहित्य के विकास का द्वितीय युग 13वीं शताब्दी में मुस्लिम शासकों के काल में हुआ। ये शासक अरब और फारस से अपने साथ कथा-कहानियों की समृद्ध परंपरा लाएँ। 'सहस्त्र रजनी चरित्र'

(अरेबियन नाइट्स) इस कथा समृद्धि का सुंदर उदाहरण है । आगे चलकर 'किस्सा तोता मैना', 'छबीली भटियारिन' और 'गुलबकावली' आदि से 'रानी केतकी की कहानी' तक की रचनाएँ इसी परंपरा की देन है ।

भारतीय कथा साहित्य में तीसरा मोड़ अंग्रेजों के भारत आगमन से प्रारंभ होता है । 1857 सारे भारत में अंग्रेजों का साम्राज्य स्थापित हो गया है । अंग्रेजी संस्कृति और साहित्य के प्रभाव से भारतीय कथा साहित्य में कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से परिवर्तन आने लगा और बीसवीं शती में आधुनिक रूप धारण कर लिया।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानी में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से नया मोड़ आया । आधुनिक कहानी युग संदर्भों की ओर अग्रसर हुई । युगबोध को वाणी देना और अभिव्यक्ति के सरलतम माध्यमों की खोज करना नए कहानीकारों का दायित्व बन गया । आज का कहानीकार कल्पना के आधार पर न लिखकर भोगें हुए क्षणों को ही वाणी देता है । इस तरह कथ्य की यह प्रामाणिकता ही नई कहानी की प्रमुख विशेषता है । यह नये कहानीकार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में फ्राइड, मार्क्स, लेनिन, सार्त्र की कलात्मक संवेदनाओं से प्रभावित दिख पड़ते हैं ।

एक समय था जब कहानी का उद्देश्य मनोरंजन ही माना जाता था । आज कहानी का उद्देश्य मानव मन की अंधतम गुफाओं तक प्रकाश की नव किरण पहुँचाना और अंतरमन के रहस्यों का उद्घाटन करना है । उपदेश देना या किसी ध्येय को लेकर कहानी लिखना भले ही उचित न हो, किन्तु समसामयिक परिस्थितियों में जीवन की आलोचना करना प्रत्येक कथाकार का उद्देश्य होता है । कहानी के सामाजिकता संदर्भ में प्रसिद्ध आलोचक अमृतराय का कथन हैं, "किस्सा कहने का सुनने की आदिम भूख से ही कहानी का जन्म हुआ है, और अपने इस जन्मजात गुण या स्वभाव की रक्षा करके ही वह जीवित रह सकती है । क्योंकि कहानी सामाजिक विधा है, जन्म से ही । एक आदमी कहानी कहता है, दूसरा आदमी कहानी सुनता है; वही दूसरा आदमी समाज है और यही कहानी की सामाजिकता का आधार है ।"[1] साहित्य, समाज और रचनाकार के पारस्परिक संबंध को यहाँ पर बताया है । तीनों एक दूसरे पर आधारित है , एक के बिना दूसरा अधूरा है ।

चित्रा मुद्गल की कहानियों में आज की परिवेशगत अवधारणाओं एवं संवेदनाओं का जीवंत चित्रण सफलतापूर्वक हुआ है । उन्होंने नए दृष्टि आलोक में आज की समसामयिक स्थितियों को अपनी कृतियों में मूर्त रूप दिया है । चित्रा मुद्गल की कहानियों ने हिन्दी जगत को एक आयाम ही नहीं दिया अपितु गंभिरतापूर्वक लेखन किया है । वे जहाँ एक ओर आधुनिक मानवीय मूल्यों को स्तब्ध कर देनेवाली तस्वीर को गहरी संवेदना

से उकेरती है, वही अपनी कहानियों में आज की नारी का संघर्ष, स्वाभिमान एवं विद्रोह को अपनी कलम के माध्यम से उतारने का सफल प्रयास करती है।

समकालीन साहित्य में कई लेखिकाओं ने जिनमें कृषणा सोबती, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, उषा प्रियंवदा , अल्का सरावगी, चन्द्रकांता, मैत्रियी पुष्पा, राजी सेठ, अर्चना वर्मा, मधु कांकरिया, गीतांजली श्री आदि ने नारी जीवन से जुड़ी स्थूल एवं सूक्ष्म समस्याओं को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने-परखने का प्रयास किया है। उनकी कहानियाँ जीवन की वास्तविकता पर आधारित होने के कारण उनमें जीवन समस्याएं स्वतः प्रकट हुई हैं। उनकी प्रत्येक कहानी में संवेदनाओं के विविध रूप प्रकट होते हैं। लेखिका प्रत्येक कहानी के पात्र का जीवंत प्रस्तुतिकरण किया है। पढ़नेवालों को अपने स्वयं की आपबीती लगती है। उसमें कहीं दिखावा या बनावटीपन नहीं दिखाई पड़ता है। उन्होंने प्रत्येक दृश्य का स्वयं अनुभव के द्वारा वर्णन किया है।

चित्रा मुद्गल ने विविध विषयों को लक्ष्य में रखकर अनेक कहानियाँ लिखी है। इन कहानियों द्वारा अलग-अलग भाव-संदेश एवं संवेदनाएं व्यक्त हुई है। इन संवेदनाओं को निम्नवत् विभाजित कर उनपर प्रकाश डाला जा सकता है।

3.1 रागात्मक संवेदनाएं

3.2 सुखात्मक संवेदनाएं

3.3 दु:खात्मक संवेदनाएं

3.1 रागात्मक संवेदनाएं – मनुष्य के हृदय में स्थित राग-विराग, खुशी-गम, प्यार- घृणा आदि ऐसे विभिन्न भाव है जिनको रचनाकार अपने रचनाओं में सम्मिलित करते हैं उसे ही रागात्मक संवेदना कहते हैं।

अनेक गलतफहमियों के कारण रिश्तों में मन मुटाव होते रहते है। उसे सुधारने का भी जिंदगी मौका देती है। उस मौके का लाभ उठाना चाहिए नहीं तो रिश्तों के धागे में गाठ आ जाती है जिसे सुलझाना बहुत मुश्किल आन पड़ती है। 'रूना आ रही है' इस कहानी में रूना एवं निमा समवयस्क बुआ-भतीजी का प्रेममयी संबंध एवं निमा के गैरजातीय से विवाह करने के कारण दूरियां आ जाती है पर निमो की बेटी मुनिया रूना से पत्र व्यवहार करती रहती है। उससे बातचीत करती रहती है। सत्रह वर्षों से रूना-नीमा की मुलाकात नहीं है। पर

मुनिया रूना को जो कि कॉलेज में प्रिंसिपल है, निमंत्रित करती है अपने माता-पिता की शादी की सालगिरह पर और वह आनेवाली भी है। मुनिया बहुत खुश है-"मॉम! यू आर लुकिंग सो खुश ! ममा, मामला क्या है ? कल्पना करो। चहककर मैं उसे सीने के करीब खींच लेती हूं। पापा, लैंड कर रहे होंगे ? नहीं...तो ?...तो, मॉम! रूना दि ग्रेट आ रही होंगी ? है न ! लेटर आया होगा न…वे जरूर कल आ रही होंगी। परसों तुम्हारी शादी की सालगिरह है न! मैंने उन्हें लिखा था।"[2] कभी-कभी बड़ो से नहीं होता वह छोटे करके दिखाते हैं।

रागात्मक संवेदना के अंतर्गत दो प्रकार की संवेदनाएँ आती है। जो निम्नवत् है -

3.1.1. संयोगात्मक संवेदनाएं -संयोग में दो लोगों में मिलन का आनंद चरम सीमा तक ले जाता है। जो संयोग के क्षण है वो उन्मादकारी होते हैं जिसे वे भूलना नहीं चाहते हैं। सुखानुभूति का एहसास होता है जहां पर सिर्फ आनंदमयी प्रेम रस फूटता है।

डॉ. उषा यादव के मतानुसार "संयोग-वियोग जीवन के दो पक्ष हैं। संयोग के मधुर क्रीड़ा क्षणों के अनंतर वियोग की दाहकता भी अगर मनुष्य को झेलनी पड़े, तो तो इससे मिलन की भावभीने क्षणों की मधुरिमा घट नहीं जाती। उनकी स्मृति फूलों की सुवास की तरह चिरकाल तक मानव-हृदय को अनुरंजित करती रहती है।"[3]

चित्रा मुद्गल की कहानी 'सफेद सेनारा' में शरद बाबू अपनी पुस्तक 'कस्बों का शहर' की सफलता का श्रेय शुभा को देते हुए कहता है कि,"शुभा, हर पन्ने पर बिखरी हुई हृदयस्पर्शी सजीवता तुम्हारे अनुराग की अमर गंध है, जो मेरे संपूर्ण जीवन पर छा चुकी है।"[4] शुभा अल्हड बालिका की भाँति सफेद सेनारा के फूल शरद बाबू के कॉपी में गिराकर अपने स्वच्छंद प्रेम का इकरार करती है।

संयोग के क्षणों में नर-नारी के मिलन के सपनों के जिस धरातल पर संबंध स्थापित होता है वहाँ वे किसी की दखलअंदाजी बरदाश्त नहीं करते फिर चाहे वह उनके अपने क्यों न हो। 'वाइफ स्वैपी' कहानी उच्च वर्ग के जीवन शैली पर आधारित है। जहाँ उद्योगपति लोग बड़ी पार्टियों में 'वाइफ स्वैपी' का खेल खेलते हैं। इस खेल में वे बड़े से बियर जग में अपनी गाड़ी की चाबी डाल देते हैं और जिस भी गाड़ी की चाभी उनके हाथ लगती है उस गाड़ी की मालिक की पत्नी उस खुशनुमा रात की लॉटरी होती है। मेजर साहब को मिसेज फला के साथ रात गुजारने का मौका मिलता है। उसी का चित्रण यहाँ पर किया गया है,"मेजर साहब अपनी सेंध लगाती अर्थपूर्ण मुस्कान को जबरन बंधक बनाते हुए आत्मविस्मृत-से ठिठके, जैसे उन मादक क्षणों में वे

एक बार फिर पहुंच गए हों, 'वह एक खूबसूरत रात थी, बेहद खूबसूरत, एक साथ हजारों सितारों की रुन-झुन में डुबी।"[5]

डॉ. अर्चना शर्मा के अनुसार "'वाइफ स्वैपी' तो उन्मुक्त भोगवाद, बदलती सामाजिक मान्यताओं, शार्टकट महिमा के साथ अर्थ की महत्ता और बदलते पति-पत्नी संबंधों की परिचायक है।"[6] पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता भारतीय समाज पर इतनी हावी हो गयी है कि उनके देखादेखी में पति-पत्नी के संबंधों में अविश्वास और दूरियाँ आ रही है।

'सफेद सेनारा' कहानी में चित्रा जी ने शरद बाबू एवं शुभा की प्रेम कथा का वर्णन किया है। शुभा तो कुंवारी माँ बनकर भी अपने प्रेम पर अटल रही पर शरद बाबू ने उसे भूला दिया। शरद बाबू विद्यापीठ में पुरस्कार हेतु आए थे। शुभा भी दर्शक दीर्घा में खड़ी थी। उसे अपना भूतकाल याद आता है। जब वह पहली बार पहाड़ देखने अपनी बुआ के यहाँ शिमला जाने की खबर शरद बाबू को देती है तो वे बहुत प्रसन्न होते हैं। यह देखकर सुधा को आश्चर्य होता है कि जुदाई पर वे दुःखी होने के बजाय खुश हो रहे है-"विचित्र हैं आप भी। मेरे जाने के नाम पर इतने प्रसन्न हो रहे हैं ? अनमनाहट उदासी को लांघ आंखों में पानियाती कि तभी आपने यह कहकर चौंका दिया था कि संयोग से आप भी शिमला जा रहे हैं वहां अपना उपन्यास 'कस्बों का शहर' लिखने लगा था कि जिंदगी हर मोड़ पर सहृदय होकर हमारा स्वागत कर रही है। मैं बहुत खुश थी। बिना मांगे झोली में आ दुबकने वाले सपनों की खुशी से खुश ! "[7] प्रेम मनुष्य को अनोखे विश्व में ले जाता है। उसके समक्ष कुरूप भी कोई हो तो उसे वह सुंदर लगता है। शुभा भी शरद के प्रेम में अपने जीवन को समर्पित करती हैं।

इसप्रकार चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानियों में संयोग काल के अत्यंत सुंदर एवं भावप्रवण चित्रों को अंकित करके मिलन की संवेदना को वाणी दी है।

3.1.2. वियोगात्मक संवेदनाएं – वियोग दो लोगों के लंबी जुदाई के क्षण है। जो अनेक कारणों से उत्पन्न होता है। रिश्तों में दरार इसप्रकार आ जाती है कि पुनर्मिलन की गुंजाइश ही नहीं होती। वियोगात्मक संवेदनाएं के उदाहरण निम्नवत् कहानियों में दृष्यव्य है –

'दुलहिन' कहानी में चित्राजी ने छह शादीशुदा बच्चों की माँ अम्मा का चरित्र चित्रण किया है। जो चौबीसों घंटे अपनी सांस की सेवा सुश्रुषा में लगी रहती थी। जबसे आजी का चलना फिरना बंद हुआ अम्मा रात दिन उनके पास ही रहती। वे अन्य दायित्व से निर्लिप्त हो गई थी। जब तक जिया थी वे बहू बनकर ही रही उनकी खातिर परिवार नियोजन भी नहीं किया क्योंकि बच्चों को वो ईश्वर की देन समझती थी। जब सांस का

स्वर्गवास होता है तब का दृश्य बहुत ही करूणाभरा चित्रित किया है-"जिया नहीं रहीं रे छोटू...छांड़ि गई हमका...अब हमका दुलहिन कहिके को पुकारी रे दइया ! को हमर तीज-त्योहार करी रे ! हमरे बरे नेग-न्योछावर धरी रे ! आज हम बुढ़ा गइन रे छोटू, बुढ़ा गइन...जब तक जिया बैठी रहीं, हमका यहै लगात रहे कि हम बहुरिया हन । भले हमरे जवान-जहील बहू-बेटवा, नाती-पनाती हैं, दइया !"[8] उपर्युक्त उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि अम्मा अपनी सांस को बहुत मानती है जिनके विरह में वह अपनी जिम्मेदारी समझती और बच्चा गिराने के लिए अस्पताल जाने का निर्णय लेती है।

उसी प्रकार चित्रा जी के 'मोरचे पर' इस कहानी में पति सुदीप शहीद हो जाते है जिसके वियोग में रिन्नी अपने आप को संभलने की कोशिश करती है। रिन्नी के दो बच्चे हैं, जिनकी जिम्मेदारी उस पर आ गई है। मुख्यालय से तार आने से पहले अवस्थी भैया रिन्नी को पहले ही इसके बारे में बताकर मन को तटस्थ तथा बच्चों को समझाने के बारे में कहते हैं। तब रिन्नी का मन यह सोचता है - "न वह उनके लिए सुदीप बन सकती है न उनकी जगह हो सकती है। फिर कैसे इनसे कहे...कैसे ? व्हेन सुदीप इज वैरी मच विद दैम...कैसे कह दे 'सुदीप इज नो मोर...और अब तलक कोई अहसासों में जिंदा है, कैसे वह मर सकता है...कैसे कह दे वह कि... "[9] बच्चों को रिन्नी अब तक बताने का साहस ही नहीं जुटा पाई कि उनके पापा अब इस दुनिया में नहीं रहें। डॉ.चंद्रकांत बांदिवडेकर का मत है कि," 'मोरचे पर' की रिन्नी मातृत्व का समर्थ परिचय अपनी असफलता में भी दे जाती है। पति सुदीप के द्वारा अभिशप्त लाड़-प्यार में पले दोनों बच्चों को सुदीप की मृत्यु पर उनका बाप और माँ बनकर रिन्नी पालना चाहती है पर असफल रहती है। उसके सारे मानसिक संघर्ष में जमा कठोर दु:ख चित्रा जी पूरी सूक्ष्मता के साथ व्यंजित करती हैं। तमाम पारिवारिक संदर्भों की चित्रात्मक बुनावट के बीच चित्रा जी जिस वेदना, व्याकुलता तकलीफ और कराह को उभारती हैं, वह कहानी को टिकाऊपन का एक अमृत-स्पर्श देता है।"[10]

वियोग तब ज्यादा पीड़ा देता है, जब व्यक्तियों के बीच प्यार, अपनत्व, जुड़ाव रहता है। परंतु साथ रहकर भी एक-दूसरे के प्रति भरोसा, प्रेम नहीं हो तो दूर रहकर भी उनको कोई फरक नहीं पड़ता। वे अपने जीवन में समझौता करने में तैयार होते हैं। 'स्टेपनी' कहानी में आभा को पड़ोसन श्रीमती खन्ना द्वारा उसके पति विनोद और नौकरानी बताशा के अवैद्य संबंध के बारे में पता चलता है। वह आभा को इसके बारे में बताती है । परंतु आभा को लगता है कि बताशा को निकाल दिया तो दूसरी नौकरानी का प्रबंध करना बहुत मुश्किल

होगा। उसके असमंजस मन की व्यथा को इस प्रकार से व्यक्त किया है, “शायद कोई विकल्प नहीं है उसके हिस्से। गृहस्थी और आत्मनिर्भरता के मध्य अपने ‘स्व’ का संतुलन खोजते हुए कब वह अपने ही घर के लिए स्टेपनी हो गई और बताशा मुख्य चाक्का-कौन जाने !”[11] कामकाजी स्त्री के दांपत्य जीवन और नौकरी दोनों में से वो एक को भी नहीं छोड़ सकती । अगर वह नौकरी बचाना चाहेगी तो गृहस्थी नहीं बचा पाएगी और नौकरी को संभालना चाहेगी तो गृहस्थी से हाथ धो बैठेगी। इस अंतर्द्वंद्व में वह नताशा को नौकरी से निकालना चाहती है पर दूसरी नौकरानी लाएगी कहा से इसलिए वह खुद स्टेपनी समझती है ।

इस प्रकार से चित्रा मुद्गल ने वियोग की संवेदना को मुखर बनाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है ।

3.1.3. मूल प्रवृत्तिपरक संवेदनाएं

चित्रा मुद्गलजी की प्रत्येक कहानी में मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाएँ पाई जाती है । उनकी कहानियों में पाई जानेवाली कुछ महत्वपूर्ण मूलप्रवृत्तियों की संवेदनाएँ निम्नवत् है –

3.1.3.1 करुणापरक संवेदना – आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि, “मनुष्य के अन्त: करण में सात्विक्तता की ज्योति जगाने वाली यही करुणा है ।”[12] उसी प्रकार से प्रिय के वियोग में जो दु:ख होता है, उसमें कभी-कभी दया या करुणा का भी अंश मिला रहता है ।

किसी के दु:ख और सुख में भागीदार होना ही करुणा कहते है । अगर किसी के पथ पर काँटे बिछे हुए है तो कारुणिक व्यक्ति उसे हटाने का प्रयत्न करेगा । उस व्यक्ति को अपने तरफ से मदद करने की कोशिश करेगा और उसको न्याय दिलाने के लिए वह प्रयत्न करेगा ।

‘सौदा’ कहानी में ड्राइवर द्वारा गाँव से काम की लालच का झांसा देकर दलाल के हाथों सौपी गई गेंदा जब किसी तरह दलाल को चकमा देकर भाग निकलती है और एक झोंपडी में शरण लेती है तब घर की मालकिन गेंदा की आपबीती सुनकर पसीज जाती है उसके मन में करुणा का ज्वार फूट पडता है –“बड़ी मुश्किल हुई अपने को समेटकर गेंदा को ढाढ़स बंधाने में –“छिः छिः बहुत बुरा हुआ तेरे साथ…” अपना भी गला भर्राता हुआ हो आया- “जी छोटा मत कर, कोई न कोई रास्ता निकलेगा । रो मत इतनी जोर से…आवाज बाहर जाएगी।”[13] उसपर दया करके घर की मालकिन अपने परिवार तथा पति के बारे में न सोचकर निस्वार्थ भाव से उसकी मदद करने के लिए तैयार होती है । इस कहानी में कई कारुणिक दृश्यों का वर्णन किया हैं ।

चित्रा जी ‘सौदा’ कहानी के बारे में लिखती है कि, “दलाल के हाथों बिकी जाने वाली युवती गेंदा की कहानी है।”[14] नारी का दूसरे नारी के प्रति लगाव तथा जुड़ाव उसे उसके आर्थिक परिस्थिति में भी कमजोर नहीं बनाता, यही अपनापन और लगाव, नैतिकता समाज में मूल्य ,स्थापित करते हैं।

माँ का अपने बच्चे के प्रति अपार स्नेह तथा प्रेम चित्रा मुद्गल के कहानियों में देखा जा सकता है। माता एक प्रकार अपना जीवन अपने बच्चे के लिए ही जीती है परंतु दुर्भाग्य से उसका यही सहारा उससे दूर चला जाता है। लेखिका की ‘नीले चौखानेवाला कंबल’, ‘भूख’, ‘बावजूद इसके’ आदि कहानियों में माँ की कारुणीक स्थिति को प्रस्तुत करता है।

‘नीले चौखानेवाला कंबल’ में टिकैतिन कक्की का कारुणिक स्थिति का चित्र उजागर हुआ है। पति के मृत्यु के बाद ही सति होने की जिद करती है पर पेट में बच्चे की कसम दिलाकर किसी तरह रोक दिया जाता है। वह अपने बच्चे को जो कि उनके जीने का एकमात्र उद्देश्य एवं सहारा था, पालपोसकर बड़ा करती है। उसके विवाह के सपने संजोकर सारी तैयारियाँ करती है। पर बचुआ की हत्या हो जाती है। उसकी मृत्यु एवं अंतिम यात्रा का कारूणिक चित्रण उन्होंने किया है जिसमे टिकैतिन कक्की का रुदन करता चेहरा आँखों के सम्मुख तैर जाता है।“ हैरत-भरी आंखों से उन्होंने टिकटी से बंधे, शांत मुख-मुद्रा में सो रहे बचुआ को देखा। औंधी हो उन्मादिनी-सी उसकी आंखें, माथा, होंठ, गाल, बाल चूमने लगीं – “दिन चढ़े तू कभी सोया है पगले, उठ्ठ…उठ न बचुआऽ !” कंठ में चीखें चीलों-सी मंडराने लगीं। आंचल, अंगोछा मुंह में देने के बाद भी रुकने को तैयार न हुईं। टिकटी उठने को हुई कि दोनों हाथ उठाकर संयत होती-सी उठवइयों को एकाएक बरजा उन्होंने, “ठहरो भैया, दूल्हा बने बिना हमरा बचुआ अपने बप्पा के पास कैसे जाएगा ? पूछेंगे नहीं मालिक, तेरी महतारी ने तेरी कोई हौंस पूरी नहीं की !”[15]

चित्रा जी ने स्त्री को स्त्री के प्रति, माँ को अपने बच्चों के आकस्मिक के मृत्यु पर करुणा की स्थिति को रचनाकार ने अपने कहानियों के माध्यम से जीवंत रूप में चित्रित किया है। दूसरे के उपस्थित दु:ख से उत्पन्न दु:ख का अनुभव ही करुणा कहा जाता है।

‘भूख’ कहानी तो करुणा प्रधान कहानी कही जा सकती है। इस कहानी में भिक्षा को एक व्यवसाय के रुप में दर्शाते हुए भिक्षा वृत्ति के अमानवीय पक्ष पर प्रकाश डाला है। लक्ष्मा आर्थिक तंगी की वजह से भिखारिन को गोद का बच्चा किराए पर देती है ताकि दूसरे बच्चों का पेट भर सके। बच्चा रोए और लोगों में करुणा-दया

की भावना जागृत हो इसलिए वह भिखारिन छोटू को भूखा रखती थी। प्रतिदिन यही चलता रहा और दिन ब दिन छोटू कमजोर होने लगा एवं एक दिन उसकी मृत्यु हो जाती है। “तकरीबन ढाई घंटे की असाध्य प्रतीक्षा के बाद डॉक्टर वार्ड से उनकी ओर आते हुए दिखे। उन्होंने निकट पहुंचकर सबसे पहले सवाल पूछा कि उन चारों में से बच्चे की मां कौन है ? साथ आई कंबले ताई ने लक्ष्मा की ओर संकेत किया। डाक्टर ने पलभर लक्ष्मा को भेदती नजरों से देखा, फिर रुक्ष स्वर में बोले, “बच्चे को खाने को नहीं देती थी क्या ? बच्चा भूख से मर गया… उसकी आंतें सूखकर चिपक गई थीं।”[16] इसी कहानी की समापन करते हुए अत्यंत करूणामइ दृश्य चित्राजी उपस्थित करने में सफल हुई है – “ढह रही लक्ष्मा के कुछ सुनाई नहीं दे रहा। उसे सिर्फ दिखाई दे रही है दूध-भरी बोतल… बिस्कुट का डब्बा…चिपकी आतें… और एक बच्चे की लाश।’’[17] डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल के अनुसार-“‘भूख’ यातना, अमानवीकरण और शोषणजन्य हत्या की एक ऐसी चीख है जो हमें भीतर तक हिला देती है।”[18]

इस तरह अनेक कहानियों में चित्रा मुद्गल जी ने करूणापरक संवेदना का चित्रण किया है।

3.1.3.2 क्रोधपरक संवेदना-चित्रा मुद्गल ने अपनी विविध कहानियों में क्रोधपरक संवेदना का वर्णन किया है। मनुष्य को अपने जीवन में लगभग प्रतिदिन इस क्रोधपरक संवेदना को प्रकट करना पड़ता है अन्यथा दूसरों द्वारा पहुँचाए जाने वाले बहुत से कष्टों का उपाय नहीं हो सकता है।आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, “सामाजिक जीवन में क्रोध की जरूरत बराबर पड़ती है। यदि क्रोध न हो तो मनुष्य दूसरों के द्वारा पहुँचाये जाने वाले बहुत से कष्टों की चिर-निवृत्ति का उपाय ही न कर सके। ”[19]

‘जिनावर’ कहानी के माध्यम से लेखिका ने असलम का चित्रांकन किया। जिसे अपनी घोड़ी पर अगाध ममता है। सरवरी के बीमारी के कारण रोजगार बंद है। घर में जमा राशन समाप्त हो गया। फाके पड़ने लगे थे। पत्नी जुबैदा के झांझा भी बीमार सरवरी पर कुर्बान हो गए पर सुधार नहीं। जुबैदा क्रोधित होती है- “नामुरादों ! कहां से लाऊं दोनों जून तुम्हारे पेट में डालने को…एक मैं ही साबुत बची हूं इस घर में, सो कहो तो अपनी बोटियां काट के चढ़ा दूं हांड़ी में पकने ? मति मारी गई है। उसी मरी रांड की… सहलाता रहता है रात-दिन। बर्तन-भांडे तक फूंक दिए इलाज में। सबको डकारकर ही मरेगी डायन। अरे, और भी जानें है कुनबे में कमबख्त ! उनकी है परवाह मर्दुए ? आखिर इन आठ-आठ पिल्लुओं को क्या दूं मुंह में- अंगारे? घोड़ी…घोड़ी…घोड़ी न हो गई रंडी सौत हो गई मेरी।”[20] क्रोधावस्था में लगभग सभी वर्गों के लोगों की जुबान

से गालियों का ज्वार ही उबलने लगता है और निम्न वर्ग इसमें माहिर होता है ।इस कहानी में समाज में आए संवेदनशीलता और खोखलेपन को प्रस्तुत किया है । घर की रोजी-रोटी के लिए सरवरी के त्याग ही असलम की मानवता को जगाता है । इस संदर्भ में विश्वमोहन तिवारी कहते हैं,“जिनावर में सारे वातावरण में एक प्रकार की पशुता ही फैली हुई है । कहानी में केवल असलम की घोड़ी को छोड़कर, जिसका व्यवहार इतना स्नेहपूरित, त्यागमय और समझदारीपूर्ण है कि स्पष्ट है, उसी में मानवता है वरन शेष ताँगे वाला असलम, पुलिस वाले तथा दुर्घटनागस्त कार के मालिक तिवारी नितांत स्वार्थ प्रेरित हैं । केवल अंत में सरवरी का त्याग असलम में मानवता को जगाता है ।”[21]

‘प्रेतयोनि’ में चित्राजी ने नीतू को सबका कोपभाजन बनाया जबकि उसका कोई दोष नहीं । साहसपूर्वक उसने अत्याचारी का मुकाबला किया एवं बलात्कार जैसी घटना से बच गई । पर समाज की नीति के सामने अपनी बेटी का अपमान करने वालों के खिलाफ प्रतिशोध करने के बदले अपमान को छिपाने के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं । नीतू को जबरन कमरे में बंद कर दिया गया । किसी से संपर्क करने नहीं दिया जा रहा है। माँ-बाप, भाई-बहन सभी उसके साथ ही अपराधी की तरह बर्ताव कर रहे हैं । यहाँ तक की अम्मा को भी उसपर विश्वास नहीं । वह उसे जबरन काढ़ा पिलाना चाहती है ताकि गर्भ ना ठहरे जब कि नीतू के साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ है । यहाँ नारी-नारी भावना की संवेदनहीनता को चित्रित किया गया है । डॉ. गोरक्ष थोरात के मतानुसार - “कहानी में बहुमुखी पीड़ा की दंश से उबरने की कोशिश करती अनिता के लिए उसके अपने माँ-बाप ही सबसे बड़े विलन बन जाते है ।”[22]

काढा पीने से मना करने पर माँ का क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ जाता है - “क्रूद्ध शेरनी-सी अम्मा आपा खो बैठीं । वे उसकी अनपेक्षित उद्दंडता के लिए कतई प्रस्तुत नहीं थी । लपककर झपाटे से उन्होंने पुनः उसके बालों को मुट्ठी में कस लिया और उसके छूटने को कसमसाते चेहरे पर तड़ा-तड़ चांटें जड़ने शुरू कर दिए। उसने हिंस्र हो आई अम्मा के चांटे जड़ते हाथ को दोनों हाथों से पकड़ने की कोशिश की, लेकिन अम्मा के सिर पर तो जैसे कोई भूत सवार हो गया था । उनका हाथ पकड़ने की अनधिकार चेष्टा ने आग में घी का काम किया। अम्मा ने उसे बालों समेत पलंग पर से फर्श पर खींच लिया और शक्ति-भर उस पर लातें बरसाने लगीं । वे शायद उसे लात-घूंसों से अचेत होने की सीमा तक रौंदती, अगर दादा और बिन्नू ने उन्हें पीछे से जकड़कर अलग न कर दिया होता ।”[23] समाज में अपने परिवार की इज्जत प्रतिष्ठा कायम बनी रहे इसलिए कभी-कभी माता-पिता

अपने ही संतानों को बेकसूर होते हुए भी उनको कसूरवार मानकर उनको जीते जी मार डालने का प्रयत्न करते हैं।

आज का समाज संवेदनशून्य हो गया है, जो आधुनिकता के इस दौड़ में मानवीय मूल्य पीछे छोड़ आगे भागे जा रहा है। किसी के प्रति प्रेम भावना आज बहुत कम दिखाई देती है। चित्रा जी की 'शिनाख्त हो गई है' इस कहानी में सोनू पाठशाला से नहीं लौटता, तब उसकी माँ कुकी बहुत परेशान हो जाती है। बदहवास हो उसे ढूँढती है, पुलिस में फोन लगाती है रिश्ते-नाते एवं पडोसियों के फोन एवं झूठे दिखावे भरे बातों से परेशान हो जाती है- "हमदर्दी की संस्कृति क्या इतनी विकृत और घिनावनी होती है? संवेदनशून्य! कि लग रहा है, चीख-चीखकर इनसे कह दूं- सब-के-सब चले जाओ। नहीं दरकार तुम्हारी सहलाहट की। सोनू तुम्हारी बघनख सहानुभूति की चचटाइट पार बगैर भी लौट आएगा...ठीक ही होगा...मैं भी ठीक ही रहूंगी, न भी रहूं तो क्या..."[24] आज व्यावहारिकता का अतिक्रमण हो गया है। पहले संयुक्त परिवार थे। सब अपने रिश्तेदारों के यहाँ आचार-विचार, आदान-प्रदान होता था। एक-दूसरे से बात करना, हाल-चाल उनके घर जाकर पूछते थे। पर आधुनिक उपकरणों के कारण दूसरों के घर जाने से दूर एक संदेश तक नहीं पहुँचाते। मनुष्य आज मशीन बन गया।

चित्रा जी ने जिस प्रकार से शहर के वातावरण को केंद्र रखकर अपने कहानियों में उनके संवेदनाओं की अभिव्यक्ति दी है उसी प्रकार से झोपड़पट्टियों में रहनेवाली निम्न वर्ग की संवेदनाओं को भी वाणी दी है। 'गिल्टी रोजेस' की गुनाबाई घरों में रसोई बना, चौका-बासन कर गुजर बसर करती थी। तीन बेटियों की माँ थी। एक छठी में तो अन्य दो दूसरी में पढ़ती थी। उसका पति क्लिनर था। बच्चियाँ बड़ी होने लगी, वैसे गुनाबाई अपने पति को सचेत करती है कि ड्राइवरो-दोस्तों को घर ना लाए। अब घर में दारू-पत्ते नहीं चलेंगे। पति दोस्तों के सामने ही लातों घूसों से उसे रौंदता है। एक दिन तो पति हद ही पार कर जाता है और अपने दोस्त की कही बात गुनाबाई से कहता है कि बडी बेटी को कॉलगर्ल बना दे तो सारे घर की जिंदगी ऐशो आराम में कटेगी। क्रोध से कांपती गुनाबाई ने पति के मुंह को नोच लिया, "तू बाप है कि दल्ला ? चिखल के मुंह में जाके मूत। बोल उसको, अपनी छोकरी को ले जाके बैठा दे कोठे पे। रोटी मिलती न तेरे को ? दारू पीने को मिलती है न ?और क्या चाहिए तेरे को ? मांस पकाके खात्मां तू छोकरियों का ?"[25] यहाँ पर गुनाबाई अपने क्रोध को व्यक्त करती है परंतु जब पति के दबाव में उसकी बेटी इज्जत लुटाकर घर आती है तो गुनाबाई क्रोध में आकर अपने तीनों बेटियों को मार डालती है।

चित्रा मुद्गल की अधिकतर कहानियाँ निम्न वर्ग एवं शोषित नारियों को चित्रित करती है, तो क्रोधपरक संवेदना के प्रकटीकरण में सहजता से गालियों का समावेश होना स्वाभाविक बात है। 'त्रिशंकु' में जब मां अपनी छोटी बेटी को जोशी मास्टरनी के घर घटका के लिए रखती है ताकि वह वहाँ सुरक्षित-सलीके से रहना सीख लेगी। ऊपर से खाना-कपड़ा और तीस रुपया प्रति माह मिलेगा तब उसका पति क्रोधित होता है। उसके पास मंगलोरियन बाई का कमला के लिए खा-पीकर साठ रुपयों का प्रस्ताव था पर मां को पता था कि वह स्मगलिंग करती है और गलत लोगों का आना-जाना वहाँ होता है। तब पलंग से उठते हुए बाप दहाड़ता है- "ये तेरी भड़वी मास्टरनी भरोसेवाली है क्या ?" "जबान संभाल, हां।" "पोरगी की फिकिर नई, पगार की बोत फिकिर हय तेरे को? हां ! अपना कमाई में दारू के वास्ते नईं पुरता ! बोल तो खटिया डलवा दूं तेरे वास्ते...फिर खा पोरगी की कमाई।" 'साआली रांड़, तू मेरे को गाली देती भड़वी ! अबी ठिकाने करता तेरे को…"[26]

लेखिकाने 'गिल्टी रोजेस' और 'त्रिशंकु' इन कहानियों पिताओं का एक घिनौना रूप चित्रा जी ने प्रस्तुत किया है। जो अपने स्वार्थ और मौज-मस्ती के लिए अपने बेटी को दलालों के हाथों में बेच देने में कतराते नहीं है। पिताओं की हैवानियत कि अपनी बेटी को बेटी न समझकर एक भोगविलास की वस्तु समझने की मानसिकता यहाँ पर दिखाई देती है।

'केंचुल' में कमला के परिवार की गरीबी एवं जीवन जीने का संघर्ष का वर्णन किया गया है। कमला परिवार चलाने के लिए दारु का धंदा करती है। वही परिवार की मुखिया है। पति है पर वह जिम्मेदारी से भागता है। उसकी बेटी सरना के साथ जब बानी अश्लील हरकत करता है तब वह गुस्से में तमतमाएं हुए साहूकार की दुकान की ओर चल पड़ती है, तब उसके क्रोध का वर्णन चित्रा मुद्गल ने बड़ी ही वास्तविकता के साथ किया है –"आंखों में खून उतर आया, जैसे पूरी बाटली एकबारगी हलक में उतार ली हो। घुटनों में मुंह दिए बैठी सरना पर बगैर नजर डाले वह खोली से बाहर हो गई। रास्ते में भुनभुनाती रही –'देखती भड़ुवे को। बेटी सरखी छोकरी के संग ऐसी गलीज हरकत ! थूह ! पिच से उसने अपने दाहिने तरफ पड़ रही बिना प्लास्टरवाली रामरती की चाल पर थूका। पांडे की बाकड़ेनुमा पान की दुकान को लक्ष्य कर थूका। गोबर-पुते वागले मोची के झोंपड़े पर थूका। मन-ही-मन तय कर लिया कि ठीक ऐसे ही वह बानी की गल्ले ठुस्सी दुकान पर थूकेगी और बानी के सामने पहुंचकर उसके पपीते जैसे लंबोतरे चेहरे पर थूकेगी।"[27] कमल का विद्रोही मन बानी के प्रति आग उगलता है पर उसे यह भी आभास होता है कि उसी के अहसानों तले उनका परिवार दबा

हुआ इसलिए वह विवश हो जाती है। इस कहानी क संदर्भ में ब्रजेश्वर मदान का कहना है कि,“ ‘केंचुल’ कहानी की नायिका अपने अंदर के विद्रोह की आग दबाए बैठी है और लड़ना भी चाहती है। कहानी समाज में स्त्री की त्रासदी को अच्छी तरह व्यक्त करती है। इस कहानी में हम देखते हैं कि नारी कैसे समसामयिक समाज में अपनी अस्मिता और सुरक्षा के लिए नए सामाजिक रूप ढूँढ़ रही है।”[28]

इस प्रकार से अनेक कहानियों के माध्यम से लेखिका ने क्रोधपरक संवेदनाओं को वर्णन किया है।

3.1.3.3 कामपरक संवेदना:

चित्रा मुद्गल की कहानियों में कामपरक संवेदना का चित्रण उपन्यास साहित्य की तुलना में कम ही पाया गया है। काम एक सहज वृत्ति है। दांपत्य जीवन में सफल यौन संबंधों की अपना महत्व होता है। चित्राजी के कहानियों में कामपरक संवेदनाओं की छटाएँ निम्नवन् है :

समाज में स्त्री-पुरुष संबंध में कभी-कभी उम्र का भी लिहाज नहीं करते हैं, पुरुष बेटी के उम्र के लड़की के साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए तत्पर रहते हैं। ‘केंचुल’ इस कहानी में कमला की बेटी सरना के साथ जब वह सामान खरीदने बानी के यहाँ जाती है, तो वह उसके साथ पैसे देकर अश्लील हरकत करना चाहता है – “बोलता…बोलता…मेरे पिशाब कू हाथ में पकड़… अठन्नी देगा तेरे को।”[29] यह एक विक्षिप्त कामपरक संवेदना है, लेकिन लगभग पचास वर्षों के बाद भी समाज में यही चित्र देखने को मिलता हैं। व्यक्ति कोई भी हो कैसा भी हो किसी की मजबुरी का लाभ उठाकर यौन शोषण करते हैं।

एक अन्य कहानी ‘अग्निरेखा’ में एक आपाहिज स्त्री मनु की जिंदगी को प्रस्तुत किया गया है। प्रसव के दौरान वह अपाहिज हो जाती है। उसकी देखभाल करने के लिए मनु की बहन शशी उसके घर आकर रहती है। वह घर एवं अपने जीजा की सारी जिम्मेदारिया बखुबी निभाती है। अमरेंद्र के जन्मदिवस पर वह रात बारह बजे तक जीजा को बातों में उलझाकर रखा और ठीक बारह बजे उसे नर्गिस के फूलों गुलदस्ता देकर जीजी की तरह ही शुभकामनाएँ दी। पत्नी की बीमारी में परेशान अमरेंद्र स्वयं का जन्मदिवस भी याद नहीं रख पाया था, वह भाव-विभोर हो गया –“भावविभोर अमरेंद्र ने अचानक विस्तृत हो उसे बांहों में भर लिया। उसे महसूस हुआ, उसकी बांहें, उसकी गरदन, पलकें, माथा, सब अमरेंद्र के होंठों की तपिश में जलने लगे। वह उनके लिए शशी नहीं, मनु बन चुकी है, पूरी तरह मनु…और वह प्रयोजतहित घटित को अन्यथा नहीं ले पाई। अरसे बाद उनके चेहरे पर उसने संतुष्टि और सुख की वह झलक देखी जो पता नहीं कब जिज्जी की जटिल बीमारी की

तनावपूर्ण दिनचर्या में होम होती बिला गई ।"[30] अमरेंद्र की पत्नी मनु भले ही शशी की बहन हो परंतु तनावपूर्ण अमरेंद्र को उसके जन्मदिवस पर मनु की तरह शुभकामनाएँ देती है तो उसे वह बाँहों में भर लेता है । इसका लेशमात्र बुरा भी शशी को महसूस नहीं होता बल्कि वह उसमें आनंद का अनुभव प्राप्त करती है । जैसे-जैसे वैसे-वैसे मानवीय संबंधों की व्याख्या भी बदलती है । भारतीय समाज में स्त्री तथा पुरुष की मित्रता को सहज रूप से नहीं स्वीकारते बल्कि उनके रिश्ते को नाम दिया जाता है । किंतु अति आधुनिकता तथा अति बौद्धिकता के कारण स्त्री पुरुष मुक्त विचार रखते है और वैसा ही वे अपने जीवन में आचरण करते हैं ।

'मोरचे पर' कहानी में रिन्नी एवं मेजर सुदीप जो कि पाकिस्तान के युद्ध में शहीद हो गया का वर्णन फ्लैशबैक के जरिए मिलता है । रिन्नी अपने बच्चों के साथ टैक्सी से दादर जा रही है उसे सुदीप के साथ की टैक्सी वाली घटना का स्मरण होता है – "शीशा चढा लो ।" सुदीप अक्सर उसके बालों की संवराहट बिगड़ जाने के खयाल से हाथ बढ़ाकर उसकी बगलवाली खिड़की का कांच चढ़ा देते । 'धन्यवाद' 'कोरा ?...जरा हमारा खयाल रखा करो...अपने-आप करीब आकर और प्यार करके ।' आहिस्ता से एक हथेली रेंगती उसे कमर से घेर लेती ! करीब सटाकर तेजी से गरदन घुमाती और उसके खुले कंधे पर होंठ टिका देती । वह मादक तंद्रा में सिहरती झपकने लगती ।"[31] दांपत्य जीवन के सुखद अनुभव रिन्नी को याद आते है और वह सुदीप के यादों में खो जाती है ।

3.1.3.4 ईर्ष्यापरक संवेदना:

ईर्ष्या के संदर्भ में रामचंद्र शुक्ल का कथन है, "ईर्ष्या एक अनावश्यक विकार है, इससे उसकी गणना मूल मनोविकारों में नहीं हो सकती । यह यथार्थ में कई भावों के विचित्र मिश्रण से संघटित एक विष है । जब किसी विषय में अपनी स्थिति को रक्षित रख सकने या समुन्नत कर सकने के निश्चय में अयोग्यता या आलस्य आदि के कारण कुछ कसर रहती है तभी इस इच्छा का उदय होता है ।"[32]

'प्रमोशन' कहानी में कामकाजी पुरुष एवं महिलाओं की जिंदगी एवं समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । पति भी कार्यालय में कार्य करता है उसे कार्यालय की कार्यपद्धति का अच्छे से संज्ञान है । वह भी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों का शोषण कर प्रमोशन देता है । जब उसकी पत्नी ललिता का प्रमोशन होता है तब उसे संदेह होता है और ललिता के बॉस से ईर्ष्या होती है -" मैं किसी कोठरी-वोठारी को फोन नहीं करता । जानता हूं डॉ. कोठारी तुम पर इतने मेहरबान क्यों हैं…इस कंपनी में नौकरी करते हुए तुम्हें तीन साल भी पूरे नहीं हुए,

तीन साल में इतना बड़ा प्रमोशन ?"[33] पारिवारिक जीवन को केंद्र बनाकर चित्रा जी के कहानियों को गढ़ा है। उनमें भी विषय की विविधता दृष्टिगोचर होती है। 'प्रमोशन' के बारे में लेखिका का मत है कि "कामकाज नारी का भावात्मक संघर्ष उसके विभिन्न, पति-पत्नी के संबंधों में आनेवाले बदलाव का मार्मिक चित्रण किया है।"[34]

'वाइफ स्वैपी' कहानी में आज के ऊँचे लोगों के समाज में बदलती भारतीय संस्कृति का विभत्स चित्रण किया गया है। चाबी बदलने के खेल में पति-पत्नी बीती रात का अनुभव करते हैं - "मन-मन भावे,मूंडी हलावै !" बीवीजी ने चोट-खाई नागिन-सी फुफकार छोड़ी-"मिसेज फलां की गाड़ी की चाबी हाथ लगते ही तुम खुशी से यूं उछले थे मानो अंधे के हाथ बटेर लग गई हो।" "वो तो तुम एकदम सही कह रहे। वाकई अचरज होता है यह देखकर कि उनके क्लब में दाखिल होते ही सारे मर्द बीवियों को छोड़ उनके इर्द-गिर्द मक्खियों-से भिनकने लगते हैं। आखिर है क्या उस घमंडिन में- सिवा एक गोरी चमड़ी के।"[35] भारतीय जनता की पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण इस कहानी में देखा जा सकता है। वस्तुओं के भाँति पति-पत्नियों का आदान-प्रदान वह शारीरिक सुख के लिए इस नयी संस्कृति का विस्तार पूर्वक चित्रण लेखिकाने किया है।

'अपनी वापसी' कहानी में बाप-बेटी का परस्पर प्रेम व अपनापा देखकर माँ को ईर्ष्या होती है। उसे लगता है कि पति को उसकी ओर देखने भर की फुर्सत नहीं है - " पर उसके भीतर तो अभी तक हरीश के लिए आकर्षण-स्रोत सूखा नहीं। तभी तो वह उनसे संबंधित मामूली-मामूली सी बातों को गहरे अनुभव कर उद्वेलित हो उठती है और वे निर्मित बने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते ! चाहे जो पहन ले, चाहे जैसे तैयार हो ले, उनकी दृष्टि ठिठकती ही नहीं। उनके संवेदना-स्रोत सूख गए, उलझ गए, बंट गए, यांत्रिकता लील गई। वह बात नहीं रही तो फिर रिन्नी के लिए कैसे प्रशंसाभाव टपकता रहता है आंखों से ?"[36] शकुन अपने आपको समय के अनुकूल ढाल नहीं पा रही है। इसलिए उसे हर तरह से उपेक्षा ही नजर आ रही है। डॉ. चंद्रकात बांदिवडेकर के अनुसार," 'अपनी वापसी' की ढलती उम्र, उतरती और क्षीण होती जाने वाली सुख देने की ताकत के कारण परेशान शकुन प्रौढ़ावस्था की खास समस्या से पीड़ित है। पारिवारिक वास्तविकता के बीच उसकी व्यथा को चित्रा जी ने गहरे स्तर पर पकड़ा है। अपने पति, की उपेक्षा, सुन्दर और जवान लड़की के प्रति सूक्ष्म-सा डाह, पति और पत्नी के बीच मुक्त मित्र संबंधों से उत्पन्न निरर्थक किंतु सालनेवाला सूक्ष्म संदेह बढ़ता मानसिक और शारीरिक अस्वास्थ्य, शैथिल्य, अवसाद और आत्मकेंद्रितता। चित्रा जी ने यह व्यापक अनुभव बड़ी कलात्मकता से संप्रेषित किया है।"[37] इस कहानी में चित्राजी ने पीढ़ी अंतराल को चित्रीत किया है। जिसके

कारण शकुन परेशान एवं मानसिक खिन्नता के मुंह में चली जाती है पर जब मेजर से उसकी पत्नी के विचार सुनती है तो परिवार के रंग में रंगने पुनश्च चली जाती है। उसकी नई एवं अर्थपूर्ण वापसी हो जाती है।

चित्राजी ने विविध कहानियों के माध्यम से ईर्ष्यापरक संवेदनाएँ प्रकट की है। ऐसा ही एक प्रसंग 'पेशा' इस कहानी में दो मित्रों के बीच ईर्ष्या भाव दर्शाता है – "उत्तेजित नरेंद्र ने बतरा साहब की उपस्थिति की परवाह किए बगैर अपना हाथ बढ़ाकर प्रणव की हथेली अपनी मुट्ठी में कस ली। .... प्रत्युत्तर में प्रणव ने भरसक अपनी खिन्नता छिपाई। पता नहीं क्यों, उसे नरेंद्र के स्तंभ पा जाने पर जो खुशी होनी चाहिए, नहीं हुई। हालांकि इस वक्त वह किसी सिद्धहस्त अभिनेता की तरह प्रसन्नता का अभिनय कर रहा है और होटल से बाहर आते ही बाकायदा उसके गले लिपटकर उसने उसे हार्दिक बधाई भी दी।"[38] एक मित्र की प्रगति दूसरे मित्र से देखी नहीं जाती है। इसलिए दोनों की एक-दूसरे के प्रति प्रतिस्पर्धा बनी रहती है। चित्रा जी ने नरेंद्र के माध्यम से यहाँ पर बताया है कि "मित्रता अपनी जगह है, पेशा अपनी जगह। मित्रता के कुछ उसूल हैं। उचित तो यही है कि दोनों फाइलें अलग-अलग रखी जाएँ।"[39]

3.1.3.5 घृणापरक संवेदना:

घृणा का विषय इंद्रिय या मन के व्यापार में संकोच उत्पन्न करता है। कभी-कभी एक ही चीज या भाव से किसी को घृणा होती है, तो दूसरों को नहीं जैसे मांसाहारी व्यक्ति को मांस से विशेष प्रेम होता है, तो शाकाहारी को घृणा। चित्राजी की कहानियों में मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाएँ सहज रूप में प्रकट होती है। कहानी साहित्य में विविध प्रसंगों में 'घृणा' पाई गई है।

घृणापरक संवेदना को व्यक्त करने वाले प्रसंग चित्रा मुद्गल की कहानियों में निम्नवत दिखाई पड़ते हैं-

'दुलहिन' कहानी में बूढ़ी माँ को गर्भवती होने पर उसके मन में घृणा उत्पन्न हुई उसने नाउन काकी को चाय ऊपर भिजवाने कहा- "एकाएक लगा कि अम्मा किसी फूले पेटवाली सुअरिया की काया में प्रविष्ट हो गई हैं और सुअरिया अपनी थुलथुल देह हिलाती मैले की ढेरियों की ओर बढ़ रही है। घिनाकर किताब उसने पलटकर परे रख दी। ... छत की धन्नियां घूरता हुआ सोचता रहा कि आखिर इस अधेड़ उम्र में अम्मा को यह क्या सूझी? बूढ़ा-बुढ़ऊ शर्म-हया घोंटकर पी गए।"[40] यहाँ पर घृणा का विकराल रूप दिखाई देता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "घृणा का विषय इन्द्रिय या मन के व्यापार में संकोच मात्र उत्पन्न करने

वाला होता है, इससे मनुष्य को उतना उग्र उद्वेग नहीं होता और वह घृणा के विषय में हानि करने में तुरंत बिना कुछ और विचार किए प्रवृत्त नहीं होता। हम अत्याचारी पर क्रोध और व्याभिचारी से घृणा करते हैं। क्रोध और घृणा के बीच एक अंतर ध्यान देने योग्य है। घृणा का विषय हमें घृणा का दु:ख पहुँचाने के विचार से हमारे सामने उपस्थित नहीं होता, पर क्रोध का चेतन विषय हमें आघात या पीड़ा पहुँचाने के उद्देश्य से हमारे सामने उपस्थित होता है या समझा जाता है।"[41]

'इस हमाम में' कहानी में पुरुषों का स्त्रियों के प्रति अमानुष व्यवहार का वर्णन किया गया है। सोमेश और दिवा के माध्यम से स्त्री पर समाज द्वारा डाले गए निर्बंधों की चर्चा कि गई है जिससे दिवा के मन में घृणा के भाव पैदा होते है- "घृणा...घृणा...घृणा का अविराम बहाव कब से अंदर की अनदेखी गुहाओं में अबाध बहता रहा था, मुझे आभास ही नहीं हुआ ! एक शक्स के इतने हिस्से कैसे कर दिए जाते हैं ? बेटी, बहू, पत्नी, माँ-नारी…पैदा होते ही उसे समझाना शुरु कर दिया जाता है कि उम्र के हर टुकड़े को दूसरों की सुविधाओं के अनुकूल आत्मसात करके जीने में ही उसका जीना है- एक निर्धारित स्वीकार…क्यों ? आखिर क्यों ?"[42] दिवा पढ़ी लिखी होकर भी अपने पति के अत्याचारों को सहती है। लेकिन उसीके फ्लैट में कचरा उठानेवाली अंजा अपने दोनों पतियों के अत्याचारों को नकारकर तीसरे के साथ निर्वाह कर रही है। डॉ. गोरक्ष थोरात के अनुसार,"अंजा के सानिध्य में आकर सोमेश की पत्नी में भी आत्मसम्मान की भावना जाग जाती है और वह आर्थिक आत्मनिर्भरता की दृष्टि से एक विद्यालय में हिन्दी अध्यापिका की नौकरी स्वीकार करती है।"[43] एक-एक बार घृणा इसकदर मनुष्य पर हावी हो जाती है कि उस व्यक्ति को अपना स्वतंत्र अस्तित्व है यह साबित करने के लिए उसके विरोध में जाकर मनुष्य नया कदम उठाता है।

इसी कहानी में एक अन्य दृश्य में दिवा एवं अंजा का वार्तालाप दृष्टव्य है- "बोत ऊंचा-ऊंचा लोग रहता आपके पड़ोस में। चौंतीस लंबरवाली वो केशव मेम सा'ब है न।... डांस का किलास चलता है उसका। पर असल में ... धंधा करती है छोकरियों का ! उनका घर का कचरे के साथ बोत सारा फैमिली प्लानिंग पड़ा रेता हय... क्या बोलेगा, छिह !" घृणा से मुँह बिचकाकर उसने जैसे किसी में त्रस्त होकर नाक सिकोड़ी।"[44] स्त्री-पुरुष के संबंध पहले एक कमरे के अंदर होते थे। लेकिन आज आधुनिकता के होड़ में स्त्री-पुरुष का यौन संबंध आम बात हो गई है। जिससे ज्यादातर लोग जानते है।

'दरमियान' कहानी के माध्यम से चित्राजी ने महिला प्रतीक्षालय की पारंपरिक गंदगी का वर्णन किया

है। आकांक्षा को जब अचानक माहवारी होने की आशंका होती है तो वह वापिस कार्यालय की ओर जाती है पर रास्ते में सिराज मिल जाता है, तब वह रेलवे स्टेशन के महिला प्रतीक्षालय में जाने का निश्चित करती है, - "एक ओर तिनका है स्टेशन पर बना महिला प्रतीक्षालय। तसल्ली हुई। वहीं जाकर खुद को देख लेगी। हालांकि महिला प्रतीक्षालय के नहानघरों और पाखानों की जो दुर्व्यवस्था है, स्मरण मात्र से ही रोंगटे खड़े हो गए। नथुनों में अजीब-सी दुर्गंध भर गई- फिनैल-नहाई। मन हुआ कि गंदगी के स्मरण से जो कसैली मितलाहट मुंह के भीतर पतिया रही है, उसे फुटपाथ पर थूक दे, नहीं तो सिराज से बातें नहीं कर पाएगी।"[45] पुष्पमाल सिंह कहते हैं- "'दरमियान' समकालीन लेखन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।"[46]

कामकाजी महिलाओं की समस्याओं का चित्रा जी ने सूक्ष्म रूप से वर्णन किया है। उनकी संवेदनाओं का वास्तविक चित्रण किया है। महिलाओं से संबंधित अनुभूतियों का उन्होंने यहाँ वर्णन किया है। लेखिकाने एक अछूते विषय का शालीनता के साथ प्रस्तुतीकरण किया है।

'सौदा' कहानी में गेंदा चंदू के चंगुल से भागकर उसी के घर पर पहुँचती है तब उसकी तस्वीर देखकर वह उससे घृणा करते हुए कहती है - "खूब पहचानते हैं इस पापी को, ठेला चलाता है...साथ का मनई चंदू नाम से बुलाता है उसको...हमको कहां मालूम था ये मनई के भेष में भेड़हा है…ढेर लड़िकिन को बहिका-फुसला के उनका जीवन बरबाद किया है..."[47] जब यह सब चंदू के पत्नी को गेंदा द्वारा उसके पति का असली रूप पता चलता है तब उसे अपने पति से घृणा होती है- "लेकिन...संदेह के बावजूद उसे सपने में भी अंदेशा नहीं था कि मेहनत और ईमानदारी की आड़ में आ रही जिस रकम से वह बच्चों को अच्छे स्कूल में पढ़ा रही है, झोंपड़ी छोड़ खोली में आ बसी है, अच्छा खा-पहन रही है, सुख-सुविधाएं जुगाड़ रही है, वह स्त्री के देह-व्यापार से कमाई गई रकम है। छि:, छि: ! चंदू का यह स्वरूप भी हो सकता है क्या ?"[48] कमला यहाँ पर अपने कर्तव्य को लेकर तटस्थ है। वह स्वार्थ नहीं देखती। इस संदर्भ में लता शर्मा का कथन है,"चित्रा मुद्गल की कहानी 'सौदा'अभिनव कथ्य उठाती है, समाज कल्याण वैगरह सदा ठीक है पर क्या स्त्री अपने पति के स्वैराचार के वुरुद्ध खड़ी होगी ? ऐसा स्वैराचार जिसका सीधा लाभ पत्नी और परिवार को मिल रहा हो। नाबालिक लड़कियों के दलाल की पत्नी को क्या करना चाहिए ? अपरिचित शरणागत लड़की के लिए अपनी सुखी गृहस्थी में आग लगा दे ? इस धंधे से जुड़े लोग न पति को बख्शेंगे, न परिवार को ! तीखे तड़पते मानसिक द्वंद्व में आखिर प्रतिबद्ध स्त्री जीतती है, जो आज अपरिचित लड़की के साथ हुआ वही काल उसकी बेटी के साथ हो सकता है।

अतःएडियाँ गाडकर प्रतिरोध करने का यही समय है, यही स्थान।"[49]

'लिफाफा' कहानी द्वारा घृणा का विद्रुप रूप दिखाया गया है "'गुडियां' बगैर कुल्ला किए ही चाय पीती, जबकि रात-भर मुंह खोलकर सोती और तकिये पर ढेरों बदबूदार थूक उगलती। अभी कोई पास बैठ जाएं तो मुंह से उठता बदबू का भभका उसे टिकने न दे। मगर उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जमुहाइयां भरती, बदबू उड़ाती, चाय के घूंट गटकती, आलस तोड़ रही होती।"[50]

इस प्रकार चित्रा जी ने विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से घृणापरक संवेदनाओं का विश्लेषण किया है।

3.1.3.6 अहंभावना :

जहां 'मैं' ही सब कुछ मान लिया जाता है, वहां अहंभावना पाई जाती है। चित्राजी ने स्त्री-पुरुष पात्रों द्वारा अहंभावना को प्रदर्शित किया है। अहं के पर्यायवाची शब्द है, अहंकार, घमंड, अकड़, दर्प, अभिमान आदि है।

'बावजूद इसके' इस कहानी में लेखिका ने स्त्री संबंधी कई ज्वलंत समस्याओं की बखूबी वर्णन किया है। प्रीती अपनी भाभी से बात कर रही थी जब वह नौकरी करने की बात करती है तब उसकी भाभी कहती है घर बाहर जाकर चार अन्य लोगों का शोषण और लताड़ बरदाश्त करने में अच्छा है, अकेले पति को सहन करने में ही स्वाभिमान है। तब प्रीति कहती है कि लात घूंसों से तो कोई नहीं मारेगा वहां। "किसी भी तरह का हो, स्वेच्छा तो होगी। आरोपित तो नहीं होगा? फिर आप मुझे इतना गिरा हुआ क्यों समझ रही है ? उन लोगों से मेरी कोई अपेक्षा नहीं होगी ! किसी हक की बात तो नहीं होगी। लात-घूंसों की चोट से भी अधिक पीड़ादायक जख्म होता है अधिकारच्युत होने का। सामने है, फिर भी नहीं मिलता या नहीं दिया जाता। आप नहीं समझ सकतीं।"[51]

पति-पत्नी के रिश्ते में दोनों के विचार समान तथा एक दूसरे को साथ और संभालने वाले है तो रिश्ता स्वस्थ रहता है। परंतु उस रिश्ते में अहंभावना का वर्चस्व आए तो रिश्ते का टूटना अनिवार्य हो जाता है। इस संदर्भ में डॉ. विजया वारद (रागा) का मत है, "वैवाहिक जीवन की यह पहली शर्त हैं कि दोनों अपने-अपने व्यक्तित्व के सत्य को अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए एक दूसरे के प्रति समर्पित है। आधुनिक शिक्षा दीक्षा के कारण पुरुष स्त्री के व्यक्तित्व पर हावी होना चाहता है, और स्त्री कठपुतली की हद तक समर्पित होना नहीं चाहती। पुरुष चाहता है उसके मुनोनुकूल स्त्री जिए और यही उम्मीद स्त्री भी करती है। चाहे विवाह पारिवारिक

हो या प्रेम द्वारा दोनों सजग व्यक्तित्व एक-दूसरे से टकराता है। तब तनाव की स्थिति उभरती है। ”[52]

इसी कहानी में पुरुष अहं को भी दर्शाया गया है। जब गोयल ने प्रीति की काफी मनुहार की पर वह मायके से उसके पास नहीं गई तब उसकी अहंभावना को ठेस पहुँचती है- “पिछली चिट्ठियों में उससे लौट आने का किया गया मनुहार अब धमकियों में बदल गया था। एक विद्रूप चेहरे पर खिंच आया। पुरुष के अहं का सब्र छोटा होता है। चुक ही जाएगा। डेढ़ साल से ऊपर हो रहा है उसे अलग हुए।”[53] अहंकार की भावना से मनुष्य विसंगति का आगमन करता है। वह चाहकर भी अहं को छोड़ता नहीं और जीवन की मोड़ पर अकेले रहने पर विवश हो जाता है।

‘रूना आ रही है’ इस कहानी में जब निमा विजातीय शैकत से विवाह कर लेती है तो स्वयं के परिवार से उनके ओर रिश्ते नाते टूट जाते हैं। सुख-दुख के प्रसंग में भी उसे बुलाया नहीं जाता। तब वह सोचती है- “वह घर छोड़ा तो तय था, कि हमेशा के लिए छूट रहा है। छूट जाएगा, पर छूटा कहां! जब भी उस घर में ‘कुछ’ होने की खबर मिलती, एक प्रत्याशा अजाने ही दरारों में रिस आई रोशनी-सी पसर जाती। औरों को बुलावे गए होंगे। अनवइए पहुंचे होगे। हो सकता है, ‘रोचना’ लगी चिट्ठी मेरे पास भी आ जाए। और अगर आ गई तो ? आहत अहं सिर उठाता है। ‘ऊं-हूं। जाऊँगी नहीं। जानबूझकर यह जताने के लिए कि मुझे कौन परवाह है तुम लोगों की। सबसे अधिक सुख से हूं। सबकों सिंगे पर रखे हूं।”[54] आज मनुष्य स्वयं के बारे में सोचता है। परिवार जिसने सुख-दुख में उनको साथ दिया उसके बारे में न सोचकर अपने पति और बच्चों की सीमित दुनिया को महत्व देते है।

‘अपनी वापसी’ कहानी में रिन्नी को आज के नौजवानों के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है जिन्हें स्वयं पर आवश्यकता से अधिक अहंभावना होती है-“इस वक्त मैं सबसे महंगी मॉडल हूं’...गर्वोक्ति सुनकर अन्यमनस्कता हो आती है-अपनी बोली लगाने जैसी, कुछ छिछली-सी मनोवृत्ति ! जिसे आज का युवा वर्ग प्रतिष्ठा के प्रतिमान के रुप में तमगों-सा लटकाए, अपनी श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता में जीता, उसी से औरों को प्रभावित और आतंकित करने की चेष्टा में रत है।”[55]

3.1.3.7 लोभपरक संवेदनाः

किसी वस्तु का बहुत अच्छा लगना, आनंद का अनुभव होना और वह वस्तु किसी भी तरह प्राप्त होने की इच्छा को ही लोभ कहते है। 'बंद' कहानी से भ्रष्ट राजनीति का वर्णन करते हुए बंद के दिनों में लोगों को कितनी मुसीबतों को झेलना पड़ता है, इसका उदाहरण है। अखबार के दफ्तर में काम करने वाले हरीश, रमेश और नवल बंद के दिन कार्यालय में ही होते है। उनके पास चाय-नाश्ते के लिए भी पैसे नहीं है। मल्होत्रा साहब आए नहीं, कैंटिन बंद है। वे मजबुरीवश कार्यालय के रैक की स्वच्छता कर रद्दी बेचते हैं। यहाँ लोभ की उत्पत्ति मजबूरी है –"रैक्स में अखबारों के ठुसे हुए बंडल देख रहे हो ?" "एक रोज बुड्ढा कह नहीं रहा था कि जी, आप लोग कभी फुरसत में हों तो जरा दफ्तर की झाड़-पोंछ कर लें। बड़ा बेतरतीब हो रहा है मामला। क्यों न हम इन बंडलों में से आधी-पौनी रद्दी बेच ले ?"[56]

लोभ के इस प्रवृत्ति को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उचित उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है, "रुपये के रूप, रस, गंध आदि में कोई आकर्षण नहीं होता, पर जिस वेग से मनुष्य उसपर टूटते हैं उस वेग से भौंरे कमल पर और कौए मांस पर भी न टूटते होंगे। यहाँ तक कि 'लोभी' शब्द से साधारणतः रुपये-पैसे का लोभी, धन का लोभी समझा जाता है। "[57]

अमीर हमेशा अपना वर्चस्व कायम रखना चाहता है, इसलिए वह गरीब को अपने एहसानों के नीचे दबाकर रखता है ताकि वह विरोध न करें। इस प्रकार से यह शोषक वर्ग गरीबों का आर्थिक शोषण करते हैं। इस संदर्भ में डॉ. दंगल झाल्टे का कहना है,"निम्नवर्ग जी तोड़ श्रम मेहनत तथा प्रयत्न की पराकाष्ठा के बावजूद गरीबी एवं लाचारी की भट्टी में उबलता जा रहा है।"[58] रामखिलावन ईमानदार ड्राइवर है । उसकी बेटी को पलस्तर लगवाने हेतु वह साहब से एडवांस मांगता है, पर वे साफ इन्कार कर देते है तब मजबुरन वह गैराज वाले जमाल के लोभ में पड जाता है –"बड़े भोले बन रिए डिरेवर सा'ब। लो, मतलब समझाए रिया मैं। देख, साहब गाड़ी चलाता नई...किदर क्या कल-पुरजा, उसको पता नई। तू हफ्ते में कुछ भी नुस्क बना के गाडी घंटे-डेढ़ घंटे-भर इधर ला के खड़ा कर दिया कर। हर फेरे के पांच परसेंट पक्के। तेरे से पिछलेवाले के साथ अपने येई टरम थे...पगार से तो किसी की सुखी भी नई चलती, समझे भैये !"[59]

मालिक अपनी गाड़ी के सीटे बदलवाने के लिए पैसे देता है परंतु इमानदारी से माँगे पैसे नहीं देता। इसलिए साहब से दगा ना करने वाला रमाखिलावन विवश होकर सीटे बदलवाने के लिए अपना परसेंट पक्का

कर लेता है- “आपने दो हजार का हिसाब बताया है साहब को...उसमें से मुझे बस पांच परसेंट। सौ रूपल्ली में क्या बनेगा ! सरदार जी थोड़ा उखडे-“तो सिध्दे-सिध्दे बोल ना, तेरी क्या उम्मीद है ? जो भी बिजनेस लाकर देता है, हम उसे नाखुश नहीं रखते !”… “कम-से-कम तीन तो दीजिए ही! काम भी बड़ा है।”[60]

चित्राजी द्वारा लिखित ‘बेईमान’ कहानी में रेलगाडी में पत्र-पत्रिकाएं बेचनेवाले बालक की मनोदशा का वर्णन किया गया। वह राजधानी एक्सप्रेस के एसी. डिब्बे में पत्रिकाएँ बेचता है। संभ्रांत परिवार के कुछ यात्री गाडी छूटने पर भी पैसे नहीं देते, कुछ वह भूलने के कारण व चिल्लर ना होने से वसूल नहीं कर पाता। मालिक बाबू भाई डाँटता-मारता है एवं उसके हिसाब से नुकसान हुए पैसे काट लेता है। बालक तो लावारिस था, उनके सहारे ही प्लेटफॉर्म पर पत्रिकाएँ बेचकर जीवनयापन कर रहा था। वह पैर पकड़ क्षमा मांगता है और आगे ऐसी गलती नहीं होगी वादा करता है। फिर पत्रिकाएँ लेकर तीन नंबर प्लेटफॉर्म पर मुंबई डिलक्स में चढ़ जाता है। एक बाऊजी सात रूपए की पत्रिका के लिए पचास का नोट दिखाते है। एकाएक उसके मन में अपने हुए नुकसान भरपाई का लोभ आ जाता है। वह बाबूजी ने नोट लेकर छुट्टे पैसे लाकर देने की बात करता है एवं गाडी छूटने तक रिजर्वेशन चार्ट के पीछे छिप जाता है – “रिजर्वेशन चार्ट बोर्ड के निकट पहुंचकर वह चार्ट बोर्ड के पीछे दुबक गया। वहां खड़े हुए वह स्पष्ट देख रहा है कि ‘फिल्मी कलियां’ वाले यात्री बाऊजी घबराए हुए-से दरवाजे पर आ गए हैं और लटके हुए-से पीछे छूट रही भीड़ में उसे उचक-उचककर खोज रहे हैं !”.... उसके मन में हिसाब चल रहा था। बाबू भाई को सात देकर बचे…बचे तैतालिस… “पता नहीं क्यों, पत्रिकाओं का गट्ठर एकाएक बक्कलवाली निकर में बदल गया।”[61]

‘मुआवजा’ कहानी में विमान परिचारिका शैलू की वीरता एवं बहादूरीपूर्ण मृत्यु का वर्णन किया गया है। जब वह आंतकियों से विमान में सवार सभी य़ात्रियों को तो बचाती है पर स्वयं शहीद होती है। उसे सरकार मुआवजे के रूप मे एक बड़ी राशि की घोषणा करती है । माता-पिता की इच्छा नहीं कि उसके बलिदान की कीमत वसूली जाए, पर ‘वनिता आश्रम’ को दान देने हेतु वे मुआवजा परिपत्र भरने राजी हो जाते है। पर छह वर्ष से अलग रह रहा शैलू का अत्याचारी पति के मन में मुआवजे का लोभ जगता है। पैसे हथियाने हेतु वह ‘एअर इंडिया’ के कार्यालय में मुआवजे हेतु प्रमाणपत्र दाखिल करता है – “मुआवजे की रकम ‘वनिता आश्रम’ को दान करने का अधिकार आप लोगों को कैसे मिल गया ? मैं शैलू का पति हूं, उसकी किसी भी प्रकार की संपत्ति पर मेरा अधिकार पहले बनता है, चाहे तिजोरी में रखूं या कूड़े में झोंक दूं।”[62]

स्वार्थी समाज द्वारा नारी शोषण आज भी देखने मिलता है। स्वार्थ सिद्ध करने हेतु पति अथवा ससुराल वाले किसी भी हद तक गिर सकते है यही लेखिका ने यहाँ चित्रित किया है। डॉ. गोरख थोरात के अनुसार – “चित्राजी ने समाज की उस प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है, जिसमें पुरूष नारी का जीवन भर शोषण करता है किन्तु उसकी मौत के बाद भी उसपर अपनी मिल्कियत स्थापित करना चाहता है। चाहे उसके रहते उससे घृणा ही क्यों न करता हो, उसकी भावनाओं से क्यों न खेला हो लेकिन धन की बात आते ही बेशर्मी से उसके धन पर अपना अधिकार जमाता है।”[63]

‘लाक्षागृह’ कहानी की नायिका सुन्नी दिखने में बदसुरत है पर वह नौकरी करती है। अच्छी पोस्ट है पर विवाह नहीं हो पा रहा है। कार्यालय का कोई कर्मचारी उसके साथ चाय पीना नहीं चाहते पर उसकी आठ सौ रुपए तनख्वाह पर नजर रख सिन्हा उससे विवाह करना चाहता है। इसीलिए वह अपने पास की सब पूंजी तथा कर्ज लेकर मकान खरीदती है। पर एक दिन वह सिन्हा एवं स्वामीनाथन की बात सुनती है- “सोच, आठ सौ रुपए महीने कमाने वाली कहां मिलेगी ? सौदे की कोई शक्ल-सूरत नहीं होती, मेरे यार। मैं जीवन और व्यवहारिकता को एक-दूसरे का पूरक मानता हूं।”[64] सुनीता को जब सत्य का पता चलता है तो उसके पैंरो तले से जमिन खिसक जाती है। वह अपने आत्मसम्मान से सौदा नहीं कर पाती। सिन्हा से विवाह से इंकार कर देती है। बिना जाने-समझे नौकरी से त्यागपत्र भी देती है। वह लंगडे देवेंद्र से विवाह की बात तय करने माँ से कहती है पर तबतक देवेंद्र का रिश्ता किसी ओर से तय हो चुका था।

कामकाजी महिला विवाह के प्रति गंभीर नहीं होती पर प्रौढता के कारण विवाह की समस्या खडी हो जाती है। तब उनमें विवाह की चाह, मातृत्वभाव पनपता है। सुन्नी के साथ सिन्हा विश्वासघात करता है। वह प्रेम का नाटक कर रहा था। उसकी नौकरी एवं पैसों की लालच विवाह कर रह था। इतना बडा धोखा स्त्री सह नही सकती। डॉ. पुष्पमाल सिंह मानते हैं कि-“पुरूष की खिलवाड़ वृत्ति लड़की के प्रेम के कारण बीवी न बताना अपितु ‘उसकी तनख्वाह को अपनी बीवी बताने’ का क्षुद्र आचरण, उस क्षुद्रता में अपने को अपनी अस्मिता को बचाने का सुन्नी का प्रयत्न और उसके विरोध में हल्दी-मिर्च बेचने वाले अपंग से विवाह का विवश निर्णय किंतु उसे भी प्राप्त न कर पाने की पीड़ा, एक करूणापात्र के प्रति उपजती है। नारी मन की विकृत्ति अत्यंत स्वाभाविक रूप में सुन्नी के आचरण में हुई है। आधुनिक नारी आज भी अपनी परंपरा, रूढ़ियों में जकड़कर रह गयी है।’’[65]

3.1.3.8 दैन्यपरक संवेदनाः

दैन्यपरक संवेदना विविध पात्रों द्वारा प्रकट की गई है। दीनता के प्रदर्शन से करुणा जागृत होती है। 'नीले चौखानेवाला कंबल' की टिकैतिन काक्की के बचुआ की हत्या हो जाती है। उसकी अंतीम यात्रा निकलती तब अकास्मात कक्की अर्थी को रूकवाती है- "ठहरो भैया, दूल्हा बने बिना हमारा बचुआ अपने बप्पा के पास कैसे जाएगा ? पुछेंगे नहीं मालिक, तेरी महतारी ने तेरी कोई हौंस पूरी नहीं की।" "बंधी टिकटी खुलवाई कक्की ने। हौले हाथों से बचुआ की निश्चेष्ट देह को दूल्हे का पीता जामा पहनाया।"[66] एक माँ का ममत्व के दर्शन यहाँ पर देखने के लिए मिलते है। पति के मृत्यु के बाद एक विधवा की दयनीय अवस्था को लेखिकाने प्रस्तुत की है। डॉ. गोरक्ष थारात के अनुसार, "ग्रामीण क्षेत्र में आज भी एक विधवा का जीवन कितना त्रासदीपूर्ण हैं इसका स्पष्ट चित्र प्रस्तुत कहानी में अंकित है।"[67]

'नीले चौखनेवाला कंबल' का अन्य दृश्य दैन्यपरक संवेदना से भरा है - "कक्की ने उनका तर्क निरस्त किया-"कल संझा मनिंदरवा ले नहीं आया चौकी से !" निरुपाय बहन को छिपाया हुआ बस्ता निकालकर उन्हें देना ही पड़ा। बचुआ के खून से नहाया हुआ बस्ता विह्वल कक्की अपनी गोदी में यूं लेकर बैठ गईं मानो दुधमुंहे बचुआ को गोदी में लिटाए हुए हों।"[68] टिकेतिन कक्की का जीने का एक मात्र सहारा उसका बेटा बचुआ था जिसका धोके से कत्ल किया जाता है। जिस संपत्ति की वह हकदार थी उसे सब में दान कर देती है।

'चेहरे' कहानी में मुंबई स्टेशन पर भीख मांगने वाली भिखारिन का वर्णन है जो समकालीन भ्रष्ट व्यवस्था का खुलासा करती है पर जब वह भीख मांग रही होती तब उसकी दैन्यावस्था वर्णित है – "हाथ फिर टखने को छू गया। उसके गुस्से और गाली का उस पर कोई असर नहीं हुआ। दयनीय गीड़गीड़ाहट भी पूर्ववत् थी –"एक चवन्नी–अठन्नी, सा'ब ! बच्चे के दूध के वास्ते। सुब्बू से भूखा है, दया करना, सा'ब! आपके बच्चे का लंबा उमर होना, सा'ब !"[69] इस कहानी में चित्रा जी ने चेहरे सिर्फ भिखारियों के ही नहीं दिखाएँ है बल्कि हमारे समाज का चेहरा यहाँ पर प्रत्यक्ष रूप में हमारा सामने आता है। एक प्रकार से रचनाकार ने सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार करते हुए रेलवे के बड़े बाबू से लेकर पुलीस के सिपाही तक मौजूद है। इन सबका चेहरा उद्घाटित किया है।'चेहरे' कहानी के संदर्भ में डॉ. घनश्याम दास भुतड़ा कहते है, "भिखारिन का यह जो नया रूप हमारे सामने लेखिका ने रखा है, उससे स्पष्ट होता है कि दया या भीख के नाम पर आज व्यवसाय हो रहा है। व्यवस्था कुछ ऐसी भ्रष्ट हो रही है कि भिखारियों से भी हफ्ते लेने के लिए संबंधित लोग नहीं हिचकते।"[70]

'जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं' इस कहानी में ललौना अपाहिज है उसे लेकर उसकी माँ सुक्खन भौजी सदैव चिंतित रहती है – "उसकी व्यथा से विचलित हो आई दिद्दा ने कंधे पर हाथ रख ढाढस बंधाया-"च्, च्, च्, सोवत बोरिया तनिक हल्दी तता के धर दीन्हों काखन पे, धीरज धरो ! लंगड़य सही, बेटवा तो हय मरत बिरिया मुंह में गंगाजल डारे क बरे...?"[71] पोलियों के कारण उसकी दोनों टांगे बेकार हो गई है। बैसाखी न होने के कारण बबुल की लकुटिया काँछ में दबाकर चलता है जिसके कारण उसकी काँछे छील जाती है।

'सौदा' कहानी में जब गेंदा शरण मांगती है तब लेखिका ने उसकी दैन्यावस्था द्वारा संवेदना प्रकट की है – "दारुण रुदन द्रवित कर गया। पांव पर झुकी छोकरी की जूड़ी चढ़ी-सी कांपती पीठ उसके इर्द-गिर्द बेड़ियां बुनने लगी।"[72] चंदू की पत्नी मंगला गेंदा की दशा देखकर पिघल जाती है और उसकी रक्षा करने का निर्णय लेती है। उसे यह भी ज्ञात है कि गेंदा को बचाने पर उसके पति को जेल हो जाएगी और उनका परिवार फिर से रास्ते पर आएगा फिर भी वह एक स्त्री के नाते अपना कर्तव्य पूरा करती है। इस संदर्भ में वेद प्रकाश अमिताभ का कथन है, "सौदा कहानी से ध्वनित है कि नारी चेतना केवल शिक्षित आधुनिकताओं तक सीमित नहीं है। इस चेतना की सार्थकता तभी हैं, जब यह अनपढ़ और पुरुष के निरंकुश एकाधिकार के नीचे दबी-पीसी नारी सोच का अंग बने।"[73]

समाज में दासता सदियों से चली आ रही है। गरीब इसी में अपनी जीवन के धक्के खाते-खाते जी रहे हैं। इंसानियत यह शब्द दिन ब दिन कहीं लुप्त हो रहा है। 'ब्लेड' कहानी में ड्राइवर रामखिलावन जब साहब से एडवांस मांगता है तो साहब क्रोधित हो डाटते है कि पहले ही चार सौ रुपए एडवांस ले चुके हो। पर बच्ची को पलस्तर करने हेतु रुपयों की अत्यंत आवश्यकता थी। तब उसकी दैन्यवस्था दर्शाई गई है – "उससे आवेश झटककर स्वयं अपने को फटकार लगाई। फिर स्वर को भरसक विनीत बनाकर, लगभग साहब क गोड़ गिरता-सा, अपना घाव खोलकर बैठा-"हिम्मत नहीं हो रही, साहब, पर एक बार और मदद कर दें। मेरी बिटिया की टाँग टूट गई। डॉक्टर कहते हैं, प्लास्टर चढ़ेगा, प्लास्टर चढ़े बिना हड्डी नहीं बैठने की। लड़की की जान, ऐब ने देह पकड़ ली तो पूरा जीवन सराप"[74] गरीबों की लाचारी और मजबूरी को यह लोग नहीं समझते उनको वे कुछ भी बताते है तो झुठा ही लगता है। परिस्थितिवश और पैसों के आवश्यकता कारण बेटी के लिए सीट पर ब्लेड चलाता है। वेद प्रकाश अमिताभ के अनुसार, "रामलिखावन साहब के प्रति कृतघ्न नहीं है। वह साहब से दगा करना न चाहते हुए भी कमीशन खाने पर विवश हैं। वही रामखिलावन के प्रति सहानुभूति उपजने का

कारण यह है कि वह मूलतः खल पात्र नहीं है। जिंदगी की परेशानियाँ उसे ऐसा करने पर मजबूर करती है और निर्णय तक पहुँचते पहुँचते वह अपने आप सेभी कम नहीं लडता जो बाहर से कहीं अधिक भीतर चलती हैं।"[75]

'मुआवजा' कहानी में साहसी विमान परिचारिका शैलू को उसका पति शारीरिक यातनाएँ देता था। वह उसके मॉडलिंग करने का विरोध करता था। विवाह के बाद पाँच छः वर्ष शैलू के पति उसकी घोर प्रताडना की –"जिस हालत में शैलू घर आई थी...जबान झूठ हो सकती थी, देह पर छलछलाए हुए वे दाग नहीं जो सिगरेट चुभो-चुभोकर उसके आत्मसम्मान को छलनी करने की चुगली खा रहे थे। छह सालों के दीर्घ अतंराल के बीच कोई एक दिन भी उन्हें याद नहीं जब सुमित से बात करके शैलू के माथे पर पुता हुआ तनाव पलांश ढीला हुआ हो और वह उस रात झपकी-भर सोई हो।"[76] उनका रिश्ता कागज पर सीमित था परंतु शैलू के मृत्यु के उपरांत उसके मुआवजे की रकम हथियाने के लिए तत्पर रहता है।

3.1.3.9 भयपरक संवेदना:

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "किसी आती हुई आपदा की भावना या दु:ख के कारण के साक्षात्कार से जो एक प्रकार का आवेगपूर्ण अथवा स्तम्भ कारक मनोविकार होता है उसी को भय कहते है।"[77] भय का दूसरा अर्थ डर भी है।

चित्राजी की कहानियो में भयपरक संवेदानाओं को प्रकट करने वाले कुछ प्रसंग चित्रित किए गए है। भय एक आवेगपुर्ण विकार माना जाता है। 'बावजूद इसके' कहानी में प्रीति ओबेराय में रिसेप्शनिस्ट का काम करती है। उसे कभी-कभी घर लौटते देर रात भी हो जाती थी। वैन द्वारा वह घर लौटती –"वैन ने गली खत्म कर मेन रोड पर मोड़ लिया। सड़क पर सुस्ताता, मरकरी से सफेद हुआ अंधेरा सहसा तीखी घरघराहट को पीता हुआ थर्राया। खड़ी देखती वह दहशत से घिरी सिहर-सी उठी। सन्नाटे में किसी भी तरह की आवाज कैसी चीख-सी लगती है...भोथरी चीख।"[78] भय के अनेक रूप है। मनुष्य डर महसूस करता है वह नहीं डरा है ऐसे दिखाता है। ताकि सामनेवाला इसपर टूट न पड़े यह उसका उद्देश्य होता है।

ईमानदार ड्राइवर जब पहली बार मजबुरीवश बेईमानी करने की सोचता तब वह काफी भयबीत होता है इसी का वर्णन 'ब्लेड' कहानी में पाया जाता है – "आगे वह कुछ कहने को हुआ तो अचानक उसे अपना गला सूखता महसूस हुआ। भीतर स्वयं से ही हाथापाई शुरु हो गई। ठीक वैसे ही सनसनी-भरी धुकधुकी

सीने में घुमड़ती महसूस हुई जैसे वह किसी चीज को लोगों की आंखें बचाकर जेब में डाल लेने की फिरक में हो और पूरी सर्तकता से निकल भागने की भी…यह चोरी है ! बेईमानी है !"[79]

रामखिलावत का मालिक अगर इन्सानियत के नाते उसकी बेटी के इलाज के लिए पैसे एडवांस में दे देता तो भोले-भाले रामखिलावत को बेईमानी करनी नहीं पडती । इसी बात पर प्रकाश डालते हुए के.वनजा स्पष्ट करती है कि-"इन्सानियत, गरीबी एवं ईमानदारी को मालिक लोग या पूंजीपति काटते रहते हैं लेकिन जब कोई चारा निम्नवर्ग के पास नहीं है तो वे भी ब्लेड का प्रयोग करेंगे । जहां मालिक के कठोर ह्रदय पर या उस व्यावस्था पर ब्लेड का प्रयोग किया जाता है । ऐसी व्यावस्था में ईमानदार भी कैसे बेईमान बन जाता है । यह इस कहानी से जाहिर होता है । सच्चे अर्थों में यहाँ वर्गों के बीच का संघर्ष हैं ।"[80]

'सौदा' कहानी में गेंदा जब दलालों की चुंगल से छूटकर भागती है तो काफी भयभीत हो जाती है – "उसकी दृष्टि में बटुर आए भय और संदेह ने किशोरी की बदहवासी को चिकोटी भरी- "हमार रच्छा…गुंडे हमरे पीछे हैं…बचाय…बचाय लो…" सूखी, सहमी आंखों की कोरों के तट पर एक नन्हीं-सी कांपती लहर उमड़ी और उसे भिगोने को-सी अरराती बढ़ आई ।"[81] गेंदा को फिर से दलाल न पकडें यह भय उसके मन में बढ रहा है । इसलिए वह एक दरवाजे पर मारकर बचाने की गुहार लगाती है । चंदू की पत्नी उसे आश्रय देती है ।

'गेंदा' की सुरक्षा हेतु 'वह' पटवर्धन ताई के घर को निकलती है । आधी रात का समय । गुरखा नहीं है पर दूर कहीं से डंडे की ध्वनि आ रही है –"अचानक चौड़ी माँग-सी कढ़ी बीचोबीच वाली सड़क के आखिरी छोर पर उसे तीन परछाइयां डोलती, आगे बढ़ती दिखाई दीं । भय से गला सूख आया । फुर्ती से किनारे लगी मेहंदी की बेतरतीब बाड़ के पीछे दुबक ली । सांस दबाई । करीब से गुजरे तो उनकी बतकही ने उसे तनिक सहज किया ।"[82] कभी कभी हमारे मन में किसी चीज के खातिर भय बैठ जाता है इस कारण हम बार बार डर जाते हैं।

3.1.4. मानवेत्तर प्रेमपरक संवेदनाः

हिंदी साहित्य में कहानियों में मानवेत्तर प्रेमपरक संवेदना के प्रमुखत: दो रूप दिखाई पड़ते हैं -

1. मनुष्य एवं अचेतन वस्तुओं का सहसंबंध
2. मानव का मानवेत्तर चेतन प्राणियों से सहसंबंध

चित्रा मुद्गल की कहानियों में मनुष्य का अचेतन वस्तुओं के प्रति रागात्मक संबंध दिखाई पड़ता है। अपने परिवेश में पाएं जाने वाले पेड़-पौधे, समुद्र ,तालाब, नदी, नाले, निर्झर आदि के प्रति रागात्मक संबंध विविध कहानियों में पाया जाता है। मानवेत्तर प्रेमपरक संवेदना के संबंध में उषा यादव जी ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि, "मनुष्य का जड वस्तुओं के प्रति रागात्मक संबंध या लगाव दो प्रकार का होता है- सामान्य विषयगत एवं विशिष्ट विषयगत देश के प्रति नदी, नाले, संध्या एवं चाँदनी के प्रति, एक साथ सभी लोग रागात्मक संबंध रख सकते हैं। इन्हें हम सामान्य विषयगत संबंध कहेंगे। पर अपने बाल्यकाल के टूटे-फूटे खिलौने, रोज स्कूल आते-जाते दिखाई देने वाले पीपल के पेड के नीचे अवस्थित सिंदूर पूते हनुमान जी तथा बहुतायत से उपयोग में आने वाला टेलीफोन हमारी रागात्मक संवेदना के विशिष्ट विषय कहलायेंगे।"[83]

3.1.4.1 मनुष्य एवं अचेतन वस्तुओं का सहसंबंध

चित्राजी ने अपनी कहानियों के माध्यम से प्राकृतिक सौन्दर्य एवं जड वस्तुओं से संबंध के विविध प्रसंग चित्रित किए है। उनकी कहानी 'एंटीक पीस' में जब माँ अपनी बहन कुंती के पुत्र इंद्रजीत के खानदानी पानदान देने को तत्पर हो जाती है तब बीमार पिताजी एवं नमिता को बहुत दुःख होता है क्योंकि पानदान से दादी जी की यादें जुड़ी थी। एक प्रेमपरक संवेदना जुड़ी थी- "पानदान पर नजर पड़ते ही बाबूजी की आँखें सजल हो आई। आत्मा के चढ़ाए का है यह पानदान।" बड़े चाव से ढक्कन खोलकर तारकशी किया हुआ सरौता उसे दिखाने लगे-"खिलौना-सा खेलती हुई औरों से बतियाती रहतीं अम्मा और मजे से छालिया कतरती रहतीं।"[84]

इस पानदान के प्रति बाबुजी का लगाव इतना अधिक था कि वे प्रतिदिन उस पानदान और सरौता को छूकर देखते- "पानदान के प्रति बाबूजी के आंतरिक लगाव- जुड़ाव से अनभिज्ञ नहीं मां जो इंद्र भैया की बैठक की पारंपारिक साज-सज्जा में इजाफे की खातिर इस घर में दादी की एकमात्र शेष रही निशानी उठा के सौंप दे रहीं? चलते-फिरते बाबूजी कार्यालय से घर लौटने पर तकरीबन रोज ही पानदान खोलकर खाली सरौता चलाए बिना न मानते।"[85]

'जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं' इस राजनीति का कच्चा-चिट्ठा खोलनेवाली कहानी में अपाहिज ललौना और सुक्खन भौजी का हाथ से चलनेवाली पहियोंवाली गाड़ी के प्रति प्रेमपरक संवेदना का चित्रण किया है। सुक्खन भौजी गाड़ी देखने ललायित है। उनकी लालसा का चित्रण दृष्टव्य है – "सुक्खन भौजी का

मन ललक रहा है कि पोलके पर फीते का बिल्ला टांके, इंतजाम में व्यस्त किसी बहनजी से विनती करे कि उसे निकट से पहियोंवाली गाड़ी दिखा दे। तनिक छूकर देखे, ललौना उस पर किस विधि बैठेगा, चलेगा–फिरेगा।"[86]

अपाहिज ललौना जो अबतक बैसाखियों का सहारा लेकर चलता था, हाथ से चलनेवाली गाडी देखकर खुशी से फूला नहीं समाता जैसे उसे पंख लगने वाले है–"एक कार्यकर्ता ललौना को स्वयमेव गाड़ी में बैठने और उसे हैंडिल द्वारा संचालित करने की विधि समझा रहा है। ललौना की अचंभित आंखों में आत्मविश्वास-भरी चमक अंकुआ रही है। उसने अपने गांव में अनगिनत साइकिलें दौड़ती देखी हैं, पैडल मारते पांवों को बड़ी हसरत से देखता रहा है वह। उसे महसूस होता है, उसके हाथ सहसा पांवों में परिवर्तित हो उठे हैं। और गाड़ी का हैंडिल पैडल में और पैडल पर उसके पांव तेजी से घूमने लगते हैं।"[87]

ललौना एवं सुक्खन भौजी का यह सुखद प्रसंग अधिक समय तक नहीं टिकता। ठाकुर सुमेर सिंह रात में ही आकर पहियोंवाली गाड़ी वापस माँगते है। दु:खी एवं भयभीत भौजी जवाब भी मन ही मन से देकर गाड़ी के प्रति अपनी संवेदनाएँ व्यक्त करती है-"मालिक ! मोरे बचौना की जिनगी न छीनो, पहिया वाली गाड़ी पाय के वह हिरन की नाईं चौकड़ी भरत फिरत हय...रांड मेहरियां की बुढ़ौती की आस है अभागा... गाड़ी छीन लैहो तौ कैसे जिई मोर ललौना !कइसे जिई..."[88] पहियोंवाली गाड़ी ललौना के लिए आवश्यता भर नहीं है बल्कि जीवन का आधार है। इस संदर्भ में वेदप्रकाश अमिताभ का कहना है,"वह व्यवस्था के जनहितकारी मखौटे को नोचकर उसके स्वार्थी और क्रूर चेहरे को सामने रखने में सक्षम हैं। इस लंबी कहानी में आया विकलांग ललौना हाड़ मांस का चरित्र भी हैं और प्रतीक भी, पराश्रित और असहाय जनसाधरण का प्रतीक। मजबूत बैसाखियाँ बनवा देने का आश्वासन इस प्रकार है कि समता, समानता आदि मूल्यों अधिकारों को भूल जाओ, यह क्या कम है कि हम तुम्हे हथकड़ी, बेड़ी में जकड़ रहे है। "[89]

'दशरथ का वनवास' इस कहानी में बबून जब बाबूजी की अनुपस्थिति में साइकिल पर पाठशाला जाता है तो उसकी साइकिल की सभी मित्र भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं – "बाबूजी कानपुर गए हैं तो कुबेरिया से पहले क्या लौटेंगे। यही सोचकर बड़े इत्मीनान से उसने सबकी नजरें बचाकर, कैरियर पर किताबें-कॉपी जमाईं और पिछवाड़े से घूमकर स्कूल भाग लिया था। उसके सहपाठियों ने उसकी चमचमातीं साइकिल को बार-बार छूआ था और ढेर सारी जिज्ञासाओं एवं प्रशंसा-वाक्यों से उसे लाद दिया था कि वह सचमुच भाग्यशाली है जो उसे नई साइकिल मिली है।"[90]

महानगरों की यांत्रिक जीवन को भी चित्राजी ने अनेक कहानियों में चित्रित किया है। 'ट्रेन छूटने तक' कहानी में मुंबई की ट्रैफिक एवं भीड़ का वर्णन मिलता है। वहां की मशीनी जीवन का वास्तविक नजारा दृष्टव्य है- "ट्रैफिक अभी थमा हुआ है। वह भीड़ के साथ लगभग दौड़ते हुए सड़क पार करती है। अपने पीछे उसे मोटरें स्टार्ट होने की घरघराहट और हॉर्न की तेज आवाजें सुनाई देती हैं। ट्रैफिक खुल गया है, फुटपाथियों के रंग-बिरंगे सामानों से बचती हुई वह स्टेशन में दाखिल होते हुए क्षण भर के लिए मुड़कर देखती है। भीड़ उस पार फिर थम गई है- सिगनल की प्रतीक्षा में।"[91]

चित्राजी ने प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन कर जड़-अचेतन प्रकृति के प्रति रागात्मक संवेदना की अभिव्यक्ति अनेक कहानियों द्वारा की है एक उदाहरण प्रस्तुत है - "कुल्ली और नालदेडा की उन्नत पर्वत श्रृंखलाओं सघन और देवदारुओं की ढलानों पर कांपते सफेद सेनारा के छोटे-छोटे जंगली घास के फूल ! ओस की बूंदों से झिलमिलाते ठंडी हवा की सहलाती दुलार से सिहारते। आपने कहा था आपको घास के वे फूल बहुत भले लगते हैं। जब आप किसी चट्टान पर बैठकर लिखने में मग्न होते तो मैं ओस से सफेद सेनारा चुनती और अंजुरी में भर उसकी कॉपी पर उडेल देती। ओस में भीग जाते आपके लिखे हुए पन्ने। और फिर उन पन्नों पर इंद्रधनुष खिल आते…एक नहीं अनेक इंद्रधनुष, सतरंगे, नीले-नीले अक्षरों के बीच सफेद सेनारा और सफेद सेनारा के बीच इंद्रधनुष।"[92]

'अढ़ाई गज ओढ़नी' में माँ एवं पुत्री दोनों की ओढ़नी के प्रति संवेदनाएँ स्पष्ट दिखाई देती है। दोनों को वहीं ओढ़नी चाहिए -"ओढ़नी देखते ही प्रिया की बटन जैसी गोल आंखें कारूं का खजाना हासिल करने जैसी खुशी से उद्दीप्त हो टिमटिम कर उठीं। …"ओढ़नी लिथड़ने न पाए प्रिया ! मेरे चढ़ावे की है, सुना ऽऽऽ...?"[93]

टिकैतिन कक्की के इकलौते पुत्र की हत्या के बाद उनमें वैराग्य भाव जागृत होता है। वे सारी संपत्ति दान कर हरिद्वार आश्रम रहने का विचार रखती है। सारी संपत्ति गांव की भलाई में लगाने का सोचती है। जेठानी के दबाए हुए गहनों के साथ अपनी हंसुली भी दे देती है। निर्धनों, अपाहिजों को कंबल बाटने हेतु शहर से सैकडों कंबल मंगाती है। उन कंबलों में नीले चौखानेवाले कंबल के प्रति अपनी प्रेमपरक भावनाओं पर रोक नहीं लगा पाती। लाखों रुपए बांटती है पर उस कंबल को स्वयं के लिए रख लेती है, वैराग्य भावना की हार हो जाती है – "जर्द, उदास आंखें गड़ाकर उन्होंने खुली गांठ के ऊपर तहाए रखे हुए कंबलों में से नीले चौखानेवाला कंबल ढूंढ़ निकाला। पन्नी परे फेंककर उसकी मखमली तर पर हौले-हौले हाथ फेरा। नाक के पास ले जाकर

उसकी जवान गंध को सूंघा। फिर कंबल उठाए हुए कक्की लालटेन वाले आले के निकट आईं। लालटेन की बत्ती उकसाई उन्होंने। बत्ती के सुहनरे आलोक में उन्होंने नीले चौखानेवाला कंबल पूरा खोलकर अपने दोनों बाजुओं की सीमा तक फैलाया और उसे मंत्रमुग्ध दृष्टी से देखते लगीं।"[94]

इस तरह स्पष्ट होता है कि चित्राजी ने अपनी कहानियों के माध्यम से मानव का अचेतन वस्तुओं से संबंधित संवेदनाओं का सुंदर चित्रण किया है।

3.1.4.2 मानव का मानवेतर चेतन प्राणियों से सहसंबंध :

मानवेतर चेतन प्राणियों का सहसंबंध या रागात्मक संवेदनाएँ चित्राजी की कहानी साहित्य के द्वारा उतनी मात्रा में नहीं पाई गई जितनी की जड़ वस्तुओं के प्रति पाई जाती है। इस संबंध कुछ ही कहानियों में मानवेत्तर चेतन प्राणियों के प्रति संवेदनाएं पाई गई।

मानव की मानवेत्तर चेतन प्रणियों की संवेदनाएँ तो महादेवीजी ने प्रकट की है। उनका यह कथन दृष्टव्य है –"पंचतंत्र का लेखक चाहे जो भी रहा होगा, वह निश्चित ही बहुत बड़ा पशु-प्रेमी रहा होगा, क्योंकि जैसी संवेदना और भावबोध उन्होंने अपने मानवेत्तर पात्रों में भरने का प्रयास किया है, वह साधारण मनुष्यों की अनुभूति के स्तर की सीमा को भी अक्सर लाँघ जाती है।"[95]

चित्राजी की कहानियों में भी प्राणियों के प्रति रागात्मक संवेदना दर्शाती 'जिनावर' एवं 'जंगल' कहानियाँ पाई गई है। 'जिनावर' में तांगवाले असलम एवं उसकी दुलारी सरवरी घोड़ी की रागात्मक संवेदना का वर्णन किया गया है। असलम सरवरी से बहुत प्यार करता है। सरवरी भी असलम एवं भरे-पुरे परिवार का बोझ अपने कंधे पर उठाती है पर कुछ दिनों से वह बीमार थी। उसे भयंकर तकलीफ हो रही थी लेकिन वह मालिक के नमक का हक अदा करने हेतु तांगा खींच रही थी। यहाँ सरवरी की मालिक असलम के प्रति कर्तव्य एवं रागात्मक भावनाएँ दिखाई पड़ती है। सरवरी को जानलेवा हालात में इतना दौडाने के बाद असलम उसके पास गया-"उसका चेहरा दोनों हाथों में लेकर करुणा से उसकी आंखों में झांका। झांकते ही कलेजा मुंह को आ गया। सरवरी की कीच-भरी निस्तेज डूबती आँखों में बुझने से पूर्व की लौ धधकती दिखी !"[96]

विश्वमोहन तिवारी असलम की घोडी सरवरी के अलावा अन्य सभी लोगों में पशुता देखते है,- "जिनावर में सारे वातावरण में एक प्रकार की पशुता ही फैली हुई है। कहानी में केवल असलम की घोड़ी को

छोडकर जिसका व्यवहार इतना स्नेहपूरित , त्यागमय और समझदारीपूर्ण है कि स्पष्ट हैं, उसी में मानवता है वरन शेष तांगेवाला असलम, पुलिसवाले तथा दुर्घटनागस्त कार के मालिक तिवारी नितांत स्वार्थ प्रेरित है। केवल अंत में सरवरी का त्याग असलम में मानवता जगाता है।"[97]

दुर्घटना में सरवरी की मौत हो जाती है तब रात में असलम बहुत व्यथित होता है क्योंकि उसने जान बुझकर सरवरी को गाडी से भेड़ दिया था-"तेजी से कोठरी में लौटकर वह बदहवास-सा न जाने अपने सिरहाने क्या खोजने-टटोलने लगा। किसी चीज के हाथ लगते ही उसे अपनी छाती से भींच, कलेजे में हूक के बवंडर से उठते-घुमड़ते रुदन को दबाने की कोशिश में असफल होता हुआ वह इतनी जोर से चिंघाड़ मारकर रोया कि लगा जैसे कोई पेड़ अपने तन से कटकर अरराता हुआ धरती पर गिरा हो और उसकी कारुणिक अरराहट पलों तक दिशाओं में कांपती हुई ठहर गई हो।"[98] परिवार आर्थिक परिस्थिति के कारण मजबूरी में असलम अपने जान से भी ज्यादा प्यार करने वाली सरवरी को मौत के कुएँ में ढकेलना पड़ा। जानकी प्रसाद शर्मा का इस संदर्भ में कथन है, "लेखिका असलम यानी एक मजदूर का 'लुम्पनीकर' करके नहीं छोड़ देती, बल्कि उसे एक सकारात्मक दिशा देती है। कहानी से यह संकेत उभरता है कि गरीबी के कारण व्यक्ति में अस्थायी चारित्रिक विचलन तो आसकता हैं, लेकिन अन्ततः उसमें मानवीय तत्व बचा रहता है।"[99]

'जंगल' कहानी में तीन-चार वर्षीय बालक पियूष एवं उसने घर में पाले हुए दो खरगोश, सोनू-मोनू के रागात्मक संवेदना का चित्रण पाया जाता है। पियूष सोनू-मोनू से बहुत प्रेम करता है। उनके साथ खेलने के चक्कर में वह दोस्तों के साथ खेलना भूल जाता था। पर एक दिन अचानक एक खरगोश की मौत हो जाती है। तब पियूष भी बहुत दुःखी हो जाता है। उसने कभी मौत नहीं देखी थी -"पियूष रोने लगा - "दादी-दादी ! ये सोनू को क्या हो गया ? दादी, सोनू बीमार है तो डॉक्टर को बुलाकर दिखाओ न…दादी ! अम्मी गंदी हैं न ! बोलती हैं-सोनू मर गया...।"[100]

जब मांडवी दीदी ने अपने बेटे को फोन किया कि एक खरगोश की मौत हो गई है, तब वह चौकीदार या जमादार से कह कर उसे अपार्टमेंट्स से लगे नाले में फिंकवाने की बात कहता है और उसे तो कुत्ते-बिल्लियाँ सफाचट कर जाएँगे। बात खतम हो जाने के बाद उसकी माँ का वक्तव्य प्राणियों के प्रति संवेदनाएँ प्रकट करता है-" उन्होंने शैलेश से स्पष्ट कह दिया था-छुट्टी लेकर वह फौरन घर पहुँचे। उनके घर पहुँचने तक पियूष घर पहुँच चुका होगा। अपनी घड़ी पर निगाह डाल ले वह। नाले में वह सोनू को हरगिज नहीं फिंकवा सकतीं। पियूष

सोनू को बहुत प्यार करता है ।... उनकी इच्छा है, घर के बच्चे की तरह सोनू का अंतिम संस्कार किया जाए। आस-पास ही कहीं जमादार से मिट्टी खुदवाकर उसे जमीन में गाड़ दिया जाए ।"[101]

दूसरा खरगोश मोनू जब पियूष के साथ नहीं खेलता तब दादी कहती है कि वह सोनू के मरने से दुःखी है । वे मोनू को जंगल में उसके माँ-बाप के पास छोड़ना तय करते हैं तब पियूष कहता है, अब उसे तोता नहीं चाहिए क्योंकि तोता भी अपने माँ-बाप से बिछुडकर दुःखी होगा । यहाँ भी उसकी प्राणियों के प्रति रागात्मक संवेदना दिखाई देती है ।

इस तरह चित्राजी ने अपनी कहानियों में मानवेत्तर प्रेमपरक संवेदना का चित्रण किया है ।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि चित्रा मुद्गल जी ने अपने कहानी साहित्य द्वारा मूलप्रवृत्तिपरक संवेदना के अत्यंत सुंदर-सजीव दृश्य प्रस्तुत किए है । इनसे मानव मन में उदित होनेवाले करुणा, काम, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, दैन्य, लोभ, भय और अहंभावना जैसे मनोविकारों के दर्शन होते है । मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाओं के कारण ही साहित्य में रुचि उत्पन्न होती है एवं पाठक उन प्रसंगों से समरस होकर इतना एकरुप हो जाता है कि हर संवेदना का वाहक बन जाता है करुणा में अनायास उसकी आँखों से अश्रु टपकने लगते है, तो क्रोधपरक प्रसंग पढ़कर मुट्ठियाँ भींच लेता है । इस प्रकार से मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाओं का समायोजन लेखिकाने अपने कहानियों में बखूबी से प्रस्तुत किया है ।

3.2 सुखात्मक संवेदना

चित्रा मुद्गल जी ने अपने कहानी साहित्य द्वारा सुखात्मक संवेदना का व्यापक चित्रण किया है । सर्वविदित है कि सुख सभी के लिए अलग-अलग परिभाषा एवं मात्रा रखता है । कोई व्यक्ति साईकिल पाकर सुखानुभूति अनुभव करता है तो कोई चार पहिया होकर भी सुखात्मक संवेदना महसूस करता है । सुख यह परिस्थिति एवं संदर्भों के साथ–साथ पात्रानुरूप परिवर्तित होता है । किसी-किसी को दो जून रूखी-सूखी रोटी मिल जाए तो सुख मिलता है तो किसी दूसरे को तरह-तरह के विभिन्न पकवान खाना सुखात्मक संवेदना है । चित्राजी ने अपनी कहानियों द्वारा सुखात्मक संवेदना की छटा चित्रित की है।

'दशरथ का वनवास' इस कहानी में रमानाथ अपनी पत्नी सुधा एवं टिनु-मोना के साथ अपने परिवार से दूर शहर में रहता है । उसे बचपन में अपने पिता के रूखापन एवं गुस्से का सामना करना पड़ा । अतः वह नौकरी लगी तब से गांव गया न कभी पिताजी से मिला ना ही उन्हें कभी पत्र लिखा । ना ही वह अपनी माँ के

स्वर्गवास पर ही घर गया। सुधा मायके भाई के पास दिल्ली गई है इसी कारण रमानाथ की दिनचर्या बदली हुई है। पत्नी बच्चों के ना रहने पर उसे घबराहट महसूस होती है तभी दिल्ली से फोन आता है। वह बहुत खुश हो जाता है पर फोन पर सुधा के भाई साहब सुधा के मुम्बई आने की खुशखबर देते है। वह एकाएक स्फूर्ति से भर उठता है। वे कहते है -"हलो! रमानाथ ! सुनो, आज 'डीलक्स' से सुधा और बच्चों को मुंबई के लिए बैठा दिया है। कल चार या चार बीस के करीब तुम उन्हें दादर पर ही उतार लेना।"[102] दापंत्य जीवन की सहज प्रवृत्ति एक दूसरे से प्रेम और अनुराग। जिससे इस रिश्ते में सुख का संतोष रहता है।

'त्रिशंकु' कहानी में लेखिका ने बंडू, उसके माता-पिता एवं बहन कमली को लेकर निम्नवर्गीय मानसिकता वाले परिवार की कहानी को जीवंततापुर्वक चित्रित किया है। बाप नशेडी है। उसने एक रखैल रखी है। मां को सदैव पीटता रहता है। बंडू सिनेमा थिएटर पर टिकट ब्लैक करता है। कमली को माँ ने जोशी टीचर के घर काम करने रख छोड़ा है। वह उन्हीं के साथ रहकर घर का काम करती है। वह उन्हीं के रंग में रंग जाती है। जोशी बाई पुणे जाने वाली थी तब कमली मां के साथ रहेगी इसी खुशी में वह मग्न हो जाती है –"मां कल कितनी खुश थी –उमंग से भरी हुई कि वह कमली के सूने पांवों के लिए चांदी की तोड़ियां खरीदकर लाना चाहती है।... उसने चलते फिरते यह सूचना भी दे दी थी उसे कि 'सीपी' और 'कोलमी' (चावल की किस्म) भात पकाएगी – कमला की पसंद का खाना।"[103] भारतीय माँ का रूप लेखिकाने इस कहानी में दर्शाया है। घर में खाने के लाले पड़े है पर बेटी आने की खुशी बंडू की माँ अपनी बेटी कमला के पसंद का खाना बनाने के लिए उत्सुक है।

'बेईमान' कहानी के छंटकी की खुशी चारों दिशाओं में छा गई क्योंकि आज पुस्तकों की बंपर बिक्री हुई थी वह रेल्वे स्थानक स्थित बाबू भाई के बुक स्टॉल पर होश संभाला तब से काम करता था। रेल के आने पर पुस्तके डिब्बे में बेचना उसका नियमित काम था। आज की बिक्री से वह खुश था- "निकर का खीसा रेजगारी के वजन से पींगे ले रहा है। बाबू भाई बहुत खुश हो जाएंगे आज की बंपर बिक्री से।"[104] पर वह वसूली ठीक से नहीं कर पाता है। उसका चौदह रुपयों का नुकसान होता है। डांट पड़ती है। वह दूसरी ट्रेन के पास पहुंचता है। तभी एक सवारी आवाज देकर पुस्तक मांगती है। सात रुपयों की पुस्तक के लिए वह पचास का नोट थमाता है। वह पहले रेजगारी के कारण मना कर देता है पर अपनी नुकसान भरपाई हेतु उसके मन में बेईमानी आती है वह लपककर पचास का नोट लेते हुए बुक स्टॉल से छुट्टे लाने की बात करता है और निकल पड़ता है

धीरे-धीरे। सवारी परेशान ट्रेन छूट जाती है। वह हिसाब लगाकर खुशी अनुभव करता है-"उसका दिल उसकी उभरी पसलियों को तोड़कर उछलकर बाहर आ जाने को है, आगे बढ़ते डिब्बों के संग हाथ हिलाती बढ़ रही भावुक भीड़ को चीरते हुए वह पीछे को बढ़ने लगा।...उसके मन में हिसाब–किताब चल रहा है।...वह तेजी से पलटकर प्लेटफॉर्म की सीढ़ियां चढ़ने लगा। पता नहीं क्यों, पत्रिकाओं का गट्ठर एकाएक बक्कलवाली निकर में बदल गया।"[105] बेईमानी से ही सही पर उसका नई बक्कलवाली निकर खरीदने का सपना सच होने की सुखात्मक अनुभूति से वह सराबौर हो गया था।

किसी माँ के सम्मुख अगर कोई उसके बच्चे की प्रशंसा कर दे तो वह क्षण उस माँ के लिए अति सुखदायी प्रसंग होता है। वास्तव में कुहू बचपन से ही होशियार थी। मिसेज चतुर्वेदी के सामने जब पड़ोसी ने कुहू की प्रशंसा की तो वे फूली न समाई। कुहू हाजिर जवाबी थी-"उम्र पुछता कोई तो मां बालिश्त भर उचकती हुई बताती कि मैं चार साल सात महीने की हूं। और अगले की आंखें पकी मटर की भरी छियां-सी फटकर रह जातीं- "सच्ची ! गजब की बाढ़ पाई है बिटिया ने, मिसेज चतुर्वदी ! भई, राई-नोन उतार दीजिएगा आज शाम। मां की बांछे हिलोरें लेने लगतीं- 'राई-नोन की ठीक कही आपने, बिना नागा उतारती हूं मैं कुहू की (झूठ !)। नजर-भर किसी ने इसे देखा नहीं कि पट्ट पट्ठी ने बिस्तर पकड़ा नहीं।"[106]

'नतीजा' कहानी में वेश्याओं के संतानों के योग्य संस्कार तथा शिक्षा देने लेखिकाने प्रयास किया है। प्रेमचंद ने इस विषय पर सेवासदन उपन्यास में वेश्याओं की समस्या पर प्रश्न उठाएँ थे। चित्रा जी ने वेश्याओं समस्या के साथ-साथ उसका निवारण भी हमारे सामने इस कहानी माध्यम से रखा है।

पुरबी दी एवं उनकी सहेलियां 'होम' नामक संस्था चलाते थे। इसके अंतर्गत कुल सत्ताईस बच्चियां रहती थी, जिन्हें अथक परिक्षम द्वारा नगरपालिका के स्कूल में दाखिल कराया जा सका था। ये बालिकाएँ सेक्स वर्कर की बेटियां थी। जिन्हें पढ़ाने में काफी दिक्कतें आ रही थी। प्रिंसिपल लगातार उसके पढ़ाई की अरुचि की शिकायतें कर रही थी। अगर उनके अंक उचित नहीं आए तो उनको पाठशाला से बाहर करने की धमकी दे चुकी थी। उनके आचरण के कारण अन्य छात्रों पर दुष्प्रभाव पड़ रहा था। जब परिणाम प्राप्त हुए रिपोर्ट कार्ड देखकर सभी हतोत्साहित हो गये क्योंकि सभी लड़कियां फेल हो गई थी। उनके नतीजों के हिसाब से प्रवेश रद्द होना तय हो गया था। पुरबी उदासी के कारण 'होम' लौटती है दफ्तर भी नहीं जाती। पुरबी बिस्तर में पड़ी है। तभी रमा खुशखबरी लाती है कि रत्ना और गौरी की कक्षाध्यापिका ने कल नतीजे के कार्ड

नहीं दिए थे वे पास हो गई। तब पुरबी दी अत्यंत प्रसन्न होती है-"कार्ड खोलकर रूमा ने उनकी आंखों के सामने फैला दिए। अनिच्छा से पुरबी दी की आंखों ने नंबरों पर दृष्टि डाली,'अरे-ऽ-ऽ! बच्चियां पास हो गईं।' पुरबी दी देह से चादर फेंक झपाटे से उठ बैठीं। पलंग पर तिरछे हो उन्होंने रूमा को विह्वल हो अंक में भर लिया। आंखें भल-भल बहने लगीं। होंठ अस्फुट-से बुदबुदा उठे, "मैं पास हो गई, रूमा...पास हो गई मैं...।"[107] लेखिकाने इस बात पर जोर दिया है कि वेश्यओं की जिंदगी जिस प्रकार से नारकीय है वैसे उनके बच्चों की ना हो। उनको लिखना-पढ़ना तथा अपने पाँवों पर खड़ा होने का अधिकार है। उनको उस परिवेश बाहर निकालकर समाज का योग्य नागरिक बनाने का लक्ष्य लेखिका इस कहानी के द्वारा चित्रित करती है।

'शिनाख्त हो गई' इस कहानी में लेखिका ने बालक के खो जाने पर उसके परिवार के सदस्यों एवं माता-पिता की दयनीय मानसिक अवस्था का वर्णन किया है। विविध बूरे घटनाओं के वर्णन से पल-प्रतिपल लगता है कि सोनू के साथ क्या हुआ होगा पर अंत में वह सुरक्षित मिल जाता है। तब उसकी माँ को सुखात्मक अनुभूति का अहसास होता है–"सचमुच निखिल की बांहों में सोनु को देखती हूं। सहसा किसी अदृश्य शक्ति का संचार स्वयं में फूटते हुए महसूस करती हुई मैं स्प्रिंग सी उछलकर उसकी ओर झपटती हूं और निखिल की बांहों में से सोनू को लगभग दबोच अपने सीने से भींच लेती हूं। आह ! मेरी सूखी छातियों से दूध उतरने लगा है अविरल अश्रुधाराएं कंठ फलांगती वक्षस्थल पर प्रवाहित हो रहीं।"[108]

सुखात्मक संवेदना का विस्तुत विश्लेषण निम्नवत किया जा सकता है-

3.2.1 पारिवारिक जीवन से संबंध्द

3.2.1.1 दांपत्य-जीवन : भारतीय संस्कृति में दांपत्य जीवन को सबसे सुंदर रिश्ता माना है। जिसमें परिवार के सुख-दुख का एक साथ निर्वाह किया जाता है। विश्वास, प्रेम और साथ के कारण यह रिश्ता और भी गहरा बनता जाता है।

दांपत्य-जीवन से संबंधित अनेक प्रसंग चित्राजी की कहानियों में पाए गए हैं। 'मोरचे पर' कहानी में रिन्नी को उसके शहीद पति की याद आती जब वह उसको रुप की प्रशंसा करना था- "आरगंडी की सफेद साड़ी पहनो। तुम नहीं जानतीं कि तुम सफेद साड़ी में कितनी भव्य, आकर्षक, स्निग्ध लगती हो !...तुम्हें टैक्सी या बस से ले जाता तो पीछे एंबुलेंस दौड़ानी पड़ती-परी का पीछा करो। सैकड़ों घायल सड़क पर पड़े छटपटा रहे

होंगे…"[109] पति-पत्नी का प्यार मनोहार दांपत्य जीवन का अविभाज्य अंग है।

'दरमियान' कहानी में पति-पत्नी दोनों कामकाजी है। दोनों के बीच मधुर संबंध है। वे हास-परिहास भी करते हैं। कभी-कभी अश्लील मजाक भी उनके बीच हो ही जाती है जिसे सुदीप जायज मानता है-"'पति-पत्नी के बीच।' कपिल गंभीरता ओढ़ने की असफल चेष्टा करते -'भला पति-पत्नी के दरमियान गंदा और अश्लील क्या होता ?'…'आज से हम गंदी बातें नहीं करेंगे, बस, गंदे काम करेंगे। अब तो कोई ऐतराज नहीं !"[110]

'जरिया' कहानी में चित्राजी ने सुखी दांपत्य जीवन को चित्रित किया है। निगम दफ्तर में हैं उसकी पत्नी बेचैनी से उनकी बाट जोह रही थी ताकि उसे खुशखबर दी जाए कि दिल्ली दूरदर्शन के एक फिल्म के लिए उसकी लिखी कहानी का चयन हुआ है-"चियर्स !' उसने भी हाथ ऊपर उठा दिया-"मैं आज बहुत खुश हूं।''लेकिन किसलिए ?' 'मेरी कहानी पर दूरदर्शन से फिल्म बनाने का प्रस्ताव प्राप्त हुआ है, इसलिए।' 'क्या !' और क्षणांश वह उन्मादी गिरफ्त में सिमट गई। अब लगा कि वाकई 'चियर्स' हुआ है।"[111]

3.2.1.2 प्रेमविवाह :

चित्राजी ने अपनी कहानियों में प्रेमविवाह का समर्थन किया है। प्रेम एक नैसर्गिक उपहार है। जब दो व्यक्तियों के बीच का आकर्षण बढ़कर दोस्ती से प्रेम में परिवर्तित होता है तब वे साथ-साथ जीने-मरने के वादे करते हैं एवं परिस्थितियों से दो हाथ करके आगे बढ़ते है यहां तक की अपने माँ-पिता, परिवार,सामाजिक रूढ़ियों को तिलांजली देकर वे विवाह कर लेते हैं।

चित्राजी की कहानी 'रूना आ रही है' में दो प्रेम प्रसंगों का वर्णन किया है जिसमें प्रमुख युवा जोड़ी रूना एवं श्रीमंत के प्रेम का वर्णन किया गया है जो कि सगाई के बाद ही टूट गया जिसका कारण बुआ नीमा एवं शैकत का प्रेम था।

नीमा को मुस्लिम युवा शैकत से प्यार हो जाता है। वह उससे मिलती रहती है। प्रेम उफान पर आता है तब चर्चाएं शुरू होती है, बंधन लगाए जाते है पर दोनों शादी कर लेते हैं- "एकाध लोगों ने हमें देख लिया। घर पर खबर पहुंचा दी गई। शैकत ने 'फैज' की गजलों के संकलन पर कुछ लिखकर दिया था-बतौर दस्तावेज हाजिर किया गया।…और पड़ोस में मेरे उठने-बैठने की मनाही हो गई। शैकत से आइंदा न मिलने की ताकीद भी।"[112]

चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानी 'केंचुल' में सरना एवं कल्पू की प्रेम कहानी एवं माँ की सहायता से प्रेम विवाह का वर्णन किया है। पहले तो अपने प्रेम में धोखा खाने से कमला अपनी पुत्री सरला एवं विजातीय भैया कल्पू के प्रेम का विरोध करती है पर सरला टस से मस नहीं होती तब उनके प्रेम की गहराई एवं सच्चाई के समक्ष कमला झुक जाती है एवं उन्हें जल्द से जल्द विवाह करने कहती है-"अचानक कल्पू की कमीज को कमला ने सीने से दबोच लिया। पूरी ताकत से उसे झकझोरती हुई चीखी,'कब से क्या मतलब ?बनाना है तो जल्दी बना।...पन जल्दी कर शादी...देर नईं मंगता...भरोसा नईं तेरा...कभी मुलुक को चला गया तो वापस नईं आएगा तू...भैया लोगों का एतबार नईं मेरे को।"[113]

'सफेद सेनारा' में शुभा एवं लेखक शरद बाबू का प्रेम सफेद सेनारा के गवाही में परवान चढ़ता है। वे साथ जीने मरने की कसमें खाते हैं। पर शरद बाबू शादीशुदा होने के बावजूद शुभा के साथ संबंध रखते हैं। शुभा का पुत्र भी है मुन्नू। शरद बाबू पहली पत्नी को अनपढ़ होने के कारण छोड़ देते हैं। वह बेचारी गाँव में सास-ससुर के सेवा में अपनी जिंदगी बीता रही है। शुभा को भी शरद बाबू ने भूला दिया और अब वे एक अमीर विधवा से विवाह कर समाज में एक आदर्श स्थापित करना चाह रहे हैं।

इस तरह प्रेम एवं प्रेम विवाह का चित्रण चित्राजी की कहानियों में चित्रित हुआ है।

3.2.1.3 शिक्षा : शिक्षा द्वारा न केवल व्यक्ति का बल्कि सारे समाज का भला होता है। शिक्षा केवल नौकरी के लिए नहीं होती बल्कि शिक्षा के कारण विचारों में भी परिपक्वता आती है। आज के युग में शिक्षा के महत्व को केवल शहर ही नहीं बल्कि गांवों में भी माना-जाना गया है।

'त्रिशंकु' कहानी में घर की विपन्न आर्थिक स्थिति के बावजूद भी सीताबाई अपने बच्चों को पाठशाला भेजती है। उन्हें पढ़ाती है ताकि वे पढ़-लिखकर कुछ बन जाए पर बंडू माँ की हालत देखकर कोई छोटा-मोटा धंदा करने सोचता है- "धंधे की बात सुनकर मां उखड़ गई। दुखी होते हुए बोली, 'मैं सोचती कि तू लिख-पढ़के आदमी बने...' 'धंधेवाले पढ़े-लिखे से जास्ती कमाते।'उसने तुनककर अपना तर्क प्रस्तुत किया। 'तू फकत मेरे को पांच रुपया दे,...तेरे पास नईं तो पिछे एक काम कर। अपनी पंजाबन सेठानी से मांग के दे।'उसने लगभग चिरौरी-सी की।"[114]

'लकडबग्घा' कहानी में पछाहवाली जब अपनी बहन के पास इलाहाबाद जाती है तो वह पुनिया के

पढ़ाई के बारे में पुछती है और शिक्षा का महत्व समझाते हुए उसे कहती है कि- "पुनिया के भविष्य की सोच, उसे कुछ बना ! मैंने तो कितनी बार लिखा है तुझे कि तुझे भरोसा हो मुझ पर तो पुनिया को मेरे पास भेज दे, मैं पढ़ाऊंगी उसे…जैसी सुखदा, उत्तरा, वैसी पुन्नो…अब मेरे भी कष्ट के दिन कट गए ।[115]

चौथे दिन लंबरदार पछांहवाली से बात करने आते है । उसे त्रिया चरित्र का कारण पुछते हैं तब वह सतिशवा के माध्यम से कहता है-"बप्पा, चाची कह कही हैं कि उन्होंने जो संदेश भेजा था आपसे पास, उसका उत्तर चाहिए उन्हें ।' प्रतिप्रश्न ! ऐसा दुस्साहस ? लंबरदार को अचानक नहा पर से उठाकर कठघरे में खड़ा कर दिया पछांहवाली ने !...'जितना पढ़ना था पुन्नू को पढ़ ली, बस !''बस नहीं लंबरदार, पुनिया आगे पढ़ेगी, धनुहीखेड़ा जाकर पढ़ेगी…हम पढ़ैबे वहिका…पुनिया कै महतारी जिंदा है अबै !' पछांहवाली भूल ही गई कि सतीशवा को उन्होंने किसलिए खड़ा किया था अपने पास । उत्तेजना से कांपती उनकी देह अपने वश में नहीं थी।"[116]

3.2.2 राजनीतिक जीवन से संबंद्ध – आज का राजनैतिक माहौल को श्री. अटल बिहारी बाजपेयी ने इस प्रकार से स्पष्ट किया है कि,"हम एक अंधेरी गली में प्रविष्ट हो चुके हैं । जहाँ फिसलन है और उजाला दिखाई नहीं देता । यदि राजनीति भ्रष्ट, स्वार्थी और सत्ता लोलुप हो तो कोई प्रणाली जन-कल्याण का साधन नहीं बन सकती । अब राजनीति में सद्गुण नहीं रह गए है और यह एक विषैला हस्त कौशल बन गया है । इसमें ईमानदारी नहीं है ।"[117] इस कथन के माध्यम से अटल जी ने राजनीति का कटू सत्य को उजाकर किया है ।

चित्रा मुद्गल के कहानियों में राजनीतिक जीवन से संबद्ध संवेदना की स्पष्ट एवं सशक्त अभिव्यक्ति हुई है ।

3.2.2.1 राजनीतिक चेतना :

भारतवासियों सामाजिक परिवर्तन और समस्याओं के समाधान के लिए स्वतंत्र भारत के सूत्र नेताओं के हाथों में सौपें थे । परंतु यह राजनीतिज्ञ नेता सत्ता लोलूपता और स्वार्थ के लिए सामान्य जनता का जीवन दूभर कर देते हैं । 'लिफाफा' कहानी में बेरोजगार अशोक अपने मित्र सतीश के साथ लघु उद्योग योजना से ऋण लेकर व्यवसाय करने की योजना बनाते हैं । वे सचिवालय जाकर मंत्री जी से मिलते हैं । उनका ऋण का काम हो जाने से संकेत मिलते है, तब अनुभवी सतीश कहता है-"यार, यह तो निश्चित है कि अपना काम हो

जाएगा। पर इतनी आसानी से नहीं, तू इन राजनीतिज्ञों को नहीं जानता। ये ऐसे सुनार हैं जो अपने बाप को भी न छोड़े। अभी आठ-दस चक्कर लगने मामूली बात है।[118]

नेताओं की मनोवृति को आज के वस्तुस्थिति बारे में डॉ. नरेंद्र नाथ त्रिपाठी कहते है कि, "प्रत्येक का ध्यान वोट और कुर्सी की ओर है। वोट और कुर्सी का ही दूसरा नाम राजनीति बन गया है।"[119]

'बंद' कहानी में राजनीतिक पैंतरेबाजी के तहत बंद रखा जाने से सामान्य नागरिक का ना कोई संबंध होता है ना लाभ यह दर्शाया है -"यह किसके हक की लड़ाई लड़ी जा रही है ? वे जो रोज-ब-रोज मजदूरी करके खाते हैं, काम बंद, दुकाने बंद, होटल बंद। आज तो उन्हें उनका उसल-पाव भी नसीब नहीं होगा।...नवल ने गरदन झटककर नथनों से रोष-भरा फुफकारा छोड़ा,"साले क्या उखाड़ लेंगे इस तोड़-फोड़ से ?"[120]

राजनीति में किसी अच्छे नेता को भी विविध कारणों से चुनावी मैदान में मात खानी पड़ती है। भले ही सामने का प्रतिस्पर्धी कितना भी लंपट क्यों ना हो वह जीतता है। इसी का वर्णन 'जगदंबा बाबू गांव में आ रहे हैं' में लेखिका ने किया है- "जगदंबा बाबू जनता के सेवक हैं। दीन-दुखियारों के रक्षक। प्रजा के कष्टों को पहचानने वाले गुप्ताजी के मंत्रीमंडल में वे राज्य के स्वास्थ्य मंत्री थे। पिछले चुनाव में ग्रहों ने कुछ ऐसी खुराफत दिखाई कि अपने बरसों पुराने इसी गढ़ से जनता पार्टी के गायादीन जैसे लंपट उम्मीदवार से मात्र सात सौ वोटों से पटखनी खा गए। ...शिवलाल की बिटिया सुखनी के साथ भुसौर में केलि-क्रीड़ा करते हुए रंगे हाथों धर लिए गए थे।"[121]

इसी कहानी में सुमेर सिंह ललौना के दी हुई हाथों से चलने वाली गाड़ी कुछ ही दिनों में छिन लेते है। जनता एवं मीडिया के सामने केवल दिखावे हेतु अपाहिजों को, सामान्य नागरिकों को उपहार दिए जाते हैं एवं रात के अंधेरे में वापिस ले लेते हैं। सुमेर सिंह सुक्खन भौजी से कहते है- "दरअसल कल वीघापुर में 'विकलांग उद्धार समिति' का दूसरा समारोह है। जगदंबा बाबू को पहले ही की तरह अपाहिजों को उपहार वितरित करने हैं। केंद्र से संभवत: ऊर्जा मंत्री कार्यक्रम को सुशोभित करने आ रहे हैं। लेकिन प्रदान की जाने वाली गाड़ीयां अब तक नहीं आ रह हैं। कार्यक्रम घोषित हो चुका है।...कार्यक्रम स्थगित करना असंभव है...जो गाड़ी ललौना को भेंट की गई है, वापस चाहिए।"[122]

'नतीजा' कहानी में सेक्सवर्करों के हित में काम करने वाली पुरबी दी उन्हें नागरिक सुविधाओं के

लिए उनका अलग समुदाय बनाने के पक्ष में नहीं है क्योंकि इससे उनके बच्चे-मुख्य धारा से बाहर हो जाएंगे- "अभागियों को सेक्स वर्कर...... मुख्यधारा में विलय संभव होगा? "[123]

राजनेता अपने स्वार्थ हेतु धार्मिक दंगे भड़का देते हैं एवं अपनी रोटियां सेंकते हैं। इस बात से सामान्य नागरिक भी अच्छी तरह परिचित हो गए हैं। तभी तो 'लपटें' कहानी की नायिका दूध वाले भैया की पत्नी कहती है कि-"मुनुआ को उन लोगों ने लपटों में झोंका…जहरा चूड़ीवाली बता रही थी कि रोजे का समय चल रहा मेरा ...शेट्टी टीवीवाले की दुकान लूटने के बाद सत्तार चाली के छोकरों को मनुआ को दबोच लपटों में झोंकते देखा है…सत्तार चालीवाले पार साल इन्हीं की पार्टी के लिए चंदा मांगने नहीं आए थे !"[124]

'लपटें' कहानी में भी राजनैतिक नेताओं की चालाकी और चंदा इकट्ठा करने की नई रीति को भी प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक व्यवस्था आज ऐसी बन चुकी है कि किसी भी राजनैतिक पार्टी के झण्डे के अभय के बिना और उसको चंदा न दिये बिना जीवित नहीं रहा जा सकता।"[125]

3.2.2.2 भ्रष्टाचार :

'चेहरे' कहानी में पाकिटमारी के संदेह में रेल यात्री भिखमंगी को पकड़ते हैं। उसे भला-बुरा कहते हैं। सिपाही उसे हटाने का आश्वासन देते हैं। पर वह अकेली भिखमंगी सिपाहियों एवं भीड़ को गालियाँ देने लगी व वहीं बैठेगी ऐसा कहकर खंभे से चिपक गई क्योंकि उसने स्टेशन बाबू को हफ्ता दिया है और पुलिस वाले उसका शारीरिक शोषण करते हैं-"बैठूंगी-बैठूंगी। तेरे बाप की जागा है ! ऐं ?'...'दिखाई देगी मैं, दिखाई देगी…इदरीच बैठेगी…ये जागा मेरी है और काय को नईं बैठेगी। वो जो बड़े बाबू बैइठते आत मध्ये (भितर) हफ्त लेते मेरे से, हफ्ता ! और ये भड़ुए ! (उसने सिपाहियों को दुत्कारा) कैसे पकड़ेंगे मेरे को, रात यारड में ले जा के…"[126]

डॉ. घनश्यामदास भूतड़ा के मतानुसार –"भिखारिन का यह जो नया रूप हमारे सामने लेखिका ने रखा हैं, उससे स्पष्ट होता है कि दया या भीख के नाम पर आज व्यवसाय हो रहा है। व्यवस्था कुछ ऐसी भ्रष्ट हो रही है कि भिखारियों से भी हफ्ते लेने के लिए संबंधित लोग नहीं हिचकते"[127]

'जगदंब बाबू गांव आ रहे हैं' में द्रवित करने वाला प्रसंग चित्रा मुद्गल ने चित्रित किया है। अपाहिज ललौना एवं सुक्खन भौजी हाथों से चलने वाली गाड़ी पाकर स्वर्गातीत आनंदानुभूति पा रहे थे पर एक रात सुमेर

सिंह ने दूसरे गांव के कार्यक्रम हेतु वह गाड़ी छिन ली- "पेट से गले और गले से पेट के भीतर पछाड़ खाते रुदन को मुंह तक न आने देने के प्रयास में थर्राती सुक्खन भौजी की ओर मुड़कर ठाकुर सुमेर सिंह मात्र इतना-भर बोलकर देहरी की ओर बढ़ दिए, "पूछा-पाछी होने पर कह देना, गाड़ी चोरी चली गई।"[128]

3.2.3 आर्थिक जीवन से संबद्ध

किसी भी समाज को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाला पहलू अर्थ ही होता है। अर्थ ही वह एकमेव साधन है, जिसके बल पर मानव अपने को सुखी रखता है। रुपयों के अभाव में घर-परिवार की सुख-शांति कम हो जाती है और जीवन कलहयुक्त हो जाता है। आर्थिक अभाव में व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की प्रगति क्षीण हो जाती है। अर्थ के बिना मानव का जीवन आगे नहीं बढ़ सकता। इस प्रकार अर्थ मानव की जिंदगी से जुड़ा हुआ है। अर्थ के अभाव में घर की स्थिति दयनीय हो जाती है। धन के आधार पर ही समाज में संबंध स्थापित किए जाने लगे है। इसके अभाव में रिश्तों में दूरियाँ आ रही हैं।

"अर्थ समाज की केंद्रीय शक्ति है। संसार के सभी कार्य अर्थ पर ही आधारित है। सामान्यतः आर्थिक दृष्टि से उन्नत समाज को ही विकसित समाज कहा जाता है। वर्तमान में सामाजिक संबंधों का आधार प्रमुखतः अर्थ बन गया है। अर्थ ही समाज की शिराओं बहनेवाला वह रक्त है, जो संपूर्ण समाज का जीवन संचालित करता है। प्रत्येक युग का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन अर्थ प्रक्रिया से प्रभावित रहा है। विकास का मूल आधार अर्थ ही है।"[129]

आर्थिक व्यवहार पर ही जीवन एवं राजनीतिक, सामाजिक , धार्मिक ,घटनाएं संलग्न होती है, तब साहित्य कैसे अछूता रह सकता। तत्कालीन आर्थिक संवेदनाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति साहित्यकारों ने की है। विविध वर्गों की आर्थिक संवेदनाएं साहित्य के माध्यम से स्पष्ट होती है। पैसों के लिए कोई अनैतिक काम करने से भी लोग हिचकिचाते नहीं। धन की सार्थकता तब है जब उसका प्रयोग रिश्तों को मजबूत होने में किया जाए। रिश्तों में आनेवाली दूरियाँ अक्सर पैसों के कारण ही आती है। चित्राजी ने रिश्तों के इस मर्म को पाठकों के सामने बड़ी व्यापकता के साथ व्यक्त किया है। अर्थ के कारण होने वाले ज्यादातर दुष्परिणामों का वर्णन चित्राजी के कहानियों में किया गया है। उन्होंने उच्च एवं प्रतिष्ठित वर्ग के साथ-साथ निम्नवर्गीय लोगों की आर्थिक विवशता एवं व्यवस्था के प्रति उनकी लाचारी पर ईमानदारी से प्रकाश डाला है। उनके व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर लेखन किया है। "चित्रा मुद्गल ने बंबई के झोपडपट्टी के जीवन तथा वहाँ की देखी-भोगी स्थितियों

का सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा प्रामाणिक चित्रण किया है। यद्यपि उनका स्वयं का जीवन अभिजात वर्ग का है। निम्नवर्ग के कथ्य पर गहरी पकड है। पात्रों की मन: स्थितियों को जिस भाषा में अभिव्यक्त किया है। वह गढ़ी नहीं है, अपितु उनकी जिंदगी की सहज भाषा है। यह जीवन अनुभूति के स्तर पर उतरकर रचना में आया है। परंतु इसके साथ ही जीवन का विविधवर्णी चित्रण करने से भी न्हें सफलता मिली है।"[130]

चित्रा मुद्गल की कहानियों में 'लकडबग्धा', 'भूख', 'पाठ', 'मामला आगे बढ़ेगा अभी', 'चेहरे', 'बेईमान', 'ब्लेड', 'त्रिशंकु', 'जिनावर', 'लेन' में आर्थिक संवेदना दृष्टव्य है।

3.2.3.1 अमीरों-गरीबों का वर्ग संघर्ष :

समाज में अर्थहीन व्यक्ति बलहीन और निरर्थक समझा जाता है। चित्राजी की 'मामला आगे बढ़ेगा अभी' कहानी में मोट्या बीमारी की वजह से आठ दिन सक्सेना साहब की गाड़ी धोने के काम पर नहीं जा सकता है। अमीर सक्सेना साहब मोट्या का सात दिन का वेतन काट कर देते हैं। वैसे तो मोट्या गाड़ी धोने के अलावा घर के सारे छोटे-मोटे काम कर लेता था। जब उसे खाड़ा काटने की बात आती है तो वह क्रोधित हो अपना आपा खो बैठता है एवं सक्सेना साहब की गाड़ी पर गुस्सा निकालता है- "ठगे जाने की निस्सहायता, अवमानना के आघात से छलनी हो अनायास उसकी अब तक कमजोर पीली आंखों में पिघलने लगी,'मेरा सात दिवस का खड़ा (नागा) काट लिया...फरेब करके फरेब करके थोड़ा मैं घर पर मस्ती मारता होता !...सब समझता मैं, काय का वास्ते काम पर से हकाला सा'ब ने..."[131]

मोट्या की इस कृति से आर्थिक विवंचना से ग्रसित निम्नवर्ग का आक्रोश स्पष्ट झलकता है। बलराम अग्रवाल के अनुसार, "'मामला आगे बढ़ेगा अभी' जैसी कहानी हिन्दी में अन्यत्र दुर्लभ है।"[132] इस कहानी में बहुत खूबसूरती से मोट्या जैसे नवयुवक के विद्रोही और आक्रोशशील होने के कारणों की तह तक पहुँचा गया है। समाज के खाते-पीते, संभ्रांत वर्ग के जीवन को सामने रखकर 'स्लम्स' की छोटे लोगों की जिंदगी का सही पहलू कहानी में प्रस्तुत हुआ है। ममता कालिया कहती है, "'मामला आगे बढ़ेगा अभी' कहानी में कार साफ करनेवाले मोट्या के माध्यम से लेखिका ने श्रमिक वर्ग में पनपनेवाले आक्रोश का खुलासा किया है। धनी वर्ग की धूर्तता समानांतर स्तर पर उजागर होती जाती है।"[133]

अमीरी और गरीबी इन दोनों की अपनी-अपनी पहचान होती है। अमीर जो है वह अपने सुख-सुविधाओं

से संपन्न होता है जिसे अपने पैसे कहा खर्च करें इसकी चिंता रहती है। दूसरी ओर गरीब जो अपने जीवन के मूलभूत सुविधाओं के लिए संघर्ष करता है। 'पाठ' कहानी में स्वास्थ्य मंत्री पाठशाला में जाकर बालकों को स्वच्छता का पाठ पढ़ने की ठान लेते है एवं पाठशाला के प्रत्येक छात्र को एक बट्टी नहाने का, एक बट्टी कपड़े धोने का साबुन एवं खादी का बढ़िया-सा अंगौछा उपहार देते हैं ताकि वे नहा-धोकर स्वच्छ रहे एवं उनका स्वास्थ्य सुधारे। वे महीने भर बाद मुआयने हेतु जाते है कि बच्चों के स्वास्थ्य एवं स्वच्छता कितने प्रतिशत सुधरी। पर गरीब वर्ग की कहानी अलग थी। बच्चों के पालकों ने साबुन, अंगौछा बेचकर खाने की चीजें ली थी -"शरमाओ नहीं, सतीश...बोलो!...'साबुन की बट्टी…बट्टी अऊर अंगौछा माई पंसारी की दुकानवा में ले जाके बेच आई !''बेच आई? भला क्यों ?'जनसेवक की त्यौरियां चढ़ गई। 'माई बोली…सरकार खूब मजाक करत हैं- नहा-धोके पेट थोड़ेइ भरने वाला है।' 'मतलब ?''माई कहत रही…बट्टी अऊर अंगौछा के दाम से दू रोज का पिसान आएगा…तू नहाएगा कि रोटी खाएगा ?"[134]

जमींदार कुल में जन्मी चित्री जी ने अपने बाल्यावस्था में दुर्बलों और शोषितों पर होनेवाले अमानवीय अत्याचार देखें है। उसी परिवेश की वास्तविकता इसी कहानी में देखी जा सकती है। 'बलि' कहानी में ठाकुर बलभद्रसिंह अपने नौकर गुइंयादीन के बेटे की बलि अपनी मंगली पुत्री की शांति हेतु देने की ठान लेते हैं। वे करुआ को खरीदना चाहते हैं ताकि उसका विवाह अपनी पुत्री से कर दें व उसकी बलि देकर बेटी का दूसरा विवाह कराए वह उसके पुत्र का सौदा ठहराते हैं –"बिनोबा महाराज स्वर्ग सिधार गए गुइंयादीन, पर हम उनके भूदान यज्ञ के कट्टर अनुयायी ठहरे; देरी से ही सही, हमने निश्चय किया है कि बलुआ काछी पर बटाई में साढ़े तीन एकड़ की साग-सब्जी की हमारी रताखेरे वाली फुलवारी का पट्टा, कल सुबह पटवारी को पंचायत-घर में बुलवाकर पंचों के सामने हम तुम्हारे नाम लिख देंगे।"[135]

3.2.4 धार्मिक जीवन से संबद्ध

इस संवेदना को दो वर्गों से पुनश्च विभाजित दिया जा सकता है –

3.2.4.1 अस्पृश्यता: भले ही कानून की नजरों से अस्पृश्यता निवारण हो चूका हो पर जब तक लोगों के दिलों में अस्पृश्यता, छुआछूत की भावना कम नहीं होती, यह भेदभाव बरकरार ही रहता है।

'इस हमाम में' इस कहानी में कचरा ले जाने वाली अंजा जब दिवा के फ्लैट की घंटी बजाती है एवं अंदर आ जाती है। दिवा दोनों के लिए चाय लाती है। अकसर सवेरे जब वह ठंडा पानी मांगती है तो वह

गिलास में पानी देती है। यह अनुभव अंजा को चौका जाता है क्योंकि सभी फ्लैट वाले उसके साथ छुआछूत का भेदभाव करते हैं। वह दिवा से कहती है - "बाई, एक तुम्हीच हो जो अपुन को बोईच बरतन में पानी पिलाता है जिसमें तुम खुद पीता है। नईं तो अपुन को तो लोग असीच कप में पानी देता है जो कचरे में फेंकने वाला है। समझते हैं, हम इंसान नईं, मैला है, मैला।"[136]

3.2.4.2 हिंदू-मुस्लिम संबंध: चित्राजी की कहानियों में हिंदू-मुस्लिमों पर प्रकाश डालते कई प्रसंग पाए गए हैं। 'रूना आ रही है' इस कहानी में निमा एवं शैकत विवाह करते हैं तब उनके घरवालों का विरोध होता है। उसके मायके वाले उसके साथ सारे संबंध तोड़ देते हैं। यहाँ तक कि सत्रह साल में वह सुख-दुख के अवसर पर आमंत्रित भी नहीं हुई ना ही मायके गई -"एकाध लोगों ने हमें देख लिया। घर पर खबर पहुंचा दी गई। शैकत ने 'फैज' की गजलों के संकलन पर कुछ लिखकर दिया था- बतौर दस्तावेज हाजिर किया गया।...पड़ोस में मेरे उठने-बैठने की मनाही हो गई। शैकत से आइंदा न मिलने की ताकीद भी।"[137]

'बाघ' कहानी में सांप्रदायिक दंगों के चलते प्रोपर्टी के दाम गिर जाते हैं। जहां कही हिंदू-मुस्लिम के घर एक बस्ती में हो, दंगों के बाद से लोग औने-पौने दाम में अपने घर बेचने को मजबूर हो जाते हैं-"बस्स, कुछ हफ्तों का खेल है। तोते उड़े हे हैं जनाब 'ख' के। हमारी बिरादरी के बीच बच्चू रह तो रहे, मगर बाघ के सामने बंधी बकरी-से ! दाहिनी आंख छोटी कर, कुटिल भंगिमा बना 'ग' ने भौंहें उछालीं और चिरपरिचित अंदाज में भुंभाआता ठहाका भरा।"[138]

" तू भड़भडाता बहुत जल्दी है, दूरदेशी बन ! अब तू सुन ही ले-इतनी बकझक तुझसे क्यों कर रहा हूं। कल शाम तेरी भाभी से श्रीमती 'ख' कह रही थीं, हाथ के हाथ सौदा पट जाएं तो 'ख'साहब सतरह-अठारह के बीच मकान निकाल देने को राजी हैं...अपने मजहबियों से उन्हें सुराग मिला है कि अबकी रामनवमी पर..."[139]

'लपटें' कहानी में हिंदू-मुस्लिम की सांप्रदायिक आग का लाभ राजनीतिज्ञों को लेते पाया जाता है। रघुनाथ यादव की पत्नी समय की नजाकत को समझकर अपनी पति को सलाह देती है कि जाकर नेताजी को अपने घर आमंत्रित करो एवं उन्हें चंदा दो सब उसका पति कहता है –"अचानक सब्र खो, क्षुब्ध स्वर को भरसक दबाते हुए पति तड़के,'पार साल हुए दंगों को भूल गईं ? भूल गईं उनका दो-मुंहा चरित्र ! अपने धरम के लोगों को सांप्रदायिक ताकतों के कातिलाना हमलों से बचाने की आड़ में इनकी पार्टी में शामिल गुंडों ने उन्हीं पर नहीं, हम लोगों पर भी कम खुन्नस नहीं उतारी। नहीं लूट ली दुकानें ? फूंके तबेले ?"[140]

3.2.4.3 सदाचार एवं धर्ममूलक संवेदना

धर्ममूलक संवेदना के अंतर्गत अंधविश्वास, ज्योतिष, कर्मवाद आदि बातें आती है। आज भी गाँव के साथ-साथ शहरों में भी इन कर्मकांडों को महत्व प्राप्त है।

'दशरथ का वनवास' कहानी में जब बालक रामनाथ सोप करने की बात करता है, तब घर में डॉक्टर के पास ना ले-जाकर कर्मकांड को प्राथमिकता दी जाती है – "पूरे घर में कुहराम मच गया। अमहोनी की आशंका से विह्वल माँ छाती कूट-कूटकर दुश्मन सरापने लगीं। झड़वइए-फुंकवइए इकट्ठे हो गए। कौड़ियां फेंक-फेंककर मंतर पढ़े जाने लगे। पीड़ा तो हो रही थी, पर जानबूझकर वह बुंबुआ-बुंबुआकर कराहने लगा, जैसे कि प्राण अब निकले, तब निकले।"[141]

'शिनाख्त हो गई' इस कहानी में जब सोनू पाठशाला से घर नहीं लौटता तब उसकी माँ पुलिस को फोन करती है, उसके मित्रों के घर फोन कहती है। अडोस-पडोस के लोग धीरज बांधते है। उनकी पड़ोसन मिसेज पाटील अंधविश्वास को बढ़ावा देने वाली बातें कहती है – "देखो दीदी, आपको विश्वास होगा न, तो मैं एक बात बोलती। बांद्रा वेस्ट को वो 'जरी-मरी' का मंदिर है ना, उधर एक पंडित है, बोत पहुंचा हुआ। विचार करके बता देता है कि बच्चा किधर है, कब तलक वापस आएगा। कुछ जाद-टोने का लफड़ा होगा ना, वो भी पता चला जाएगा- चलें क्या ?"[142]

जब लोकल ट्रेन से कटकर मरे एक छात्र की शिनाख्त करने निखिल सेंट जॉर्ज अस्पताल जाता है और फोन करके घर अपनी पत्नी को बताता है कि सिनाखत हो गई है वह किसी और का बच्चा है? तब नास्तिक मीरा के हृदय में धर्ममूलक संवेदना जागृत हो जाती है – "मैं कृतज्ञ-सी ईश्वर को धन्यवाद देती हूं। हाथ नहीं उठ पा रहे, पर भीतर किन्हीं अमूर्त हाथों ने जुड़कर अभ्यर्थना में माथा नवा दिया...उफ् ! मैं भी कैसी हूं ? घर में भगवान का एक फोटो तक नहीं रख छोड़ा मैंने !... धोबन को दे दिया मैंने !"[143]

'अग्निरेखा' में मनु अमरेंद्र बालकनी में चाय पी रहे थे तब डूबते सूरज को देख अमरेंद्र कहता है कि ऐसा लग रहा है जैसे तुमने अपने माथे पर सूरज रोक लिया हो – वह समझ नहीं पाई की उसने प्रशंसा की या नियति की पूर्व टिप्पणी। दूसरे दिन उसने छोटी बिंदी लगाई तब अमरेंद्र उसके वहम का उपहास उडाता है – "किसी बात को तुम सहज होकर नहीं ले पातीं। वहम का पुछल्ला लगा लेना जरूरी है ?"[144]

'इस हमाम में' कहानी में सोमेश अंधविश्वासी है। दिवा कचरेवाली अंजा से दरवाजे पर रखा खाली डिब्बा उठाने कहती है - " यह बात नहीं है, अंजा। असल में, सा'ब को दरवाजे पर पड़ा हुआ खाली कचरे का डिब्बा अपशकुन लगता है, बस इसलिए...सा'ब इतना शिखेला-पढ़ेला मानुस होकर ये सब बात मानता है क्या ? आजकल तो अपुन लोग भी ऐसा बात पे इस्वास नहीं करता, फिर..."[145]

यहा पर चित्राजी ने निम्नवर्गीय, अनपढ़ अंजा द्वारा अचरज व्यक्त कर अंधविश्वासों का विरोध किया है। इसी कहानी के एक अन्य प्रसंग में जब दिवा अपने पति सोमेश को पीछे से आवाज देती है तब वह न केवल क्रोधित होता है उसे धक्का भी मारता है - "सुनिए ! मैंने रूमालवाला हाथ आगे बढ़ाकर उन्हें पुकारा तो वे एकाएक मुड़े और तमतमाए-से मेरे करीब आकर तकरीबन बांह से घसीटते हुए भीतर खींच ले गए।... आइंदा ऐसी हरकत मत दोहराना, समझी ? कितना भी जरूरी काम क्यों न हो-एक बार मैं घर से निकल गया तो समझो, निकल गया। पीछे से कभी न बुलाना। दफ्तर में फोन भले ही कर देना !"[146]

'गर्दी' कहानी में अपनी माताजी के विरोध के बावजूद रेनू अपने भाई के अंडे का आमलेट बनाती है एवं माँ के आने से पूर्व सब साफ करके अगरबत्तियाँ जला देती हैं। यहां पुरानी रूढ़ियों एवं मान्यताओं का युवाओं द्वारा तिलांजली देते हुए दर्शाया गया है –"और वह अंडा प्रकरण ! एक दोपहर उसे आमलेट खाने की प्रबल इच्छा हुई। वह जेब में छिपाकर अंडे ले आया। चाय के बहाने रेनू ऊपर स्टोव उठा लाई। मां किसी के घर अपना चकला-बेलन संग ले बारात की पूड़ियां बेलने गई हुई थीं। रेनू ने आमलेट बनाया। ...रेनू दुछत्ती में चार अगरबत्तियां एक साथ जलाकर रख गई।"[147]

इसी कहानी में जब माँ सिर पर हाथ रखकर कसम खाने कहती है कि वह वापस राजी के पास नहीं जाएगा और एक तावीज उसके हाथ पर बांधती है। वह कसम और तावीज दोनों को डबलडेकर बस के सामने उछाल देता है और राजी के घर चला जाता है –"अनायास उसका हाथ बाएं ---- सामने उछाल दिया।"[148]

'मुआवजा' कहानी में शैलू अपनी जान दाँव पर लगा कर अनेक यात्रियों की जान बचाती है और स्वयं मौत को गले लगा लेती है पर अंधविश्वासी उसकी आत्मा प्रेतात्मा बनेगी ऐसा मानते हैं -"पलाश और ज्योति का सुझाव है कि मुआवजे की रकम लेकर किसी मंदिर को दान कर दी जाए। असमय मृत्यु-योग हुआ है शैलू का। आत्मा की शांति जरूरी है, वरना वह प्रेतात्मा होकर भटकती रहेगी...अपार कष्ट भोगेगी शैलू !"[149]

अतः हम कह सकते है कि चित्रा मुद्गल के कहानियों में सुखात्मक संवेदना का चित्रण व्यापक रुप से किया गया है। उन्होंने पारिवारिक, आर्थिक और अध्यात्मिक जीवन में संबद्ध अपनी संवेदनाओं को सक्षम रूप से प्रकट किया है।

3.3 दु:खात्मक संवेदना

सुख-दु:ख धूप-छांव की तरह मानव के जीवन में विचरित करते रहते हैं। सुख में जो स्थिर रह पाता है एवं दु:ख में जो धैर्य दिखाता है अपने जीवन काल में वही यशस्वी माना जाता है। एक जमाना था जब कथा कहानियों द्वारा केवल सुख को ही उजागर किया जाता था उसे ही चित्रित किया जाता था। समाज मानस में सुखात्मक संवेदना को ही अति महत्व था पर आज का साहित्यकार जितनी सुंदरता से सुख को चित्रित करता है उससे कहीं अधिक सुंदरता से दुखात्मक संवेदना को अपनी लेखनी द्वारा चित्रित करता है। यथार्थ का यह अनुभव जीवन को अपनी पूरी समग्रता से ग्रहण करके व्यक्तित्व को निखारता है।

चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानियों द्वारा दुखात्मक संवेदना का वास्तववादी चित्रण दिया है जिसका चित्रण निम्नवत् हुआ है-

'अग्निरेखा' कहानी में शारीरिक रुग्ण मनू को घर में बिस्तर में पड़े रहने के कारण वहम एवं शंका की अधिकता हो जाती है। उसके शरीर का निचला हिस्सा निष्क्रिय हो जाता है वह मनोरुग्ण बन जाती है। उसकी देखभाल करने आई छोटी बहन शशी एवं अपने पति को ही शक की नजरों में देखती है कि दोनों में कुछ ना कुछ चल रहा है वह दुखी होकर डॉ. दत्ता से अनुनय करती है-"जीना नहीं चाहती मैं डॉक्टर साहब, यह जीना भी नहीं हुआ। डेढ़ साल से बिस्तर पर पड़ी लिथड़ रही हूं ठीक हो जाने की उम्मीद में, पर आप दवा के बहाने जो मुनसिब समझें दे दीजिए...कुछ भी...निश्चिंत रहें... मैं लिखकर रख दूंगी कि मैं स्वयं ही जीना नहीं चाहती।"[150]

'लाक्षागृह' में लेखिका ने नौकरी पेशा नारी सुन्नी का वर्णन चित्रित किया है जो बदसूरती की सजा भुगत रही है। उसका विवाह नहीं हो पाता। उसके जीवन में सिन्हा का प्रवेश वसंत की बहार लाता है पर सिन्हा को केवल उसकी जमा पूंजी एवं तनख्वाह में रुचि थी। वह अपने मित्र को सच्चाई बताता है कि सौदे की शक्ल-सूरत नहीं होती जिसे सुनकर सुन्नी उदास हो जाती है। वह सिन्हा से विवाह नहीं करने का निर्णय लेती है और अपाहिज देवेंद्र से विवाह करने राजी होती है-"सांसें भीतर समा नहीं पा रहीं। दम बारह को आ रहा। सहसा

वह मां के कंधे से लगकर फफक पड़ी। हिचकियों से उसका समूचा शरीर हिलने लगा। उसके टूटे-टूट-से शब्द भुरभुरी बर्फ-से मां के कानों में गलने लगे-"मैं देवेन्द्र से ब्याह के लिए तैयार हूं। अभी जाकर तुम भानूबेन से कह दो। उन्होंने कहा था न कि देवेंद्र नौकरी नहीं करवाएगा ! मैं नौकरी छोड़ आई हूं मां।"[151]

राकेश विवाहिता बेला से प्यार करता है, पर घर वाले उसका विवाह जबरन सरला से करवाते हैं। बेला के कारण दोनों में कई बार बहस-लड़ाई होती है। दोनों असंतुष्ट है। सरला की बहन ने इस ब्याह के लिए सबसे अधिक जोर डाला था। अब जीजी पश्चात्ताप दग्ध हो दु:खी होती है -"राकेश के साथ ब्याह के लिए सबसे अधिक जोर उन्होंने ही डाला था। अब पश्चाताप में डूबी हुई छटपटाती हैं कि 'वह कैप्टन क्या बुरा था। मति मारी गई थी मेरी।' वह उनके मन का अवसाद महसूस करती है। कहती भी है -'तुम्हारा क्या दोष, जीजी ? मेरी नियति कोई तुमने लिखी ?' पर राकेश के घर से जब लौटी थी, सबसे ज्यादा दोष उसे अपनी जीजी पर ही था। लगा था कि राकेश के नाम के खंदक में ढकेलने वाली सिर्फ जीजी ही हैं।"[152]

'रूना आ रही है' इस कहानी द्वारा चित्रा जी ने बुआ-भतीजी निमा एवं रूना के जीवन को चित्रित किया है। रूना-श्रीमंत से प्यार करती है। उनकी मंगनी भी हो जाती है पर बुआ का विवाह पहले हो इसीलिए निमा के लिए लड़का देखना प्रारंभ करते है पर निमा तो विजातीय पुरुष शैकत को अपना दिल दे बैठती है और उससे विवाह कर लेती है जिसके कारण रूना का श्रीमंत से रिश्ता टूट जाता है। वह टूट जाती है, दु:खी होती है-"संबंध टूटते ही रूना भीतर-बाहर, सब तरफ से टूट गई। तीन दिन कमरा बंद किए पड़ी रही। बारी-बारी से सभी ने मनाया। बाबूजी उन दिनों दिल की कमजोरी के कारण सीढ़ियां नहीं चढ़ पाते थे। चढ़कर आए और बाहर खड़े विह्वल-से पुकारते रहे। निकली तो चेहरे पर अजीब-सी दृढ़ता खिंची थी।... निर्निमेष दीवारों, किताबों, अलमारी या पलंग की लटकती चादर के हिस्से को ताकती रहती।"[153]

'मामला आगे बढ़ेगा अभी' में पंद्रह वर्षीय मोट्या की मानसिकता एवं दु:ख के प्रकटीकरण को लेखिका ने चित्रित किया है। वह सक्सेना साहब की गाड़ी धोने का काम करती है। साथ-साथ वह घर के काम भी करता है। मेमसाब से उसकी घनिष्ठता बढ़ती है। वे भी इसे बेटे के समान रखती है। जब वह बीमारी के कारण कुछ दिन काम पर नहीं आ पाता तब उसकी अनुपस्थिति का वेतन काटा जाता है। प्रतिरोध करने पर सक्सेना साहब उसे मारकर काम से निकाल देते हैं। मेमसाहब एक शब्द भी नहीं कहती। उसे खाड़ा काटने से अधिक दु:ख मेमसाब की चुप्पी का होता है-"जबी झापड़ मारा...मेमसा'ब पासमेच खड़ी होती...धक्का देके बाहर किया,

जबी पासमेच खड़ी होती…सा’ब का हाथ नईं पकड़ने को सकती थी ? नईं बोलने को सकती थी कि मैं ताप में होता ?”[154]

रवि की किशोरावस्था में गांव में शादी हुई थी। उसे एक बच्ची भी थी। जिन्हें छोड़ वह पंद्रह वर्षों से विवाह कर अपनी लाड़ली पुत्री सोनू के साथ सुखी गृहस्थी चला रहा है वह फैक्टरी में कार्यरत है जब कि नीरू भी दफ्तर जाती है। वह गांव में गोबर पाथती अपनी पत्नी और बेटी लल्ली को नकारते हुए कभी उन्हें नहीं मिला या पत्र का जवाब भी नहीं दिया। उसे आज बेटी लल्ली की रजिस्ट्री चिट्ठी मिलती है- “आपको कई पत्र लिखे।…किंतु आपने किसी का भी जवाब नहीं दिया। सच बताइए, कोई अपनी बेटी से ऐसा व्यवहार करता है ? जबसे मैंने होश संभाला है, आपको नहीं देखा। कितनी इच्छा होती है कि एक बार, सिर्फ एक बार आपको देखूं। आप मेरे पास आएं। आप मुझे प्यार नहीं कर सकते तो क्या आशीर्वाद देने भी नहीं आ सकते ? बुआजी के पास मैंने आपका एक फोटो देखा था और मां से सवाल किया था। मां के आंसू टपकने लगे थे जवाब में- ‘मैं अहल्या हूं, लल्ली ! शापग्रस्त अहल्या !”[155]

‘त्रिशंकु’ कहानी में आर्थिक तंगी से त्रस्त निम्न वर्गीय परिवार का चित्रण किया हुआ जिसमें परिवार का हर सदस्य अपना स्वार्थ देखकर जीता है। पिता नशेडी है उसने रखैल रखी है। मां को पीटता भी है। लड़का पढ़ाई छोड़ सिनेमा के टिकेट ब्लैक करता है। माँ बेटी को जोशी मास्तरनी के घर मदद के लिए काम पर लगा देती है। बेटी भी उधर ही रम जाती है। अपने घर आने में मना करती है। भौतिक सुविधा का कारण बताती है। जिसमें माँ बहुत दु:खी होती है-“मां सचमुच रो रही थी। अवरुद्ध कंठ से बोली,‘कमलाच इदर रैने को तैयार नईं। जिद करके वो उनके साथ पूने को गई। मैं लेने को गई तो बोली, ‘मैं बाई के साथ जाएगी। मेरे कू झोपड़ी में नींद आने का। पंखा नईं न उदर। ऊपर से संडास में लाइन लगाने का लफड़ा…तुमको आदत पड़ गई मोरी में पिशाब करने की, मेरी आदत छूट गई। उसी में पिशाब करना, उसी में बरतन घिसना, उसी में नहाना, हमको नई चलता…”[156]

‘अभी भी’ कहानी में विधवा बहू के आर्थिक शोषण को स्पष्ट किया गया है। पति की मृत्यु के बाद सास बहू के पिता को झूठा आश्वासन दे पैसों की लालच में बहू का विवाह देवर से करवाती है ताकि पायलट पुत्र को मिले मुआवजे की रकम हड़प सकें। देवर, सास मिलकर उसका खूब शोषण करते हैं। पति केवल देखता रहता है। उसके साथ मारपीट की जाती है। अनिल काफी रकम ले चुका है। अब दुकान के लिए पैसों की मांग

करते हुए कहता है कि बाप की कमाई नहीं बल्कि मेरे भाई की खून-पसीने की कमाई है। शिल्पा बहुत दु:खी होती है-“वह करवट भर के, सोते हुए नन्हे किशु को अंक में भींच, न जाने कब तक बहते आंसुओं से मन का गुबार धोती रही थी। तकिये पर जगह-जगह पोखर लबालबा आए थे…”[157]

इसी कहानी में शिल्पा की सांस घड़ियाली आंसू बहाते हुए शिल्पा के पिताजी के सम्मुख उसके विवाह की बात रखती है और अपनी संवेदना प्रकट करती है -“इसे देख मेरा दिल दहलता है, भाई साहब ! आज मैं हूं तो सारा कुटुंब बरगद की छांव-तले पक्षी-पखेरुओं सा हिल-मिल सिमटा हुआ है।…शिल्पा मेरी बहू नहीं, बेटी!...बेटा गया तो गया…ईश्वर को यही मंजूर था…मगर यह बेटी…इसका जो कुछ उजाड़ा है, फिर से बस जाए…यह जीवन से लहलहाएगी तो महसूस होगा-मेरा मुकेश मेरी आंखों के सामने फल-फूल रहा है…सब्र बांधूंगी।”[158]

‘लकडबग्घा’ कहानी में चित्राजी ने पछांहवाली के दु:खी जीवन के चित्रण द्वारा गांवों में महिलाओं पर होनेवाले आर्थिक शोषण पर प्रकाश डाला है। एक तो घर की बहू को चौबीसों घंटे चूल्हे-चौके में झोंक दिया जाता था। उन्हें मुंह खोलने तक की स्वतंत्रता नहीं होती थी, उनका प्रचंड आर्थिक शोषण किया जाता था। बालिकाओं को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। पछांहवाली की पुत्री की पाठशाला बंद कर दी गई थी। जब पछांहवाली अपनी बहन के घर इलाहाबाद जाती है तो बहन उसे पढ़ाई का महत्व समझाती है। इलाहाबाद छोड़ अपने गांव जाते समय पछांहवाली को बहुत दुःख होता है -“चलती बेरिया पछांहवाली को बहिनी के गले से छुड़ाकर रिक्शे पर बैठाना मुश्किल हो गया मोहल्लेवालों आर्तनाद से यही लग रहा था कि जैसे उनकी काया लौट रही है गांव, प्राण उनके अपनी बहिनी के पास ही गिरवी हो गए हैं। योगेंद्र भागता-ढूंढ़ता गाड़ी छूटने के पहले पहुंच गया था उनके पास। पांव छूने झुका तो उसका सिर अपनी छाती से गड़ा मिनटों आंसुओं से आशीषती रहीं पछांहवाली।”[159]

‘जिनावर’ कहानी में असलम एवं उसकी घोडी सरवरी का वर्णन किया गया है। सरवरी बीमार है। वह टांगे पर जूत नहीं पा रही थी। असलम ने उसका दवाखाने में एवं देशी इलाज भी करवाया पर उसकी हालत गंभीर ही रही। एक दिन मुश्किल से उसे जोत असलम तीन-चार दिनों से न जले चूल्हे की व्यवस्था करने निकला पर बीमार सरवरी उसका अधिक साथ ना दे पाई। जानबूझकर असलम सामने से आने वाली कार के सामने ताँगे को लेता है ताकि दुर्घटना हो और मरते-मरते सरवरी उसकी परिवार को कुछ दिनों की रोटी दे जाए-“लडकी

को देखते ही अब तक माथा पकड़े उकड़ूं बैठा हुआ अवाक् असलम अचानक बुक्का फाड़कर रोते, हुए रक्तरंजित औंधी पड़ी सरवरी की देह पर सियापा करता हुआ-सा, सीने पे मुक्के मारता, कटे वृक्ष-सा ढेर हो गया,"हाय, हाय रे मैं कहीं का नहीं रहा ! कहर टूट पड़ा मुझ गरीब पर...बरबाद हो गया, बरबाद...मार डाला मेरी सरवरी को...हाय मेरी रोजी-रोटी।"[160]

'स्टेपनी' कहानी में लेखिका ने एक कामवाली के माध्यम से पति-पत्नी के वैवाहिक जीवन को भी चित्रित किया है। आज महानगरों में एकल परिवारं ही पाए जाते हैं, पति-पत्नी-बच्चा। दोनों काम पर जाते हैं। घर के लिए समय देना, घर के काम करना उनके लिए असंभव होता हैं। उनके घर में चौका बरतन करनेवाली कामवाली बाई को अनन्य साधारण महत्व होता है। विनोद और आभा के जीवन में कामवाली बाई बताशा के कारण तूफान आता है। आभा की पड़ोसन उसे उसके कार्यालय जाने के बाद विनोद एवं बताशा के बीच कुछ चल रहा है ऐसा सूचक इशारा करती है। जब आभा विनोद से पुछती है तो वह उसे शक की बीमारी लग गई ऐसा कहता है। तब आभा बहुत व्यथित होती है। वह दुःख एवं अपमान के कारण चाहकर भी कोई तर्क-वितर्क नहीं कर पाती-"कर भी लेगी तो क्या स्थिति बदल जाएगी? नहीं नीयत स्पष्ट हो गई है विनोद की। वह बताश्शा को रखें या निकाल दें। उन्हें जो भी करना होगा, कौन रोक लेगा भला? कैसे डंके की चोट पर कह रहे हैं कि यहीं मयूर विहार में ही न जाने कितने फ्लैटों में सब पता है विनोद को कि कहां क्या- क्या हो रहा ऐसे ही।"[161]

'एक काली-एक सफेद' कहानी में पति-पत्नी के बीच के बिखराव का बालिका के मन पर पड़ने वाले दुष्परिणाम पर प्रकाश डाला गया है। कुहू के सामने ही उसके माता-पिता काफी झगड़ा करते हैं। वह माँ के आचरण से बहुत दुःखी होती है- "मैंने सवाल किया- 'कहां जाते हैं, पापा?' मेरे नन्हें कंधे पर अपना चेहरा हौले से टिकाकर पापा ने जवाब दिया था- 'माहीम क्रीक !'...'अपने-आपसे मिलना और कहीं संभव नहीं, चिया!' मेरी समझ में नहीं आया, पापा क्या कह रहे हैं। क्या कहना चाह रहें हैं, यहीं समझ में आया। पापा बेहद आहत हैं। मिनटों मेरे कंधे पर अपना चेहरा टिकाए वे बैठे रहे। अब चेत आया तो गर्दन उठाकर चौंके- 'कंधा दुःख रहा है...' 'नं...नहीं पापा !' मैं साफ झूठ बोली।"[162]

'नतीजा' कहानी में सेक्सवर्करों की बच्चियों की पढ़ाई के लिए कार्यरत 'होम' संस्था में व्यवस्था की गई थी। पुरबी दी एवं उनकी सहयोगी अथक मेहनत कर उन्हें पढ़ा रहे थे। उनका दाखिला नगर पालिका की पाठशाला में किया गया पर वे बच्चियां पढ़ाई में बिलकुल भी ध्यान नहीं दे पा रही थी। उनका परिवेश ही

वैसा था। वे खूब खेलती, टी.वी देखती, नाचती-गाती पर पढ़ाई में शून्य। जिसके कारण प्रिंसिपल उन्हें पाठशाला से निकालने की धमकी दे चुकी थी। उनके व्यवहार का बुरा प्रभाव अन्य छात्रों पर पड़ रहा था। जब परीक्षा का नतीजा आता है वे सब अनुत्तीर्ण होती है। यहाँ तक की मौखिक में भी कुछ नहीं बोल पाई- "मौखिक में भी कुछ नहीं करके आई हैं। सामने खूब कविताएं सुनाती हैं...उनका संघर्ष व्यर्थ जाएगा ? नचनियां बनेंगी। चेहरे लीप-पोत, मां की भांति चौराहों पर खड़ी हो, ग्राहक फंसाएगी ? रिक्शे-तांगेवालों से फंस बच्चे जनेंगी...उफ, कुछ नहीं बदल पाएंगी वे... कुछ नहीं !"[163]

'नीले चौखानेवाला कंबल' कहानी में टिकैटिन कक्की के इकलौते पुत्र बचुआ की हत्या कर दी जाती है। कक्की बहुत दु:खी है। वह अपने पुत्र वियोग में बार-बार मूर्छित होती है। अंतिम यात्रा निकलने से पुर्व उसे एक बार बचुआ का चेहरे देखने हेतु होश में लाया जाता है। वह बचुआ की लाश को ही दुल्हे नीमा-जामा-और पहनाती है। उसके निश्चेष्ट देह से गोदान करवाती है -"गाय के आते ही संकल्प-विधि संयमित हो पूरी की टिकैतिन कक्की ने। किंतु टिकटी उठते ही उनकी छाती से दहलता हुआ संताप का ज्वालामुखी फट पड़ा- "मोर भय्या रेऽऽऽ... किसके भरोसे महतारी को छोड़ के चल दियेऽ...अब हम न जिएंगेऽऽ...प्राण दे जल्दी ही तुम्हारे बप्पा के पास पहुंच जाएंऽऽगेऽऽ रे बचुआऽऽऽ..."[164]

'भूख' कहानी की लक्ष्मा मजबूरी वश अपने बटे बच्चे को भिखमँगी को दो रुपये प्रतिदिन के हिसाब से किराए पर देती है ताकि अन्य बच्चों के खाने का जुगाड़ भी हो जाए। पर भीखमांगने वाली बाई ने छोटू को ना दूध दिया था और ना ही बिस्किट। वह उसे अधिकतर भूखा ही रखती थी ताकि वह दुर्बल दिखे और रो-रोकर दाता के दिल में करुणा जागृत करें ताकि उसे अधिक भीख मिले। लक्ष्मा को लगता कि वह तो हर रोज दूध-बिस्किट खा रहा है पर वह बहुत दुर्बल होता है। अस्पताल में बताने पर पता चलता है कि वह भूख के कारण चल बसा- "डॉक्टर ने पल-भर लक्ष्मा को भेदती नजरों से देखा, फिर रुक्ष स्वर में बोले-'बच्चे को खाने को नहीं देती थी क्या ? बच्चा भूख से मर गया...उसकी आंतें सूखकर चिपक गई थीं।' 'क्या?' लक्ष्मा के गले से आरी-सी काटती एक करुण चीख फूट पड़ी- 'पन कइसा ? वो तो बोलती होती कि वो उसको दूध देती, बिस्कुट खिलाती...' उस पर बेहोशी-सी छाने लगी।"[165]

'लेन' की महेंदरिया के पति दत्तूराम पर किसी ने चाकू चलाया। वह अस्पताल में भर्ती है। पुलिस में रपट लिखाई गई। धीरे-धीरे दत्तूराम की हालात में सुधार हो रहा था। महेंदरिया सोसायटी में साफ-सफाई का

काम करती है। दत्तूराम रिक्शा खींचता है। बड़ी डाक्टरनी दत्तूराम की छुट्टी के बारे में बताती है-"दत्तूराम घर जाने की छुट्टी चाहता है। पड़े-पड़े इसका जी ऊबता होगा, पर अभी दस-पंद्रह रोज तक तो कुछ कह पाना मुश्किल है। एक बात गांठ बांध लो, यह ठीक हो जाए, फिर भी इसे रिक्शा न खींचने देना। रिक्शा खींचना इसके लिए प्राण घातक है। रीढ़ की हड्डी बढ़ गई है। किसी प्रकार का जोर सहन नहीं होगा।" सुनकर वह सकते में आ गई। लगा, गला बेतरह खुश्क हो रहा है। सिर में घुमनी-सी चढ़ रही है। पानी पी ले तो शायद थोड़ा सकून मिले।"[166] दत्तूराम की आजीविका का एकमात्र साधन रिक्शा ही था। अब घर कैसे चलेगा यही चिंता उसे खाए जा रही थी।

'जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं' इस कहानी में गावं की राजनीति की शिकार सुक्खन भौजी एवं अपाहिज ललौना की मार्मिक दु:खभरी कहानी को प्रस्तुत किया गया है। ललौना को हाथ से चलने वाली गाड़ी जगदंबा बाबू के हाथों उपहार स्वरूप बड़े समारोह में दी जाती है। उसकी जिंदगी बदल जाती है। वह गाड़ी पर गांव भर घूमता है बहुत प्रसन्न है। उसकी मां भी खुश है, परंतु अचानक कुछ दिनों बाद सुमेर सिंह गाड़ी वापस लेने पहुंचते है तब सुक्खन भौजी दु:खी होती है प्रत्यक्ष तो कुछ कहने का साहस नहीं करती पर अपने अवसाद भरे शब्द मन ही मन कहती है- "सुक्खन भौजी के सिर पर मानो बिजली गिर पड़ी। वह उंगलियों में कसी ढिबरी फेंक कटे वृक्ष-सी मालिक के चरणों में ढह जाना चाह रही हैं -'मालिक ! मोरे बचौना की जिनगी न छीनो, पहिया वाली गाड़ी पाय के वह हिरन की नाईं चौकड़ी भरत फिरत हय...रांड मेहरिया की बुढ़ौती की आस है अभागा...गाड़ी छीन लैहो तौ कैसे जिई मोर ललौना ! कईसे जिई..."[167]

चित्रा जी के कहानियों में आधुनिक युग की अनेक दु:खात्मक संवेदनाओं को देखा जा सकता है। जिसमें पारिवारिक विघटन, स्त्री-पुरुष के संबंधों में अलगाव, टूटन, अर्थ का बढ़ता प्रभाव, व्यक्ति का मानसिक तनाव, कुंठा, निराशा, अकेलापन, असुरक्षा, अविश्वास आदि को गहराई से विश्लेषित किया है। "नई कहानी में तो पारिवारिक विघटन तो है ही, सामजिक जीवन से बिगड़ते संबंध बिखरने लगे, उस बिखराव के टकराहट के कारण अनेक है। जसमें अर्थाभाव, स्त्री की जीविकोपार्जन में सहयोग देने की भूमिका, नौकरी के कारण बदलती हुई मानसिकता का यथार्थ चित्रण उसके विभिन्न परिणामों के साथ चित्रित हुआ है। इसमें टूटते हुए पुरुष की तरह बिखरते नारी का भी चित्रण है।"[168]

दु:खात्मक संवेदना का विस्तृत रुप निम्नवत् अध्ययन किया जा सकता है –

3.3.1 संयुक्त परिवारों का विघटन

भारतीय परिवार व्यवस्था में संयुक्त परिवार का विशेष महत्व था। संयुक्त परिवार के बारे में डॉ. एम. सी. दुबे का कथन है, "यदि कई मूल परिवार एक ही साथ रहते हो और इनमें निकट का नाता हो, एक ही स्थान पर भोजन करते हो, और एक ही आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हो तो उन्हें सयुक्त परिवार कहा जाएगा।"[169] जिसमें दादा-दादी, बेटा-बेटियाँ, बहुएँ, चाचा-चाची उनके बच्चे सारे परिवार में सम्मिलित रहते है। पर वर्तमान में नौकरी, शिक्षा एवं अन्य अनेक कारणों से एकल परिवार अथवा अणु परिवार व्यवस्था प्रचलित हो गई है। जिसमें केवल पति-पत्नि एवं केवल अनका बच्चा अथवा बच्चे रहते हैं। आज सयुक्त परिवार दिन-ब-दिन टूटते जा रहे हैं। आज आधुनिकता, यांत्रिक दौड़ तथा बाजारवाद के कारण बच्चे भी अपने माता-पिता को साथ रखने से कतराते हैं। पारिवारिक विघटन के बारे में इलियट और मैरिल लिखते है, "पारिवारिक विघटन में केवल पति-पत्नी के बीच पाया जानेवाला तनाव ही नहीं आता है बल्कि बच्चों और माता-पिता में उत्पन्न होने वाला तनाव भी आता है।"[170]

वर्षो से गाँव के परिवेश तथा परिवेश में रहें बुजुर्गो को शहर की हवा नहीं भाँति। वे इस नई व्यवस्था से असंतुष्ट रहते हैं और उसमें समायोजन नहीं कर पाते। परंतु नौकरी करती बहुओं को अपने बच्चों को देखने के लिए इन बुजुर्गो की जरूरत रहती है। पर जब सांस-ससुर मना करते हैं तो उनको भी बच्चों को संभालने के लिए कोई प्रौढ़ा नौकरानी का प्रबंध करना मुश्किल बन जाता है। 'सुख' कहानी में सुमंगला कामकाजी महिला है। उसके पति चीफ इंजीनियर थे पर पैतालिस वर्ष की अल्पायु में ही हृदयघात के प्रथम अटैक ने उन्हें ग्रस लिया। पंछी सात-आठ वर्ष की बालिका है। वे कोलकत्ता में रहते हैं पर सर्विस एवं घर संभालना उसे अकेली को असंभव हो रहा था। सासुजी साथ रहने तैयार नहीं थी काफी वेतन देने पर भी नौकरानी नहीं मिल रही थी- "नई व्यवस्था से पूर्वतः असंतुष्ट और अप्रसन्न सासूजी का असहयोगी भाव शांतिकुंज पहुंचते ही अधिक प्रखर हो उठा। दूसरे मोर्चे पर फतह पाए बिना घर-गृहस्थी में सुख-शांति कहां ! सुमंगला ने कोई आत्मीय, परिचय-अपरिचय नहीं छोड़ा जिससे एक अदद ईमानदार और पूर्णत:गृहस्थी संभाल लेने वाली नौकरानी की बात न की हो। पंछी सयानी हो रही थी, कोई प्रौढ़ा मिल जाए तो सोने पर सुहागा।"[171]

आर्थिक सुविधा हेतु पति-पत्नि दोनों काम करते हैं, कभी-कभी पति-पत्नी मन मुटाव के कारण दोनों अलग रहने का निर्णय लेते है। अनेक प्रसंगों में कठनाई होती है। जिसके कारण उनके बच्चों को अपने माता-पिता से दूर होने की सजा भुगतनी पड़ती है। एकल परिवार में रहने के कारण उनको रिश्ते-नाते कुछ भी पता नहीं होता। वे सिर्फ अंकल और आंटी यही रिश्ते जानते है। 'गेंद' कहानी में सचदेवाजी सैर पर निकले थे। अचानक उन्हें गेंद देने की आवाज सुनाई पडी। बिल्लू की गेंद फेंसिंग के बाहर गिरी थी। उसने आवाज लगाई थी। सचरदेवीजी उससे बात करते हैं। गेंद तो नहीं मिलती पर वृद्धाश्रम में रहनेवाले सचरदेवाजी उसकी त्रासदी जानकर व्यथित हो जाते ह-"माँ की बेवकूफी पर उन्हें गुस्सा आया-'घंटे-आध घंटे की बात तो थी, बच्चे को इस तरह अकेला छोड़ता है कोई ?' 'मम्मी तो डॉक्टर हैं। मेरे साथ रहने के लिए नर्सिंग होम से एक नर्स आंटी आएंगी अभी। वही गेट खोलेंगी, अभी। वही गेट खोलेंगी, घर भी खोलेंगी…पहले तो अंकल, मम्मी मुझे घर में बंद कर जाती थीं।…और तुम्हारे पापा कब आ आते हैं ?...अलग रहते हैं। अलग क्यों रहते हैं ? मम्मी लड़ती हैं उनसे।"[172] उस बच्चे की बाते सुनकर सचदेवा का मन पसीज जाता है।

संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण बच्चे सभी रिश्ते-नाते भी भूल रहे हैं। उन्हें पता ही नहीं कि दादाजी-नानाजी में क्या अंतर है। वे तो केवल अंकल, आंटी, दो ही शब्दों से सभी रिश्तों को संबोधित करते हैं –"तुम मुझे अंकल क्यों कह रहे हो, मैं तुम्हारे दादाजी की उम्र का हूं। मुझे दादाजी कहो।' बच्चा असमंजस में पड़ गया। 'बूढ़ों को दादाजी कहकर पुकारते हैं।'उन्होंने समझाया।…'दादाजी को नहीं जानते ?' 'नइऽऽऽ' बच्चे ने मासूमियत से मुंडी हिलाई। 'चलो, मुझे दादाजी पुकारा करो। पुकारेंगे न ?' सहसा उनका गला भर्रा आया। हैरत हुई स्वयं पर।"[173] सचदेवा उसे दादाजी कहकर पुकारने के लिए कहता है। उसे यह भी वादा करता है कि वह उसके लिए गेंद खरीदकर लाएगा।

आज के युग में संघर्ष करने के लिए सिर्फ घर का एक ही व्यक्ति कमाकर घर की आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकता। आज गुजारा तथा बुनियादी जरूरतों के लिए पति-पत्नी दोनों को नौकरी करनी पड़ती है। परंतु इस समस्या से अनभिज्ञ उनके माता-पिता सोचते है कि घर चलाना सिर्फ मर्दों का ही काम है। आज के युग में दुनिया तेजी से बदल रही है। उसी के साथ नयी पीढी का व्यवहार, जीने के तौर तरीके, विचारधारा बदल रही है। पीढ़ी अंतराल के कारण इन दो पीढ़ियों में मतभेद होते रहते हैं। 'तकिया' कहानी में पति-पत्नि कामकाजी है। जचकी के समय सासु माँ आ गई पर चालिस दिनों बाद उन्होंने गाँव में अपनी सासु माँ की सेवा के लिए

जाने के बारे में कहा, काफी मनाने पर भी नहीं मानी –“दोनों का बहुत मन था, अम्मा उनके पास रुक जाएं। अम्मा न मानीं। खटिया लगी उनकी सास को सेवा की जरूरत है। ‘दुलहिन नौकरी छोड़ क्यों नहीं देतीं? …सात हजार घर का किराया देना होता है। घर केवल उनके बेटे की कमाई से नहीं चल सकता।…इन्हीं स्थितियों में बच्चा पैदा करना होगा…दादी के पुचकारते ही फिक्क से हँस पड़ने वाला पोता भी अपनी दादी को शहर से नहीं बांध पाया।”[174] लेखिका ने इस कहानी में नौकरी पेशा करनेवाले पति-पत्नी की विडंबना को यहाँ पर बखूबी से चित्रित किया है।

3.3.2 पारिवारिक जीवन की समस्याएँ

आज के इस संगणक युग में मनुष्य के पास सब कुछ है पर समय ही नहीं है। संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण मनुष्य के जीवन में अनंत समस्याएँ मुंह उठा रही है। वह सुख की खोज में बाहर दौड़ रहे है पर मृग जन्म की भाँति सुख प्राप्त नहीं हो रहा है। जितनी सुविधाएँ बढ़ती जा रही है उतनी मनुष्य की अपेक्षाएं भी बढ़ रही हैं। अति उच्च महत्वाकांक्षा मनुष्य को और भी अधिक दु:खदायी बना रही है। पारिवारिक जीवन की समस्याओं को निम्नवत् देखा जा सकती है –

3.3.2.1 घुटन

प्रीति अपने पति गोयल के साथ अधिक दिन नहीं रह पाई क्योंकि वह उसे काफी पीटता था। वह गोयल के साथ घुट-घुट कर जी रही थी । पेट से मोना के रहते भी उसे गोयल ने बेरहमी से पीटा था। मोना के मृत्यु उपरांत वह माँ एवं भैया के साथ रहती थी। गोल्डन कांटीनेंटल में रिसेप्शनिस्ट पद पर नौकरी करती थी। पर गोयल ने वहा भी उसकी शादीशुजदा होने के शिकायत की। उसकी नौकरी एक ही शर्त पर टीक सकती थी कि वह मेहमानों का इंटरटेंनमेंट करें। वह त्यागपत्र लिखती है पर इस घुटन भरी जिंदगी से हर जगह सामना तय है यह सोचकर द्विवेदी की शर्त मान लेती है - “अंतिम मोड़ की सीढ़ियां उतरते-उतरते ठिठक गई। कहां-कहां से भागेगी ? गोयल के लिए नौकरी छोड़ दे ? लौट जाए ? भैया के लिए करती रहे ? द्विवेदी तो हर दफ्तर के केबिन में मौजूद हो सकता है।…मोहरों-सी क्यों इस्तेमाल हो ? त्यागपत्र निकालकर उसने चिंदी-चिंदी कर डाला।”[175]

दाम्पत्य-जीवन में पति-पत्नी को एक दूसरे के विचारों पर सहमत होना पड़ता है। एक-दूसरों की कमियों को नजर-अंदाज करना पड़ता है। तभी दाम्पत्य-जीवन की गाड़ी ठीक से चलती है। डॉ. विजया वारद

का मानना है-“वैवाहिक जीवन की यह पहली शर्त है कि दोनों अपने-अपने व्यक्तित्व के सत्य को, अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए एक दूसरे के प्रति समर्पित हो। आधुनिक शिक्षा-दीक्षा के कारण पुरुष-स्त्री के व्यक्तित्व पर हावी होना चाहता है और स्त्री कठपुतली की हद तक समर्पित होना चाहती है। पुरुष चाहता है कि उसके मनोनुकूल स्त्री जिए और यही उम्मीद भी करती है। चाहे विवाह पारिवारिक हो या प्रेम द्वारा दोनों सजग व्यक्तित्व जब एक-दूसरे से टकराते है तब तनाव की स्थिति उभरती है।”[176]

‘मामला आगे बढ़ेगा अभी’ इस कहानी में मोट्या के साथ-साथ सक्सेना साहब की पत्नी का भी घुटन भरा चरित्र चित्रित किया गया है। उनकी पत्नी पति के बारे में सब कुछ जानती है। मोट्या एवं मेमसाब में काफी प्रगढ़ता हो गई थी। जिसका सक्सेना को क्रोध था। एक दिन मेमसाब अपने मन की बात मोट्या को बताती है –“मेमसा’ब की बातें मथ रहीं-‘मुझे तो बस कहने-भर को घर मिला है। यह सारी मौज-मस्ती तो वक्त-कटी है, सा’ब कहने को तो पति हैं और मैं कहलाने को बीवी। अक्सर जो देरी से घर आते हैं न, उसी छिनार के फ्लैट में रहते हैं। नया फ्लैट, नई गाड़ी खरीद के दी हैं उसे। वही हरे रंगवाली गाड़ी।”[177]

आज के समाज का परिवर्तित रूप हमारे समक्ष आ जाता है। एक ओर परंपरा से चले आ रहे संयुक्त परिवारों का विघटन दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। तो दूसरी तरफ पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन आ रहे हैं। पारंपरिक मानव मूल्यों से मुक्त मनुष्य आत्मकेंद्रित बन गया है। आज के अंतरंग संबंध जिसमें पति-पत्नी, पिता-पुत्री, पिता-पुत्री, माँ-बच्चे, भाई-बहन आदि रिश्तों में दूरियाँ पैदा हुई है। इसके कारण मानसिक समस्याओं ने जन्म लिया है घुटन, संशय, तनाव, अकेलापन, अविश्वास आदि से मनुष्य परिवार तथा समाज से अपने आप कट जाता है।

‘अपनी वापसी’ कहानी में शकुन-हरीश दोनों को देखा तो लोगों की नजरों में वे सफल दंपत्ति थे। पर पति-बेटा-बेटी के साथ शकुन घुटन भी जिंदगी जी रही थी। पति अपने बेटा-बेटी के साथ समवयस्क बन हँसी ठिठोली कर था पर शकुन को वह पसंद नहीं था। अतः शकुन अकेली पड़ गई थी। उसे उपेक्षित बना दिया गया था –“ऐसी बातों पर उसके आपत्ति प्रकट करने पर झिड़क देते, ‘किस जमाने की बातें कर रही हो ?...हरिश ही क्यों, पूरा घर उसकी इन प्रतिक्रियाओं पर मिल-जुलकर उसका उपहास उड़ाता। हरिश का तकियाकलाम बन गया है,‘तुम रहीं वही की वही आटे-बाटे-वाली !(सुल्तानपुर)। हरीश की देखा-

देखी बच्चों ने भी फिरकी लेनी शुरू कर दी।...बच्चे बड़े हो गए हैं। उनसे बराबरी पर मिले, बोले, बैठे, बतियाए।"[178]

3.3.2.2.दोहरी जीवन की त्रासदी

'सफेद सेनारा में' चित्राजी ने शरद बाबू के दोहरे जीवन पर प्रकाश डाला है। जिसका परिणाम उनकी पूर्व प्रेमिका एवं बच्चे की माँ शुभा के जीवन पर पड़ा था। गंधहीन सफेद सेनारा के रूप में स्त्री को देखनेवाले कायर पुरुष के मनोवृत्ति को, खास तौर पर लेखक होकर अपनी वास्तविक जीवन और लेखनी में जो अंतर है उसके बारे में बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया है। शुभा एकाकी रहकर बच्चे का पालन पोषण कर रही थी। जबकि शरद बाबू अपनी गाँव वाली पत्नी जो उनके नजरों में गंवार थी को छोड़ एक धनाढ्य विधवा से विवाह करनेवाले थे, जिसको समाज एक आदर्श मान रहा था –"आप सचमुच कितने महान हैं। ऐसा ही तो मैंने भी सोचा था !'खंडहरों का दर्द' पढ़कर। पढ़कर कितनी-कितनी रातें बरसाती आंखों, भीगती-ठिठुरती बिताई थीं मैंने।...जो झूठ को सच सच करने की कला में माहिर हो उससे सच तिरस्कृत नहीं होगा तो किससे होगा ? मैंने देखा था, आपके करीब आपकी होने वाली धनाढ्य पत्नी हर्ष से विह्वल हो मंद-मंद मुस्करा रहीं थी।...जिस चमचमाती गाड़ी में सभास्थल पर उतरे थे आप, वह भी तो उन्हें की थी !"[179]

रवि यों तो निरू एवं बच्चों के साथ खुश है पर उसका अतीत उसके दोहरे जीवन को उजागर करता है। वह शहर में रहकर फैक्टरी में रात पाली करता है, तो पत्नी दफ्तर में कार्यरत है। गाँव में माता-पिता ने उसका विवाह किया था जिससे उसे एक लड़की 'लल्ली' है। पहली पत्नी स्वयं को शापित अहिल्यां मान सास-ससुर की सेवा करती है, पर बेटी पिता को देखने-मिलने तरसती रहती है। पत्र लिखती पर रवि ना कभी गाँव गया ना ही किसी चिट्ठी का जवाब ही दिया –"उसके जगह में एक अबोध चेहरा गड्डमड्ड हो, स्मृति की धूल झाड़ता अपने आकार-प्रकार के लिए संघर्ष करने लगा। एक अस्पष्ट भूला-बिसरा चेहरा। वह नन्हा-सा चेहरा। वह नन्हा-सा चेहरा जो बरसों पहले अनायास उसके माथे पर चिपका दिया गया था और...उसने उस अनिच्छित चेहरे को अपने माथे से छुटाकरा फेंक देने की कोशिश की थी।...उसके अक्स इतने धुंधले अवश्य पड़ गए कि उसे कोई पहचान नहीं सकता...फिर भी वह निरू से उसे अपने पीछे छिपाए रखता है।"[180]

'अभी भी' कहानी में पायलट पति मुकेश के मृत्यु के बाद मुआवजे में मिली संपत्ति पर नजर रख बीजी शिल्पा का देवर सुरेश के साथ विवाह का प्रस्ताव मनवा लेती है। सुरेश का व्यक्तित्व दब्बू है। वह बीजी एवं

भाइयों के हाथों की कठपुतली बन जाता है। सभी शिल्पा का आर्थिक शोषण करते हैं। जब वह पैसे देने से इनकार करती है, तो देवर अनिल उसे दीवार पर पटक देता है। पड़ोसी शिल्पा के पिताजी को फोन करते हैं। वे पुलिस लेकर आते हैं तब बीजी शिल्पा को मनाते हुए कहती है– "देख बेटी ! तू घर की बड़ी बहू है। घर की लक्ष्मी…अनिल नादान बच्चा है…उसे माफ कर दे…अड़ोस-पड़ोस का क्या है, वे तो हमारे घर की सुख-शांति के दुश्मन हैं ! तमाशा देखने में उन्हें आनंद आता है। पुलिस पूछेगी तो बहाना बना देना…चक्कर आ गया था…बीजी के स्वर में में घबराहट स्पष्ट लक्षित हो रही थी।"[181] बीजी दोहरे व्यक्तित्व की धनी थी। परिवार से घटित होने वाले सभी प्रसंगों की वह सूत्रधार थी।

'प्रेतयोनि' में अनिता सहासपूर्वक टैक्सी ड्राइवर का मुकाबला करती है। उसके चंगुल से निकलकर रपट लिखा पुलिस के संग घर पहुँचती है। माता-पिता पुलिस द्वारा उसके साहस की कहानी सुनकर गर्व महसूस करते हैं। उस पर प्यार की बौछार कर देते हैं पर दूसरे दिन अखबार में जब इस घटना का वर्णन 'बॉक्स आइटम' में छपती है। तो सभी का व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। पिताजी के दोहरे व्यक्तित्व को देखकर तो शिल्पा का सिर चकरा जाता है –"उसका सिर घूम रहा है, यह कौन से कौन-से बाबूजी हैं ? इस अपरिचित व्यक्ति को तो उसने कभी देखा ही नहीं! उसके धर्मभीरु, असत्यभीरु बाबूजी की काया के किस कोने में दुबका बैठा रहा यह कायर व्यक्ति, जो नि:संकोच झूठ पर झूठ गढ़े जा रहा है मान-मर्यादा के रूढ़ मानदंडों की रक्षा के लिए ?...यही व्यक्ति है, जो अम्मा से हमेशा इस बात के लिए लड़ता-भिड़ता रहा कि मैं अपनी लड़कियों को कुछ दहेज में दूंगा तो सिर्फ शिक्षा। शिक्षा ही उन्हें आत्मनिर्भर बनाएगी।"[182]

3.3.2.3. युवा पीढ़ी की स्वार्थपरता:

आज की युवा पीढ़ी भूतकाल के युवाओं से कुछ कम मात्रा में निस्वार्थ पाई जाती हैं। वे अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु ही परिवार से जुडते हैं। 'केंचुल' कहानी में सरना कल्पू को पसंद करती है। उससे रोज मिलती है। उसके रूम पर जाकर उसके लिए भोजन बनाती है। जब उसकी माँ को पता चलता है तो वह सरला को बहुत पीटती है। एक दिन कल्पू मिलने आता है-"कल्पू की पहल के पीछे दुस्साहस किसका है। कल्पू की हिम्मत का अंदाजा उसे नहीं है, किंतु सरना के दबंगपन से बखूबी परिचित है। यह भी अनुमान लगाया कि हो न हो, इस मिलने-मिलाने की योजना के पीछे उस दिन की मारपीट खास कारण हो।…कल्पू तेरे से बात करने कू बोलता।"[183]

'लिफाफा' कहानी में बेरोजगार अशोक प्रस्तुत किया गया है। अशोक की दोस्त रेखा उसके घर आती है। मां से मिलती है। उसे पता चल जाता है कि मां बेटे में तनातनी चल रही है। वह अशोक को समझाते हुए कहती है- "इतने स्वार्थी और खुदगर्ज न बनो। किताबें बहुत पढ़ ली हैं। मां को जरा समझने की कोशिश करो। ये मामूली-सी बातें ज्यादा इसीलिए चुभती हैं तुम्हें, क्योंकि तुम अपने-आपको असफल महसूस करने लगे हो। सीधे-सीधे से भी पूछी जाने वाली बातें तुम्हें ताना-तुक्का लगती हैं, अशोक !...यह खीज उनकी दुश्चिंता है। तुम्हारे प्रति, तुम्हारे भविष्य के प्रति..."[184]

'गर्दी' कहानी में विधवा एवं दो लडकियों की माँ राजी का चित्रण किया गया है। कहानी का नायक अपने दोस्त उमेश की पत्नी की देखभाल करता है। फिर उसके ही घर रहने लगता है। इधर उसकी मां एवं घर वालें परेशान है कि वह कैसे उस विधवा के चक्कर में पड़ गया। यहां नायक अपने घर की या रिश्तेदारों की चिंता नही करता है। स्वयं का स्वार्थ देखता है और लाख मना करने के बावजूद उसके साथ रहने चला जाता है। घर वालों का समझाना उसे बुरा लगता है वह अपनी बहन रेनु से कहता है- "रेनू, वह घर मेरे लिए धारा की प्राणलेवा भंवर सदृश हो गया है, जिसमें फंसकर अपनी दर्दनाक मौत को रेशे-रेशे महसूस करते हुए उसकी ओर बढ़ना होता है ! ये लोग, सिर्फ मेरी अंत्येष्टि की प्रतीक्षा में है, उतावले !"[185]

3.3.2.4.संदेहशीलताः

हमारा समाज अनेक रूढ़ियों तथा मान्यताओं से जुड़ा हुआ है। जब तक एक स्त्री का पति है तब तक उसे समाज में मान-सम्मान दिया जाता है। परंतु जब वह विधवा होती है उसे चैन से जीने नहीं देती है। पुरुष प्रधान भारतीय संस्कृति में विधवा स्त्री की अवस्था बहुत ही दयनीय होती है। ससुराल द्वारा विधवा पर ज्यादा पाबंदियाँ लगाई जाती है। हर कदम पर उसे संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। संदेह की कोई दवा नहीं होती। यह मनुष्य के घुट-घुट कर मरने पर मजबूर कर देता है। इसके कारण रिश्तों में दरार पड़ जाती है।

'अभी भी' कहानी में शिल्पा का विवाह संपत्ति के लोभ में अपने पुत्र सुरेश से बीजी करा देती है। सारा परिवार उसका शोषण करता है। जब वह कहीं आती-जाती है, फोन पर बातें करती है तो उसे शक्की नजरों से देखा जाता है- "अपने को लेकर चेती तो स्वयं को एक ऐसे कठघरे में बंदी पाया जो बड़ी चतुराई से उसे एक नए खूबसूरत घर और नई जिंदगी की उम्मीद के रूप में दिया गया था। मगर उस कैद में जीवन जीने के नाम पर भी प्रतिपल चौकन्नी निगरानी और संकेतों पर हिलने-डुलने की स्वतंत्रता।...उन्हें क्या पूरे घर को यही लगता

कि कहीं ऐसा न हो कि कोई उसे अपने ऊपर शोषण के प्रति सचेत कर दें।"[186] शिल्पा का स्वतंत्र व्यक्तित्व होते हुए भी वह ससुरालवालों के नजरों में दोषी तथा संदेह भरी दृष्टि उसपर रखी जाती थी।

पति-पत्नी के रिश्ते का की धरोहर विश्वास है। अगर उसमें संदेह का दीमक लग गया तो पूरा रिश्ता खोखला बना सकता है। 'स्टेपनी' कहानी में जब मिसेज खन्ना आभा को बताती है कि उसकी नौकरानी बताशा और पति के बीच कुछ चल रहा रहा है। आभा के दफ्तर जाने के बाद दोनों घर पर होते है। बताशा के काम निपटने के बाद ही विनोद दफ्तर जाता है। एक बार मिसेज खन्ना जामन के लिए आभा के दफ्तर जाने बाद गई थी तब बताशा ने काफी देर लगा दी दरवाजा खोलने –"उसकी आंखों की तृप्ति और किवाड़ों के पटो के पीछे से अकुलाई अस्त-व्यस्तता भांप मेरा माथा मेरा माथा ठनका। बड़ी कुशलता से अपने मनोभाव दबाकर मैंने जामन के लिए कटोरी उसकी ओर बढ़ा दी। जामन लेकर पट्ठी लौटी तो सहज और संवरी हुई-सी लगी। किवाड़ भी उसने लगभग आधा खोल दिया।...घर में लौटकर मैं अपने काम में व्यस्त तो हो गई, आभा, मगर मन में फुफकारता संशय का फन तना ही रहा।"[187] अपने मन के भाव जब आभा पति को बताती है तो वह उसपर बरसता है और कहता है कि मयूर विहार के फ्लैट में ऐसे धंधे चलते है अगर मैं वहाँ पर जाता तो तुम्हें उसकी भनक तक नहीं लगती। डॉ. गोरक्ष थोरात इस संदर्भ में कहते हैं,"कामकाजी बताशा का समुचित विकल्प न होने आर्थिक कारणों से नौकरी न छोड़ने की बाध्यता आदि को देखते हुए आभा चुप रह जाती है। आभा के मन में यह भी संशय घर कर गया है कि विनोद चाहे नौकरानी से न सही किसी और के साथ ऐसा संबंध कर सकता है।"[188] जब पूरी स्थिति का आभा अवलोकन करती है तो बताशा को नौकरी पर रखने और खुद स्टेपनी बनने के के बारे में मन बनाती है।

अब आभा बताशा पर एवं विनोद पर नजर रखी हुई थी। उसे मिसेज खन्ना का संदेह उचित ही लगा- "गलत नहीं थी श्रीमती खन्ना ! संदेह की चुनाई आकार ग्रहण करने लगी। और विनोद के घर में दाखिल होते ही उस चुनाई पर प्रामाणिकता के छींटे पड़े। स्पष्ट भांपा उसने कि विनोद को देखते ही बताशा के आरक्त चेहरे पर एक अनोखी चटखाई सुरसुरा आई। ...उसे परे हटाती हुई बताशा साधिकार बोली, 'लाओ बीबी, मैं चढ़ाती हूं चाय। बाबूजी को गाढ़ी चाय भाती...आप तो खालिस पानी खौला के धर दें।"[189]

'ताशमहल' कहानी में शुभा को पहले पति दिवाकर से एक बच्चा है। निशीथ पहल कर के कि वह बच्चू की जिम्मेदारी लेगा और दूसरे बच्चे की जिद नहीं करेगा हम शर्त पर आभा से विवाह करता है। पर उसके

मन से दिवाकर और आभा का रिश्ता नहीं भुलाया जाता है- "बच्चु मात्र दिवाकर का अंश ही नहीं, उसकी शक्ल में तुम प्रतिपल अपने भीतर दिवाकर को ही जी रही हो ! दिवाकर तुम्हारे लिए अतीत नहीं, अब भी वर्तमान है…वह तुम्हारे जीवन से आज भी नहीं निकल पाया।' 'यह सब तुम्हारे संशयी दिमाग के जाले हैं...बच्चू को जब भी मैं तुम्हारे अंक में स्तनों के बीच सिर गड़ाए दुबका हुआ पाता हूं, मुझे वह दिवाकर नजर आता है।"[190]

'रूना आ रही है' कहानी में बुआ-भतीजी के अंतरंग रिश्ते में दरार पड़ती है । रूना को श्रीमंत से विवाह की जल्दी है पर बुआ के रहते भतीजी का विवाह संभव नहीं । सभी निमा के विवाह के बारे में सोच रहे थे केवल निमा को छोड़कर । निमा को रूना एवं घरवालों पर संदेह होने लगा- "लगने लगा था, रूना समेत सारा घर मेरे खिलाफ षड्यंत्र में मशगूल है । बात मेरी हो रही है, मेरे बारे में हो रही है, की जा रही है, पर यह अहसास पक्का होता चला गया कि रास्ते निकाले नहीं, बंद किए जा रही हैं । पढ़ाई से मन उचाट हो गया । कानों में खुसफुसाहटें दुबक गईं, जिनकी सरसराहट पल-पल चौकन्ना किए रहती ।"[191]

राकेश विवाहिता बेला से प्यार करता है, पर उसका सरला से जबरन विवाह किया जाता है । वह बेला को नहीं भूल पाता सरला के मन में संदेह रूपी राक्षस घर कर गया । "उन दोनों के मध्य यह भी तय हुआ कि एक-दूसरे से कुछ छिपाएंगे नहीं । कोई सामान्य घटा तो आमने-सामने बैठकर सुलझा लेंगे । पर जब-जब वह उनके और बेला के विषय में अनर्गल सुनती, पूछे बिना नहीं रह पाती । राकेश का निरंतर एक ही जवाब होता,'औरों की बातें सुन-सुनकर कब तक मुझे कठघरे में खड़ा करती रहोगी ? आखिर शक-सुबहे की कोई सिर-पूंछ तो हो ।…संशय की पुष्टि करवाना चाहती हो ।"[192]

3.3.2.5 ईर्ष्या

किसी की खुशी अथवा सफलता देखकर कुछ लोगों के मन में जलन पैदा होती है इसे ईर्ष्या कहते है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ईर्ष्या के संदर्भ में कहते हैं,"जैसे दूसरे के दु:ख को देखकर दु:ख होता है, वैसे ही दूसरे के सुख या भलाई को देखकर भी एक प्रकार का दु:ख होता है, जिसे ईर्ष्या कहते हैं ।"[193] स्पर्धा के कारण भी ईर्ष्या होती है । 'पेशा' कहानी में प्रणव व नरेंद्र दोनों मित्र होने के बावजूद जब नरेंद्र को बतरा साब स्तंभ के लिए चयनित करते हैं तो प्रणव को मन ही मन ईर्ष्या होती है- "प्रत्युत्तर में प्रणव ने भरसक अपनी खिन्नता छिपाई । पता नहीं क्यों, उसे नरेंद्र के स्तंभ पा जाने पर जो खुशी होनी चाहिए, नहीं हुई । हालांकि इस वक्त वह किसी

सिद्धहस्त अभिनेता की तरह प्रसन्नता का अभिनय कर रहा है और होटल से बाहर आते ही बाकायदा उसके गले लिपटकर उसने उसे हार्दिक बधाई भी दी।"[194] आधुनिक युग में एक-दूसरे के प्रति भावनाएँ कही पर विलुप्त हो गई है। उसकी जगह व्यावहारिकता ने ले ली है। हर एक कोई अपना स्वार्थ और फायदा देखता है और उसके अनुसार अपना कार्य करता है।

भारतीय समाज में स्त्रियों पर कई निर्बंध लगाएँ गए हैं। खासकर लड़की पर परिवार द्वारा अनेक रोक लगाएँ जाते हैं। जिसके कारण वह अकेलपन, घुटन का शिकार बनती है। उसके समकक्ष या साथी से वह ईर्ष्या करने लगती है। 'रूना आ रही है' कहानी में नीमा पर काफी बंधन थे, पर रुना को सारी छूट दी गई थी। इसी कारण उसे अपनी प्रिय सहेली-भतीजी रूना से ईर्ष्या महसूस होती है-"बड़ी भाभी को यह दिखाई दे रहा था या नहीं ? दिखाई तो जरूर पड़ता रहा होगा-तीसरे नेत्र से संपन्न जो थीं! पर यह तीसरा नेत्र क्या मेरे ही लिए है ? अकसर यह सवाल कचोटता है मन को।...सबके सामने ही लताड़ देतीं, 'गप्प मारने के अलावा कुछ काम-धाम नहीं है ?"[195] निमा और रूना का रिश्ता बहुत ही रागात्मक था परंतु घरवालों के इस व्यवहार के कारण वह रूना से ईर्ष्या करती थी।

घर-परिवार में भाई-बहनों का मन-मुटाव झगड़ा चलता ही रहता है। पर जो बड़े भाई-बहन होते है वो छोटे से अपेक्षा रखते हैं कि वे उनका आदर करें। पर छोटे बड़े बांधव द्वारा दिल दुखाने के कारण उनसे दूर ही रहते हैं। 'गर्दी' कहानी में नायक छोटी बहन रेनु के घर मिलने जाता है पर बड़ी जीजी के घर नहीं जा पाता तब वे ही उससे मिलने आती है। उन्हें लगता है कि वे बड़ी होकर भी उन्हें कम आंका जाता है- "जिज्जी कल शाम आई हैं उससे मिलने। इस बात पर नाराज थीं कि वह छोटी रेनू से मिल आया, उनसे मिलने नहीं पहुंचा। वे हमेशा ही उससे अपने बड़े होने की हक अदायगी चाहती रहीं।...उस पर अपने दबदबे को बेअसर देखकर वे हमेशा खुन्नस खातीं, डंके की चोट पर घोषणा करतीं -'इसे तो भला आदमी बनना नहीं, न एक दिन यह खानदान की नाक कटवाकर हथेली पर धर दे तो मेरा नाम पुष्पी नहीं..."[196] ईर्ष्या से मनुष्य अपना-पराया भूल जाता है उसको दूसरे के अच्छाई में भी बुराई नजर आती है। रामधारी सिंह 'दिनकर' के अनुसार "ईर्ष्या का काम जलना है, मगर सबसे पहले वह उसी को जलाती है, जिसके हृदय में उसका जन्म होता है।"[197]

पति-पत्नी के बीच प्रेम, विश्वास, त्याग की भावनाएँ शादी के बंधन से ही बन जाती है। परंतु कहीं-कहीं पति तथा पत्नी को उनके काम या व्यवहार के कारण मिलनेवाली प्रशंसा तथा तरक्की के कारण उनमें

ईर्ष्या की भावना फूट पड़ती हैं। जिसका अंत ज्यादातर दोनों में दूरियाँ और झगड़े के द्वारा होता है।

कामकाजी स्त्री के जीवन के अनेक पहलू चित्रा जी के कहानियों में देखे जा सकते हैं। नारी कार्यालय में पुरुषों की घिनौनी नजरों को झेलते हुए अपना काम प्रामाणिक रूप में करती है तो कभी कबार उसे अपने पति की संदेह का निवारण करना पड़ता है। पति खुद कार्यालय में दूसरे स्त्री से जो अश्लील व्यवहार करते हैं उसके बार में उनको कोई संकोच नहीं होता परंतु वह अगर उनकी पत्नी की तरक्की हो जाती है तो उसे संदेह के नजरों से देखने लगते हैं।

'प्रमोशन' कहानी में जब ललिता का प्रमोशन होता है तब उसका पति संदेह करता है और उसे ईर्ष्या भी होती है कि जरूर उसकी पत्नी का बॉस के साथ कुछ-ना-कुछ चक्कर होगा, क्योंकि वह भी बॉस है और अनेक कर्मचारियों का शोषण कर प्रमोशन दिया है-"दिन में उनका फोन पर...'फिर वही अधिकारपूर्ण रवैया ! लगा कि पुआल के ढेर को सुलगती तीली छू गई,'मैं किसी कोठारी-वोठारी को फोन नहीं करता। जानता हूं, डॉ. कोठारी तुम पर इतने मेहरबान क्यों हैं...विभाग में तुम्हारी बनिस्बत अनेक वरिष्ठ, अनुभवी योग्य व्यक्ति पड़े हुए हैं। इतने वर्षों से उनका नंबर नहीं लग रहा है, तुम अचानक तीन सौ लोगों को पछाड़ विभाग की इंचार्ज हो गई।"[198] ईर्ष्या में मनुष्य दूसरे के उन्नति नहीं देख पाता। इस कहानी में भी पति को अपनी पत्नी के प्रमोशन पर ईर्ष्या होता है और उसके काम की तारीफ के बजाय उसपर लांछन लगाता है कि उसके और कोठारी के अवैध संबंध है जिस कारण इतने लोंगों को पछाड़कर वह विभाग इंचार्ज बन गई हैं।

इस ईर्ष्या के वजह से पति-पत्नी के बीच वाद-विवाद उत्पन्न होते है। इसका प्रभाव भी उनके दांपत्य-जीवन पर पड़ा है। इसकारण इनके रिश्तें में दूरियाँ, अनबन, संदेह, अविश्वास आदि घर करते हैं।

3.3.2.6 पति-पत्नी दोनों की कार्यशीलता -

वर्तमान युग में सुविधाएं तो काफी बढ़ गई है पर उसी अनुपात में खर्च भी बढ़ गए हैं। केवल एक व्यक्ति की कमाई से घर चलना लगभग असंभव ही प्रतीत होता है। अतः पति-पत्नी दोनों काम करते हैं एवं स्वयं एवं बच्चों को आर्थिक तंगी से बचाते हैं पर वे अपने बच्चों एवं अन्य सदस्यों के लिए समय नहीं दे पाते। इसी कारण कई समस्याएँ मुंह बाएं किए खड़ी हो जाती है।

ऐसा माना जाता है कि पति-पत्नी का रिश्ता सब रिश्तों में से एक सुंदर रिश्ता है। विवाह में बंधे हुए दो

लोगों में एक दूसरे के आचार-विचारों का साझा करते हैं। परंतु दोनों की कार्यशीलता के कारण दोनों एक दूसरे की भावनाएँ समझना तो दूर की बात है, बल्कि एक दूसरे से भी नहीं मिलते। 'पाली का आदमी' में नाईट शिफ्ट में काम करने वाली रवि की यही दुःखद त्रासदी है। सभी सोते है तब उल्लूओं सा जागता है और दिन दहाड़े बच्चों के स्कूल एवं पत्नी के दफ्तर जाने के बाद सोता है-"कितनी अजीब बात है, रवि फैक्टरी में रसायनों की प्रतिक्रिया पर दृष्टि गड़ाए हुए सोचता-बिस्तर पर नीरू अकेली होगी...और वह बिस्तर पर होगा तब नीरू दफ्तर में होगी।"[199] इस कहानी में दांपत्य -जीवन के विडंबना को प्रस्तुत किया गया है।

पति पत्नी के रिश्ते में भरोसा और प्रेम होना आवश्यक है। अगर उसमें अविश्वास और संदेह उत्पन्न हुआ तो पूरा जीवन बरबाद कर सकता है। निशीथ जब शुभा से शादी करता है तो शुभा और दिवाकर का बेटा बच्चू समेत उसका स्वीकार करता है। परंतु जब उसको अपना बेटा होता है तो बच्चू में उसे दिवाकर नजर आता है। 'ताशमहल' कहानी में बच्चू की हालत खराब है। डॉक्टर ने उसे टाइफाइड एवं रक्त की कमी के कारण नर्सिंग होम में दाखिल कराने कहा है पर निशीथ छुट्टी लेने तैयार नहीं है और शुभा की 'एजुकेशन फॉर वीमन्स इक्वालिटी' की कार्यशाला है। पति-पत्नी दोनों में कहासुनी होती हैं। वह कहता है -"सब पैसा बनाने के चक्कर हैं, नर्सिंग होम में ले आइए।'...'टाइफाइड है, कैंसर नहीं ! मर नहीं जाएगा बच्चू। सुबह से घर सर पर उठा रखा है- ऊपर से ये डॉक्टर, जेबकतरे हैं साले, जेबकतरे !'...'दाखिल-वाखिल करने की मूर्खता छोड़ों, लंच के बाद घर आ जाओ, बस। तब तक अम्मा देख लेंगी उसे। बत्तरा मामूली डॉक्टर नहीं, उसकी दी हुई खुराकें तो पूरी होने दो !"[200] कामकाज स्त्री की यह मुश्किल होती है कि उनको घर, बच्चे के साथ अपने काम में भी उतना ही योगदान देना पड़ता है जिसके लिए उनका चुनाव हुआ है परंतु पुरुष इसको समझने में असमर्थ हो जाते हैं।

इस कहानी के संदर्भ में वेदप्रकाश अमिताभ कहते हैं – "दिवाकर से अलग होने के बाद 'ताशमहल' की शोभना के सामने अपने बच्चू को पालने का सुनिश्चित लक्ष्य था। उसके अकेलेपन को निशीथ 'जीवन के हर पक्ष में भागीदारी' का ऐलान करके तोडना चाहता है। लेकिन विवाहित जीवन के कुछ वर्ष जी लेने के बाद वह आधारहीन संशय में घिर जाता है। वस्तुतः ये आधारहीन संशय ही कहीं न कहीं शोभना के स्वावलंबी और अपने फैसले खुद करने की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हीनता ग्रंथी की देन लगती है। कहानी के अंत में तबादले पर जाने की सोमना की स्वीकृति एक निर्णय मात्र नहीं है, जीवन को अपमान जनक शर्तों पर न जीने के साहस की सहज अभिव्यक्ति भी है।"[201]

शोभना यहाँ विचारपूर्वक साहसी निर्णय लेती है कि घुटघुट कर जीने से अच्छा अलग रहना ही उचित होगा जिससे बच्चू की मानसिकता भी ठीक रहेगी।

माँ बनना हर स्त्री के लिए आनंद की बात होती है। गर्भावस्था में नारी अपने बच्चे की सुरक्षा के लिए खुद बहुत ही खयाल रखती है। 'स्टेपनी' कहानी में आभा एवं विनोद दोनों काम पर जाते हैं।उसके गर्भावस्था के दौरान दीदी आ जाती है । तभी उसने नौकरी छोड़ने की ठानी थी पर विनोद ने मना कर दिया-"गर्भावस्था के आखिरी महीनों में उसने सोचा था-बच्चा पालना और नौकरी करना संभव नहीं। नौकरी छोड़ देगी।...'नौकरी आसानी से नहीं मिलती, संभल जाएगा सब...दीदी आ रही हैं जचगी के लिए, आगे-पीछे नौकरानी भी ढंग की मिल जाएगी। पूरे समय के लिए न सही, आंशिक समय के लिए ही सही।' विनोद ने उसे द्वंद्व से मुक्त करना चाहा-'अभी तो तुम्हारे हाथ में दो-दो व्यक्तियों की आय आ रही, खुलकर खर्च कर पाती हो, फिर पैसे-पैसे नौकरी के लिए सोचना होगा।"[202] घर की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए पति-पत्नी को इस अवस्था में छुट्टी न लेने के लिए कहता है। जिसके कारण आधुनिक स्त्री पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर होना चाहती है। वह पुरुष की गुलामी सहना नहीं चाहती।

भारतीय संस्कृति में ऐसा कहा जाता है कि छोटे बच्चे पर जो संस्कार होते हैं वह उसके माता-पिता द्वारा प्राप्त होते हैं। परंतु आज इस आधुनिक युग में दोनों ही पति-पत्नी कामकाज के लिए जाते है और अपने जन्में छोटे बच्चे को किसी नौकरानी या अपने घर के बुजुर्गों के हाथ सौंपकर चले जाते हैं। 'तकिया' कहानी में कामकाजी पति-पत्नी विनोद और शिप्रा के नौ महीने के दुधमुंहे बच्चे का दु:खद दास्तान का वर्णन करती है। दोनों नौकरी करने के कारण एक आया रखी थी मारग्रेट। वह बच्चे की अच्छी देखभाल करती थी। पर वह अचानक काम छोड़ चली गई। दोनों परेशान थे और तो और बच्चे का रोना रूक नहीं रहा था वह कम सोता था पर अधिक रोता था। डॉक्टर के बताने पर वह कुछ निदान ना कर पाया वह बच्चे का कमरा एवं बिस्तर देखने आया-"डॉक्टर मेहता बच्चे के ऊपर से हाथ हटा उसकी ओर मुड़े-'बच्चे को कुछ नहीं हुआ, मिसेज मिश्रा। उसे केवल मां की छाती की गरमाहट चाहिए। काम में उलझी आया मारग्रेट ने उसे तकिये की गरमाहट सौंपी। बिना तकिये के बच्चा भला कैसे सो सकता हैं ?"[203] माता-पिता नौकरी में जाने के कारण बच्चे के आदतों से अनभिज्ञ रहते हैं और बच्चों को जिनकी आदत बन जाती है उनसे भी वह बेखबर होते है। एक प्रकार से देखा जाए तो आज के माता-पिता अपने नौकरी के कारण अपने बच्चे का बचपन देखने से वंचित होते हैं।

कभी-कभी इसके कारण बच्चे माता-पिता से दूर हो जाते हैं।

3.3.2.7 नारी शोषण :

सदियों से नारी को पुरुष संपत्ति ही माना जाता है। मध्यकाल में तो उसकी अवस्था दयनीय हो गई थी। उसे एक भोग वस्तु माना जाता था। उसकी परिस्थिति में आज भी बदलाव नहीं आया है। चित्रा जी ने मानवीय जीवन की पीड़ा को व्यक्त किया है। विशेषकर स्त्री के प्रति उनकी संवेदना कहानियों में ज्यादा मुखर होती है।

नारी शोषण वर्तमान में भी जारी है। आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक, मानसिक सभी रुपों में नारी का शोषण किया जाता है। समाज में मौजूद ऐसे पुरुष वर्ग के बारे में लेखिका कहती है जो अपनी पत्नी को अपनी अर्धांगिनी न मानकर उसे अपनी दासी मानता हो। पति के दासत्व को धिक्कारते हुए अगर पत्नी कहीं पर काम पर लगती है तो उसके रास्ते में रुकावट लाते हैं। कामकाजी महिलाओं के बारे में विश्वरूप श्रीवास्तव का कहना है,“रोजगार के हर क्षेत्र में महिलाएँ पुरुषों का वर्चस्व तोड़ रही हैं। खासकर व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त महिलाओं के काम का दायरा बहुत बड़ा है। लेकिन कामयाबी के बावजूद परिवार से सहयोग उन्हें मिलना चाहिए वह नहीं मिल रहा है।”[204] ‘बावजूद इसके’ कहानी में प्रीति शादीशुदा होने की बात छिपाकर गोल्डन कॉंटीनेंटल में रिसेप्शनिस्ट की नौकरी हासिल की थी। पर उसका पूर्व पति यह भेद खोलता है ताकि उसकी नौकरी चली जाए और वह गिडगिडाते हुए उसके पास लौटे। मैनेजर भी इसे भुनाने हेतु उसकी मजबूरी का लाभ उठाने हेतु उसे गेस्ट को एंटरटेन करने का जॉब ऑफर करता है- “आई मीन, तुम गेस्ट्स को एंटरटेन करना पसंद करोगी ? थिंक ओवर दिस ! आज की मॉड लड़कियां इसे बेजा नहीं समझतीं, यू नो बेटर…बेटर...अरेबियन गेस्ट्स आर वेरी रिच…फॉर कंपनी सेक…वे मनचाहा पे करते हैं…बट, शर्त यह है कि किसी को भनक नहीं लगनी चाहिए, न मैं लगने देता हूं। …वाक्यों को चबा-चबाकर उगलते हुए द्विवेदी लगातार उसके चेहरे पर नजर गड़ाए था।”[205] यहाँ पर वह हार नहीं मानती वह सोचती है हर जगह द्विवेदी जैसे व्यक्ति रहेंगे तो उनके लिए अपना काम क्यों गवाएं इसलिए वह नौकरी करने का निर्णय लेती है।

आज देखते हैं तो समस्त विश्व में नौकरी करने वाली स्त्री के साथ ज्यादा शोषण होता है। इन स्त्रियों को सेक्स के बदले फायदा देने का वादा कर शोषण किया जाता है। जिसके कारण वह शारीरिक और मानव तनाव से गुजरती है। कभी शिकायत करने पर अपमान, धमकी तो कभी उनको काम से भी हाथ धोना पड़ता

है। इसलिए विवश होकर नौकरी करना उनकी मजबूरी बन जाती है।

'लाक्षागृह' कहानी में सुनिता एक शिक्षित तथा कामकाजी नारी है। वह दिखने में बदसूरत होती है इसलिए उसका विवाह कहीं पर भी तय नहीं होता। उसी के दफ्तर में सिन्हा सुनिता को शादी का वादा करके मलाड में एक थ्री रूम फ्लैट ओनरशिप पर बुक कर लेता है पैसे सुन्नी से वसूलता है। फिर भी धीरे-धिरे उसका आर्थिक शोषण करता है -"कैसे वह बर्फीले शिलाखंड की ढलान पर आत्मघाती गति से दौड़ रही थी। वजह शायद या पूरी तरह से पुरुष सहवास से अस्पर्शित, बावली हो उठी प्रौढ़ता थी, जो अपने ही कगार ढह, ज्वार से उतराई विध्वंसकारी मोड़ मुड़ने लगी। मकान के पिछे उसने अपना बैंक-बैलेंस खत्म कर दिया...मां की कुनमुनाहट के बावजूद -'मकान तेरे नाम लेने में हर्ज ? तू मुझे एक छोटा-सा कारण दे ?'"[206] वह उसके इस झूठे प्यार से अनभिज्ञ थी और उसके साथ शादी के सुनहरे सपने देखती है। दोनों के भविष्य के लिए अपनी जीवन की जमापूँजि उसके लिए स्वाहा कर देती है।

आज की नारी "आर्थिक दृष्टि से यद्यपि आत्मनिर्भर हुई है। फिर भी परिवार से वह पूरी तरह से बंधी हुई है। कामकाज की शुरूआत वह समय बीतने अथवा अपनी शिक्षागत योग्यता के सामाजिक उपयोग के उद्देश्य से करती हैं किन्तु धीरे-धीरे उसकी नौकरी परिवार की आवश्यकता बन जाती है। ऐसी स्थिति में जो लड़कियाँ विवाह नहीं कर पाती मानसिक घुटन, कुंठा और आक्रामक, असुरक्षा, विद्रोह आदि भावनाओं का शिकार हो जाती हैं। कार्यक्षेत्र में प्रतियोगी, सहयोगी जैसे पुरूषों के व्यंग्य, उपहास एवं बदनाम व्यवहार की चुनौतियों का समाना करना पड़ती है।"[207]

पति के मृत्यु के बाद उसके संपत्ति पर सिर्फ पत्नी का ही अधिकार होता है। ससुरावालों की गिद्ध नजर उस पैसों पर रहती है और उन पैसों के लिए वे अपने बहुओं का शोषण करते हैं। चित्रा जी की 'अभी भी' और 'लकडबग्घा' कहानियों संसुरालवालों द्वारा शोषण का दृष्यव्य उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

स्त्री कितनी ही प्रगति करें पर परिवारवाले उसे एक गुलाम की तरह उसके साथ व्यवहार करते हैं। 'अभी भी' कहानी में मृत पायलट पुत्र मुकेश की पत्नी का देवर, सास, पति सभी आर्थिक शोषण तो करते ही है पैसों के लिए देवर अनिल उसके साथ मारपीट भी करता है-"अपने बाप के घर से लाई थी ! देगी कैसे नहीं कुतिया...'क्रोध से कांपते हुए अनिल ने उसे कंधे से पकड़कर अपनी ओर खींचा और पूरी शक्ति से दीवार पर पटक दिया। फिर उठाया और फुटबाल की तरह घुटनों पर जोर-जोर से प्रहार करने लगा। शिल्पा की दर्दनाक

चीख कमरे की सीमा फलांगती पूरे घर और घर के आसपास के फ्लैटों के भी दरवाजे खटखटा आई।…हाथ-पांव पटक-पटककर चीखें भरता हुआ रोने लगा।"[208] स्त्री शोषण दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। सदियों से चले आ रहें समाज में स्त्री की स्वतंत्रता देखी नहीं जा रही है इस कारण उसपर लांचन, अविश्वास, संदेहभरी नजर रखी जाती है और उसपर जानवरों से भी बदतर सलूक किया जाता है। मायकेवालों को अपनी पीड़ा न पता चले इसलिए वह मूक रूप में सारी यातनाएँ झेलती है। वेदप्रकाश अमिताभ के अनुसार,"कहानी लेखिका ने जहाँ-तहाँ दिखाया हैं कि नारी के उत्पीड़न में स्वयं नारी का योगदान कम नहीं है। उपर से प्रगतिशील और उदार लगनेवाले तत्वों के वास्तविक चरित्रों का उद्घाटन नारी केंद्रित कहानियों की एक अन्य विशेषता है।"[209]

मनुष्य स्वार्थ सिद्धि के लिए किसी भी हद तक चला जाता है। अगर भाई की विधवा हो तो उसपर वे जोर-जबरदस्ती भी करने से नहीं चुकते और सारी जायदाद अपने नाम करते हैं। 'लकडबग्घा' कहानी में लंबरदार पछांहवाली की बच्ची को पाँचवीं कक्षा से आगे पढ़ाने से मना करता है। जब पछांहवाली अलग रहने की बात करती है तो वह मन ही मन हिसाब लगाता है कि कितनी संपत्ति उसे देनी पड़ेगी-"रात भर लंबरदार अपने निवाड़ के पलंग पर बेचैनी से करवटें भरते रहे। अलगा-अलगी के खयाल ने सिर उठाया है तो इतनी आसानी से बात नहीं दब पाएगी...अलगा-अलगी का मतलब है पूरे अट्ठारह बीघे के चक से हाथ धोना। अट्ठारह बीघा उनके हाथ से निकल गया तो आखिर क्या और कितना बचेगा उनके पास ? चार बेटे हैं उनके और दो बेटियां।"[210] पछाहवाली की एक ही बेटी और वह भी शहर में जाकर शिक्षा प्राप्त करेगी और बटवारे के आधें हिस्से को सभी उनके छह बच्चों में को बाँटना पड़ेगा इस डर से लंबरदार लकडबग्धे का सहारा लेकर पछाहवाली को मौत के घाट उतारता है।

3.3.2.8 दहेज प्रथा :

दहेज प्रथा मानव जाति को लगा कलंक है। कन्याभक्ष वाले अपने कलेजे का टुकड़ा, अपनी प्यारी पुत्री को तो वर पक्ष को देने पर असंतुष्ट वर पक्ष वाले दहेज की मांग करते हैं और जिंदगी भर उनका शोषण करते हैं। 'पेशा'कहानी में नरेंद्र के कक्कू उसे ससुर से दहेज में फ्लैट की मांग करने कहते है-"ब्याह में समधी ने कबूला था कि गौने पर वे लड़के को देंगे। और अगर उसे जावा की इच्छा न रही तो निस्संकोच नकदी गिन देंगे।…हम चाहते हैं कि तुम अपने ससुर को वापसी डाक से एक चिट्ठी लिखो, जिसमें यह स्पष्ट कर दो कि तुम्हें न फटफटी चाहिए, न नकदी। इस वक्त तुम्हें जरूरत है एक अदद फ्लैट की।…आखिर कमी किस बात की है

उन्हें जो मांग अखरे !"[211]

पैसों की लालच मनुष्य पतन की ओर ले जाती है। ससुरालवाले बहु को पैसा ऐंठने का एक जरिया मानते है। उसीके माध्यम से अपनी सारी इच्छा और आकांक्षाएं पूरी करते है। अगर वह नहीं मानती तो उसपर घरेलू हिंसा करने से भी नहीं हिचकते। 'अभी भी' कहानी में शिल्पा के पति की मृत्यु होता है और उसके सारे पैसे शिल्पा को मिलते है। सांस षडयंत्र के साथ उसका विवाह अपने दूसरे बेटे से करती है। पर उसका भाई और सांस पैसे के लिए उसे तरसाते थे। जब वह पैसे देने से इनकार करती है तो उसे बेरहमी से मारा जाता, उसके अस्पताल में चार टाँकें पड़ते हैं। पुलिस अपने बेटे को गिरफ्तार ना करें इसलिए माँ बयान बदलने के लिए कहती है। तब वह आत्मसम्मान बचाने के लिए तथा इस मोह से मुक्त होने के लिए पिता के समक्ष पुलिस को बयान देती है, "पड़ोसियों ने गलत इत्तला नहीं दी बाबूजी ! मुझे जीवित देखना चाहते है तो यहाँ से फौरन निकाल ले चलिए... अभी भी वक्त हैं...अभी भी..."[212] यहाँ पर पढ़ी-लिखी बहू पर ससूराल द्वारा अत्याचार का घिनौना रूप लेखिकाने प्रस्तुत किया है। भारत भारद्वाज के अनुसार "इस कहानी की शिल्पा मूलत:विद्रोही प्रकृति की नारी नहीं है। पारिवारिक प्रतिष्ठा के नाम पर सास के कहने पर अपने पति की मृत्यु के बाद अपने देवर से उसने पुर्न:विवाह भी किया। लेकिन जब उसे पता चला कि यह सारा नाटक उसके पैसों के लिए किया गया था तब वह विद्रोह कर उठी है।"[213]

3.3.2.9 दांपत्य विषयक समस्या :

भारतीय संस्कृति में विवाह को बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है। विवाह से दो इंसान ही नहीं बल्कि दो परिवार एक हो जाते हैं। परिवार के सुख : दु:ख में शामिल होना ही दांपत्य जीवन कहा जाता है।

सुखी परिवार की कल्पना सुखी दांपत्य जीवन से ही प्रारंभ होती है। दांपत्य जीवन की परेशानियां समस्त परिवार को दु:खी करती है। चित्राजी ने अपनी कहानियों के माध्यम से दांपत्य जीवन पर प्रकाश डाला है। युगों से चला आया पितृसत्तात्मक व्यवस्था समाज की ऐसी व्यवस्था है जहाँ पुरुष अपने आपको श्रेष्ठ मानता है और स्त्री को गौण मानता है। उसकी इच्छा, आकांक्षा के बारे में न सोचकर उसपर जुल्म ढाएँ जाते हैं और स्त्री उसे मुक रूप में स्वीकारती है। 'दशरथ का वनवास' कहानी में रमानाथ को अपने बचपन की घटना याद आती है। जब वह देर तक सो रहा था तो उसके पिता ने खटिया उलट दी थी। वह आंगन के फर्श पर धड़ाम से गिर पड़ा था। माँ के बीच में बोलने पर उसे भी बेंत से पीटा था-"धूप चढ़ आई तो क्या ? कोई बच्चों के साथ

इतना बर्बर सुलूक करता है ! मनौतियों से तो औलाद का सुख पाया है।...बाबूजी आपा खो बैठे। उसके ही क्या, सबके सामने उन्होंने मां को बेंत से पीटा। वह चीखता-चिंघाड़ता रहा, पर किसी की मजाल जो बाबूजी का हाथ पकड़ लेता ! बड़ी अम्मा बचाने आगे बढ़ी भी तो बाबूजी ने उन्हें वहीं डपट दिया,'आगे मत बढ़ना, भौजी।"[214] इस घटना के कारण रमानाथ के मन में अपने पिता के प्रति वितृष्णा का भाव भर गया।

परिवार एक अपनत्व का धागा पिरोता है। अगर उसमें पर स्त्री का प्रवेश होता है वह परिवार क्लेश से भरा रहता है। उसमें असंतोष, पीड़ा, संदेह का वातावरण रहता है। 'त्रिशंकु' कहानी में बंडू के पिता ने रखेल रखी है एवं वे अकसर शराब पीकर माँ को पीटते है। उनका दांपत्य जीवन नर्क के समान है जिसकी आग में बेटा-बेटी जल रहे है-"रांड़ के साथ ?' मां क्या बोल रही है ! उसके माथे से जैसे अचानक गरम सलाख छू गई।...तमतमाया बाप बरतनों में से झुककर लोटा उठाता दिखा...उसकी ओर लोटा छीनने झपटे, तब तक तो मां के सिर से खून का फव्वारा फूट पड़ा। मां 'देवाऽऽ' कहकर पुकारती फर्श पर ढेर हो गई और तट पर पड़ी मछली-सी तड़फड़ाने लगी।"[215]

विवाह पति-पत्नी को जोड़कर रखता है। परंतु आधुनिक बोध के कारण इसमें बदलाव आ गए है। आज नारी अपने पति को पति परमेश्वर नहीं मानती ना ही उसके लिए उसका कोई महत्व होता है। वह स्व के बारे में सोचती है। पुरुष के बिना वह स्वतंत्र जीवन जीना पसंद करती है। वह एक प्रकार से स्वार्थी बन गई है।

अपने दुखी दाम्पत्य जीवन की कहानी 'अपनी वापसी' में मेजर शकुन को सुनाता है जिसे सुनकर वह हैरान हो जाती है कि मेजर की पत्नी के कारण मेजर परेशान है, मेरी भी कहनी ऐसी ही है तो मुझे बदलना आवश्यक है मेजर कहते है- "लगता है, उसने जिंदगी को सोचना अधिक शुरू कर दिया, जीना कम। जीने की कृपणता में वह मरती जा रही। पता नहीं, कैसे पहलेवाली सुनीता अब संशय, विरक्ति, उपेक्षा और स्वार्थ की प्रतिमूर्ती बन गई। बहुत निकालने की कोशिश करता हूं, वह अपने खोल से बाहर आना ही नहीं चाहती। अपने में सिमटकर वह अपने से बाहर कुछ भी नहीं सोच पाती, प्रौढ़ता को उसने हताशा की खोह बना लिया है...उसने अपने चारों ओर जड़ता की दीवार खड़ी कर ली है, मैं इस जड़ता से ऊब चूका हूं।"[216]

दांपत्य जीवन प्रेम और साथ के दो चक्के है। एक के बिना दूसरा अधूरा है। साथ चलने के लिए दोनों में समर्पित भावना होना आवश्यक है। परंतु थोड़े पति अपने स्त्री अगर पढ़ी लिखी है तो उसे घर में रखते हैं। उसको वह आजादी नहीं देते जिसकी वह हकदार है। 'इस हमाम में' कहानी में सोमेश एवं दिवा की दांपत्य

जीवन की कडुवाहट लेखिका ने चित्रित की है। सोमेश स्वयं काम करता है। पर दिवा को अकेली घर पर रहने मजबूर करता है। बच्चे को होस्टल में रखा है। दिवा एकाकीपन से ऊब चुकी है। वह एक पाठशाला में आवेदन पत्र देती है। उसे अध्यापिका के पद पर आने कहा जाता है पर सोमेश सुनकर ही तांडव प्रारंभ कर देता है- "समय ही काटना है न! लिख-पढ़कर भी तो समय गुजारा जा सकता है।' 'कितना' 'औरतें और भी बहुत-से काम घरों में करती हैं। तुम उनसे निराली हो ?' 'निराली नहीं हूं, मगर वे बच्चे भी तो पालती हैं।' 'पता नहीं हराम…क्या चाहती है ? पांच लाख का फ्लैट है, बच्चा आराम से सिंधिया में पढ़ रहा है, ख्वाहमख्वाह आंसू टपकाने की आदत पड़ गई है।…मल्होत्रावाला अनुंबंध आज तय होने से रहा"[217] डॉ. पुष्पपाल सिंह लिखते है, "दांपत्य संबंधों की दरार समकालीन जीवन का एक कटू सत्य है। विविध प्रकार और कारणों से आद पति-पत्नी के बीच दूरियां आ गई हैं।"[218]

इसी कहानी में दिवा के साथ-साथ कचरेवाली अंजा की कहानी भी चित्रित की गई है जिसने पहला पति छोड़ दिया है। जिस तरह देखा जाता है कि उच्च वर्गीय एवं निम्न वर्गीय लोगों पर सामाजिक बंधनों का प्रभाव कम ही रहता है। उच्च वर्गीय के पास सब कुछ है तो वह मनमानी करता है ,निम्नवर्गीय के पास कुछ भी नहीं तो वह भी मनमानी करता है। सभी ओर पीसा जाता है बेचारा मध्यम वर्गीय। कुछ दिनों बाद अंजा की जगह एक बूढ़ा आया कचरा लेने। दिवा के पूछने पर बताया-"होना क्या था, बीबाजी। रात मियां-बीवी में खूब झगड़ा हुआ। मरदजात, लुगाई की सहन नहीं हुई, हाथ उठ गया सो उठ गया। अंजा ने ताव में कुछ खा-पी लिया। वाडिया अस्पताल में पड़ी है। अभी तक होश नहीं आया है। मुझे उसके मरद ने बदले में काम संभालने के लिए भेजा है।"[219] कभी-कभी आर्थिक विपदा के कारण भी दांपत्य जीवन में तनाव पैदा होते है। निम्न वर्ग में इसका स्वरूप मारपीट से होता है तो माध्यवर्ग में मानसिक यातना। इस संदर्भ में चित्रा जी कहती है, "आदमी और जगह बदल लेने से जिन्दगी थोड़े ही बदल जाती है।"[220]

दांपत्य जीवन में छोटे-बड़े कारणों के खातिर झगड़े होते रहते हैं। अगर समय रहते उसे सुलझाया नहीं गया तो परिवार टूटने में देर नहीं रहती। 'एक काली एक सफेद' दुःखी परिवार की कहानी है। जिसमें अहंकार से युक्त कुहू की माँ हर बार झगड़ा खड़ा करती है और अपने पति को निर्दयाता से मारती-पिटती है। माँ-बाप के इस झगड़े में पांच-छह वर्षीय बालिका कुहू पीसती है। यहां माँ ही बाप को पिटती है एवं पत्नी के व्यवहार के कारण कमाऊं पति सब कुछ पत्नी के नाम कर घर छोड़ने को मजबूर हो जाता है-"इसी तरह झगड़े के दौरान मां

घर का दरवाजा खोल बदहवास-सी सीढ़ियों की ओर दौड़ी थीं। पापा उन्हें मनाते हुए घर के भीतर खींचने लगे कि पगलाई-हुई-सी मां ने छूटने की खातिर पापा के बाएं घुटने पर अचानक लात जड़ दी थी। चोट खाए पापा 'हाय!' करते हुए फर्श पर ढेर हो छटपटाने लगे थे।...एक्सरे रिपोर्ट से पता चला कि जोड़ की हड्डी अपनी जगह से खिसकी हुई है। तकरीबन डेढ़ महीने प्लास्टर चढ़ा रहा उनकी टांग पर।"[221]

3.3.2.10 सामाजिक रूढ़ियाँ

समाज की अपनी पारंपरिक मान्यताएँ होती है। जो पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पूर्वजों से आत्मसात करती है। समय परिवर्तन के साथ ही वर्षों से चली आ रही मान्यताएँ भी अनुपयोगी प्रतीत होती है तथा इसमें नये भी तत्व जुड़ने लगते हैं । इसी को रूढ़ि कहते है। यही समाज द्वारा प्राचीन काल से चली आ रही रूढ़ियाँ जो वर्तमान में पारिवारिक जीवन में विष घोलती, आज भी चल रही है। सच तो इन रूढ़ियों को छोड़ना चाहिए पर समाज के सम्मुख सभी कतराते हैं।

समाज कितना भी आधुनिक तथा शिक्षित हो परंतु अंतरजातीय विवाह या संबंध होने पर रिश्ते में अपने आप ही दूरियाँ पैदा होती हैं। 'रूना आ रही है' इस कहानी में विजातीय पुरुष से नीमा का संबंध है ऐसी चर्चा के कारण समाज में बदनाम होगी इसी भय से श्रीमंत की अध्यापिका माताजी ने रूना एवं श्रीमंत की सगाई तोड़ दी। श्रीमंत को भी अपना प्यार छोड़ झुकना पड़ा-"श्रीमंत कई बार उससे मिलने आए। वह उठकर कमरे से बाहर हो गई।...महेद्र भैया जब-तब श्रीमंत को आरोप-मुक्त करते आरोप-मुक्त करते रहते कि तीन छोटी बहनों को बिरादरी में सौंपना है, कि जिस घर की लड़की के बारे में चारों तरफ यह उड़ा हुआ है कि वह किसी मुस्लिम लड़के साथ सरेआम घूमती-फिरती है...यहां तक कि छिपकर ब्याह भी कर लिया है,...हालांकि श्रीमंत और मां के बीच बोलचाल भी बंद है, पर मां टस से मस नहीं हो रहीं। क्या करें वह ?"[222]

'इस हमाम में' इस कहानी में दिवा का पति पुरानी मान्यताएँ, रूढ़ियाँ एवं अंधविश्वास को मानने वाला आदमी है। इन बातों का ध्यान ना रखने पर वह पत्नी को डाटता ही नहीं बल्कि पिटता भी है। उसकी माँ भी इन बातों पर विश्वास रखती है-"उस वक्त अम्मा कुछ दिनों के लिए हमारे साथ थीं। मेरे प्रकृतिस्थ होते ही उन्होंने मुझे सोमेश के वहमी प्रकृति-पक्ष और उसकी प्रामाणिकता पर लंबा-चौड़ा भाषण दे डाला...सोच-विचारकर चलने की हमारी कुल-परंपरा है। हम बीस बीसुवाले कान्यकुबज्य जो ठहरे !' रूढ़ि और पाखंड के बवंडर में घिरा आहत मन क्षोभ और पीड़ा से छटपटा उठा था। भैया-भाभी के प्रति आक्रोश की उभरी चिनगारी शनै:शनै:

जवान आग की शक्ल अख्तियार करती जा रही थी।"[223] जिसे पढ़ी-लिखी दिवा सुखी परिवार का मुखौटा पहनकर जीवन जीती है इसके विपरीत कचरा उठानेवाली अंजा तीसरे मर्द के साथ अपनी जीवन निर्वाह कर रही है। डॉ. महेश्वर का इस संदर्भ में लिखते है,' पूँजीवादी सामंती समाज में औरत की स्थिति पर यह कहानी करारी चोट करती है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और बौद्धिक रूप से विकसित स्त्री पर भी उसका पति किस तरह हावी है और एक पुरुष के बदले दूसरे का साथ कर लेने से औरत की सामाजिक स्थिति या हैसियत में कोई परिवर्तन नहीं आता। इस सच्चाई को अनपढ़ नौकरानी अंजा अपनी पढ़ी-लिखी मालकिन दिवा की अपेक्षा ज्यदा शिद्दत से महसूस करती है।"[224]

हम अनेक रीति रिवाजों से बंधे हुए है। परिवार को समाज से जुड़े रहने के लिए उसकी रीति-रिवाजों को मानना आवश्यक होता है। मनुष्य समाज का अभिन्न अंग होने के कारण उसके लिए समाज के रीति-रिवाजों का पालन करना अनिवार्य हो जाता है। 'लेन' की महेंदरी को पुलिस थाने पूछताछ के लिए बुलाया जाता है। दत्तराम रिक्षा खींचता है। जब साब उसे पुछते है कि तेरे मरद को नशे-पानी की आदत है क्या? तो वह बताती है-"बीड़ी-तमाखू की मैं जाणू, पीणे-पाणे की लत णई। उस…ब्याह-शादी में बिरादरी का रिवाज है, तब मरजी ण मरजी पीणी पड़े ही है, तब तो जणाणियों को भी लेणी पड़े, मरद, सा'ब।" [225] लेखिकाने महेंदरी के द्वारा सामान्य जन की पीड़ा को स्वर दिया है, जो अपना मन मारकर अपने जीवन से समझौता करने पर विवश हो जाती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में सारे भारतीयों को समानता का अधिकार मिलना चाहिए इसका वर्णन किया गया है। परतु समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव युगों से चला आ रहा है। जो इनसानों को इनसान नहीं बल्कि जानवरों से भी बदतर उनके साथ व्यवहार करते हैं। 'बलि' कहानी में मंगली पुत्री के वर हेतु ठाकुर बलभद्र सिंह उतावले है उन्हें अकबरपुर रियासत से संबंध बनाने है। पंडित जी उनसे कहते है कि वर मंगली नहीं है -"उसी पर हमारा ध्यान केंद्रित है, यजमानश्री। भारी व्यवधान पड़ा है।' स्वामीजी जन्मपत्री पर दृष्टि गड़ाए, तने हुए-से झूले-'दुर्योग से आपकी बेटी मंगली है। सप्तम स्थान में वक्री मंगल बैठा हुआ है। परिणाम अनिष्टकारी होगा अर्थात पति-सौख्य में बाधादायक !"[226] कहानी में सामंतवाद की क्रूरता तथा अमानवीयता को प्रस्तुत किया है। ठाकुर भलभ्रद्र अंधश्रद्धा के कारण अपनी प्रतिष्ठा के लिए कुरुआ जैसे निम्नजाति के

किशोर से अपनी मांगलिक बेटी को विधवा योग आएगा इसलिए करूआ से उसकी शादी करता है और षडयंत्र से करूआ की हत्या करवाता है।

मुद्गलजी की कहानियाँ तत्कालीन सामाजिक जीवन की घटनाओं का सच्चा लेखा-झोखा प्रस्तुत करते हैं। अतः उनकी कहानियों में प्रामाणिकता दिखाई देती है। लेखिका के कहानियों में कल्पना की अपेक्षा यथार्थ का धरातल होने के कारण उसमें जीवंतता कुट-कुट कर समाई है। चित्रा जी के कहानियों में सामाजिक जीवन की सप्तरंगी छटाओं का इंद्रधनुष्य समाहित है । भक्तिकाल में जिस प्रकार तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' में मानव जीवन की समस्त संवेदनाओं को समेटा है, उसी तरह चित्राजी की कहानियों में भी मानव जीवन से संबंधित सभी घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। कहानीकार चित्राजी की कहानियाँ पति-पत्नि,मित्रता-शत्रुता, बेटा-बेटी, राजा-प्रजा, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, प्राकृतिक, विविध रिश्ते-नाते, यम-नियम, आदि समस्त वर्णनों की खान है। उनके कहानियों में कोई भी विषय अछूता नहीं है बल्कि समाज के हर टपके लोगों पर उन्होंने कहानियाँ लिखी है। डॉ. मधुरेश ने चित्राजी की कहानियों को, 'पारिवारिक जीवन की शोभायात्रा' कहा है।"[127]

इस तरह हम देखते हैं कि चित्राजी की विविध कहानियों द्वारा पारिवारिक जीवन की समस्याओं का व्यापक चित्रण हुआ हैं। उन्होंने समाज के सभी वर्गों एवं गांव-शहरों की कहानियों के विविध पात्रों द्वारा इन का चित्रण किया हैं।

निष्कर्ष :

चित्राजी की कहानियाँ पाठकों के समक्ष चलचित्र की तरह प्रस्तुत होती जाती है। जब पाठक एक बार इन कहानियों को पढ़ लेता है तो वह उससे इतना एकाकार हो जाता है कि पात्र में स्वयं को देखने लगता है। स्वयं को ही नायक या नायिका समझने लगता है।

अतः कहा जा सकता है कि चित्रा मुद्गल की कहानियों में जीवन के प्रत्येक पहलु पर प्रकाश डाला गया है। उनकी कहानियाँ जीवन यथार्थ को प्रस्तुत करती है। यथार्थ भरे जीवन और समाज का जीवंत वर्णन उनकी कहानियों में पाया जाता है। जीवन की कई संवेदनाओं पर चित्राजी ने विश्लेषित किया है। मुद्गल जी ने समकालीन कहानियों में मानव जीवन की समस्त संवेदनाओं को समेटने का उत्कृष्ट कार्य किया है जो

सराहनीय है। अतः हम कह सकते हैं कि चित्राजी ने अपने कहानी साहित्य में सभी संवेदनाओं को उचित स्थान दिया है ।

संदर्भ सूची

1. अमृतराय, मदान सं.इन्द्राथ. हिन्दी कहानी पहचान और परख. पृ.76
2. मुद्गल चित्रा . रूना आ रही है, आदि-अनादि-1. पृ.158
3. यादव डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.112
4. मुद्गल चित्रा.सफेद सेनारा, आदि-अनादि-1. पृ.53
5. मुद्गल चित्रा.वाइफ स्वैपी,आदि-अनादि-2. पृ.16
6. मिश्रा डॉ. अर्चना - चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में युग-चिन्तन,.पृ.96
7. मुद्गल चित्रा.सफेद सेनारा, आदि-अनादि 1. पृ.52
8. मुद्गल चित्रा.दुलहिन,आदि-अनादि-1. पृ.40
9. मुद्गल चित्रा. मोरचे पर, आदि-अनादि-2. पृ.63
10. बांदिवडेकर डॉ.चंद्रकांत. सारिका.16-30 अप्रैल, 1984. पृ. 71
11. मुद्गल चित्रा.स्टेपनी, आदि-अनादि-3. पृ.64
12. शुक्ल आचार्य रामचंद्र. चिन्तामणी-पहला भाग. पृ.27
13. मुद्गल चित्रा. सौदा,आदि-अनादि-2. पृ.233
14. मुद्गल चित्रा. नवभारत टाइम्स. 12 जून 1988
15. मुद्गल चित्रा. नीले चौखानेवाला कंबल, आदि-अनादि-3. पृ.191
16. मुद्गल चित्रा. भूख, आदि-अनादि-2. पृ.107
17. मुद्गल चित्रा. भूख,आदि- अनादि 2. पृ.108
18. थोरात डॉ. गोरक्ष. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन. पृ.73
19. शुक्ल आचार्य रामचंद्र. चिन्तामणि भाग 1. पृ.76
20. मुद्गल चित्रा. जिनावर, आदि-अनादि-3. पृ.39
21. तिवारी विश्वमोहन. वैचारिकी संकलन. सितंबर, 1997, पृ.71
22. थोरात डॉ. गोरक्ष. चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य का अनुशीलन. पृ.45
23. मुद्गल चित्रा. प्रेतयोनि,आदि-अनादि 3. पृ.109
24. मुद्गल चित्रा. शिनाख्त हो गई है, आदि-अनादि 1. पृ.246
25. मुद्गल चित्रा. गिल्टी रोजेस,आदि-अनादि 3. पृ.260
26. मुद्गल चित्रा. त्रिशंकु, आदि-अनादि-1. पृ.78
27. मुद्गल चित्रा. केंचुल,आदि-अनादि-1. पृ.57
28. मदान ब्रजेश्वर. दिनमान. 25 अगस्त 1987, पृ.81

29. मुद्गल चित्रा . केंचुल, आदि-अनादि-1. पृ.57
30. मुद्गल चित्रा . अग्निरेखा, आदि-अनादि-1. पृ. 267
31. मुद्गल चित्रा. मोरचे पर, आदि-अनादि -2. पृ.68
32. शुक्ल रामचंद्र. चिन्तामणि भाग 1. पृ.63
33. मुद्गल चित्रा. प्रमोशन, आदि-अनादि-2. पृ.262
34. मुद्गल चित्रा. प्रमोशन, वर्तमान साहित्य. जून-1987
35. मुद्गल चित्रा. वाइफ स्वैपी, आदि-अनादि-2. पृ.17
36. मुद्गल चित्रा . अपनी वापसी, आदि-अनादि-1. पृ.163-164
37. बांदिवडेकर डॉ. चंद्रकात. सारिका. 16-30 अप्रैल 1984. पृ.70
38. मुद्गल चित्रा . पेशा, आदि-अनादि-1. पृ.222
39. मुद्गल चित्रा. ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.26
40. मुद्गल चित्रा. दुलहिन, आदि-अनादि-1. पृ.33
41. शुक्ल आचार्य रामचंद्र. चिंतामणि भाग 1. पृ.56
42. मुद्गल चित्रा. इस हमाम में, आदि-अनादि-2. पृ. 57
43. थोरात डॉ. गोरक्ष.चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन. पृ. 82
44. मुद्गल चित्रा. इस हमाम में, आदि-अनादि-2. पृ. 59
45. मुद्गल चित्रा .दरमियान, आदि-अनादि-2. पृ. 174
46. सिंह पुष्पमाल. समकालीन कहानी रचना मुद्रा
47. मुद्गल चित्रा. सौदा, आदि-अनादि-2. पृ.233
48. मुद्गल चित्रा . सौदा, आदि-अनादि-2. पृ.235
49. शर्मा लता .हंस, सितंबर 2003. पृ 91
50. मुद्गल चित्रा. लिफाफा, आदि-अनादि-2. पृ.21
51. मुद्गल चित्रा. बावजूद इसके, आदि-अनादि-1. पृ.115
52. खोत डॉ.सिद्राम कृष्णा. शिवानी के उपन्यासों में समाज. पृ. 228
53. मुद्गल चित्रा. बावजूद इसके, आदि-अनादि-1. पृ.116
54. मुद्गल चित्रा. रूना आ रही है, आदि-अनादि-1. पृ.142
55. मुद्गल चित्रा. अपनी वापसी, आदि-अनादि-1.पृ.160
56. मुद्गल चित्रा. बंद, आदि-अनादि-2. पृ.42
57. शुक्ल आचार्य रामचंद्र . चिन्तामणि भाग 1. पृ.41
58. झाल्टे डॉ. दंगल. साठोत्तरी हिन्दी कहानी का परिप्रेक्ष्य. पृ.55
59. मुद्गल चित्रा. ब्लेड, आदि-अनादि-. पृ.225
60. वही. पृ.228
61. मुद्गल चित्रा .बेईमान, आदि-अनादि 3. पृ.75
62. मुद्गल चित्रा . मुआवजा, आदि-अनादि-2. पृ 252

63. थोरात डॉ. गोरक्ष .चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन. पृ.65
64. मुद्गल चित्रा. लाक्षागृह, आदि-अनादि 1. पृ. 239
65. सिंह पुष्पमाल. समकालीन कहानी रचना मुद्रा. पृ.125
66. मुद्गल चित्रा .नीले चौखानेवाला कंबल, आदि-अनादि-3. पृ.191
67. थोरात डॉ. गोरक्ष. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन. पृ.63
68. मुद्गल चित्रा. नीले चौखनेवाला कंबल, आदि-अनादि-2. पृ.193
69. मुद्गल चित्रा. चेहरे, आदि-अनादि-2. पृ.110
70. भुतड़ा डॉ. घनश्याम दास. समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप. पृ.95
71. मुद्गल चित्रा. जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं, आदि-अनादि-2. पृ.156
72. मुद्गल चित्रा. सौदा, आदि-अनादि-2. पृ. 231
73. अमिताभ वेद प्रकाश. समिक्षा. जुलाई-सितंबर, 1993. पृ.22
74. मुद्गल चित्रा. ब्लेड, आदि-अनादि-2. पृ.223
75. बांदिवडेकर चंद्रकांता. सारिका. 16-30 अप्रैल 1984, पृ.70
76. मुद्गल चित्रा. मुआवजा, आदि-अनादि-2. पृ.253
77. शुक्ल आचार्य रामचंद्र. चिन्तामणि भाग 1. पृ. 72
78. मुद्गल चित्रा. बावजूद इसके, आदि-अनादि-1. पृ.118
79. मुद्गल चित्रा. ब्लेड, आदि-अनादि-2. पृ.227
80. वनजा, के. चित्रा मुद्गल एक मूल्यांकन. पृ.139
81. मुद्गल चित्रा. सौदा, आदि-अनादि-2. पृ.230
82. मुद्गल चित्रा. गेंदा, आदि-अनादि-2. पृ.235
83. यादव डॉ.उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.12
84. मुद्गल चित्रा. एंटीक पीस, आदि-अनादि-2. पृ.211
85. वही. पृ.215
86. मुद्गल चित्रा. जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं, आदि-अनादि-2. पृ.164
87. वही. पृ.166
88. वही. पृ.168
89. अमिताभ वेदप्रकाश. समीक्षा. जुलाई-सितंबर 1993. पृ.32
90. मुद्गल चित्रा. दशरथ का वनवास, आदि-अनादि भाग 1. पृ.19
91. मुद्गल चित्रा. ट्रेन छूटने तक, आदि-अनादि-1. पृ. 43
92. मुद्गल चित्रा. सफेद सेनारा, आदि-अनादि-1. पृ.53
93. मुद्गल चित्रा. अढ़ाई गज ओढ़नी, आदि-अनादि-3. पृ.161
94. मुद्गल चित्रा. नीले चौखानेवाला कंबल, आदि-अनादि-3. पृ.199
95. वर्मा महादेवी .मेरा परिवार. पृ.6
96. मुद्गल चित्रा .जिनावर, आदि-अनादि-3. पृ. 41
97. तिवारी विश्वमोहन. वैचारिक संकलन. सितंबर 1997. पृ.71

98. मुद्गल चित्रा. जिनावर, आदि-अनादि-3. पृ.52
99. शर्मा जानकीप्रसाद. समकालीन भारतीय साहित्य. मई-जून 1997, पृ.156
100. मुद्गल चित्रा. जंगल, आदि-अनादि-3. पृ.249
101. वही. पृ.250
102. मुद्गल चित्रा. दशरथ का वनवास, आदि-अनादि-1. पृ.23
103. मुद्गल चित्रा .त्रिशंकु, आदि-अनादि 1. पृ.92
104. मुद्गल चित्रा . बेईमान, आदि-अनादि-3. पृ.68
105. वही. पृ.75
106. मुद्गल चित्रा. एक काली, एक सफेद, आदि-अनादि-3. पृ.76
107. मुद्गल चित्रा. नतीजा,आदि- अनादि-3. पृ135
108. मुद्गल चित्रा. शिनाख्त हो गई, आदि-अनादि-1. पृ.254
109. मुद्गल चित्रा. मोरचे पर, आदि-अनादि-2. पृ.63-64
110. मुद्गल चित्रा. दरमियान, आदि-अनादि-2. पृ.173
111. मुद्गल चित्रा .जरिया,आदि-अनादि-2. पृ.195-196
112. मुद्गल चित्रा . रूना आ रही है, आदि-अनादि-1. पृ 155
113. मुद्गल चित्रा . केंचुल, आदि-अनादि-1. पृ 71
114. मुद्गल चित्रा . त्रिशंकु, आदि-अनादि-1. पृ.84
115. मुद्गल चित्रा . लकड़बग्घा, आदि-अनादि-3. पृ.27
116. वही. पृ.31-32
117. श्रीवास्तव ललितेश्वर और रविवार्ती नंद किशोर त्रिखा - नवभारत टाइम्स नई दिल्ली 10 अगस्त 1980 में प्रकाशित 'प्रजातंत्र' में विरोध की भूमिका' नामक लेख, पृ.1
118. मुद्गल चित्रा. लिफाफा,आदि-अनादि-2. पृ.32,33
119. त्रिपाठी डॉ. नरेंद्र नाथ. साठोत्तर हिन्दी नाटकों में स्त्री-पुरुष संबंध. पृ.105
120. मुद्गल चित्रा. बंद, आदि-अनादि-2. पृ.37
121. मुद्गल चित्रा. जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं, आदि-अनादि-2. पृ.163
122. मुद्गल चित्रा . जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं, आदि-अनादि-2. पृ.168
123. मुद्गल चित्रा . नतीजा, आदि-अनादि-3. पृ.132,133
124. मुद्गल चित्रा . लपटें,आदि-अनादि-3. पृ.178
125. एन.पी.गीता. चित्रा मुद्गल का कथा-साहित्य. पृ.156
126. मुद्गल चित्रा. चेहरे, आदि-अनादि-2. पृ.116
127. भूतड़ा डॉ. घनश्यामदास. समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप. पृ 195
128. मुद्गल चित्रा. जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं, आदि-अनादि-2. पृ.169
129. पानेरी डॉ.हेमेन्द्र कुमार. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास-मूल्य संक्रमण. पृ.204
130. अरोडा डॉ. ज्ञानमती . समकालीन हिन्दी कहानी :यथार्थ के विविध आयाम. पृ.106

131. मुद्गल चित्रा. मामला आगे बढ़ेगा अभी, आदि-अनादि-1. पृ.137
132. बलराम. समकालीन हिन्दी कहानी. पृ.133
133. कालिया ममता. नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ महिला कथाकार. पृ. 140
134. मुद्गल चित्रा. पाठ, आदि-अनादि-3. पृ.231
135. मुद्गल चित्रा. बलि, आदि-अनादि-3. पृ.212
136. मुद्गल चित्रा. इस हमाम में, आदि-अनादि-2. पृ.53,54
137. मुद्गल चित्रा. रूना आ रही है, आदि-अनादि-1. पृ.155
138. मुद्गल चित्रा. बाघ, आदि-अनादि-3. पृ.120
139. वही. पृ.121
140. मुद्गल चित्रा . लपटें, आदि-अनादि-3. पृ.175
141. मुद्गल चित्रा . दशरथ का वनवास, आदि-अनादि-1. पृ.17
142. मुद्गल चित्रा . शिनाख्त हो गई, आदि-अनादि-1. पृ.243
143. मुद्गल चित्रा . शिनाख्त हो गई, आदि-अनादि-1. पृ. 251
144. मुद्गल चित्रा . अग्निरेखा, आदि-अनादि-1. पृ.260
145. मुद्गल चित्रा . इस हमाम में, आदि-अनादि-2. पृ.51
146. मुद्गल चित्रा . इस हमाम में, आदि-अनादि-2. पृ.53
147. मुद्गल चित्रा . गर्दी, आदि-अनादि-2. पृ.82)
148. वही. पृ.92
149. मुद्गल चित्रा . मुआवजा, आदि-अनादि-2. पृ.250
150. मुद्गल चित्रा . अग्निरेखा, आदि-अनादि-1. पृ. 258
151. मुद्गल चित्रा . लाक्षागृह, आदि-अनादि-1. पृ.241
152. मुद्गल चित्रा . शून्य, आदि-अनादि-1. पृ. 200
153. मुद्गल चित्रा . रूना आ रही है, आदि-अनादि-1. पृ.156
154. मुद्गल चित्रा . मामला आगे बढ़ेगा अभी, आदि-अनादि-1. पृ.137
155. मुद्गल चित्रा . पाली का आदमी, आदि-अनादि-1. पृ.102
156. मुद्गल चित्रा . त्रिशंकु, आदि-अनादि 2. पृ.92
157. मुद्गल चित्रा . अभी भी,आदि-अनादि 2. पृ.14
158. वही. पृ.14-15
159. मुद्गल चित्रा . लकड़बग्घा,आदि- अनादि-3. पृ.27
160. मुद्गल चित्रा. जिनावर, आदि अनादि-3. पृ.44
161. मुद्गल चित्रा . स्टेपनी, आदि अनादि-3. पृ-62
162. मुद्गल चित्रा . एक काली-एक सफेद, आदि-अनादि-3. पृ.81
163. मुद्गल चित्रा . नतीजा, आदि- अनादि-3. पृ.132

164. मुद्गल चित्रा . नीले चौखानेवाला कंबल, आदि-अनादि-3. पृ. 192-193
165. मुद्गल चित्रा . भूख, आदि-अनादि-2. पृ.107-108
166. मुद्गल चित्रा . लेन, आदि अनादि-2. पृ.152
167. मुद्गल चित्रा . जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं, आदि-अनादि-2. पृ.168
168. शनवरे डॉ. कविता. मोहन राकेश और उनका साहित्य. पृ.72
169. विरेंद्रा डॉ. इन्दु . साठोत्तरी कहानी में परिवार. पृ.18
170. वही
171. मुद्गल चित्रा. सुख, आदि-अनादि-3. पृ.139
172. मुद्गल चित्रा. गेंद, आदि-अनादि-3. पृ.217
173. वही
174. मुद्गल चित्रा . तकिया, आदि-अनादि-3. पृ.241
175. मुद्गल चित्रा . बावजूद इसके, आदि-अनादि- 1. पृ.126
176. वारद डॉ. विजया. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएँ. पृ.88
177. मुद्गल चित्रा. मामला आगे बढ़ेगा अभी, आदि-अनादि-1. पृ.136
178. मुद्गल चित्रा. अपनी वापसी, आदि-अनादि-1. पृ.160
179. मुद्गल चित्रा. सफेद सेनारा, आदि-अनादि-1. पृ.50
180. मुद्गल चित्रा. पाली का आदमी, आदि-अनादि-1. पृ.101
181. मुद्गल चित्रा. अभी भी, आदि-अनादि-3. पृ.21
182. मुद्गल चित्रा . प्रेतयोनि, आदि-अनादि-3. पृ.96
183. मुद्गल चित्रा . केंचुल, आदि-अनादि -1. पृ.67
184. मुद्गल चित्रा . लिफाफा, आदि-अनादि-2. पृ.29
185. मुद्गल चित्रा . गर्दी, आदि-अनादि-2. पृ.80
186. मुद्गल चित्रा . अभी भी,आदि-अनादि-3. पृ. 17
187. मुद्गल चित्रा . स्टेपनी, आदि-अनादि-3. पृ 57
188. थोरात डॉ.गोरक्ष. चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य का अनुशीलन. पृ.62
189. मुद्गल चित्रा. स्टेपनी, आदि-अनादि-3. पृ 59
190. मुद्गल चित्रा. ताशमहल, आदि-अनादि-2. पृ127
191. मुद्गल चित्रा. रूना आ रही है, आदि-अनादि-1. पृ 152
192. मुद्गल चित्रा. शून्य, आदि-अनादि-1. पृ.205
193. शुक्ल आचार्य रामचंद्र. चिंतामणि भाग 1. पृ.62
194. मुद्गल चित्रा. पेशा, आदि-अनादि-1. पृ.222
195. मुद्गल चित्रा . रूना आ रही है, आदि-अनादि-1. पृ.150
196. मुद्गल चित्रा . गर्दी, आदि-अनादि-2. पृ.87
197. सिंह रामधारी 'दिनकर'. ईर्ष्या-तू न गई मेरे मन से

198. मुद्गल चित्रा .प्रमोशन, आदि-अनादि-2. पृ.262-263
199. मुद्गल चित्रा . पाली का आदमी, आदि-अनादि- 1. पृ.99
200. मुद्गल चित्रा. ताशमहल, आदि-अनादि-2. पृ.119
201. अमिताभ वेदप्रकाश. समीक्षा. जुलाई-सितम्बर 1993. पृ.22
202. मुद्गल चित्रा. स्टेपनी, आदि-अनादि-3. पृ.60-61
203. मुद्गल चित्रा. तकिया, आदि-अनादि-3. पृ.246
204. श्रीवास्तव ले. विश्वरूप, www.com, , 08 मार्च 2016, दोहरा बोझ झेलते रही है कामकाजी महिलाएं
205. मुद्गल चित्रा. बावजूद इसके, आदि-अनादि-1. पृ.121
206. मुद्गल चित्रा. लाक्षागृह, आदि-अनादि-1. पृ.238-239
207. डालमिया दिनेशनंदिनी. गोयल संतोष. नारी एक सफर. पृ.126
208. मुद्गल चित्रा. अभी भी, आदि-अनादि-3. पृ.19
209. अभिताभ वेदप्रकाश. समीक्षा. जुलाई-सितम्बर, 1993. पृ.23
210. मुद्गल चित्रा. लकड़बग्घा, आदि-अनादि-3. पृ.34
211. मुद्गल चित्रा. पेशा, आदि-अनादि-1. पृ.212
212. मुद्गल चित्रा. अभी भी, आदि-अनादि-3. पृ.21
213. भारद्वाज भारत. पल-प्रतिपल, जनवरी-जून 1993. पृ.219
214. मुद्गल चित्रा. दशरथ का वनवास, आदि-अनादि-1. पृ.18
215. मुद्गल चित्रा. त्रिशंकु, आदि-अनादि-1. पृ.78
216. मुद्गल चित्रा .अपनी वापसी, आदि अनादि-1. पृ 173-174
217. मुद्गल चित्रा. इस हमाम में, आदि अनादि-2. पृ55-56
218. मोहन डॉ.नरेंद्र . आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ. पृ.10
219. मुद्गल चित्रा. इस हमाम में, आदि अनादि-2. पृ 60
220. वही
221. मुद्गल चित्रा. एक काली एक सफेद, आदि अनादि-3. पृ 84
222. मुद्गल चित्रा. रूना आ रही है, आदि अनादि-1. पृ. 156
223. मुद्गल चित्रा . इस हमाम में, आदि अनादि-2. पृ 53
224. डॉ. महेश्वर .चौथी दुनिया. 18-24 अक्तूबर, 1987. पृ12
225. मुद्गल चित्रा . लेन, आदि अनादि-2. पृ 137
226. मुद्गल चित्रा . बलि,आदि अनादि-3. पृ.204
227. डॉ.मधुरेश. हिन्दी कहानी, अस्मिता की तलाश. पृ.114

चतुर्थ अध्याय

चित्रा मुद्गल के उपन्यास साहित्य में संवेदना

साहित्य और समाज का संबंध पानी और मछली सा, जल और कमल सा होता है। समाज के विकास के साथ साहित्य की भी सतत वृद्धि एवं प्रगति होती जाती है। उपन्यास आधुनिक युग की आंतरिक पुकार है। युगीन परिस्थितियों ने उसे महाकाव्य के महत्वपूर्ण एवं सुंदर सिंहासन पर विराजित कर निश्चय ही असाधारण किन्तु यथोचित सम्मान प्रदान किया है। युग-दर्शन, समस्या चित्रण एवं व्यक्तित्व विश्लेषण की दृष्टि से उपन्यास सर्वाधिक उपयुक्त एवं विश्वसनीय गद्य विधा है। निरंतर बढ़ती हुई लोकप्रियता इसका श्रेष्ठ प्रमाण है। पिछली अर्ध शताब्दी से, हिन्दी में उपन्यास साहित्य का साहित्य की अन्य विधाओं पर असाधारण आधिपत्य रहा है।

उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा भी मानी जाती है। मानव चरित्र को उजागर कर धीरे-धीरे उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व होता है। उपन्यास में व्यक्तियों, वस्तुओं और व्यापारों को अधिक से अधिक सुंदर मुर्तीमत्ता प्रदान की जाती है। रचनाकार कल्पना के रंग में रंग कर अपनी कथा वस्तु अधिक रोचक बनाता है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध कथा आलोचक शैल्प फौक्स कहते हैं, "उपन्यास का वास्तविक संबंध जीवन से है। महान घटनाओं का खोज नहीं करता, उसका रचना क्षेत्र तो दैनिक जीवन की घटनाओं से है।"[1] उपन्यास यथार्थ की प्रति छाया भी हो सकती है। वह इस सृष्टि का यथार्थ चित्र है। जिसमें कलाकार, उसका सामाजिक रुप-विधान आदि सब कुछ व्यापक अर्थों में आ जाते हैं।

आदिकाल से मानव की अनुभूतियाँ काव्य के द्वारा अभिव्यक्ति पाती रही है। परंतु वर्तमान युग में यह स्थान गद्य ने ले लिया है। उपन्यास गद्य की किसी भी विधा की अपेक्षा मानव-जीवन के अधिक निकट होती है। इसका प्रमुख कारण है- पाठक का वह सब कुछ पा-लेना जिसकी कल्पना और आकांक्षा वह नित्य करता है। उपन्यासकार मानव जीवन की अतल गहराइयों में गोता लगाकर आनंदानुभूतियों की लहरें कम्पित करता है। आज उसकी गति इतनी प्रखर है कि वह भागते हुए मानवीय जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रुपों को पकड़ने में भी पूर्ण समर्थ है। अतःआज मानव जीवन की आशा-निराशा, शक्ति-दौर्बल्य, उत्कर्ष-अपकर्ष, सजीवता-निर्जीवता, सभ्यता-असभ्यता, उन्नति-अवनति आदि को अभिव्यक्त करने का एक मात्र माध्यम उपन्यास ही है।

उपन्यास को मनुष्य का अंतरंग चित्र माना जाता है। उसे जीवन तथा समाज की व्याख्या का उत्तम साधन बताया गया है।

उपन्यास केवल मनोरंजन की दृष्टि से नहीं वरन् अपने समय की सामाजिक समस्याओं के अंकन द्वारा पाठकों को सजग करता है। उपन्यास भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक मान्यताओं, रीति रिवाजों एवं विभिन्न क्षेत्रों में उसके पड़ते प्रभावों का अंकन ही नहीं करता बल्कि उस समय के युवक-युवती समाज पर उनका कैसा प्रभाव पड़ेगा ? इसका आंतरिक चित्रण भी करता है। जैसे की सर्व विदित है साहित्य समाज का दर्पण है। अतः इस उक्ति के अनुसार किसी भी साहित्यिक कृति चाहे वह उपन्यास ही क्यों न हो उसने अपने समय की परिस्थितियों का चित्रण आवश्यक हो जाता है। समयानुसार ऐसी परिस्थितियों का सामना करना आवश्यक हो जाता है, जो जीवन को कचोटना चाहती है। सभ्यता के कई चरण आगे बढ़ जाने पर भी समाज में आज भी अनावश्यक शील, संयम, असफल, प्रेम आदि के प्रति संघर्ष होता है। उपन्यासकार आदर्शों का मनोयोगपूर्वक अंकन कर के समाज में व्याप्त अमीरी-गरीबी, ऊँच-नीच, जाति भेद, भ्रष्टाचार जैसे समस्याओं को उभारकर कथानक के द्वारा उनकी निस्तारता की संकेत करता है, जिससे सहृदय उनसे सजग रहें। डॉ. शशी शर्मा के अनुसार, "हम समाज में रहते हैं, समाज के विभिन्न क्रिया कलाप देते हैं। किसी भी रूप में अपने को समाज से अलग नहीं कर सकते हैं। अपने भाव, विचार, कल्पनाएँ सब कुछ बाह्य यथार्थ से ही ग्रहण करते हैं। इसलिए हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह उचित ढंग से करें, अपने अनुभवों को गलत रूप में पेश न करें।"[2]

उपन्यासों में प्रायः संस्कृति का बदलाव उसके शहरीकरण और आधुनिकीकरण पर विचार मंथन होता है। कथा के माध्यम से उपन्यासकार ऐसा वातावरण प्रस्तुत करता है कि वास्तविकता की कसौटी पर अपने विचार परखने की योग्यता सहृदय व्यक्तियों पर छोड़ देते है। परिवर्तन की प्रक्रिया में प्रगति की सूचना मिलती है। अपने दृष्टिकोण को उपन्यासकार खुलकर प्रकट करता है। स्वतंत्रता के बाद खोखली नेतागिरी, पार्टीबाजी, सांस्कृतिक आचार-विचार, रिश्वतखोरी, मुनाफाखोरी, शोषण प्रवृत्ति आदि की समस्याएँ उपन्यासकार अपनी कृति के माध्यम से रखता है, पाठक उससे अवगत होते हैं। गाँवों का पिछड़ापन, अंधकारमय वातावरण, अंधविश्वास आदि एक परम्परा सी हो गई है। वांछित विकास अब तक पूर्ण नहीं हो पाया है किन्तु विकासोन्मुख चेतना उपन्यासों में अवश्य दृष्टिगत होती है। उपन्यास का कथानक बाह्यपक्ष या भौतिक, आर्थिक विकास की

ओर संकेत करता है। पात्रों के माध्यम से उसमें सजीवता का प्रयास लेखक करता है। आज प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति हो रही है। गाँवों में परंपरागत रूढ़ियों एवं अंधविश्वास के कारण लोग नर्क के समान जीवनयापन कर रहें थे। नित्य नवीन खोजो एवं जानकारी के कारण, शिक्षा-दीक्षा के कारण उनका जीवन परिवर्तित हो रहा है। गरीब-अमीर, भूपति-भूमि हीन, छूत-अछूत आदि संकल्पनाओं से ग्रामवासी मुक्त हो रहे हैं। श्रम की महत्ता एवं पसीने की कमाई के प्रति रुचि तथा जागरूकता बढ़ती जा रही है। भावात्मक क्रांति भी प्रगति पथ पर है। डॉ. एम. वेंकटेश्वर कहते है- "हिन्दी उपन्यासों में आधुनिक बोध का प्रारंभ प्रेमचंद कृत 'गोदान' से माना जाता है। उपन्यास में समस्या का समाधान नहीं दिखाया गया है। होरी की मृत्यु आधुनिकता का ही बोध है। जीवन मूल्यों को व्यंग्य के धरातल पर उजागर किया है। मेहता और मालती के संबंध में भी एक सीमा तक आधुनिकता की चुनौती को स्वीकारा है।"[3]

समकालीन उपन्यासकारों में चित्रा मुद्गल का स्थान सर्वोपरि है। आपने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज का वास्तविक चित्रण किया है। उनकी लेखनी से कोई भी समकालीन विषय अछूता नहीं रहा है। उन्होंने जो भी लेखन किया है वह जमीन पर रहते वास्तविकता जो उन्होंने अपने जीवन में देखी, अनुभवी एवं भोगी है के धरातल पर किया है। झोपडपट्टी से फाईफस्टार जीवन शैली तक का वैविध्यपूर्व एवं स्पष्ट चित्र आपकी रचनाओं में पाया गया है।

महिला होते हुए भी आपने केवल महिला जीवन या स्त्री-पुरुष संबंधों पर ही लेखन नहीं किया है, तो आपकी लेखनी में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में साहित्य की रचना कर ऊंची उड़ान भरी है। आपकी रचना को क्षेत्र विस्तृत है। आपने मानव जीवन के विभिन्न परिस्थितियों को विभिन्न दृष्टिकोणों से स्पर्श किया है। आपकी रचनाएँ हिन्दी जगत में एक विशिष्ट स्थान निर्धारित कर सदैव अविस्मरणीय रहेगी। आपकी अनेक कृतियों का अन्य भाषाओं में अनुवाद हो रहा है।

समकालीन यथार्थ को आपने सूक्ष्मतर नजरिए से अब तक के दुर्लक्षित विषयों को भी ध्यान में रखते हुए पाठकों के समक्ष रखा है। आपने उपन्यासों के पात्रों द्वारा अब तक अव्यक्त रहे विविध संवेदनाओं का वर्णन कर उन्हें ठोस प्रमाणों के साथ रेखांकित कर समाज को दिशानिर्देश किया है।

साहित्यकार अपनी कृतियों के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को वाणी प्रदान करता है। संवेदनशीलता ही सच्चे कथाकार की पहचान होती है। चित्राजी ने 'एक जमीन अपनी', 'आवां', 'गिलिगडु'

और 'पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपरा' आदि उपन्यासों में संवेदना के नाना बिन्दुओं को उकेरा है तथा उसके भाव-भूमि को उद्घाटित किया है।

उनके उपन्यासों में अनेक संवेदनाएं व्यक्त हुई हैं। इन संवेदनाओं को निम्नवत् प्रकार से विभाजित करके उसे विश्लेषित किया गया है।

4.1 रागात्मक संवेदनाएं

4.2 सुखात्मक संवेदनाएं

4.3 दु:खात्मक संवेदनाएं

4.1 रागात्मक संवेदना

उपन्यासकार अपनी रचना के माध्यम से विविध संवेदनाओं को पाठकों तक पहुँचाता है। यहाँ पर रचनाकार की स्वानुभूति से दैनंदिन व्यवहार की घटनाओं से चाहे वे घटनाएँ वर्तमान की हो अथवा भूतकाल की, जो संवेदनाओं के माध्यम से पाठकों तक संप्रेषित करना है बहुत महत्वपूर्ण होती है।

लेखिका ने 'एक जमीन अपनी' उपन्यास में रागात्मक संवेदना का सहारा लेकर उसकी सुंदरता में चार चांद लागाए हैं। छोटे बच्चों को ईश्वर की देन समझते हैं। उनपर लाड-प्यार सब करते हैं। नीता ने सुंदर बच्ची को जन्म दिया। दोनों खतरे से बाहर सुरक्षित थे। नीता की एवं अंकिता को बच्ची को देखने की ललक थी, पर होश में ना होने कारण घंटा-डेढ़ घंटा लग सकता है, वे उतावले हो रहे थे। जब नर्स ने भीतर आने का संकेत किया तो वे तुरंत अंदर गए। नर्स ने बच्ची को माँ के गोद में डाल दिया -"गुलाबी ऊन के नर्म गुलगुले गोले-सी बच्ची-आंखें मींचती, खोलती, बेदुर काढ़ती, कसी होने के बावजूद अलसाहट तोड़ती। सिर पर पोर-भर रेशम-से काले-काले बाल। वह मुग्ध, स्तब्ध भाव से उसे देखती रह गई। कैसे मोती-सी आंखें इधर-उधर टंग रही हैं–कुछ खोजती हुई-सी।"[4] नीता की छोटी बच्ची को देखकर अंकिता एक पल के लिए नीता के जीवन की त्रासदी को भूल जाती है।

'आवां' उपन्यास में रागात्मक संवेदना को लक्षित करते प्रसंग पाए जाते हैं। नमिता को 'कामगार आघाड़ी' में नौकरी मिल जाती है, तो वह 'श्रमजीवा' में शाहबेन को मिलने आती हैं ताकि उन्हें बता दे कि वह

कल से पापड़ बेलने नहीं आएगी। वहां उसे शाहबेन की एक अलग ही तसवीर रूप देखने को मिलता है। वह राष्ट्रपति बापू की परम शिष्या थी एवं उनके बनाए मार्ग पर चलती थी। जब वह जानती है कि नमिता को नौकरी मिल गई, वह बहुत प्रसन्न होकर कहती है-“ईश्वर के घर देर है, अंधेर नहीं। बोत अच्छी खबर सुनाई तूने छोकरी। तेरे को पापड़ लाटते देखके मैं बापू से दररोज प्रार्थना करती होती कि बापू, तुम्हारी ये लायक दीकरी की उम्र पढ़ने की ठहरी। अच्छी नौकरी की ठहरी। उसके ऊपर कृपा करना…मेरे को बरदाश्त नई बापू, बरदाश्त नई।”[5] ‘कामगार आघाड़ी’ मजदूरों और श्रमिकों का जीवनयापन का साधन है, जिसके कारण वे दो जून खाते हैं। लेखिकाने श्रमिक जीवन की वास्तविकता को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। विजय मोहन सिंह ‘आवां’ के बारे में लिखते है कि यह उपन्यास “बंबंई की ट्रेड युनियनों और मजदूर संघटनों के जीवन संघर्ष को लेकर लिखा गया है।”[6]

रागात्मक संवेदना को लेखिका ने ‘गिलिगडु’ में समाविष्ट किया है। इसको स्पष्ट करते प्रसंग इस उपन्यास में पाए गए है। बाबू जसवंत सिंह अपनी पत्नी के मृत्यु के बाद कानपुर में अकेला महसूस करते है। इसलिए वे अपने बेटे, बहू और पोतों के पास दिल्ली आते हैं। परंतु वे सब आत्मकेंद्रित हो चुके थे। इसलिए कोई अपना मिल जाए इस आशा से वह कुत्ते को लेकर प्रातः भ्रमण के लिए जाते है। तब कर्नल स्वामी ने उनको गिरने पर उठाया। उन्हें सहारा दिया। जूते पहनने एवं अर्निका खाने की सलाह दी। दूसरे दिन प्रातः वे नियोजित जगह पर मिलने पर उन्हें जूते स्वयं ही लाकर दिए -“‘और यह भी मालूम था दोस्त ! अर्निका भी नहीं मंगा पाए होंगे।’ पैंट की जेब से कर्नल स्वामी ने एक पतली-सी शीशी निकाली और उनके कुरते की जेब में सरका दी। फिर वापस कुरते की जेब से शीशी निकालकर बोले, ‘मुंह खोलिए’। चार-पांच गोलियां उनके मुंह में टपकाकर, शीशी पूर्ववत उनके कुरते की जेब के हवाले करते हुए आदेशात्ममक स्वर में बोले कि दिन में चार-चार घंटे के अंतर पर वे गोलियां खाना न भूलें।”[7] अजनबी शहर में कोई अपना मिलने की खुशी जसवंत सिंह को आनंद प्रदान करती है।

आज के इस उपभोक्ततावादी युग में बेटे का अपने माँ के प्रति स्नेह एक कल्पना मात्र ही समझी जा सकती है। ‘पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा’ में विनोद अपनी माँ को पत्र लिखकर उसकी तबीयत के बारे में पूछता है। उसे पता है कि अधिक परिश्रम के कारण उसके बा के पैर पर सूजन आती है। विनोद माँ की सेवा करता था। वह हर काम करती है। चारों ओर डोलती है इसीलिए वह उसे नौकर रखने कहता है।

अब विनोद को घर से बाहर कर दिया गया है। वह किन्नरों के साथ रहता है पर अभी भी उसे अपनी माँ के डबल रोटी से फूले हुए थके पैरो की याद सताती है। जब कि पैर चांपने वह भी घर पर नहीं है। "थककर डबल रोटी से सूज जानेवाले तेरे उन पांवों को मैं चूमना चाहता हूं। उनकी टीसें हर लेना चाहता हूं। उन्हें छाती से लगाकर सोना चाहता हूं। हफ्ताभर ! नहीं, दररोज ! नहीं, महीनों। नहीं, पूरे वर्ष।"[8] उपर्युक्त संदर्भ में एक बेटे का अपने माँ के प्रति अथक प्रेम को दर्शाया है।

4.1.1 संयोगात्मक संवेदना

संयोगात्मक संवेदना के संदर्भ में डॉ. उषा यादव का कहना है, "संयोग भी तो कई तरह का होता है। सच्चे संयोग के क्षण जीवन को इतना भरा- पूरा बना देते हैं कि छोटे-छोटे अभाव, कष्ट और गत्यावरोध तो आदमी देख ही नहीं पाता है। क्षणों का सान्निध्य जीवन के अधूरेपन को पूर्णता में बदलने में समर्थ हो जाता है।"[9]

'एक जमीन अपनी' में अंकिता को अपने भतीजे से विशेष लगाव था। अम्मा के मृत्यु के पश्चात वह टुन्नी के साथ लेटती है। उसका टुन्नी के प्रति राग उमड़ता दिखाई पड़ता है- "गले से टुन्नी की बांह एकाएक सरक गई है, नींद में शिथिल होकर। उसने उसकी बांह को झुककर चूम लिया। फिर आहिस्ता से उठाकर अपने गले में डाल लिया। संबल-सी दे रही है ये नन्ही बांह। जब से दोहरी पर पांव रखा है, टुन्नी ने उसकी उंगली नहीं छोड़ी। अम्मा के कमरे में भी घंटों उसके घुटनों से सटा बैठा रहा। तब तक, जब तक वह थककर नींद में लुढ़क नहीं गया।"[10] बच्चों की मासूमियत उनके स्वभाव से झलकती है। जो भी उनको प्यार देता है वे उनको अपने दुलार वंचित नहीं करते बल्कि अपनी कोमल भावना उनके प्रति व्यक्त करते हैं।

'आवां' में संजय कनोई नमिता के साथ खंडाला जाता है। रास्ते में वह बातचीत के जरिए नमिता के करीब आने हेतु अपनी पत्नी की बुराई करता है। ताकि नमिता के मन में उसके प्रति सहानुभूति पैदा हो। वह नमिता के साथ की सुंदरता प्रकट करते कहता है कि "कुछ अलग सा महसूस कर रहा हूं तुम्हारे साथ। उन तरंगों को शब्द नहीं दे पा रहा जो अनायास तुम्हारी उपस्थिति से नि:स्तृत हो मुझे जीवन के अर्थों से जोड़ रही। निश्चय ही, अकेला यात्रा कर रहा होता तो संभवतः कब का अतर्यात्रा पर निकल दिया होता लेकिन..।[11] संजय कनोई नमिता से अपनी मन की बात प्रकट करना चाहता है। वह उसकी अनुमति लेकर कहता है, " मैं कहना चाहता हूं कि तुम जैसी संपूर्ण स्त्री का-सा बोध देने वाली युवती का सान्निध्य जीवाश्म हो गई जिजिविषा को अनायास

पुनर्जीवन दे रहा…”[12] संयोग के लिए आकर्षण जरूरी होता है। इस आकर्षण को प्राप्त करने के लिए कभी-कभी मनुष्य दूसरे के तारीफ के फूल बांधते है जिससे सामने वाला बेखबर रहता है।

संयोग एवं वियोग जीवन में आते-जाते रहते हैं। उनका निश्चित समय किसी को पता नहीं होता पर उसी के अनुसार जीवन चक्र चलता रहता है।

'गिलिगडु' उपन्यास में कर्नल स्वामी से भेंट बाबू जसवंत सिंह के जीवन की एक अहम घटना थी जिसने उनके जीने का नजरिया बदल दिया। वे अब खुश भी रहने लगे जीने की ललक भी बढ़ गई थी। बाबू जसवंत सिंह जब सैर पर गिर पड़े थे तभी दूसरे दिन कर्नल स्वामी उनके लिए जूता लेकर आते है। उनकी सद्भावना को ठेस ना पहुँचे इसलिए बाबू जसवंत सिंह उन्हें पैसे भी नहीं दे पाते। कुछ दिनों बाद वे कुरता-पायजामा की जगह लक्स कॉटवूल खरीदने की बात करते हैं और सर्दी से बचाव हेतु जाकिट। तब बाबू जसवंत सिंह कहते है मैं स्वयं जाकर खरीद लूंगा। आप कष्ट ना करें। उनकी अपने प्रति चिंता एवं प्रेम देखकर उनका मन प्रसन्न हो जाता है – “हालांकि मन को अच्छा लगा- कोई तो है जो उन्हें सर्दी से ही नहीं बचाना चाह रहा, उन्हें चुस्त-दुरुस्त भी देखना चाह रहा है। जिस रूप में वे सदैव स्वयं को देखने के आकांक्षी रहा हैं। आग पर पानी कब पड़ गया, उन्हें नहीं पता। पानी पड़ा भी या नहीं या उन्होंने स्वयं उम्र के तेवरों से भिड़ने की बजाए जीने के उल्लास को अपने भीतर ही चुन दिया ... जी लिए।”[13] रेगिस्तान में जिस प्रकार से फूल खिला हो उसी प्रकार जसवंत सिंह के कर्नल सिंह का मिलना संयोग ही था।

लेखिकाने संयोगात्मक संवेदना के बहुत ही सुंदर तथा रोचक प्रसंगों का चित्रण कर दो मनुष्यों के मिलन का सुंदर अंकन किया है।

4.1.2 वियोगात्मक संवेदना

संयोग एवं वियोग जीवन के अभिन्न अंग है। वियोग क्षणिक भी होता है और लंबा भी और कभी-कभी पुनर्मिलन की संभावना भी नहीं होती क्योंकि मौत का साया किसी को निगल लेता है। 'एक जमीन अपनी' में भी वियोगात्मक संवेदना पाई गई। नीता की आत्महत्या की खबर से अंकिता बहुत विचलित होती है–“क्या अनर्थ कर बैठी नीता ? इतनी दुर्बल कैसे हो उठी ? आत्मविश्वास से पोर-पोर डूबा व्यक्तित्व…जटिल परिस्थितियों से जूझने को तत्पर…सदैव स्फूर्तिपूर्ण मुद्रा…'बताओ, कहां क्या करना है…ऐसे छुई-मुई होकर

रहना है तो घर से क्यों निकले?...जीवन जीने की अदम्य लालसा से सराबोर...जीवन से हारकर घुटने टेक बैठी? इस कदर की अपने प्रेम का प्रतिफल इस बच्ची के प्रति राई-रत्ती मोह नहीं रहा ?"[14] नीता शादीशुदा सुधीर से संबंध रखती है। कुंआरी माँ बन जाती है। जब बच्ची का जन्म होता है सुधीर उसे नकारता है। इस मोहभंग की स्थिति में वह आत्महत्या करती है।

वियोग हमेशा पीड़ादायी होता है। देवी शंकर पांडेय और किशोरी के विवाहबाह्य संबंध थे। जिसकी परिणति सुनंदा के जन्म से हुई। जब सुनंदा की हत्या की खबर देवी शंकर पांडेय ने अखबार में पढ़ी। उन्हें काफी दु:ख हुआ वे भड़भड़ाकर रोने लगे। उन्होंने नमिता से कहा कि सुनंदा उसकी सगी बहन है। "बाबूजी हिचकियां भर-भरकर रो रहे थे। दबी-दबी-सी 'ओंऽ ...ओंऽ' में। 'क्या हुआ, बाबूजी ? क्या बात है ? कहीं तकलीफ हो रही आपको ? क्यों रो रहे हैं ? बोलिए न ! आप तो सो रहे थे, फिर अचानक क्या हुआ आपको कि...' बाबूजी ने संकेत से बत्ति जला देने का आग्रह किया। मैंने देखा, उनके सिरहाने अखबार तहाए रखे थे। स्लेट पर उन्होंने लिखा। 'नमी! सुनंदा तुम्हारी सगी बहन थी..."[15] अपने बच्चों के प्रति प्रेम हर एक माता-पिता को होता है। भले ही वह रिश्ते जायज हो या नाजायज, वे अपना दु:ख छिपा नहीं पाते।

'गिलिगडु' उपन्यास में बाबू जसवंत सिंह उनकी पत्नी के देहांत के बाद नितांत अकेले पड़ जाते हैं। नरेंद्र की अम्मा नींद में ही चल बसी थी। उन्हें दर्द हो रहा था। उन्हें सुनगुनिया के भरोसे छोड़ वे डॉक्टर को बुलाने अशोक नगर गए थे। वापस आने तक पाया कि नरेंद्र की अम्मा उन्हें छोड़कर जा चुकी थी – "सूरज चढ़े तक जब नहीं कुनमुनाई नरेंद्र की अम्मा तो हाथों का अखबार उन्होंने एक ओर रखकर चिंतित स्वर में उसे पुकारा। उनकी पुकार बेअसर रही। इतनी गहरी नींद कभी नहीं सोई नरेंद्र की अम्मा! सरककर उसके माथे को छूआ। चेहरा हिलाया। जिस ओर कर दिया, उसी ओर बना रहा। लुढ़का-सा। "[16] मृत्यु एक कटु सत्य है। उसे स्वीकारना और ग्रहण करना हर एक के बस में नहीं होती खासकर जो बुजुर्ग हैं जिनको अपने ही परिवार के बच्चों ने उपेक्षित किया हो। तब रह-रहकर उनको अपने प्यार की याद आती है।

'पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा ' उपन्यास में विनोद और उसके माँ का वियोग तो चरम सीमा को छूता है। विनोद को किन्नर होने के कारण घर से बेघर किया गया तथा उसकी मृत्यु की झूठी खबर समाज में फैलाई जाती है। परंतु माँ और बेटा एक-दूसरे से दूर नहीं हो पाएँ। पत्रों के माध्यम से दोनों अपनी व्यथाएँ एक-दूसरे को बताते है। माँ अपनी विवशता बताती है कि, "बिन्नी दीकरा, विचित्र है मनुष्य। समझ से परे।

समझता ही नहीं। जिसने खोया नहीं है, खोने की पीड़ा को वह कैसे महसूस कर सकता है? कैसे महसूस कर सकता है? उन स्पर्शों को जो दरवाजे के पीछे लटकी हुई चीजों को छूते हरिया आते हैं।"[17] भरा-पूरा परिवार होने पर भी समाज के खोखले दृष्टिकोण के कारण माँ को अपने आपसे विनोद से दूर करना पड़ा। परंतु उसको खोने पीड़ा वह हर दम महसूस करती हैं।

हम देखते है कि अपने उपन्यासों में वियोगात्मक संवेदना के मार्मिक चित्रण किया है।

4.1.3. मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाएँ

मूलप्रवृत्तियों का तात्पर्य है कि जिनके कारण सभी पशु-पक्षी बिना सीखाएं जो क्रियाएँ आत्मसात करते हैं, जिसका उनको ज्ञात है। परंतु मनुष्य यह प्रवृत्तियाँ जन्म से ही होती है, इसलिए वह सब में अलग होता है। डॉ. उषा यादव इस संदर्भ में कहती है," मूलप्रवृत्तियों का आशय उन आदिम वृत्तियों से हैं, जिनके कारण जाति विशेष के सभी प्राणी एक ही ढंग से, बिना सीखे हुए, क्रियाओं की श्रृंखला संपादित करते हैं। परंतु यह बात कीट-पतंग, पशु-पक्षियों में आदि में तो सत्य ठहरती है, मनुष्य के संदर्भ में नहीं। मनुष्य के संदर्भ में कहाँ जा सकता है कि मूलप्रवृत्तियाँ वे वृत्तियाँ हैं, जो जन्मजात होती हैं तथा जिनके कारण व्यक्ति एक विशिष्ट प्रकार का आचरण करता है।"[18]

"बुद्धि, शिक्षा और संस्कृति के समाधान के फलस्वरूप लक्ष्यों तथा उनके प्राप्ति-साधनों के मौलिक आदिम रूपों का उदात्तिकरण और प्रस्फुटन हो सकता है, किन्तु मूलप्रवृत्ति परिष्कृत और संस्कृत कितनी क्यों न हो जाए, उसका नाश कभी नहीं होता। मानवीय चरित्र, साहित्य, कला, धर्म आदि की ईंटे मूलप्रवृत्तियाँ हैं।"[19]

चित्रा जी के उपन्यासों में मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाएँ पाई जाती हैं। विविध पात्रों एवं घटनाओं के माध्यम से मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाएँ हमें भावविभोर करती हैं।

4.1.3.1 करूणापरक संवेदनाः

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "जिस व्यक्ति से किसी की घनिष्ठता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार होता है। उसके जीवन का बहुत-सा अंश उसी के संबंध द्वारा व्यक्त होता है। मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है। संसार तो कहने-सुनने के लिए है, वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं जिनसे उसका संसर्ग या व्यवहार है। अतः ऐसे लोग में से

किसी का दूर होना उसके संसार एक प्रधान अंश का कट जाना या जीवन के एक अंग का खंडित हो जाना है। किसी प्रिय या सहृदय के चिरवियोग या मृत्यु के शोक के साथ करुणा या दया का भाव मिलकर चित्त को बहुत व्याकुल करता है।"[20]

'एक जमीन अपनी' नीता को अस्पताल में भर्ती कराया गया है, उसे प्रसव वेदना हो रही थी। डॉक्टर के अनुसार माँ-बेटा दोनों को खतरा है। रक्तचाप बढ़ने एवं खून की कमी के कारण सभी चिंतित है। अंकिता को देखते ही नीता मचल उठी- "शल्य-क्रिया कक्ष में अस्त–व्यस्त नीता को दो नर्सों ने संभाल रखा था। उस पर दृष्टि पड़ते ही चरम पीड़ा से विकृत मुख लिए नीता ने विह्वल हो बिस्तर से उठने का प्रयास किया। उसने बरज दिया। नीता के माथे पर चिपके-बालों को छुड़ाकर उंगलियों से सुलझाया। उसके पपड़ियाए होंठों पर हथेली फेरी। जैसे हफ्तों बाद मां अपने दुधमुंहे बच्चे से मिल रही हो। उसकी दुरवस्था से विचलित, अकुला रही आंखों को जबरन मुसकान से भरने की चेष्टा की।"[21]

अंकिता नीता को समझाती है कि हिम्मत न हारो सब ठीक हो जाएगा। वह डर गयी है, अंकिता उसका माथा थपककर मुड़ती है तब नीता विचलित हो जाती है –"नीता शक्ति-भर उसकी हथेली अपनी मुट्ठी में कस, प्रसववेदना के भीषण बवंडर को होठों में भरकर भींचती चीत्कार कर उठी, "छोड़ के न जाओ, अंकू... बचूंगी नहीं...नहीं बचूंगीऽऽ…"[22] मनुष्य अपना दु:ख-पीड़ा उसी से साझा करता है जो उसके करीब हो। नीता अंकिता को अपना सर्वस्व मानती थी इसलिए वह प्रसववेदना के दौरान उससे अलग नहीं होना चाहती।

किन्नरों के प्रति समाज की मानसिकता वहीं पुराने ढर्रे की हैं। किन्नरों के साथ उनका निष्ठुर व्यवहार अशोभनीय है। शुद्रों से भी बदतर जिंदगी जीने में उनको अभिशप्त किया है। उन्हें घर-परिवार से उपेक्षित होकर निष्कासित किया जाता है तथा न चाहते हुए किन्नरों के समुदाय में रहकर उनकी तरह जीवन जीना पड़ता है।

'पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा' में विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली उर्फ दिकरा के जीवन की झाँकी बहुत ही करुणापरक ढंग से चित्रा जी ने प्रस्तुत की है। विनोद जननांग दोषी बालक था। बचपन से ही उसे लिंग नहीं था। माँ उसे समझाती थी कि जिस तरह बिना टांग वाले नकली टांग पर चलते है, अंधों को आंख लगाई जाती है भविष्य में इस अधूरेपन का कोई ना कोई इलाज निकल आएगा। तेरे पप्पा ने स्पेशलिश्ट को दिखाया था। पर एक दिन विनोद को किन्नरों के हवाले कर दिया जाता है और मरने की झूठी खबर फैलाई जाती है। विनोद का भ्रम टूट जाता है। वह पत्र में अपनी बा को कहता है-"तूने, मेरे बा, तूने और पप्पा ने

मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया।"[23] बच्चे को जब माता-पिता के संस्कार तथा लाड़-प्यार दुलार की जरूरत होती है उस उम्र में वह सिर्फ एक किन्नर है इसलिए परिवार वाले उसे घर से बेघर करके निकालते हैं।

जब व्यक्ति किसी अन्य के दुःख-दर्द देखकर दुखी होता है तब वहाँ उत्पन्न संवेदना करुणापरक संवेदना होती है। सामाजिक जीवन को उच्च स्तर पर ले जाने में इस संवेदना का बहुत महत्व है। वृद्धों की समस्याओं की प्रधानता के कारण 'गिलिगडु' उपन्यास में करुणापरक संवेदनाएं पाई गई है।

'दिल्ली दर्शन' के समय कर्नल स्वामी ने स्वादिष्ट रसम बनाकर लाए थे। बाबू जसवंत सिंह ने लजीज रसम की बहुत प्रशंसा की तब कर्नल ने उन्हें इटली की पसंदगी के बारे में पूछा। पत्नी के निधन के बाद उन्हें किसी ने पसंद-नापसंद नहीं पुछी थी, वे भावुक हो गए -"दरअसल दिल्ली आकर वे भूल ही गए कि भोजन में उनकी पसंद का कोई महत्व शेष है। अकसर उन्हें वह खाना पड़ता है या खिलाया जाता है जो उनके ढीले और खोखले हो आए दांतों और बिगड़े हाजमे को मंजूर नहीं होता। पसंद की बात दरकिनार भी कर दें तो अखरने वाली बात है उनके नाश्ते-पानी का कोई समय नियत न होना।"[24] देखा जाए तो बुढ़ापे का यह रूप अत्यंत करुण है। वास्तव में आधुनिक युग में यही जीवन का सत्य है। इन बुजुर्गों की दयनीयता मर्म को छू लेती है।

रचनाकार ने अपने उपन्यासों में कारुणापरक संवेदना के माध्यम से करुणा व्यक्त करने वाले अनेक प्रसंगों का भावप्रवण अंकन किया है।

4.1.3.2. क्रोधपरक संवेदनाः

चित्राजी ने 'एक जमीन अपनी' में क्रोधपरक संवेदना का वर्णन किया है। मानव के जीवन में क्रोध प्रकट करने पड़े ऐसे अनेक प्रसंग-घटनाएं घटित होती है और इस संवेदना को जितनी जल्दी प्रकट कर दिया जाए मनुष्य स्वयं को उतना हलका महसूस करता है।

नीता शादीशुदा सुधीर के साथ रह रही थी। उसे गर्भ ठहरा था एवं प्रसव वेदना भी हो रही थी। अब सुधीर ने उसपर ध्यान कम कर दिया था। इस बात को लेकर नीता बहुत गुस्से में थी। एक तो प्रसव वेदना से उसकी जान जा रही थी उसपर खून की कमी एवं उच्च रक्तचाप। वह अंकिता से कहती है कि अब वह और उसका बच्चा दोनों भी नहीं बचेंगे। नर्स अंकिता को बाहर बैठने के लिए कहती है तब अंकिता उसपर प्रेम

जताकर कहती है कि माँ और सुधीरजी बाहर है मैं भी बाहर बैठती हूँ। सुधीर का नाम सुनते ही नीता आपे से बाहर हो जाती है–"दैट बास्टरर्ड…उसने मुझे छला है…प्रेम-व्रेम कुछ नहीं…काम -संबंधों का भूखा भेड़िया…आई हेट हिम…"[25]

आचार्य रामचंद्र शक्ल के मतानुसार, "क्रोध दु:ख के चेतन कारण के साक्षात्कार या परिज्ञान से होता है, अतः एक तो जहाँ कार्य-कारण के संबंध-ज्ञान में त्रुटि या भूल होती है, वहाँ क्रोध धोखा देता है। दूसरी बात यह है कि क्रोध करने वाला जिस ओर से दु:ख आता है उसी ओर देखता है, अपनी ओर नहीं। जिसने दु:ख पहुँचाया उसका नाश हो या उसे दु:ख पहुँचे, क्रोध का यही लक्ष्य होता है।"[26]

'आवां' नमिता की मां उसकी अपनी सगी मां है पर 'आवां' में उसका अपने बच्चों के साथ सौतेला-सा व्यवहार रहा है। हो सकता है परिस्थिति वश लाचार हो उसका स्वभाव क्रोध भरा बना हो। नमिता को नौकरी नहीं, पति देवीशंकर लकवाग्रस्त घर में लाचार पड़े है। दो छोटे बच्चे है। सारी जिम्मेदारी उस पर है। वह पापड़ बेलकर घर चला रही है। उसे सदैव अपने मायके एवं बहन कुंती के धनवान होने पर गर्व व स्वयं के मध्यमवर्गीय होने का संकोच एवं गम रहता है। वह घर के किसी भी सदस्यों से फूटे मुंह बात करती है।

इंद्र भैया को पानदान देने से मना करते ही वह नमिता पर क्रोधित हो जाती है। वह उसे कहती है-"'तु क्युं सकुचा रहा... इस कटखनी कुतिया के मुंह पे मत जा !'… मौसाजी तेरे जब से खटिया लगे, न जाने किसके दीदों की हुसकाए निर्लज्ज छोकरी महतारी को पांव का पायदान बनाने पर उतारू है…"[27]

नमिता की माँ उर्मिला के बारे में मृदुला गर्ग ने बहुत अभ्यासपुर्ण कथन किया है- "उपन्ययास की पहली कडी में भाषा की सहज कथानक को बढ़ाने में ही नहीं, उसकी कुटिलताओं और क्षुद्रताओं की गाँठे खोलने में भी सक्षम है। इस कुटिलता और क्षुद्रता का अद्भुत चित्रण मिलता है, नमिता की माँ में। हिन्दी साहित्य में चिरकाल से चले आ रहे माँ के महापात्र का विगठन अविस्मरणीय है। अपराध बोध से अछूती, आत्मलिप्त, छोटी-छोटी कुटिलताओं से छोटी-छोटी कुटिल सुविधाएँ जुटाती माँ, जिसके लिए बेटी ऐसा उपकरण है जिसे मानवीय सरोकार की जरूरत ही नहीं है। वह उसका पैसा भी तबतक चाहती है, जब तक वह उसे तिल-तिल खटकर कमाएँ। सफलता, उन्नति, जीवनरस कुछ पाकर नहीं। स्वयं वह एक रसीली औरत की तरह हास-परिहास कर सकती है। जिंदगी को भरपूर जी सकती है, पर बेटी के लिए दरोगा बनी रहती है, सोचा जाए तो जीवन में ऐसी अनेक माँएँ दिख जाएंगी पर साहित्य में परत-दर-परत उघड़ता रूप विरल है।"[28]

क्रोध एक मनोवृत्ति है। यह एक ऐसी भाव दशा है जो अतिशीघ्र प्रकट होती है। इस पर नियंत्रण तो पाया जा सकता है पर इसके प्रभावों को छिपाना संभव नहीं होता है। क्रोधपरक संवेदना को प्रकट करते कुछ उदाहरण पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा में पाए गए हैं।

विधायक के भतीजे जन्मदिन के अवसर पर पूनम नाच होने के बाद पोशाक बदलने के लिए ड्रेसिंग रूम में जाती है। तब विधायक जी के भतीजे एवं उसके दोस्त उसके साथ नृशंस व्यवहार करते हैं।अस्पताल में चंदा जिंदगी और मौत के बीच में झूल रही है। चंद्रा विनोद को पूनम के साथ विधायक जी के भतीजे एवं उसके दोस्तों ने की हुई ज्यादती का किस्सा सुनाती है। विनोद को बहुत गुस्सा आता है। उसकी चाय ठंडी हो जाती है-"क्षुब्ध तिलमिलाहट को रह-रहकर कस उठती मुट्ठी में चांप। सोच रहा हूं, लगातार सोच रहा हूँ चंद्रा। मेरे हाथ में कट्टा क्यों नहीं है। ठिकाने पर पहुँच मुझे कट्टा ढूंढ लेना चाहिए। बिना रामपुरी और कट्टे के ठिकाना सांसें नहीं भर सकता।"[29] विनोद उनको सजा देने के लिए तथा पूनम को न्याय देने के बारे में सोचता है।

पूनम जोशी का ऑपरेशन सफल होता है। डॉक्टर कहते है एक-एक व्यक्ति मरीज को मिल सकता है। सबसे पहले सरदार जाते हैं। उसके बाद विनोद जाता है। पूनम की निश्चेष्ट पड़ी हुई देह को देखते हुए वहां खड़ा रहना मुश्किल था। "कान के निकट जाकर बस इतना ही कहा, बा। 'ठीक हो जाओ पूनम जोशी जी। तुम्हें हराने की कोशिश करने वालों को बख्शा नहीं जाएगा। जन्तर-मन्तर पर इस दरिन्दगी की लड़ाई भी लड़ी जाएगी।"[30] विनोद आज की इस घटियाँ राजनीति विरोध उठाने के लिए तैयार होता है।

'गिलिगडु' उपन्यास में क्रोधपरक संवेदना दर्शाते कुछ प्रसंग पाए गए है। जसवंत सिंह पत्नी के मृत्यु के उपरांत अकेले हो गए है। इसलिए दिल्ली वे अपने बेटे के साथ रहते थे। लेकिन भरा-पूरा परिवार होने के पश्चात उनके साथ अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता है। उनको घर में रहने के लिए जगह नहीं देते बल्कि बालकनी में कुत्ते के साथ उनको रहने के लिए प्रवृत्त किया जाता है। अपनी बीमारी के कारण उन्हें पायजामा उतारकर ट्यूब डालना पड़ता है बाबू जसवंत सिंह पर सामने वाली मिसेज रावत की लड़की को देख पायजामा उतारने के आरोप सुनयना लगाती है। उनके कहने पर कि मेरी पोती की उम्र की बच्ची के साथ मैं ऐसी ओछी हरकत क्यों करूँगा? बहू सुनयना उन्हीं पर क्रोधित होती है -"आखिर बाबूजी संभ्रांत सोसायटी में उनकी इज्जत खाक में मिलाने पर क्यों उतारु है ? अपनी उम्र का लिहाज किया होता। अभी भी जवानी का जोश बाकी हो तो दिक्कत कैसी ? चले जाया करें रेड लाइट एरिया में। कौन पेंशन कम मिलती है, उन्हें जो उसकी मौज मस्ती

से हाथ बंधे हो ? कम से कम अडोस-पडोस की किशोरियों पर तो नजर न डाले ।"[31] भारतीय संस्कृति में यह सिखाया जाता है कि बड़ों का आदर करना चाहिए परंतु बदलते जीवन मूल्यों के चलते बड़ा-छोटा कुछ भी नहीं देखा जाता है। बूढ़ों को तो तीखे शब्दों के बाणों से ही उनके हृदय पर आघात किया जाता है।

ऐसे अनेक प्रसंगों द्वारा चित्राजी ने क्रोधपरक संवेदना को उपन्यासों के माध्यम से उजागर किया है।

4.1.3.3 कामपरक संवेदना :

काम एक सहज प्रवृत्ति होती है। जिसके माध्यम से नर-नारी संबंध स्थापित करते हैं। लेखिकाने अपने उपन्यासों में कामपरक संवेदना के प्रसंग उजागर किए हैं।

चित्राजी के उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में कामपरक संवेदना के भी प्रसंग चित्रित हुए है। विज्ञापन जगत एवं फिल्म जगत में इस संवेदना का चित्रण अतीव मात्रा में पाया जाता है। 'आम्रपाली' के अनुबंध के तहत विज्ञापन में नीता ने खुलकर देह प्रदर्शन किया। उसके शरीर पर नाम मात्र ही कपड़े थे, जिससे अंकिता बहुत विचलित हुई और उठकर चली गई। उसको नीता का इस हद तक किया गया देहप्रदर्शन नहीं जँचा, जब नीता उसके घर आती है तो वह उससे पूछती है कि, 'आम्रपाली' का अनुबंध प्राप्त करने की शर्त कपड़े उतारकर सागर तट पर दौड़ना था क्या ? वह उसके देह प्रदर्शन को देखते हुए कहती है कि, "आपादमस्तक ढकी हुई स्त्री ही इस समाज में इज्जत से रह नहीं पा रही है...कपड़ों में न देखकर उनको लोलुपता अधिक बलात्कारी हो उठेगी?" ऐसे दृश्य देखकर लोगों की कामपरक संवेदना बढ़ने की आशंका जताते हुए वह कहती है-"लोगों की दृष्टि में लपलपाती उत्तेजना तुम तालियों की गड़गड़ाहट में महसूस नहीं कर पाईं...महसूस कर पातीं तो शायद लज्जित होकर अपनी ही बांहों में मुंह गड़ा लेतीं, कि उन दृष्टियों को चीरकर न जाने कितनी जोड़ी उंगलियां लपककर उन तनियों का फुंदना खींच लेने के लिए विकल हो रही थीं, जो नाममात्र को ही सही, तुम्हारी देह के उभारों पर आड़ बनाए हुए थीं…"[32]

इस संदर्भ में के वनजा का कथन है, "नीता ने जो मार्ग अपनाया, वह मांसल शारीरिक प्रदर्शन और उच्छृंखलता का है। 'आम्रपाली' पोशाक के विज्ञापन की फिल्म शूटिंग के संदर्भ में नीता के पूरे शारीरिक सौंदर्य की नग्नता को कैमरामैन ने अपने कैमरे में ले लिया। यहां विभिन्न डिजाइन के वस्त्रों के विज्ञापन में नग्नता को

ज्यादा महत्व दिया जाता है। मनुष्य के मन को खूब आंदोलित करने के लिए, आजकल विज्ञापनों में स्त्री की नग्नता का अच्छा इस्तेमाल किया जाता है।"[33]

'आवां' उपन्यास में चित्राजी ने काम संवेदना को व्यक्त करने वाले विविध प्रसंग चित्रित किए। बृहत् उपन्यास एवं विविध सैकड़ों पात्रों एवं कथाओं-उपकथाओं के कारण काम के अनेक रुप पाए जाते हैं। इस उपन्यास में पति-पत्नि का कामप्रसंग छोड़ अन्य सभी अवैध काम रुपों का चित्रण पाया जाता है। सिद्धार्थ-अणिमा, संजय-निर्मला, गौतमी-अशोक इन दाम्पत्यों में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण या कामपरक संवेदनाओं का सर्वथा अभाव ही पाया गया है, परंतु अन्य अनेक अवैध एवं अनैतिक काम प्रसंगों का चित्रण पाया गया है।

नमिता 'कामगार आघाडी' जाने लगी। उसकी कार्यालय की कल्पना आशानुरूप नहीं थी, पर वह मन लगाकर काम में जुट गई। पुस्तकें, फाइलें पढ़ने लगी। बाद में मजदूर बस्तियों में जाने लगी। एक दिन अन्ना साहब, नमिता और विष्णूरामा ही कार्यालय में थे। अन्ना साहब ने विष्णूरामा को कॉफी बनावाकर लाने को कहा और कमरे की कुंडी बंद की। उसे आराम से बैठने को कहा। नमिता को बाजू में घेरे हुए दीवान पर आ बैठे एवं उससे हस्त मैथुन के लिए विवश किया-"तुम, बस इतना भर करो। आओ, मेरी जांघ पर आकर बैठ जाओ। अच्छा रहने दो। जैसे बैठी हो, वैसी ही बैठी रहो। अपने हाथ-भर को मेरे नियंत्रण में दे दो, वरना गलत दिशा में उत्तेजित करने की जिम्मेवारी तुम्हारी होगी।...तुम्हारी देह के साथ मैं कोई खिलवाड़ नहीं करुंगा...अपनी देह के साथ खेलने के लिए मैं स्वतंत्र हूं। हाथ मत छुड़ाओ। जैसा कहूं, करती चलो..."[34] यौनाकांक्षी मनुष्य इस प्रकार हो जाता है कि अपनी बेटी जैसी स्त्री से संबंध रखने में उनको कोई संकोच नहीं।

कामपरक संवेदना 'गिलिगडु' उपन्यास में प्रत्यक्ष दृष्टव्य नहीं है पर कुछेक प्रसंगों में काम से संबंधित प्रसंगों में इस संवेदना को पाया गया है। बाबू जसवंत सिंह एक ईमानदार सिविल इंजीनियर थे। पैसों के लिए उन्होंने कभी अपना ईमान गिरवी नहीं रखा। अच्छी खासी तनख्वाह वे पाते थे। अपने तत्वों पर जीते थे। उनके मित्र उन पर हँसते थे कि कैसे ठाकुर हो, हो भी या नहीं हमें शक है। जब वे मुंबई प्रवास के लिए गए थे। तब वे सारे शौक पूरे ना कर पाने का उन्हें दुःख होता है- "बड़ी घटिया-सी बात है मगर थी सच। मुंबई के हफ्ते-भर के प्रवास से लौटने के उपरांत उन्हें बड़े दिनों तक इस बात का मलाल होता रहा था कि यार-दोस्तों के दबाव के बावजूद वे एक खूबसूरत असफल फिल्म अभिनेत्री के साथ तगड़ी फीस के चलते रात नहीं गुजार सके थे।"[35]

चित्रा जी ने गिलिगडु उपन्यास में कामपरक संवेदना का संबंध आर्थिक संवेदना से जोड़ा है। उपरोक्त

प्रसंग में हम देखते है कि बाबू जसवंत सिंह की वेतन अच्छी है वे चाहे तो किसी असफल अभिनेत्री के साथ रात गुजार सकते थे। यहाँ पर मुंबई की वास्तविकता पर भी प्रकाश डाला है कि यहाँ आए दिन सैकड़ों युवा फिल्म स्टार बनने के सपने को संजोए घर छोड़कर आते है और सफलता ना मिलने पर भटक जाते है। जब किशोर लडकियाँ अभिनेत्री बन नहीं पाती तो वे अवैध कामों में लिप्त हो जाती है।

'नाला सोपारा...' विधायक का भतीजा बिल्लू और उसके चार साथी कार्यक्रम समाप्त होने पर पोशाक बदलने गई पूनम जोशी के ड्रेसिंग रूम में जबरन घूस जाते है और उसे गुप्तांग बताने की इच्छा प्रकट करते है। पूनम छटपटातीं है, स्वयं को मुक्त करने की कोशिश करती है। पर वासनालिप्त वहशियों के सम्मुख उसका कुछ नहीं चलता। वे उसके गुप्तांग पर घाव कर देते है। उसके साथ पाँचों अनैसर्गिक बलात्कार करने का प्रयास करते हुए अपनी हवस पूरी करते है- "घोंचू, छेद दिखाई दे रहा, चूजे सी कसी छातियां नहीं दिख रहीं ? अमेरिकी बालाओं की भी नहीं होंगी ऐसी छातिया। ...खुली पैंट ने बेसब्र हो पैंट उतार ली। फिर दूसरे ने पैंट खोल ली।...विधायक जी के बिल्लू भतीजे ने भी पैंट खोल ली।"[36] आज मनुष्य की कामुकता इतनी बदल गयी है कि वह किसी में अंतर नहीं करता बल्कि अपने वासना का तृप्त करने के लिए किसी भी हद तक चला जाता है। अपनी हवस को पूर्ण करने के लिए किन्नर के साथ नृशंस व्यवहार करता है और उसे मरणासन्न अवस्था में छोड़ पलायन करता है।

इस तरह हम देखते हैं कि चित्राजी ने अपने उपन्यासों में कामपरक संवेदना का चित्रण किया है।

4.1.3.4 ईर्ष्यापरक संवेदना :

ईर्ष्या एक ऐसी मानसिक विकृति है जो अपने परिचितों या करीबी लोगों के प्रति पैदा होती है। लेखिका के उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में ईर्ष्यापरक संवेदनाओं को उकेरा गया है। नीमा का 'आम्रपाली' से अनुबंध होता है, उस शो में अंकिता भी जाती है। वहाँ उसे शोभना एवं सेनगुप्ता मिलते है। उसकी हिन्दी एवं अँग्रेजी के बीच बरते जाने वाले भेदभाव पर चर्चा होती हैं। शो प्रारंभ होते ही नीता विशिष्ट व्यक्ति की तरह मंच पर प्रवेश करती है। आज वह नंबर वन मॉडल है। 'आम्रपाली' के अनुबंध के कारण नीता का रुतबा बढ़ गया था। शोभना के व्यवहार से पता चलता है कि उसे नीता से कितनी ईर्ष्या है- "कुहनी से टहोका मारते हुए शोभना उसके कानों की ओर झुककर अर्थपूर्व भाव से खुसफुसाई, जैसे कोई राज की बात बताने जा रही हो, 'पूरे तीन साल का अनुबंध हुआ है 'आम्रपाली' के साथ।' नीता पर से दृष्टि हटाकर उसने शोभना को विस्मय से देखा।

‘तीन साल’ को उसने जिस वजन और संदिग्धता के साथ रेखांकित किया, उससे हलकेपन की बू आ रही है।”[37] लेखिकाने मॉडलिंग तथा विज्ञापन के दुनिया को निकट से देखा है, एक दूसरे के प्रति प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या आदि का चित्रण उन्होंने ‘एक जमीन अपनी’ उपन्यास में किया है।

इस उपन्यास में “उन्होंने एक अपेक्षाकृत नए क्षेत्र-विज्ञापन दुनिया के मारक झूठ और सच, दुर्वह आकर्षण और जगमगाती सफेदी के भीतर छिपे ईर्ष्या-मद-मत्सर-की चिड़चिड़ाहट से हमें परिचित कराया है। और बोल्डनेस के साथ अपनी इच्छा के विरुद्ध पुरुषों की दुनिया में एक बिकाऊ चीज बनती स्त्री की नियति पर उँगली रखी है।”[38]

जब भी मानव कहीं तुलना करता है, कुछ अपने से बेहतर पाता है, ईर्ष्या करता है। ईर्ष्यापरक संवेदना के प्रसंग ‘आवां’ में भी पाए गई है। सुनंदा की मृत्यु के समय किशोरीबाई ने नमिता के पास चिट्ठी दी जिससे उसे पता चला कि सुनंदा उसकी ही बहन है, उसके मन में बाबूजी के प्रति कुछ भाव संवेदनाएं बदली। अब जब उसे मैडम के यहां अच्छे वेतन वाली नौकरी मिल गई, तब उसे सबसे पहले नौकरी वाली खुशखबर स्मिता को देने की गड़बड़ हो रही थी, जब कि अब तक वह बाबूजी को ही अपना सर्वस्व मानती थी, प्राथमिकता देती थी, अपने सभी राज बताती थी और यह तो साढ़े तीन हजार रुपए वाली नौकरी थी- “बाबूजी के प्रति वह इतनी उदासीन क्यों हो रही ! नई नौकरी की सूचना उन्हें सबसे अधिक खुशी नहीं देगी ? असमर्थ, असहाय बाबूजी की वह बड़ी बेटी है- बड़े बेटे की जगह ! क्या पता बड़ी बेटी वह है या सुनंदा…सुनंदा ही हो, तब ? अब जब वह नहीं रही, कैसी ईर्ष्या ! ईर्ष्या भाव की क्षुद्रता में स्वयं के सीमित होने को स्वीकारना उसे अपने तईं ज्यादती लग रही।”[39]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, “संबंधियों, बाल सखाओं, सहपाठियों और पड़ोसियों के बीच ईर्ष्या का विकास अधिक देखा जाता है। लड़कपन से जो आदमी एक साथ उठते-बैठते देखे गये हैं उन्हीं में से कोई एक-दूसरे की बढ़ती से जलता हुआ भी पाया गया है। यदि दो साथियों में से कोई किसी अच्छे पद पर पहुँच गया तो वह इस उद्योग में देखा जाता कि दूसरे किसी अच्छे पद पर न पहुँचने पाएँ।”[40]

‘नाला सोपारा’ में विनोद अपनी माँ से पत्र लिखकर शिकायत करता है कि उसने और पापा ने मिलकर उसे किन्नरों को सौंप दिया। उन्होंने पुलिस को बताकर उसकी सुरक्षा भी नहीं की। वह पाठशाला में मेधावी छात्र था जो सदैव प्रथम क्रमांक पर रहा था। उसने अन्य छात्र ईर्ष्या करते थे- “क्यों वह अनर्थ हो जाने

दिया तूने जिसके लिए मैं दोषी नहीं था ! पढ़ने में अपनी कक्षा में सदैव अव्वल आने वाला। डरते थे लड़के मुझसे। कहते थे, जिस खेल की प्रतियोगिता में खड़ा जाता है तू विनोद, पुरस्कार लेकर ही दम लेता है। कुछ पुरस्कार हमारे लिए छोड़ दे न!"[41]

ईर्ष्या मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। मनुष्य जब तुलना करता है एवं किसी अन्य को अपने से बेहतर स्थिति में पाता है तब उसके मन से ईर्ष्यापरक संवेदना जन्म लेती है। 'गिलिगडु' उपन्यास में ईर्ष्यापरक संवेदना के उदाहरण पाए गए हैं।

बाबू जसवंत सिंह के मन में पड़ोसी की लड़की को लेकर बहू ने कसे तानों का दुःख कम नहीं हुआ था। इस बात को सैर पर मिलने पर कर्नल ने जान लिया कि वे उदास है। उन्होंने कहा कि जीवन मुठभेड़ों से ही जिया जाता है। तब जसवंत सोचते है कि कर्नल स्वामी के भरे-पूरे परिवार के कारण वे संघर्ष कर सकते है। उन्हें कभी उपेक्षा और लांछनों का सामना नहीं करना पड़ा। उनके मन में कर्नल के प्रति ईर्ष्या भाव उमड़ते है कि कितने सुखी है कर्नल स्वामी- "कितनी मुठभेड़ें कोई झेल सकता है ? कर्नल स्वामी ही ऐसा महसूस कर सकते हैं और कह सकते हैं। दरअसल उपेक्षा और लांछनों के चीरते दंशों से वे कोसो दूर हैं। कल्पना भी नहीं उस अवमानना की जो बूढ़े पेड़ के तने पर आरी-सी चलती है। बेटों, बहुओं, पोतों, पोतियों ने उन्हें हाथों-हाथ रखा हुआ है। घर की दीवारें चहचहाहट में गुलजार हैं। एक वे हैं- सपनों में सपना बुनते ही रह गए कि कानपुर वाले घर में उनके पोते-पोतियां हुड़दंगे मचाएं। दीवारों पर ककहरा लिखें।"[42]

इस तरह से देख जा सकता है कि ईर्ष्यापरक संवेदनाओं को प्रकट करने वाले कई प्रसंगों का चित्रण उपन्यासों में पाया गया है।

4.1.3.5 घृणापरक संवेदना

"अरुचिकर वस्तुओं की उपस्थिति पर उन्हें अपने से दूर रखने की प्रेरणा देनेवाली मनोविकार घृणा है।"[43]

'एक जमीन अपनी' में घृणापरक संवेदना व्यक्त करते कई प्रसंग चित्रित किए गए है। एक बार अंकिता एवं सुधांशु के बीच रोज की झिकझिक को लेकर कहासुनी हो जाती है। बात गाली-गलौज तक पहुँचती है। अंकिता क्षुब्ध होकर दीवार पर अपना माथा पटकती है। तब सुधांशु जो कहता है वह बहुत अमानवीय

वक्तव्य है। वह अंकिता के गर्भ में ही मृत शिशु के बारे में कहता है जिससे केवल अंकिता ही नहीं बल्कि पाठकों के मन में भी घृणात्मक संवेदना उपजती है- "अच्छा हुआ जो हमारा बच्चा जीवित नहीं रहा, नहीं तो ताउम्र वह मुझे तुमसे जोड़े रहता...कुरेदता रहता कि तुम मेरे बच्चे की मां हो...मेरे पहले बच्चे की..."[44]

सुधांशु से प्रेम विवाह करने के बाद भी उनका रिश्ता केवल तीन वर्ष टिक सका। सुधांशु को मित्रों को घर बुलाकर रात दो-दो बजे तक ताश खेलने की लत थी। रोज-रोज यही तमाशा होता। अंकिता ने एक बार नहीं कई बार समझाया पर सुधांशु उसकी परवाह तो दूर बेइज्जती करने लगा। तनाव के कारण उसका गर्भपात भी हो गया। "क्रोध में आकर उसने संजोकर रखे गए छोटे-छोटे झबलों और लंगोटियों को निर्ममता से स्टोव के सुलगते बर्नर पर रख दिया था – "मेरे लिए भी उसका मरना मेरी जिंदगी से तुम्हारा निष्कासन है...वरना उसकी शक्ल में जिंदग-भर मुझे तुमको ढोना पड़ता…क्योंकि वह हमारा बच्चा नहीं था… तुम्हारी कामुकता का परिणाम था...मुझे तुमसे घृणा है…घृणा...तुम्हारी ऐयाशियों ओर ज्यादतियों को सती-साध्वी बनी, मांग में सजाए झेलती जाना…इस मुगालते में रहना कि मैं स्त्रीत्व की पूर्णता का भ्रम जीती रहूंगी-लो, इसी वक्त यह रिश्ता खत्म!"[45]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल घृणा के बारे में कहते है, "सृष्टि-विस्तार से अभ्यस्त होने पर प्राणियों की कुछ विषय रुचिकर और कुछ अरुचिकर प्रतीत होने लगते हैं। इन अरुचिकर विषयों के उपस्थित होने पर अपने ज्ञानपथ से उन्हें दूर रखने की प्रेरणा करने वाला जो दु :ख होता है उसे घृणा कहते हैं।"[46]

'आवां' में संजय कनोई अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए नमिता से प्यार का नाटक करता है। अपने दांपत्य जीवन की दर्दभरी कहानी बताता है और अपनी तरफ आकर्षित करके उसे विवाह का सपना दिखाकर धोके में गर्भवती बनाता है। नमिता का गर्भ एक फोन की खबर मिलते ही गिर गया। इस बात को मानने संजय तैयार ही नहीं था। वह सोच रहा था कि अपने भविष्य हेतु, करियर बनाने के लिए नमिता मां नहीं बनना चाह रही थी एवं उसने जानबूझकर गर्भपात करवा लिया है। वह क्रोधित होता है। उसे घृणा करने लगता है क्योंकि वह अपनी योजना में असफल रहा। वह नमिता से बच्चा नहीं पा सका- "संजय लानत-मलापत पर उतर आए। 'जिस टुच्चे-से कैरियर के लिए तुमने गर्भ गिराया...क्या कमा लोगी तुम दो कौड़ी की डिजाइनर बनकर, नमी ! कितना समझाया था तुम्हें...मैं तुमसे घृणा करता हूं...तुमसे…' कांपते हाथों से उसने फोन पटक दिया।"[47] प्राचीन संस्कृति में नारी के कोख को पवित्र समझा जाता था उससे एक परिवार के नवनिर्माण के भार की आशा रखते

थे। परंतु यहाँ पर 'नारी की कोख' को अमीरों द्वारा खरीदने की चेष्टा की गई है। इस उपन्यास के जरिए लेखिका ने एक अनछुए विषय को हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

नारी की रजामंदी के बारे में कोई सोच नहीं रहा है उसके देह को मशीन समझकर उसके भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया जाता है। मृदुला गर्ग के अनुसार, "कोख के लिए ब्याही जाने की नियति तो हिन्दुस्तानी औरत हमेशा से झेलती आई है, पर कोख को इच्छा से उधार देने(गौतमी के संदर्भ में) या उसके लिए फल द्वारा उपयुक्त होने के अवमानना आज के युग की देन है, गौतमी और नमिता के जरीए 'आवां' ने बीसवी सदी के उत्तरार्ध के सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। "[48]

'गिलिगडु' में तेरहवीं दिन बाबू जसवंत सिंह बिमारी की बावजूद किसी तरह रिक्शा कर कर्नल स्वामी के घर पहुँचे। वहाँ का नजारा कुछ और ही था। घर बंद था। पड़ोसी मिसेज श्रीवास्व ने उन्हें कर्नल की मौत का समाचार सुनाया। वे चकरा गए। उनके भरे-पूरे परिवार की जानकारी पुछने पर मिसेज श्रीवास्तव बताया कौन-से बहू-बच्चे ? वे तो विगत आठ वर्षों से ही रह रहें है। बच्चे अन्य शहरों में चले गए। मंझले बच्चे श्रीनारायण ने तो नोएड़ा के फ्लैट बेचने पर मनाही करने पर उन्हें पिट-पिटकर अधमरा कर दिया। अनुश्री पति को छोड़ पिल्लई रहती है। श्रीनारायण ने दूसरा विवाह कर लिया। दोनों बच्चियों को हैदराबाद के हॉस्टल में रखा है। कर्नल चोरी-चोरी बच्चियों से मिलते थे। यह बताते हुए मिसेज श्रीवास्व श्रीवास्तव कहती है-"ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई अपनी औलाद नहीं…"[49] मिसेज श्रीवास्तव कर्नल स्वामी के बच्चों से घृणा करती है क्योंकि वे अपने पिता को जीवन के अंतिम पड़ाव पर अकेले छोड़ कहीं दूर स्थायी हुए थे।

'नाला सोपारा' में सिद्धार्थ को विनोद के जननांग दोषी होने पर चीढ़ तथा घृणा थी। उसी के पहल के कारण विनोद को घर से निकाला गया। उसकी पत्नी सेजल गर्भवती है। उसे डर लगा रहता है कि कहीं उसका होनेवाला बच्चा भी जननांग विकलांग ना हो। वह अस्पताल में बच्चे की जाँच करवाता है। घर से अलग निकालने की बात भी पिता से करता है। साथ ही नाराजी प्रकट करते हुए कहते है - "बा, अपने कमरे में तुमने बिन्नी की तस्वीर क्यों टांग रखी है ? सेजल की निगाह उस पर पड़ती नहीं होगी ? कभी सोचा है तुमने उसके मन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? तुम भले ही कभी उस काली परछाई का नाम अपनी जुबान पर नहीं लाती तो क्या ? बिना वजह तीज-त्योहार पर तुम्हारी भर-भर आती आंखें…उसे जबरन खींच लाती हैं इस घर में।"[50]

किन्नर होने के कारण उसके अपने ही उसकी यादों को मिटाना चाहते है ताकि वैसे कोई उनके घर में कोई और पैदा न हो ।

इस प्रकार घृणापरक संवेदनाओं को प्रकट करते कुछ प्रसंग उपन्यासों में पाए गए हैं ।

4.1.3.6. अहंभावना

अहंभावना मानव की सहज एवं जन्मजात प्रवृत्ति है । इस भावना से मनुष्य जीवन में बहुत हानि उठाता है। पर यह बात उसके समझ से परे होती है क्योंकि जब इस भावना का जन्म होता है तब मनुष्य को लगता है कि सब छोटे ही रहे केवल 'मैं' ही महान बन जाऊँ ।

जब अलका एवं अंकिता की भेंट होती है, तब अलका अहंभावना से लबालब होती है । आज वह अंकिता का लंच बाक्स खा लेने वाली अलका नहीं बल्कि टॉप मॉडल अलका है, इसी बात का उसे गुमान है- "हाय ! उसको सुपरिचित मुसकान के प्रत्युत्तर में अलका ने बेहद ठंडे अपरिचित स्मित के साथ उसकी ओर देखा जैसे कि वह अंकिता से पहली बार मिल रही हो और बावजूद इसके उसे उससे मिलने में कतई दिलचस्पी न हो ।"[51]

अहंभावना भी एक सहज प्रवृत्ति है । यह सभी में कम अधिक मात्रा में पाई जाती है । कर्नल स्वामी बाबू जसवंत सिंह को उठाते है । दोनों का परिचय होता है । दोनों साथ में ही प्रतिदिन सैर करने की सोचकर प्रातः मिलने का ठिकाना निश्चित करते हैं । ग्लैक्सो की पुलिया पर खतरा है । वे मयूर विहार वाले चौरस्ते पर मिलना तय करते है। कर्नल स्वामी की अहंभावना यही दिखाई पड़ती है -"सुबह के बावजूद मयूर विहार वाले चौरस्ते पर खासी चहल पहल रहती है । पुलिस चौकी का खाली खोखा रौब बनाए रखता है । जगह सुरक्षित है। वहीं मिलना ठीक है दोस्त! इंतजार के लिए ग्लैक्सो ठीक नहीं । अपने लिए हमें कोई डर नहीं, खतरों से जीवन-भर खेला है । खेलने की आदत रही है । आपको उसकी आदत नहीं ।"[52]

अहंभावना के अधिन होकर मनुष्य अपने आप को औरों से ऊपर समझने लगता है । अहंभावना दर्शाते वक्तव्यों को 'आवां' में भी पाया गया । गौतमी नमिता को उसके फोटोशुट वाला कैटलाग लाकर देती हैं जिसकी मैडम ने खूब प्रशंसा की थी । उसके कैटलाग ने आभूषण विश्व बाजार में तहलका मचाकर रख दिया था । नमिता जब कैटलाग देखती है तो देखती ही रह जाती है- "मुखपृष्ठ पर नजर पड़ते ही अपनी छवि पर

आत्ममुग्ध हो उठी। आत्माभिमान से दीप्त राजपूताने की युवराज्ञी क्या वही है ! दस्तबंद और कंगनों से खनकती नाजुक कलाइयां क्या उसके अपने ही हाथ है ? सीतारामी और कंठे से आवृत चंदन के तने-सी तनी गदगद स्वयं उसी की है ! वाकई, क्या वह इतनी खूबसूरत है या सिद्धार्थ मेहता के कौशल का कमाल मात्र हैं उनके चित्र !"[53] जिस सौंदर्य को नमिता ने बचपन से अब तक देखा नहीं था वह अपने ही चित्र को देखकर मंत्रमुग्ध हो जाती है।

डॉ. उषा यादव के अनुसार, "अहं की प्रवृत्ति मनुष्य की सहज स्वाभाविक जन्मजात प्रवृत्ति है। किसी में अधिक, किसी में कम, परंतु हर किसी में होती अवश्य है।"[54]

'नाला सोपारा' में विधायक जी ने विनोद का कम्पयूटर क्लास में दाखिला करवा दिया था। वह मन लगाकर पढ़ रहा था उसकी प्रगति औरों की तुलना में बहुत अधिक थी। उसके आत्मविश्वास के बारे में वह बा से कहता है -"कंप्यूटर के सामने बैठते ही तेरे दीकरे के काया में से कोई दूसरा ही फुर्तीला नौजवान जन्म ले लेता है। आत्मविश्वास से भरा हुआ। ....चार दिन के भीतर ही मैंने आरंभिक पाठ्यक्रम की बारीकियां सीख ली हैं यानी महीने भर का कोर्स सिर्फ चार दिन में। मेरी प्रगति से यहां लोग अचम्भित है और मैं खुश।"[55] यहाँ विनोद की अहंभावना दिखाई देती है।

इसप्रकार लेखिकाने अहंभावना के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए है।

4.1.3.7. लोभपरक संवेदना-

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "जिस प्रकार का सुख या आनंद देने वाली वस्तु के संबंध में मन की ऐसी स्थिति को जिसमें उस वस्तु के अभाव की भावना होते ही प्राप्ति, सान्निध्य या रक्षा की प्रबल इच्छा जग पड़े, लोभ कहते हैं।"[56]

चित्रा मुद्गल ने 'एक जमीन अपनी' इस उपन्यास में लोभपरक संवेदना का चित्रण किया गया है। अंकिता के अम्मा की मृत्यु के बाद जो भी संपत्ति-गहने जेवरात थे बेटे-बहुओं ने बिना किसी लाज के चिता ठंडी होने से पूर्व ही बाँट लिए। अंकिता को तो कुछ नहीं चाहिए था। वह तो रिश्तेदारों की लोभपरकता देखकर ही टूट चुकी थी। अंकिता की अम्मा के अंतिम संस्कार वाली रात ही उसकी भाभियां संपत्ति के बंटवारे को लेकर भीड़ गई। ताऊजी ने उनका साथ दिया ताकि पुरानी रंजिशों का हिसाब चुकता हो। वैसे तो उन्होंने इनकी बहुत संपत्ति हड़प ली थी, अब इनके परिवार में आग लगाकर तमाशा देखने की मंशा वे रखे हुए थे। रीना भाभी

ने सभी को बताया की करधनी और बुंदे बँटेंगे नहीं ये अम्मा ने बिट्टी के लिए रखें है तब काफी हो-हल्ला मच गया। दोनों भाभियाँ कुढ़ने लगी। अंकिता उठकर जाने लगी तब भैया ने कहा –“जिसकी सास कुटुंब की प्रतिष्ठा पर आंच न आने देने की लड़ाई पूरे जीवन-भर लड़ती रही, आज संबंधियों के सामने उन पैबंदों को उधेड़कर आपने अपनी ननद को नंगा नहीं किया, भाभीजी, स्वयं को किया है ! इतना दंद-फंद बुनने की क्या जरूरत थी? चुपचाप कान में कह देतीं…आप अम्मा की मृत्यु का शोक मनाने नहीं, बंटवारा लेने आई हैं…हम बेधड़क पेटियों की चाभी आपको सौंप देते…कम से कम उन बातों की रक्षा तो हो सकती थी, जिनकी परवाह अम्मा को जीवन-भर रही…”[57] आज के युग में व्यावहारिकता के लिए रिश्ते निभाएँ जाते है। संपत्ति को पाना उनका मुख्य उद्देश्य होता है।

वस्तु के अभाव की भावना होते ही वस्तु को पाने की प्रबल इच्छा ही लोभ कहलाती है। ‘गिलिगडु’ उपन्यास में चित्रा जी ने लोभपरक संवेदना पर प्रकाश डाला है। इस उपन्यास में दोनों वृद्धों के बच्चे संपत्ति हेतु लोभ दर्शाते हैं। बहू सुनयना को अम्मी का अलमारी से कीमती साड़ियां तो बेटी गहने माँगती है। “बहू सुनयना की यह भी इच्छा है और नरेंद्र को भी उसकी बात उचित लग रही है कि अम्मा की गोदरेज की अलमारी में टंगी उनकी कीमती सिल्क की साड़ियां, शालें आदि सार-संभाल के अभाव में टंगे-टंगे गल सकती हैं। बल्कि उनका इस्तेमाल हो तो और भी अच्छा है। सुनयना शौक से पहन लेगी। अम्मा जीवित थीं तो सुनयना से लगातार आग्रह करती थीं कि अब इतनी कीमती साड़ियां उनके किस काम की। इनकी असली हकदार सुनयना ही है।”[58]

किसी वस्तु को अपनी ना हो तो भी किसी ना किसी हथकंडे पाने की चाह को लोभ कहते है। कर्नल स्वामी के तीनों बेटे को उन्होंने गाजियाबाद प्लाट बेचकर फ्लैट ले ने मदद की थी। अब बेटे फ्लैट से ऊब चुके थे। वे अपने-अपने बंगले बनाना चाह रहे थे। उनके मन में लोभ आ गया कि नोएडा वाला फ्लैट बेच दे तो काफी रकम मिलेगी। तीनों बाँट लेंगे और बंगले बनाएंगे -“कर्नल स्वामी पहले ही राजनगर स्थित गाजियाबाद वाले कीमती प्लाट को बेचकर उन्हें फ्लैट खरीदने में मदद कर चुके थे। श्रीनारायण का प्रस्ताव उन्होंने ठुकरा दिया। क्रुद्ध श्रीनारायण ने पिता पर हाथ उठा दिया।”[59]

आज के संतान अपना इच्छा की पूर्ति न होने पर अपने माता-पिता मारने-पिटने से भी नहीं हिचकते। नाहि उनके अभाव के बारे में उनको कोई मलाल है बल्कि वह सिर्फ सब हथियाने की पूरी कोशिश करते हैं।

4.1.3.8 दैन्यपरक संवेदना :

दीनता दर्शानेवाली घटना या प्रसंग से दैन्यपरक संवेदना उत्पन्न होती है। 'एक जमीन अपनी' में लेखिका ने दैन्यपरक संवेदना दर्शाते घटना का वर्णन किया है –

'एक जमीन अपनी' में मेहता की पत्नी ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली। उसके पोस्टमार्टम के समय शव घर के बाहर सभी उपस्थित थे। अंकिता के कार्यालय में फोन आने की वजह से सभी लोग पहुँच गये थे। मेहता बिजली के खंभे के सहारे टिका गुमसुम खड़ा था- अस्तव्यस्त, दीर्घ कारावास से छूटे हुए कैदी सदृश। किसी का साहस नहीं हो रहा था उसका ढ़ाढस बंधाने के लिए। उसकी दैन्यावस्था देखकर सभी उससे दूर ही खड़े थे। सलीम हिम्मत करता है –"उसने आगे बढ़कर उसके कंधे पर आत्मीयता से हाथ रख दिया। मेहता की सूखी आंखें सलीम की ओर घूमीं। उसने अपने इर्द-गिर्द समस्त सहकर्मियों को देखा, फिर अचानक वह कुल्हाड़ी-खाए वृक्ष की तरह सलीम के कंधे ढह पड़ा। किसी से कुछ नहीं कहा गया। कुछ पलों बाद स्वयं ही अपने को समेटता हुआ मेहता अलीम के कंधों से अलग हो पुनः खंभे से टिक गया।"[60] अपने से कोई हमेशा के लिए दूर होता है परंतु वह अपना ही सगा हो तो वह उसकी कमी को हर पल महसूस करता है।

किसी प्रसंग से व्यक्ति अपनी दीनता प्रकट करता है या प्रकट होती है तभी वहां दैन्यपरक संवेदना को देखा जाता है। करुणा एवं दीनता में प्रसंगारुप सूक्ष्म अंतर पाया जाता है। डॉ.उषा यादव के अनुसार, "अपनी लघुता के परिप्रेक्ष्य में उत्पन्न होने वाला भाव दीनता है। आराध्य के श्री चरणों में निवेदित भक्त की दैन्यता स्वयंसिद्ध है। दूसरों की करुणा जगाने के लिए व्यक्ति अपनी दीनता का प्रदर्शन करता है।"[61]

'नाला सोपारा' चंपाबाई हिजड़ों को लेकर विनोद के घर आई थी उसे साथ ले जाने के लिए क्योंकि उसे खबर मिली थी कि यहां जननांग विकलांग किशोर रहता है। पर मां और पिताजी ने मंजुल को आगे कर दिया था। चंपाबाई समझ गई थी कि वो वाले बच्चे का छिपा दिया गया है। वह फिर आने की धमकी देकर चली गई। मंजुल ने सारी बाते विनोद को बता दी थी-"रात भर बा, तू मुझे अपनी छाती से सटाए सिसकियां

भरती रही थी। तेरी छाती में सिर दुबकाए हुए मुझे मंजुल के जन्म के समय तेरी कही बात स्मरण हो आई थी। मंजुल को गोद में संभालते हुए मैंने तुझसे प्रश्न किया था, 'मेरे नुन्नू क्यों नहीं है, बा ? तो तूने मुझे बहलाया था। 'बच्चे के जन्मते ही आटे की नुन्नू बनाकर लगाना पड़ता है। नर्स भूल गयी तुझे लगाना। लगवा देंगे तुझे भी।"[62] मासूम बालक का किन्नरों के व्यवहार तथा शरीर के ढ़ाँचे से बेखबर की दैन्यावस्था का चित्रण किया गया है।

दैन्यपरक अवस्था वर्तमान युग में वृद्धत्व की प्रप्तिनिधिक अवस्था है। उच्चवर्गीय हो या निम्नवर्गीय विविध कारणों से वृद्धों के जीवन में उन्हें कई बार दैन्यपरक अवस्था से गुजरना पड़ता है। 'गिलिगडु' तो दो समदुःखी उच्चवर्गीय मित्रों की दुःखभरी दास्तान है। अतः दैन्यपरक संवेदना निम्नवर्गीय अंकित होती है।

'गिलिगडु' उपन्यास में कानपुर से दिल्ली बाबू जसवंसिंह आ तो गए पर उनकी हालत टॉमी से भी बदकर कर दी गई। कमरे के बदले उन्हें बालकनी नसीब आई। खाने-पिलाने की व्यवस्था भी बहू के मूड एवं समयानुसार रहती। जो बच जाए कभी-कभी सदुपयोग के नाम पर उनको परोसा जाता। उनकी पत्नी उन्हें कभी फ्रिज में रखा बासी-कूसी उन्हें नहीं खिलाया था। ताजी तुरंत सेंकी रोटी उन्हें पत्नी देती थी ताकि खाने में आसानी हो और हाजमे की समस्या ना खड़ी हो, पर बहू के राज में उसकी मनमर्जी के हिसाब से नाश्ता-खाना मिलता था-"दिल्ली आने के हफ्ते-भर बाद बाबू जसवंत सिंह को लगा था कि उन्हें नरेंद्र से अपनी आपत्ति प्रकट कर देनी चाहिए। खाने में कुछ भी खाना उनके लिए संभव नहीं।...जवाब में नरेंद्र के लंबे-चौड़े भाषण ने उन्हें नसीहत पिलाई कि आइंदा वे अपनी पसंद की गुंजाइश इस घर में न ढूंढे तो बेहतर है। नरेंद्र की सलाह वाजिब लगी कि उन्हें वक्त की मारामारी देख वक्त के साथ चलने का अभ्यास डालना चाहिए।"[63]

हरिहर दुबे बाबू जसवंत सिंह के बालमित्र थे। वे अपने बेटे के साथ कोलकाता रहते थे। उन्हें भी अपनी मिट्टी से बहुत लगाव था। मोतियाबिंद का ऑपरेशन होते ही वे अपने पुत्र से लड़-झगड़ कर कानपुर अपने गांव आए थे। वे अकेले ही रहते थे। दो तीन दिन वे घर से बाहर ही नहीं निकले-"बदबू ने पड़ोसियों को परेशान किया तब ! पीढ़ी बदल गई थी 'मंगल भवन' की। कब आना-जाना था, किसी को कोई लेना-देना ही नहीं था। लाश खटिया के नीचे पड़ी मिली थी हरिहर की। एक हाथ सीने पर दबा हुआ था। पोस्टमार्टम से पता लगा कि जबरदस्त ह्दयघात हुआ था उसे। दरवाजे की सांकल खोलने खटिया से उठाना चाहा होगा-ढेर हो गया।"[64]

आधुनिकता के होड़ में संतानें स्व के बारे में सोचती हैं। माता-पिता की पसंद-नापसंद से उनको कोई

लेना देना नहीं है। जो माता-पिता अपने बच्चों के भविष्य के लिए अपने वर्तमान का होम कर देते हैं। परंतु यही बच्चे उनको बूढ़ापे में सहारा देने के समय उनको अपने से दूर करते हैं या उनसे खुद दूर होते हैं।

इस प्रकार से दैनपरक संवेदना के अनेक उदाहरण उपन्यासों में पाए गए हैं।

4.3.1.9. भयपरक संवेदना:

जब व्यक्ति अचानक किसी संकट की कल्पना करता है तब भयपरक संवेदना पाई जाती है। किसी डरावनी वस्तु, प्राणी या स्थिति की वजह से भी भय उत्पन्न होता है।

'एक जमीन अपनी' में मेहता का पत्नी आत्महत्या करती है। तो कार्यालय के सभी सदस्य उसे मिलने के लिए जाते हैं। तिलक ने मेहता को सांत्वना दी। उसकी पीठ थपथपाई और उसे हिम्मत से काम लेने को कहा। रुंधे कंठ से मेहता ने रात के भयानक दृश्य का वर्णन किया- "रात को जब वह पेशाब करने के लिए उठा, फ्रिज का दरवाजा खुला देख उसे अचंभा हुआ। उसने सोचा, शायद पानी-वानी पीने के लिए कोकिला ने फ्रिज खोला होगा और नींद की बोझिलता में उसे बंद करना भूल गई होगी। फ्रिज का दरवाजा बंद कर यूं ही कमरे की बत्ती का स्वीच दबा दिया। लेकिन वो विभत्स दृश्य उसने देखा, भय से उसकी आंखें फट पड़ी। उसकी पत्नी कोकिला छत के पंखे से लटकी हुई थी।"[65] मृत्यु अपरिहार्य है परंतु अपने प्रियजनों की बात जब आती है तो उस दु:ख और भय को झेल नहीं पाते।

भय अपने व्यक्ति को पीड़ा में देखकर भी होता है। 'आवां' उपन्यास में नमिता के पिताजी जिंदगी के आखिरी पल गिन रहें है। नर्स को मनाने के बाद उसने नमिता को बाबूजी को देखने की इजाजत दी। नमिता वार्ड के भीतर गई पर वहाँ का विदारक दृश्य देखकर वह डर गई-"वार्ड के भीतर के विदारक दृश्य ने दहशत से निचोड़ लिया। महसूस हुआ-रास्ता भटक वह जैसे किसी कब्रिस्तान में पहुंच गई हो, जहां कब्रों में दफन हुए मुरदे कब्रों से निकल वार्ड के बिस्तरों पर आ लेटे हो। सफेद चादरों में लिपट। ग्लूकोज की बोतलें और आक्सीजन मास्क चढ़ाए। जीवन की कुछ घड़ियां मौत से उधार मांगते।"[66]

भारतीय संस्कृति में संयुक्त परिवार होते थे। पर आज वह सब कल्पना मात्र है। जो बुजुर्ग है उनको अपने परिवार, बच्चों की कमी महसूस होती है परंतु बच्चों के पास उनको देने के लिए समय नहीं होता। इस

कारण वे अकेलेपन तथा मृत्यु के भय से अपना जीवन व्यथित करते हैं। कभी-कभी इन कारणों से उनको अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है।

'गिलिगडु' उपन्यास में भयपरक संवेदना दर्शाते प्रसंग पाया गया है। जसवंत सिंह के बालसखा हरिहर दुबे अकेले रहते थे। एक रात उन्हें हृदयघात का झटका आया। वे पलंग से गिर पड़े किसी ने नहीं देखा। जब बदबू चारों ओर फैली तब दरवाजा तोड़ भीतर का दृश्य देख सभी भयभीत हो गए। वह दृश्य और बदबू बाबू जसवंत सिंह के दिमाग में घर कर गई। इस अवस्था को उन्होंने बहुत गंभीरता से लिया। वे बीमार हो गए- "मनोचिकित्सक ने उनकी समस्याओं को विश्लेषित किया। मामूली-सी मानसिक परेशानी है। दरअसल बदबू कुछ और नहीं-भय है। अकेलेपन का भय। उन्हें परिवर्तन की जरूरत है। कुछ दिन बेटे के पास दिल्ली रह आएं। कुछ दिन क्यों, वहीं क्यों नहीं रहते। इस उम्र में अकेले रहने में कोई तुक नहीं।"[67]

इस तरह चित्राजी ने उपन्यासों में भयपरक संवेदना के कतिपय प्रसंगों का वर्णन किया है।

4.1.4. मानवेतर प्रेमपरक संवेदना

हिंदी साहित्य के उपन्यासों में मानवेतर प्रेमपरक संवेदना के प्रमुखत: दो रूप दिखाई पड़ते हैं -

1. मनुष्य एवं अचेतन वस्तुओं का सहसंबंध
2. मानव का मानवेतर चेतन प्राणियों से सहसंबंध

4.1.4.1. मनुष्य एवं अचेतन वस्तुओं का सहसंबंध:

मनुष्य का मनुष्य से संबंध में जो रिश्ता है वह अनोखा रहता ही है परंतु मनुष्य का अचेतन वस्तुओं के प्रति भी रागात्मक संबंध भी संवेदना को प्रस्फुटित करता है।

'एक जमीन अपनी' इस उपन्यास में चित्राजी ने मनुष्य का अचेतन वस्तुओं के साथ सहसंबंध प्रस्थापित करता उदाहरण चित्रित किया है।

पत्र का संबंध मनुष्य के दिल से होता है। पत्र चाहे किसी का भी हो उसे फाड़कर-खोलकर कब-कब उसे देखे-पढ़े ? यह भावना यह लगाव मन में उपजता है क्योंकि वह अचेतन पत्र या चिट्ठी मन में, दिल में-दिमाग

में चेतना जागृत कर देती है, एक उत्साह भर देती है। कभी-कभी दुःखद समाचार पाकर दुःख भी होता है पर उत्सुकता रहती ही है। आज इस यंत्र या जेट या संगणक युग में भ्रमण ध्वनि के कारण पत्र की महत्ता कम हो गई है। अंकिता का किस्सा देखते ही बनता है–"घर का दरवाजा खोलते ही फर्श पर बिखरी हुई डाक पर नजर पड़ी उसकी। चेहरा खिल आया। दरअसल, पत्र अगर अंतरंगों के हों तो उन्हें प्राप्त कर वह इस महानगर में अपने को उन कुछेक अपनो के सान्निध्य-सुख से प्लावित अनुभव करती है, जिनका अनुभव उसे यहां अकसर और उपेक्षित महसूस कराता रहता है। पत्र उठाकर उठा उन्हें गौर से उलट-पलटकर देखने लगी।"[68]

मनुष्य का अचेतन वस्तुओं का सहसंबंध सदैव भाता है। 'आवां' उपन्यास में इससे संबंधित अनेक उदाहरण पाए गए है। कुछ उदाहरण हम निम्नवत देखते हैं-

नमिता के घर उसके दादीजी का पानदान था, जिससे बाबूजी को भी खासा लगाव था। कुंती मौसी के लड़के इंद्र भैया को एँटीक पीस एवं कलात्मक वस्तुओं में बहुत लगाव था। पानदान देखते ही वह विस्मित एवं प्रसन्न हुआ-"'गजब का एंटीक पीस है, मौसी। कहां नजर आती है अब मुगलों के जमाने की ऐसी महीन मुरादाबादी कारीगरी !' बोलते हुए अभिभूत मुन्नू की आंखें सिकुड़कर सीपी हो उठीं, 'सच पूछो तो मौसी, मुगलों का शासन क्या खत्म हुआ कि नक्काशी, तारकशी, पच्चीकारी, फूलदारी, जरदोजी की कला चौपट हो गई।"[69]

एँटीक पीस एवं कलात्मक वस्तुओं का एक अपना ही महत्व रहता है। वे हमारी प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता की झलक अपने अस्तित्व के माध्यम से दिखाते है।

'गिलिगडु' उपन्यास में अचेतन के प्रति संवेदनाएं पाई गई है। इसके अंतर्गत निसर्ग, पेड़-पौधे, विविध दृश्य, स्थलों के प्रति प्रेमपरक संवेदना पाई गई है।

कानपुर से बाबू जसवंत सिंह को काफी लगाव था। वे कई बड़े शहरों में तबादले के कारण नौकरी कर आए पर घर बनाया तो कानपुर में ही। "जवाहर नगर में बहुत पहले पांच सौ गज का प्लाट खरीद लिया था। उसी पर योजनानुसार घर बनवाते रहे। संयोग से घर के सामने नगरपालिका ने शानदार बगीचा बनवा दिया। सोने पर सुहागा हो गया। बगीचे के बीचोबीच एक पुराना बरगद का पेड़ है। जिसे नगरपालिका ने ज्यों का त्यों

छोड़ रखा है। सैकड़ों पक्षियों का शरणस्थल है बरगद ! सुबह-सांझ चारों और गूंजता उनका कलरव भीतर ऐसे सुख की सृष्टि कर जाता है कि मन के मलाल धुल-पुछ जाते हैं।"[70]

चित्रा जी ने 'पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा' उपन्यास में आधुनिक गैजेटों का परिचय कराया है। जिनमें कंप्यूटर, टचस्क्रिन मोबाईल, ई-टिकेट आदि के उपयोग के बारे में बताया है। साथ ही चित्रा जी ने कंप्यूटर के अतिवापर के दुष्परिणामों पर भी प्रकाश डाला है। माँ अपने पत्रों द्वारा विनोद को बताती है कि, "घंटों मैंने तेरे मोटा भाई को लैपटॉप से चिपके हुए देखा है। माना ज्ञान का भंडार है कंप्यूटर। ज्ञान बढ़ाता है। पन ज्ञान बापरो भी न, सूखा ज्ञान किस काम का ? सूखा ज्ञान आंख की पट्टी भर होता है।"[71]

वर्तमान युग में मोबाइल फोन को अनन्य साधारण महत्व प्राप्त हो गया है। तब भी पूनम जोशी मोबाइल के महत्व को जानती थी और मोबाइल ने न जाने कितने गैजेट को निरुपयोगी ठहरा दिया है। इसलिए वह विनोद को मोबाइल खरीदने कहती है। "मोबाइल भी जरूरी है। हैऽऽऽ, मगर उतना जरूरी नहीं लगता मुझे। पुरानी जिद्द है पूनम जोशी जी की। ठीक है। मर्जी अपनी, घड़ी पहले ले लो, लेकिन मोबाइल में टाइम, अलारम…अलार्म…हां, हां वही और एस.एम.एस. सभी कुछ और …और, एफ.एम. रेडियो सुना जा सकता है।"[72]

इन उपन्यासों द्वारा चित्राजी ने मनुष्य का जड वस्तुओं का अंतर संबंध दर्शाते कई चित्र चित्रित किए हैं। चाहे मुंबई का मौसम हो या ट्रैफिक, लोकल ट्रेन, विविध आभूषण, समुद्र, वृक्ष, समुद्र तट का प्रदूषण, वर्षा, आधुनिक उपकरण आदि का वर्णन बहुत ही भावप्रवण रूप से किया है।

4.1.4.2. मानव का मानवेतर चेतन प्राणियों से सहसंबंध

मनुष्य का मानव के अतिरिक्त प्राणियों से रागात्मक संबंध के चित्रण भी चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में प्रस्तुत होता है।

'गिलिगडु' उपन्यास में बाबू जसवंत सिंह का नरेंद्र के कुत्ते टॉमी, जिसमें सोसाइटी में उनकी शान है से अभिन्न संबंध रहा है। बाबू जसवंत सिंह के साथ वक्त गुजारने या बाते करने किसी के पास समय नहीं था। केवल टॉमी की फारिग कराने एवं सैर पर लेकर जाने की जिम्मेदारी उनपर होने के कारण दोनों एक-दूसरे के साथ होते है। वैसे पारिवारिक सदस्यों की तरह टॉमी भी बाबू जसवंत सिंह पर रौब झाड़ने से नहीं चूकता है।

बाबू जसवंत सिंह टॉमी को लेकर फारिग कराने ले जाते है। व पुलिया पर कर्नल स्वामी का इंतजार करते। पर टॉमी को फारिग होने की गड़बड़ है। "जबर टॉमी की जबराई पर बाबू जसवंत सिंह को गुस्सा आ रहा। कमबख्त अडोल नहीं खड़ा रह सकता। धाय हाथ तुड़ाता-सा सूऽऽ सूऽऽ जमीन सूंघ रहा है। धाय बैलाया-सा खुरों से मिट्टी खुरचने लगता है। धाय गले से अजिबोगरीब आवाजें निकालते हुए छूट भागने की मुद्रा अख्तियार कर उन्हें डराने लगता कि अब वह उन्हें घसीटे बिना नहीं मानने का।"[73]

बहू सुनयना पड़ोसी के कहने पर कि उनके बेटी के सामने बाबू जसवंत सिंह ने अश्लील हाव-भाव किए। तब उनपर लगाए आरोप से दु:खी हो रोते हुए बिस्तर पर पड़े रहे। नरेंद्र ने कार्यालय से लौटते हुए कुछ नहीं कहा, बात ही नहीं की। शाम की चाय निलय रखकर गया पर कुछ गर्मजोशी नहीं थी। उनकी हालत देख केवल टॉमी ने हमदर्दी जतायी-"टॉमी अलबत्ता कुबेरिया उन्हें बिस्तर में पड़ा देख कुंकुआता रहा। कुंकुआहट में फर्क है। जिज्ञासा है। लगा कि पशु होकर भी उसका दीन शेष है। खाली बात यह कि टॉमी की जंजीर इतनी छोटी क्यों है ! लंबी होगी तो उन्हें यकीन है कि वह उन तक पहुंच उन्हें अपने पंजों से छूता-उठो, मुझे शाम का राऊंड नहीं दिलाओगे ?"[74] आज मनुष्य मनुष्य की भावनाएँ नहीं समझता है। पशु ही है जो मनुष्य की हृदय की आवाज, उसके दर्द को समझते हैं।

'एक जमीन अपनी' उपन्यास में चित्राजी ने मानव का मानवेतर चेतन प्राणियों से सहसंबंध न के बराबर ही चित्रित किया है। केवल शिवाजी पार्क के समुद्र तट का वर्णन करते हुए उन्होंने दौड़ते कुत्तों के पीछे घिसटते बूढ़ो का वर्णन किया है इस वाक्यांश में ही किया है। उन्होंने यहां बताया है कि घर के पालतू जानवरों को घुमाने की जिम्मेवारी वृद्धों को दी जाती है, भले वे जानवर उन्हें संभले या नहीं। यहां लेखिका का वाक्य मर्म को भेद जाता है कि बूढ़े कुत्तों नहीं बल्कि कुत्ते बूढ़ों को खींच रहें है, फिर जबरदस्ती सही बूढ़ों को अक्सर पालतू जानवरों से ही लगाव बनाना पड़ता है। उनसे बतियाना पड़ता है। वह एक दृश्य में ही चित्राजी ने 'गागर में सागर भरने' वाली उक्ति को सत्य साबित कर दिया है। "दस-बारह मिनट चल लो तो शिवाजी पार्क का सागर तट है -भीड़ भरा। तट करीब…स्टलों को धोते, सफाई करते उनके मालिक और दौड़ते कुत्तों के पीछे घिसटते बूढ़े।"[75]

दोनों ही परिस्थितियों में देखा जाए तो आज की युवा-पीढ़ी बुजुर्गों को अपने पास अपनत्व तथा उनको प्रेम देने मंशा से नहीं रख रही है बल्कि अपने घर के कुत्तों की देखभाल तथा उसे घुमाने ले जाने के लिए रखती

है। इस प्रकार से बुजुर्गों की स्थिति जानवरों से भी बदतर हो गई है।

'पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा' चेतन प्राणियों से मनुष्य का सहसंबंध दर्शाती घटना का वर्णन इस उपन्यास में पाया गया। किन्नरों के ठिकाने पर भोजन साथ नहीं होता। भोजन सबका एक साथ बनता है पर सभी अपने-अपने समय से खाते है। सायरा को मैगी पसंद है। वह मैगी के इकट्ठे पैकेट्स वह खरीदकर रखती है और कोई ना ले इसलिए उन्हें गिनते भी रहती है। एकाध गायब होने पर गाली गलोज पर उतरती। उसे तंग करने हेतु कुछ लोग पैकेटों पर हाथ सफाई करते रहते हैं -"पूनम जोशी को तो मैंने अक्सर देखा है। मुहल्ले के कुत्तों के ठिकाने का मुहार धरते ही वह मैगी के दो-चार पैकेट खोल देती है। कुत्ते छीना-झपटी पर उतर आते हैं। तालियां बजा-बजाकर वह बच्चों सी खुश हो उठती है।"[76] इस उपन्यास में लेखिका ने भूत दया करते हुए पूनम जोशी को दर्शाया है। वह स्वयं मैगी न खाकर गली के लावारिस कुत्तों को मैगी खिलाकर प्रसन्न होती है।

मनुष्य का जानवरों के प्रति लगाव एक अलग ही रागात्मक संवेदना को दिखाता है। जहाँ वे उनके सुख-दु:ख से जुड़कर जावनरों को अपना समझकर अपना प्रेम व्यक्त करते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि चित्राजी ने अपने चारों उपन्यासों में मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाओं से अनेक प्रसंगों को संवारा है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि लेखिका ने अपने उपन्यासों में विविध संवेदनाओं के सुंदरता से सजीव चित्रण किया है। चाहे प्रणय हो या वियोग, ईर्ष्या हो या घृणा या मानवेतर प्रेमपरक संवेदना उन्होंने पाठकों को पूर्णतः उसमें समाविष्ट करने में सफलता पाई है। इनमें मानवीय संवेदनाओं की सभी छँटाएँ दिखाई पड़ती है।

4.2 सुखात्मक संवेदना :

सुखात्मक संवेदना व्यक्तिनिहाय परिवर्तित होती है। किसी को दूसरों के सुख को देखकर सुख होता है, किसी को मनचाही वस्तु पाकर सुख होता है। कोई रूखा-सुखा खाकर सुख की अनुभूति करता है तो किसी को विशिष्ट पकवान पाकर ही सुख मिलता है।

चित्राजी ने 'एक जमीन अपनी' उपन्यास में सुखात्मक संवेदना के अभिव्यक्ति व्यक्त करते प्रसंग पाए गए है। हरिन्द्र अपने पुत्र अंशुल की करतूतों का वर्णन अंकिता से करता है। तब उसकी सुखात्मक संवेदना देखने ही बनती है। वैसे भी नन्हा बालक कोई सामान्य परिवार का हो या राम-कृष्ण उनकी बाल-लीलाएं

अपरंपार होती है। उनकी सही-गलत, अच्छी-बुरी प्रत्येक कृति से अपरिमित सुख मिलता है-"खूब दुष्ट हो गया है...मजेदार बात बताऊं...मैं चाहे किसी भी वक्त घर पहुंचूँ, मेरी आवाज सुनते ही पट्ठा फट से उठकर बैठ जाएगा और, अंकू, जब तक मैं उससे घंटे-डेढ़ घंटे खेल नहीं लेता, सोता नहीं। 'पापा' कहना सीख गया है...छोटे-छोटे फूले हुए-से ओठों को सप्रयास गोल बनाकर वह इस तरह से पापा पुकारता है कि लगता है, एक-एक 'पा' ओठों के कोनों से रिसती हुई लार के संग अब फिसला, तब फिसला..."[77]

'आवां' में नमिता नौकरी की तलाश में दर-दर भटकती है। उसकी भेंट लोकल ट्रेन में अंजना वासवानी से होने के बाद वह उससे मिलती है। मैडम उसकी सारी जानकारी जान लेने के बाद उसे नौकरी की खबर देती है- "'तुम हमारे साथ काम कर रही हो। कल से ही। खुश ?' कानों पर विश्वास नहीं हुआ। मैडम के शब्द उच्चारते होंठ नहीं देख पाई जो !...'किन शब्दों में मैं आभार प्रकट करूं, मैम !'...'साढ़े तीन हजार रुपये महीने से बात चल जाएगा तुम्हारा ?' 'साढ़े तीन हजार...?' 'बहुत ज्यादा हैं। मजाक तो नहीं कर रहीं आप?'"[78] (आवां, चित्रा मुद्गल, पृ.166-167) जिन पर घर की जिम्मेदारी होती है उनको नौकरी का मिलना सुख देता है।

सुख की परिभाषा व्यक्तिनिहाय परिवर्तित होती है। कोई छोटी-सी बातों में सुख का अनुभव करता है। तो कोई छोटी सी बातों में सुख का अनुभव करता है। तो कोई बड़ी सी इच्छा रखता है। सुख एक वैयक्तिक अनुभूति है। 'गिलिगडु' का प्रसंग सुखात्मक संवेदना को दर्शाता है।

कर्नल स्वामी एवं बाबू जसवंत सिंह सैर करते-करते प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद ले रहे है। खेतों के बीच मैनाओं को देखकर कर्नल जसवंत सिंह से कहते है। गिलि माने चिडिया। वे अपनी पोतियों की जानकारी देते हुए कहते है-"'वह तो है।' कर्नल स्वामी मुंह भींचे हुए ठुनकती हँसी हँसे। 'लेकिन मेरी गिलि गडु हैं मेरी जुडवां पोतियां! चहकती-फुदकती, मस्ती करती, हुड़दंगें मचाती कुमुदनी और कान्यायिनी...उफ् कैसी धमाल हैं दोनों ! पुछिए मत।"[79] दादा-दादी तथा नाना-नानी अपने पोते-पोतियों को देखकर हमेशा हर्ष महसूस करते है। उनका प्यार अपने नातीन के लिए एक सुखात्मक अनुभूति होती है। वे गम में भी बच्चों को देखकर खिलखिलाकर हँसते हैं।

'पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा' में विनोद को सीखने की प्रबल इच्छा होती है। जब विधायकजी विनोद से कम्प्यूटर सीखने की इच्छा है क्या पूछते है तब वह अवसर मिला तो जरूर सीखने की बात कहता है। उसे बहुत खुशी होती है-"मैं हवा में उड़ रहा था। मेरे ओंठ खुले रह गए, बा। मेरे विस्मय को उन्होंने यथावत

टंगे रहने दिया। 'यहां, लाजपत नगर में एक बढ़िया कंप्यूटर क्लासेस चलती हैं। पैसा भर कर तुम्हारा दाखिला करवाए देते हैं इसी हफ्ते।...हवा में तैरते हुए मैं नीचे नहीं आना चाहता था, बा ! कंप्यूटर मेरी आंखों के सामने था और मेरी उंगलियां उसके 'की बोर्ड' पर नर्तन कर रही थीं चपलता से।"[80] किन्नर होने के कारण विनोद ने परिवार, समाज सबसे उपेक्षा ही सही परंतु विधायक उसकी प्रतिभा को देखकर उसे अवसर प्रदान करते है तब विनोद को सुख का अनुभव होता है।

सुखात्मक संवेदना का विस्तृत अध्ययन निम्नवत् किया जा सकता है-

4.2.1. पारिवारिक जीवन से संबंधित:

पारिवारिक जीवन सुचारु रुप से संचालित हो रहा हो तो सुखों का अभाव नहीं होता। प्रत्येक प्रसंग पर सुख की वर्षा होती है।

नन्हे बालक एवं शिशुओं की उपस्थिति पारिवारिक जीवन को चार चांद लगा देती है। हरींद्र अंकिता को अपने पुत्र की करतूतों का बयान करते हुए परम सुख का अहसास पाता है-"पूरी दिनचर्या में शायद...शायद उतना ही समय नितांत मेरा होता है, जब मैं अंशुल के साथ खेल रहा होता हूं !...अब उसे मैंने अंशुल कहकर पुकारना शुरू कर दिया है। मेरी देखा-देखी सभी उसे नाम से पुकारने लगे हैं...सिवा उसकी नानी के...उनके लिए वह मुन्नू ही बना रहेगा।"[81]

पारिवारिक जीवन से सबद्ध संवेदनाओं को पुनश्च तीन भागों में वर्गीकृत कर हम सुखात्मक संवेदना का विस्तृत अध्ययन निम्नवत् शीर्षकों में कर सकते हैं –

1. दांपत्य जीवन
2. प्रेमविवाह
3. शिक्षा

4.2.1.1 दांपत्य जीवन:

सुखी दांपत्य जीवन सुखात्मक संवेदना की जननी है। दांपत्य जीवन जितना सफल होगा उतनी ही सुख की प्राप्त अधिक मानी जाती है। 'गिलिगडु' में बाबू जसवंत सिंह का दांपत्य जीवन बहुत सफल रहा। उनकी पत्नी बहुत समझदार एवं उनका खयाल रखने वाली थी। किसी चीज की कमी नहीं पड़ने देती थी। वह

एक कुशल प्रबंधिका थी। वे उनको- “ सुघड़ता का लोहा मानते हैं और मानते रहेंगे। अलाउद्दीन का चिराग थी चुस्ती-फुरती में। फरमाइश हुई नहीं कि पलक झपकते चीज हाजिर ”[82]

पति-पत्नी का रिश्ता सुखात्मक हो तो दांपत्य जीवन स्वर्ग होता है अन्यथा नरक। सुखी दांपत्य जीवन ही सुखी पारिवारिक जीवन की नींव है। जहां पति-पत्नी एक दूजे की भावनाओं का आदर करते हो सभी निर्णय मिल-जुलकर लेते हो तो उनका जीवन सुखात्मक संवेदनाओं से भर जाता है।

‘नाला सोपारा’ में विनोद के माता-पिता अपने तीनों बेटे एवं बहू के साथ रहते थे। माँ घर का ध्यान रखती, पिता किराना दुकान चलाते थे। वे संपन्न परिवार से थे। पिताजी को इलेक्ट्रॉनिक की नई-नई चीजों का प्रयोग करने का शौक था। एक बार वे इलेक्ट्रॉनिक घंटी खरीद लाए। पत्नी के कमरे में लगायी एवं बटन दबाकर पत्नी को बुलाते – “एक शाम दुकान से लौटते हुए पप्पा इलेक्टॉनिक की घंटी खरीद लाए थे। उसको तेरे कमरे की मेज पर रख दिया था। जब तुझे पास बुलाना होता था, अपने कमरे में बैठे हुए उसका बटन उठाकर दबा देते थे और तू दौड़ी चली आती थी, ‘फिजूल खेल सूझता है। किसलिए बुलाया ? चपरासी हूं क्या? ’‘मेथी वाला खाखरा खाने को जी हो रहा है, आधा कप मसाले वाली चाय के साथ। मिलेगी।’ तू विनोद पर उतर आती। घंटी बजाकर बुलाते रहते हो मुझको , नाम याद है मेरा ?”[83]

प्रेम और विश्वास के बिना सुखी दांपत्य जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विनोद की माताजी विनोद की घर वापसी के लिए अंत में पति को मना लेती है। इतना ही नहीं उसे संपत्ति में भी उत्तराधिकारी बनाती है और अपना क्रियाकर्म विनोद के आने तक रोकने की बात भी करती है – “उसे मैं यह जानकारी भी देना चाहती हूं- उसके पिताश्री हरीद्र शाह ने अपनी रजिस्टर्ड वसीयत में अपनी समूची संपत्ति को तीनों उत्तराधिकारी बेटों- सिद्धार्थ शाह, विनोद शाह, मंजुल शाह को बराबर का हिस्सेदार बनाया है।”[84] पति-पत्नी का यहाँ पर ऐसा प्रेम दिखाई देता है जिस बच्चे को किन्नर होने के कारण घर से निष्कासित किया था उसे अंत में अपनाने का निर्णय विनोद के पिता ने लिया है।

4.2.1.2. प्रेमविवाह :

चित्राजी ने अपने उपन्यास में प्रेमविवाह का समर्थन किया है। अंकिता ने भी प्रेमविवाह किया था और नीता भी सुधीर के साथ लिव-इन-रिलेशनशीप में रहती है। अंकिता सुधांशु से प्रेम करती थी। घरवालों का इस बात को विरोध था पर वह निर्णय ले चुकी थी। अम्मा ने तो क्रोधित हो धतूरा पीस कर खा लिया था।

किसी तरह डॉक्टर ने उन्हें बचा लिया था। घरवालों को लगा कि अब तो वह अपना निर्णय बदलेगी पर वह भी मजबूर थी -"हमने रजिस्टर्ड मैरिज कर ली है…डेढ़ साल पहले ही…छिपाया इसलिए कि अगर आप लोग राजी हो जाते हैं तो कोई समस्या ही नहीं रहेगी और अगर इनकार करते हों तो हमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा।"[85]

सुधांशु के घरवालों की बातों पर अंकिता उतना ध्यान नहीं देती पर सुधांशु की उच्छृंखलताओं से उसे आहत कर दिया था। इसी कारण वह प्रेमविवाह के बावजूद भी उससे अलग होने के लिए मजबूर हो गई थी- "सुधांशु सिर्फ उसका पति ही नहीं था, प्रेमी भी था। जिसे पाने के लिए उसे उन दुर्गम पगडंडियों से गुजरना पड़ा जो जाति, धर्म, परंपरा और मान्यताओं के पहरों से गुजरती हैं। उसके अपने परिवारवालों ने उसे सदैव प्रताड़ित, लांछित किया कि उसने उनके लड़के को प्रेम के चक्कर में फांसकर उसका भविष्य ही नष्ट नहीं किया, उनके सपनों पर भी बेरहमी से गाज बरसाई है ! ऐसी विषम परिस्थितियों में वह अपन संतुलन बनाए रखती, अगर सुधांशु की अप्रत्याशित उच्छृंखलाओं ने उसे भीतर से बीन-बीनकर न कुचला होता; न पीसा होता।"[86]

प्रेम दो दिलों को जोड़ती है। प्रेम में प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे से दूर नहीं होना चाहते। वे जीवन भर साथ रहने के लिए प्रेमविवाह करते हैं।

'नाला सोपारा'विनोद के बड़े भाई सिद्धार्थ के लिए उसकी माँ ने बहुत लड़कियां देखी पर उसे कोई भी लड़की पसंद नहीं आई क्योंकि वह अपने दफ्तर में काम करने वाली सेजल से प्यार करता था और उसे उससे विवाह करना था। वह बलसाड़ से नौकरी करने ही मुम्बई में आई थी और बॉम्बे सेंट्रल वाई.एम.सी. में रह रही थी। " तूने मोटा भाई की पसंद को लेकर कोई नाराजगी नहीं जाहिर की। इतना कहा – मुझसे क्यों इतना भाग-दौड़ी करवाई। पहले ही बता देता।"[87] पहले-पहले माता-पिता बच्चों के प्रेम विवाह पर आपत्ति प्रकट करते थे। परंतु अब वे उनको खुशी-खुशी अनुमति दे देते हैं।

4.2.1.3. शिक्षा :

शिक्षा प्रगतिशील समाज का सूचक है जिसके कारण मनुष्य की उन्नति है। शिक्षा के संदर्भ में डॉ. अर्चना शर्मा का मत है, "शिक्षा किसी भी समाज के विकास, प्रगति और उन्नति का मूल है। सभी प्रकार के ज्ञान-संग्रह और मानव के चहुंमुखी विकास के सम्बद्ध होने के कारण शिक्षा मूल्यों को निर्देशित करने, गति एवं दिशा प्रदान करनेवाली सामाजिक प्रक्रिया भी है।"[88]

शिक्षा का प्रभाव सभी पर पड़ता है। शिक्षित नारी स्वावलंबी होती है। वह अपने बारे में निर्णय ले

सकती है। वह साहसी भी होती है। 'एक जमीन अपनी' में अंकिता के कार्यालय में सुगंधा कार्यरत है। वह एक चुस्त लड़की है पर सदैव गहरी उलझन में रहती है। अंकिता उसके उज्वल भविष्य हेतु मास मीडिया की पढ़ाई करने का सुझाव देती है ताकि वह शिक्षा प्राप्त कर आगे बढ़ें-"सुगंधा बडी स्निग्ध लड़की है-चुस्त। उसे सुझाव दिया है कि वह बेहतर भविष्य की सोचकर सेंट जेवियर्स कॉलेज में मास मीडिया की पढ़ाई कर ले। सांध्यकालीन कक्षाएं लगती हैं। सुविधा की आवश्यकता हुई तो वह देने के लिए तैयार है। आर्थिक मदद भी। लेकिन उसने महसूस किया है कि अपनी क्षमता और चुस्ती के बावजूद सुगंधा में भविष्य के प्रति उत्साह का अभाव है। हर वक्त किसी गहरी उलझन में डूबी हुई-सी प्रतीत होती है।"[89]

भारतीय समाज की शिक्षा के प्रति समकालीन उपन्यासों के दौर में शिक्षा के प्रति केवल लड़को को जिम्मेदार ठहराया जाता था कि लड़की को तो दूसरे परिवार में जाना है। अधिक पढ़ा लिखाकर क्या करना है? भले ही यह मानसिकता आज परिवर्तित हो गई है पर नमिता के माँ ने जैसे ही पति लकवा ग्रस्त हुए नमिता की पढ़ाई छुड़वा दी।

'आवां' उपन्यास की नायिका अपनी अधूरी शिक्षा को लेकर काफी चिंतित दर्शाई गई। जब लोकल ट्रेन में मिसेज वासवानी उसे पढ़ाई के बारे में पुछती है तब वह कहती है –" मेरा मतलब है पिछले साल-ही मिठी बाई कालेज से बी.ए. पार्ट टू किया है मैंने। अब आगे की पढ़ाई संध्याकालीन कक्षाओं में दाखिला लेकर पूरी करने का इरादा है।"[90]

शिक्षा के अनन्य साधारण महत्व को साहित्य द्वारा सदैव अंकित किया गया है। उच्च वर्गीय हो या मध्यम अथवा निम्न सभी शिक्षा के महत्व को जानकर उसे हासिल करने के लिए तत्पर होते हैं। चित्राजी ने शिक्षा का महत्व सभी उपन्यासों-कहानियो में वर्णित किया है। विशेष तौर पर उन्होंने तकनीकी शिक्षा एंव अन्य कौशल्य विकसन पर जोर दिया है। आज कम्पयूटर शिक्षा सामान्य बात है पर चित्राजी ने तीन दशकों से इसका महत्व कभी 'नाला सोपारा' के विनोद द्वारा तो कभी 'गिलिगडु' के सेवानिवृत्त इंजीनियर जसवंत सिंह द्वारा बता रही है।

कर्नल स्वामी एवं बाबू जसवंत सिंह इतवार के दिन कालिंदी कुंज घूमने गए थे। बात ही बात में जसवंत सिंह ने अपनी मनोकामना बतायी कि उन्हें कम्पयूटर सीखना है- "फिल्टर कॉफी के सौंधे घूंट भरते हुए उन्होंने कर्नल स्वामी से अपने मन की बात की। कंप्यूटर सीखने की इच्छा हो रही उन्हें। जानते हुए भी कि इस उम्र में

उसकी उपयोगिता उनके लिए विशेष नहीं ...कर्नल स्वामी ने परम प्रसन्न हो उनका कंधा झकझोरा कि, ...नेक इरादा है मिस्टर सिंह। थर्मस के ढक्कन में कॉफी उड़ेल उनकी ओर बढ़ाते हुए कर्नल स्वामी बोले- अपने सुख-संतोष के लिए सीखिए। उपयोगिता-अनुपयोगिता के जंजाल में न पड़िए।"[91] पढ़ने -लिखने की कोई उम्र नहीं होती। जब जी चाहता तब ज्ञान का अर्जन करना चाहिए।

'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' भले ही एक किन्नर की दर्द भरी पत्रात्मक शैली में लिखा उपन्यास है परंतु रचनाकार ने इस उपन्यास द्वारा शिक्षा के विविध स्रोत एवं उसके प्रसार का बीड़ा उठाया है ऐसा प्रतीत होता है। इस उपन्यास में न केवल परंपरागत शिक्षा बल्कि मुक्त विश्वविद्यालय संगणक शिक्षा, विविध गैजेट आदि की शिक्षा का भी महत्व प्रतिपादित किया है। एस.एम.एस, मोबाइल, ई-मेल , क्रेडिट कार्ड आदि का भी वर्जन पाया जाता है।

विनोद किसी भी तरह अपनी अधूरी पढ़ाई पूर्ण करना चाहता है। वह एक बार इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय जाकर जानकारी लेता है। उसे वहां से बिना दसवीं पास किए बी.ए किया जा सकता है यह जानकारी आश्चर्यकारक लगी। मुक्त विश्वविद्यालय के नियम कुछ भिन्न होते है –" इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय हो आया हूं मैं बा। मुझे सुझाया गया, बिना अखबारों में विज्ञापन आए फार्म नहीं भरा जा सकता। बेहतर होगा कि मैं पहले दसवीं कक्षा का फार्म भरकर दसवीं पास कर लूं, फिर बारहवीं। आगे चलकर नौकरी के लिए जरूरी है। यहां कुछ विद्यार्थी सीधे बी.ए. का फार्म भरकर बी.ए. पास कर लेते हैं, लेकिन नौकरी में उन्हें कठिनाई झेलनी पड़ती है। मैं बदरपुर रहता हूँ। सरिता विहार में इग्नू का रीजनल सेंटर है। मैं वहीं से फॉर्म भर सकता हूं।"[92]

इस तरह 'पोस्ट बॉक्स नं 203- नाला सोपारा' इस उपन्यास में रचनाकार ने शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डाला है एवं शिक्षा के मुख्य प्रवाह से बाहर भी पड़ जाएं तो मुक्त विश्वविद्यालय एक उत्तम पर्याय है यह भी प्रतिपादित किया है।

इस प्रकार लेखिका ने अपने उपन्यासों द्वारा शिक्षा के महत्व को बखूबी से प्रस्तुत किया है।

4.2.2. राजनीतिक जीवन से संबंध :

चित्राजी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से राजनीतिक संवेदना का भी प्रस्तुतीकरण समयोचित ढंग से किया है। डॉ. पुष्पपाल सिंह के अनुसार, "आज का लेखक राजनीति को अपने लेखन से अलग करके इसलिए नहीं देख सकता क्योंकि उसके जीवन यथार्थ की स्थितियों को गढ़ने में राजनीति का बहुत बड़ा हाथ हैं। इसलिए राजनीतिक जीवन के छत्र छंद को कथा साहित्य में अभिव्यक्ति मिली हैं।"[93] उपन्यास चाहे सामाजिक, धार्मिक या अन्य किसी भी विषयों से संबद्ध हो, एक संवेदनशील लेखक तत्कालीन राजनीति के प्रभाव में आ ही जाता है।

साहित्य की किसी भी विधा राजनीतिक बखान से अलिप्त नहीं रह सकती है। राजनीति दैनंदिन जीवन का अनिवार्य अंग बन चुका है। चित्राजी के उपन्यास में भी राजनीतिक संवेदना की सफल अभिव्यक्ति हुई है जिसे हम निम्न शीर्षकों में देखेंगे।

4.2.2.1) राजनीतिक चेतना-

युग के प्रति चेतना रखनेवाली उपन्यासकार ने आज के राजनीतिक नेताओं की स्वार्थपरता, चारित्रिक दुर्बलताएँ, दोहरा जीवन स्वार्थ सिद्धि, अवसरवादिता आदि को अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

'एक जमीन अपनी' इस उपन्यास में राजनीतिक चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। हरींद्र अंकिता को स्वयं के नाम से नियमित स्तंभ लिखने कहता है ताकि उसका नाम प्रसिद्धि पाए और हरींद्र की राजनीतिक पहचान से वह उसे पत्रकार कोटा से उसे एक फ्लैट अलाट हो सके–"नाम से लिखने आग्रह के पीछे मेरा एक और उद्देश्य है...इधर महाराष्ट्र मंत्रिमंडल में जबरदस्त फेर-बदल होने की संभावना है। पूरी उम्मीद है कि युवा तुर्क दिनेश पाटिल गृह मंत्रालय के साथ-साथ आवास-निर्माण विभाग भी संभालेंगे। दिनेश बड़ी इज्जत करता है अपनी...विरोधियों द्वारा भिवंडीवाले दंगों में उसे जिस तरह फंसाया जा रहा था–मेरी रिपोर्टिंग ने उसे निर्दोष साबित किया है।...स्तंभ शुरु कर दो तो सी.पी. सिंह से मैं तुम्हारे नाम एक लेटर ले लूंगा उनके साप्ताहिक से संबद्ध होने का, और कोशिश करूंगा कि महाराष्ट्र हाउसिंग बोर्ड से पत्रकारों के लिए मकान जो कोटा निर्धारित है, उसमें तुम्हारे नाम एक छोटा प्लैट अलाट हो सके।"[94]

इस प्रसंग में चित्राजी ने हरींद्र के माध्यम से पत्रकारों की राजनीतिक सामर्थ्य एवं पत्रकारों एवं राजनीतिज्ञों के अंतर संबंधों को भी उजागर किया है। पत्रकारों की लेखनी द्वारा राजनीति की दिशा एवं दशा परिवर्तीत की जा सकती है यह भी बताया है। इस तरह 'एक जमीन अपनी' में मुद्गल ने राजनीतिक संवेदना को इस प्रसंग द्वारा उत्कृष्टता के साथ प्रस्तुत किया है।

रचनाकार द्वारा रचित 'आवां' उपन्यास में 'गल्ली से लेकर दिल्ली' तक की राजनीतिक दांवपेचों का कुशलता पूर्वक चित्रण किया गया है। मजदूर यूनियन, राजनीतिक षडयंत्र , व्यापरिक राजनीति, जातीयवादी समीकरण आदि के प्रसंगों में राजनीतिक संवेदना दिखाई पड़ती है।

अन्ना साहब देवीशंकर से मिलने आते हैं। उनकी ट्रेड यूनियन संबंधी बातें होती हैं। देवीशंकर शिवहारे बाक की बात छेड़ते है। जो अन्ना साहब को छोड़ विरोधकों से जा मिले थे। तब अन्ना साहब कहते है- "सत्तालोलुपता ने उसे पथच्युत कर दिया है। कुरसी के लिए वह किसी के लिए वह किसी से भी गठबंधन को राजी है, देवीशंकर ! मुझे मालूम था। घुन कहीं भी हो, किसी के भी साथ रहे, अपना धर्म नहीं छोड़ता।...यह सच नहीं कि मैंने पार्टी से उसे विधानसभा चुनाव प्रत्याशी बनाने की सिफारिश नहीं की। मजदूरों के लिए उसने लगन से काम किया था। विजयी होता वह, लेकिन...अपराधी तत्वों से उसके संपर्कों ने मेरे कान खड़े कर दिए।"[95]

पुष्पपाल सिंह के अनुसार, "मजदूरों की चालों में एक और सच सच इस जिंदगी के समानांतर चलता है- वह मिलों में होनेवाली हड़ताले इन हडतालों को लेकर मजदूर-यूनियनों की ट्रेड यूनियन, राजनीति इस राजनीति की भीतरी उठापटक इन युनियनों में अपना वर्चस्व बनाए रखने के विभिन्न हथकंडे इन सभी का प्रामाणिक अंकन हुआ है।"[96]

आज के युग में चारों ओर राजनीति का बोलबाला है। समाज हो या परिवार, शहर हो या कस्बा राजनीतिक संवेदना प्रकट करते कई प्रसंग घटित होते ही है। 'गिलिगडु' उपन्यास भी राजनीतिक संवेदना से अछूता नहीं है।

सुनगुनियां बाबू जसवंत सिंह की नौकरानी है। उनके दिल्ली लौटने के पश्चात वह उनका कानपुर का घर संभालती है। अन्य चार-पांच घर के कपड़ा-बासन करके वह अपना एवं तीन बच्चों का उदर निर्वाह चलाती थी। वह पिछड़ी जाति की है। गाँव के नेता उसे राजनीति में सक्रिय होने को कहते है। तब वह बाबू जसवंत

सिंह को फोन कर सब बताती है -"नेताजी हाथ धोकर उसके पीछे पड़े हुए हैं कि सुनगुनियां उनकी पार्टी में आ जाए। बहुत जल्दी प्रदेश में चुनाव घोषित होने जा रहे। पार्टी की ताकत बढ़ाने की खातिर पिछड़ों को एकजुट होना जरूरी है। उन्हें मिल-जुल बामन-ठाकुरों का तख्ता पलटना होगा। तभी पिछड़े समाज में मान-शान पा सकेंगे। अपना भविष्य स्वयं गढ़ना होगा। अपनी सरकार दोबारा सत्ता में आनी चाहिए।"[97] सुनगुनियां को नेताजी अनेक आश्वासन देता है, उसके चुनाव जीतकर आने के बाद उसके रहने का प्रबंध, बच्चों की शिक्षा तथा उसकी अपनी तनखा रहेगी। उसे ग्राम पंचायत का प्रधान बनाने के भी प्रलोभन देता है। परंतु सुनगुनियां इन नेताओं के षड्यंत्रों तथा दांवपेचों को भलीभाँति जानती है। इसलिए वह अपना गाँव छोड़कर कानपुर आती है।

चुनाव के दरमियान हर नेता भोली-भाली जनता को अनेक उम्मीदें देकर चुनाव जीत जाते हैं। चुनाव जीतने के बाद एक सामान्य मनुष्य को वे देखते तक नहीं। कुटनीति से अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। जिसमें आम जनता को कटपुतली की तरह इस्तेमाल करते हैं और अपना वर्चस्व बढ़ाते हैं। हेतु भारद्वाज के अनुसार, "नेताओं के रूप में नये सामंत पैदा हो गए। चारों ओर अव्यवस्था, अनुशासनहीनता, दायित्वहीनता, अकार्य कुशलता, खोखली नारेबाजी ने गांधीजी के राम राज्य को स्वप्न बना दिया।"[98]

वर्तमान युग में गली से लेकर दिल्ली तक सभी का वास्ता राजनीति से पड़ता है। भले प्रत्यक्ष उसमें ना उतरे पर फिर भी राजनीति से कोई भी अछूता नहीं रह पता है। इस संवेदना का विस्तृत अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत करेंगे।

'पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा' में किन्नरों की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक दशा-व्यथा का वर्णन करते हुए चित्रा जी उनका प्रयोग राजनीतिक दांवपेचों द्वारा वोट बैंक के लिए किस तरह विधायक जी कहना चाहते है यह भी प्रस्तुत किया है। विनोद के किन्नर होने के बावजूद मेधावी होना और साथ में ऊँचे सपने देखना और आत्मविश्वास से भरा होना विधायक जी एवं अन्य राजनीतिक लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है। राजनीतिक संवेदना इस उपन्यास में अनेक प्रसंगों में स्पष्ट होता है।

विनोद चंदीगढ़ के किन्नर महासभा में विधायक जी के आरक्षण वालों मुद्दों को उठाने के बजाय किन्नरों की घर वापसी पर अधिक जोर देकर बोलता है। विधायक जी को अपना एवं पार्टी का उद्देश्य असफल होता दिखता है उन्हें तो किन्नरों के वोट बैंक की चिंता थी। तिवारी जी फोन करके विनोद को कहते है। "क्यों

विनोद, सीने पर समाज सुधारक का तमगा लटकाने का शौक चर्रा आया ? राजा राममोहन राय बनना चाहते हो। इसीलिए हमने भेजा था तुम्हें चंडीगढ़। मनमानी करने ? वाह ! तुम तो छंटे हुए रणनीतिकार निकले। सरकार को सलाह देने लगे। पाँसा पलटने में माहिर। गलत कह रहा हूं। सभा में तुम्हें आरक्षण की बात उठानी थी और तुम पाठ पढ़ाने लगे किन्नरों को स्वाभिमान का।"[99] राजनीति के छल और छद्म के कारण विनोद को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है।

इस प्रकार से हम देख सकते हैं लेखिका ने अपने उपन्यासों में अनेक प्रसंग राजनीतिक चेतना से संबंधित चित्रित किए गए हैं।

4.2.2.2. भ्रष्टाचार: -

आज चारों ओर भ्रष्टाचार का बोल बाला है, इसके बिना हम एक फलांग तक भी नहीं चल पाते अतः भ्रष्टाचार कही शिष्टाचार बन गया है।

'एक जमीन अपनी' इस उपन्यास में भी भ्रष्टाचार के प्रसंग चित्रित हुआ है। अंकिता के मकान मालिक का नाम परब था। उसने सरकारी कोटा से फ्लैट प्राप्त किया था पर वह स्वयं झोपडपट्टी में ही रहता था और अंकिता को किराएदार के रुप में रखा था जो कि गैर कानूनी था। कभी-कभी चेकिंग होती थी। आने वाला अफसर रिश्वत लेकर मामला रफा-दफा कर देता था। इस बार परब उससे विनती करता है कि वह एक दो दिन के लिए कहीं और रहे उसे बीवी बच्चों के साथ जाँच होने तक यहीं रहना होगा-"रात को भी धाड़ पड़ने सकता हय। स्क्वाड बनाया हय। जरा तकलीफ उठाना पड़ेगा आपको...एक-दो रोज के वास्ते आप किसी सहेली...नाते-रिश्तेदार के घर को चले जाओ...मैं अपना बाल-बच्चा को इधर लाके छोड़ता। जैसा ही चेकिंग खलास हुआ कि ताबड़तोड़ आप आ जाना...विश्वास करना मेरे ऊपर आप। हां !' परब का चेहरा गिड़गिड़ाता-सा दयनीय हो।"[100]

वर्तमान में भ्रष्टाचार को खोजने की आवश्यकता नहीं है वह कण-कण एवं जन-जन में व्याप्त है। सज्जन और दुर्जन दोनों ही तरह के लोग उन्हें बढ़ावा देने में मदद करते हैं।

'आवां' में 'रिचर्डसन बेवरी' की दोनों यूनियनों- 'कामगार आघाड़ी' एवं सेना की लोकशाही के अनुयायी कामगार गुटों के बीच घमासान युद्ध हुआ। कई मजदूरों के सिर फट गये। उनका उद्देश्य था सरकारी

रियायती मूल्य पर हासिल जमीन बिल्डर बंसल को हिरों के दाम बेचना था-"बस मिल की 'कामगार आवास योजना' की जो भूमि है, श्रमिक उससे पूर्णतः विमुख हो जाएं, ताकि आघाड़ी का मनोबल ध्वस्त हो जाए और कंपनी मुंबई के विख्यात बिल्डर 'बसल्स' से मनोवांछित सौदा कर सके। 'बंसल्स' हीरों के मोल उस भूमि में गहरी व्यावसायिक रुचि रखते हैं। उनकी योजना उस भूमि पर 'लोखंडवाला काम्प्लेक्स' की भांति गगनचुंबी इमारतों वाली उच्च वर्गीय कालोनी बसाने की है।"[101]

इस उपन्यास में राजनीतिक नेताओं के साथ-साथ धनाढ्य लोगों के भी षड्यंत्रों का कच्चा चिट्ठा रचनाकार ने प्रस्तुत किया है। डॉ. अर्चना मिश्रा के अनुसार "वर्तमान विकृत भ्रष्ट राज्य-व्यवस्था मानवता के रेशे-रेशे खोलनेवाली चित्रा जी ने आवां की विशाल औपन्यासिक संरचना में श्रमिक संगठनों के चित्रण के रूप में नेताओं माफिया गिरोह के आतंक और ट्रेड युनियनों के भीतर घाती मर्मांतक झगड़ों आदि सभी बहुविध पक्षों को बड़ी कलात्मक भंगिमा में प्रस्तुत किया है।"[102]

आज देश भर में भ्रष्टाचार हर स्तर पर फैला हुआ है। पर 'गिलिगडु' में रिटायर्ड सिविल इंजीनियर की स्वच्छ प्रतिमा का चित्रण किया गया है जबकि उनके सहयोगी भ्रष्टाचार को दवाई पीकर स्वस्थ हुए। बाबू जसवंत सिंह को बच्चे के पढ़ाई के खातिर भविष्य निधि की रकम तोड़नी पड़ी –" नरेंद्र को स्मरण नहीं कि उसकी इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए बाबू जसवंत सिंह ने अपनी भविष्य निधि की रकम तोड़ दी। बिना किसी दुविधा के ! यह गलत नहीं कि उसे होस्टल में रखने के लिए उन्हें कितनी मशक्कत करनी पड़ी। नौकरी में वे भ्रष्ट हुए नहीं कि घूसखोरी को ऊपरी आमदनी का जरिया बना अपने अन्य सहयोगियों की तर्ज पर कष्टों से मुक्त हो लेते।"[103]

आज भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि आदमी दोहरा जीवन व्यथित कर रहा है। 'नाला सोपारा' में किन्नरों के सरदार एक भ्रष्ट व्यक्ति था। वह पैसा लेकर सुपारी भी लेता था। कुछ खास लोग उसके लिए अंग्रेजी बोतल लाते थे – "खास लोग जब भी ठिकाने पर आते थे, सरदार के लिए अंग्रेजी की बोतल लेकर आते थे। तंदूरी और तली मछली राजीव चौक के पास ठेला लगाने वाले बिट्टू सिंह से मंगवा ली जाती थी चार में से दो को मैं पहचानता था। बल्लभगढ़ के कासिम दादा के। सुपारी लेने और दिलवाने वाले बिचौलिये के रूप में। दूसरा, हरियाणा के किसी रिसोर्ट का मैनेजर चंद्रशेखर।"[104]

इस तरह अनेक प्रसंगों में कथाकार ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा राजनीतिक चेतना का यथार्थ चित्रण किया है। जो राजनीतिक जीवन संबंध संवेदनाओं को वर्णन करती हैं।

4.2.3 आर्थिक जीवन से संबद्ध संवेदनाएँ:

आज पैसा ही प्रतिष्ठा का सूचक बन गया है। पग-पग पर अर्थ से पाला पड़ता है। पैसे के बलबूते पर समाज मूल्यांकन करता है। मुद्गल के उपन्यासों में अनेक प्रसंगों से आर्थिक जीवन से संबद्ध संवेदनाओं का रूप उजागर होता है।

अर्थरहित व्यक्ति समाज में बलहीन माना जाता। अर्थ जिसके पास नहीं होता उसे परिवार पर बोझ समझा जाता है। संसार की सारी क्रियाकलापों का आधार अर्थ ही है। हमारे आर्थिक व्यवस्था के संदर्भ में डॉ. जसवंत भाई पांड्या जी कहते है, "हमारी आर्थिक व्यवस्था ही इस प्रकार की है कि, गरीब ज्यादा गरीब और अमीर अधिक हो रहा है।"[105]

उपन्यास किसी भी विषय या समय की हो, आर्थिक संवेदना दर्शाते कई प्रसंग उसमें पाए जाते है। पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा में भी आर्थिक संवेदना का चित्रण पाया जाता है।

पूनम किन्नरों की टोली के साथ विनोद को भी जबरदस्ती ले जाती है, बैंक मैनेजर के घर बधावा के अनुष्ठान के लिए। विनोद मजाक करता है। "हम औरतों के डिब्बे में चढ़े या मर्दों के तब मंजू बाई कहती है- "हम तो भई किसी भी डिब्बे में चढ़ सकते हैं पर चढ़ सकते हैं पर चढ़ेंगे मरदुए बेझिझक अपनी अंटी खोल देते हैं। साआाऽऽली औरतें नकचढ़ी होती हैं।"[106] यहाँ लेखिका ने स्त्री एवं पुरुष का आर्थिक व्यवहार दर्शाते हुए बताया है कि स्त्रियाँ अपने धन का सोच-समझकर प्रयोग करती हैं।

मोबाइल फोन की वजह से पब्लिक टेलीफोन बूथों का धंधा चौपट हो चुका था। पहले किसी भी छोटे-मोटे व्यावसायिक क्वाइन बॉक्स लगा देते थे अपने दुकान के किसी कोने में। किसी दिन 100-200 रुपये प्रतिदिन कमा लेते थे। पर जब से ये मोबाइल सामान्य के हाथों आया। पब्लिक टेलीफोन की धूल भी नहीं छट रही है। "मोबाइल क्रांति ने देश के पब्लिक बूथों के धंधे को चौपट कर दिया है। मोहन बाबा नगर में जिस मैं पब्लिक बूथ कहता हूं, वह वास्तव में नरेश नाई का फटीचर कटिंग सैलून है और वहां रखा दुकान का लैंडलाइन नम्बर हम जैसों के लिए पब्लिक बूथ। मिनट के हिसाब से बा नरेश नाई पैसे ले लेता है और नाम आए नम्बर और सन्देशों को लिख लेता है। देने को पैसा न हो तो हिसाब में लिख लेता है।"[107]

'गिलिगडु' उपन्यास सेवानिवृत्त बुज़ुर्गों की जीवनी पर प्रकाश डालता है । इस उपन्यास में कर्नल स्वामी, इंजीनियर जसवंतसिंह, हरिहर दुबे आदि के कारुणिक जीवन को स्पष्ट किया गया है । इसके पास संपत्ति की कमी नहीं है पर आज की युवा पीढ़ी बुज़ुर्गों की संपत्ति की तो लालसा रखती है पर उनकी देखभाल नहीं करना चाहती, उन्हें वृद्धाश्रम की राह बताती है ।

गिलिगडु' उपन्यास में संपन्न आर्थिक स्तर के दो वृद्धों के परिवार की कहानी चित्रित की गई है। दोनों भी व्यक्ति कर्नल स्वामी एवं बाबू जसवंतसिंह सरकारी महकमे में उच्च पदस्थ अधिकारी रह चूके हैं । कर्नल स्वामी कर्नल थे, तो बाबू जसवंत सिंह सिविल इंजीनियर । दोनों को अच्छी-खासी पेन्शन मिलती थी पर उनकी पारिवारिक स्नेह की प्यास नहीं बूझती थी । दोनों वृद्धों को परिवार के सदस्यों ने हाशिए पर रखा था । इस उपन्यास में संतानों की संवेदनहीनता एवं संपत्ति के प्रति लोभ भावना पर प्रकाश डालते कई प्रसंगों को चित्रित किया गया है।

आर्थिक जीवन से संबद्ध संवेदनाओं का विस्तृत अध्ययन निम्नवत किया जा सकता है ।

4.2.3.1 अमीरों-गरीबों का वर्ग संघर्ष:

अमीरों-गरीबों के वर्ग संघर्ष का वर्णन चित्राजी के उपन्यासों में पाया गया है । 'एक जमीन अपनी' में अंकिता भोजराज जी के पास काम कर रही थी । वह अपने उसूलों के अनुसार निर्णय भी ले रही थी पर मैथ्यू ने चुगली कर भोजराज जी को उकसाया कि अंकिता ने दलाली खाई है । उसकी बातें सुनकर भोजराज ने अंकिता पर आरोप भी लगा दिया-"आब्जर्वेशन के लिए मि. मैथ्यू का आरोप है कि आपने 'जीवन चक्र' के निर्माता मि. पंकज और प्रायोजक 'नीलमणि इंडिया' के मध्य हुए सौदे में दस प्रतिशत बतौर दलाली खाई है । 'माध्यम' की प्रतिष्ठा की बनिस्बत आप निजी स्वार्थों पर अधिक ध्यान दे रही हैं ..."[108] तब अंकिता मि. भोजराज को जवाब देती है-"मुझे उम्मीद नहीं थी कि वे नीचता की इस हद तक उतरेंगे...वैसे ऐसी उम्मीद उस व्यक्ति से करनी नहीं चाहिए थी...मगर तकलीफ इस बात की है कि...उस व्यक्ति पर विश्वास करने से पूर्व मुझसे यह प्रकरण आप जान लेते तो बेहतर होता...जहां तक दलाली खाने का प्रश्न है, सर ! इस तरह से पैसा कमा रही होती तो महाराष्ट्र गृह-निर्माण की ओर से पत्रकार कोटा में जो छोटा-सा मकान मेरे नाम आवंटित हुआ है, उसकी तीसरी किस्त लटकी पड़ी हुई न होती...खैर, यह मेरी निजी समस्या है ।"[109] अमीर सिर्फ अपने मुनाफे के बारे में सोचता है उनको गरीबों के जीवन से कोई लेना-देना नहीं । इसके विपरीत गरीब होता है जो कौड़ी-

कौड़ी संभालकर अपना जीवन जीता है।

चित्राजी के उपन्यास 'आवां' में आर्थिक जीवन की विविध समस्याओं एवं उनके निराकरण का चित्रण पाया जाता है। इससे संबंधित संवेदनाओं का अध्ययन किया जा सकता है-

'आवां' उपन्यास में अमीरी-गरीबी का वर्ग संघर्ष चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में समाज में स्थित सभी आर्थिक वर्गों को चित्रित किया है। फैक्टरियों में कार्यरत मजदूर निम्न आर्थिक वर्ग के झोपडपट्टियों में रहने वाले मध्यमवर्गीय लोग, उच्च आर्थिक स्थिति वाले उद्योगपति सभी का वर्णन यहां पाया दाता हैं।

मिसेज वासवानी से लोकल ट्रेन में नमिता से परिचय होता है तब वह अपने पिताजी के बारे में बताते हुए कहती है कि उसके पिताजी बिखम ग्लास फैक्टरी में भट्टी सुपर वाइजर थे और वे कामगार आघाडी के महासचिव भी रह चुके हैं। तब उपहासात्मक शैली में मैडम उसे कहती है कि अठारह महीने लंबी खिची कपडा सिलोंवाली हडताल के बारे में चर्चा करती है। वे बोलती है –" बी. बी.सी.ने खूब मजे लिए। हड़ताली मजदूरों की भूख से बिलबिलाती औरतों और नंग-धड़ंग बच्चों को सड़कों पर गाड़ियां रोक-रोककर भीख मांगते हुए दिखा... कुछ घरों में जीवन से ऊबी हताश औरतों को गले में फंदा डाला लटकते .....।"[110] अमीर लोगों को सड़क पर चलने वाले गरीब कीड़े-मकौड़ो की तरह लगते है जिनको वह हर दम मसलना चाहते हैं।

मुद्गल जी ने 'आवां' उपन्यास में अमीर तथा गरीबों के संघर्ष का वर्णन यथार्थ के धरातल पर किया है। डॉ. अर्चना मिश्रा के अनुसार, "एक ओर रोजी रोटी उपार्जन में श्रमस्त श्रमिक है जिनकी जिंदगी पूंजीपतियों के हित में बलि चढ़ जाती है। दूसरी ओर संजय कनोई जैसे करोड़पति उद्योगपतियों के वैभव का अखंड साम्राज्य है। जहाँ रुपम 'कलानिकेतन' रुप मिलन के कीमती सूफियाना कलात्मक वस्त्र धारण किए हुए धन्नासेठ अपनी सुरुचि और संपदा का परिचय देकर अपने वैभव का सिक्का गरीबों के हृदयों में अंकित करने चलते है।"[111]

इसी उपन्यास में चाल में दस-बारह रुपयों में किराए पर रहने वाले श्रमिक किराएदारों से बिल्डरों का संघर्ष का बयान किया गया है। जिसमें अन्नासाहब चालवासियों की मदद करते हैं –"कुछ चालियों के व्यवसायी दिमाग के मालिक दस-बारह रुपये किराये पर उठी खोलियों को श्रमिक भाड़ोत्रियों से खाली करवाने के लिए बिल्डरों से साठ-गांठ कर योजना बना रहे थे कि किरायेदारों को जोर-जबरदस्ती बेदखकलकर उन्हीं भूखंड़ों पर बहुमंजिला इमारतें बनाई जाएं ताकि वे लाखों की रकम आसानी से पीट सकें। ऐसे चाल मालिकों के अन्याय

के विरुद्ध अन्ना साहब ने किरायेदारों को संगठित होने का आवाहान किया। उन्हें सावधान किया कि वे आपस में न टूटें। चाल मालिकों के इन झूठे प्रलोभनों में कतई न फंसें कि अगर वे बिना लफड़े खोलियां खाली कर देंगे तो चाल मालिक भविष्य में उन्हें उन्हीं गगनचुंबी इमारतों में रहने के लिए घर मुहैया करेंगे। "[112]

अमीरी-गरीबी के वर्ग-संघर्ष का चित्रण 'गिलिगडु' में पाया जाता है। सुनगुनिया गरीब वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। स्वाभिमानी है। वह कानपुर में बाबू जसवंतसिंह के घर चौका-बासन का काम करती है। अपने तीन बच्चों के साथ रहती है। उसके पति के निधन के उपरांत वह गांव छोड़ पुनश्च कानपुर आकर बाबू जसवंत सिंह की पत्नी को सारा माजरा समझाती है कि जेठ किस तरह उसके पीछे पड़ा है और वह सब कुछ छोड़कर हमेशा के लिए कानपुर उसकी सेवा टहल के लिए आई है तब बाबू जसवंत सिंह की पत्नी के मन में उसके प्रति संदेह होता है – "गांव वह किसी हाल में नहीं लौटने की। मालकिन जोर न दें। गांव में जेठ जोर-जुल्म पर आमादा था। हिस्सा बांट हड़पने की फिराक में उसे जबरन बूढ़े दोहाजू के पल्ले बांधने की सांठ-गांठ बना चुका था। सुनगुनियां ने मंजूर न किया। कल दोपहर बुढ़वा के संग उसकी बैठा-बैठी थी। सो तड़के टट्टी फिरने के बहाने बच्चों को ले पैदल बस अड्डे निकल दी और कानपुर की बस पकड़ मलकिन के ठियाँ पहुँच ली।"[113]

'नाला सोपारा' इस उपन्यास में अमीरी-गरीबी का वर्ग संघर्ष दर्शाते उदाहरण पाया गया हैं। कार्यक्रम समाप्त होने पर पूनम जोशी पोशाक बदलने जाती है, उसी का पीछा करते हुए विधायक जी का भतीजा एवं उसके मदहोश मित्र जबरदस्ती कमरे में घूस कर पूनम जोशी से पैसे का प्रलोभन देकर गुप्तांग देखने की बात करते हैं, उसपर जबरदस्ती करते है –"वह उनकी एक दिली ख्वाहिश पूरी कर दे। हिजड़ों का गुप्तांग नहीं देखा हैं उन्होंने। कैसा होता है उनका गुप्तांग विदेशों में हिजड़े होते नहीं हैं, ऐसा नहीं है। अनुमान लगाना मुश्किल है वहां। सामान्य जनों के बीच हिजड़ा है कौन ? खामोशी से वह उन्हें अपना गुप्तांग दिखा दे तो वह देखकर चुपचाप खाना खाने निकल लेंगे। एकाध पैग मजे में और चढ़ा लेंगे। कभी नहीं देखा जिस चीज को, उस देखे का सेलीब्रेशन होना ही चाहिए न ? क्यों वह आम लडकियों की तरह लजाने का नाटक कर हमारा और अपना समय जाया कर रही। दिल्ली में आम हालात है। सड़क चलते हिजड़े भीख न देने पर बेशर्मी से साड़ी उठाने लगते हैं। भई, हम भी देखे असली नकली औरत का फर्क? जितनी चाहे, रकम ले लेना। वह भी डॉलर में।"[114] किन्नर के प्रति भी इन अमीरों सहानुभूति नहीं है बल्कि उनको साथ भी दुर्व्यवहार करने में पीछे नहीं हटते।

डॉ. भगीरथ बडोले के अनुसार, "चित्रा जी का यह रचना संसार सामाजिकता को मानवीयता के सशक्त धरातल पर प्रधानता देता हुआ चला है। इसी क्रम में जहाँ उन्होंने शोषण के विरुद्ध अपना प्रबल आक्रोश व्यंग्यात्मक तेवर के साथ प्रस्तुत किया हैं, वहाँ मध्यवर्गीय आवरणों पर भी गहरी चोट की है।"[115]

समाज में सदियों से चली आ रही अमीर-गरीब की यह खाई दिन ब दिन बढ़ रही है। अमीर गरीबों को हमेशा तुच्छ समझता है। जिसके साथ वह हमेशा बुरा व्यवहार करता रहता है। लेखिका ने अपने उपन्यासों में इसका भावप्रवण चित्रण किया है।

4.2.4. धार्मिक जीवन से संबद्ध :

प्राचीन काल से मनुष्य धर्म पर निर्भर है। धर्म ही हमारे संस्कार है और धर्म ही हमारी आत्मा। ऐसा माना जाता है कि धर्म को धारण करने पर अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति सहज रूप में हो जाती है। इसलिए धर्म को हर इंसान अपने जीवन में महत्व देता है।

धार्मिक जीवन से संबद्ध संवेदनाओं का चित्रण अनेक प्रसंगों में पाया गया है। 'एक जमीन अपनी' उपन्यास में अकसर अम्मा दूध गरम करते रखती एवं अंकिता को ध्यान रखने कहती क्योंकि दूध का उफान जाया वे अपशकुन मानती थी। अंकिता सावधानीपूर्वक ध्यान रखते हुए उपन्यास पढ़ रही होती सारा दूध उफान जाता-"शर्तिया आंख चूक नहीं सकती, बावजूद इसके, ध्यान उचटता उफान की धार से बुझते हुए चैलों की छनछनाहट से ! अम्मा आपे से बाहर हो उठतीं-'रोज-रोज दूध का गिरना और कुछ नहीं, दलिद्दर की पैठारी है, बिट्टी !...बिना वेद-पुराण पढ़े कोई काम पूरा नहीं हो सकता तुम्हारा ?"[116] हमारे समाज में अपशकुन होना यानी बहुत बड़ी बात होती है। इसलिए अपशकुन न हो इसकी ज्यादातर खयाल रखा जाता है। चाहे अशिक्षित हो या शिक्षित अपशकुन को मानता ही है। मेहता की पत्नी की आत्महत्या के बाद उसकी मां का मन घर से उचट गया था। वह घर बेचना चाहती थी। वदंना अंकिता को बताती है कि खरीददार बयाना देकर मुकर गया-"घर बदला नहीं अब तक ?''शायद कुछ दिनों और रुकना पड़े।''कोई अड़चन ?''खरीददार बयाना देकर मुकर गया...उसने यह फ्लैट खरीदने का इरादा बदल दिया…यह कहकर कि यह घर अपशकुनी है…'कैसी बात कर रही हो…इस जमाने में…अब तो लोग श्मशान तक की भूमि हथियाकर बहुमंजिली इमारतें खड़ी कर देते हैं!''सब होता है, दीदी !जब भाग्य विपरीत होता है, बने हुए काम बिगड़ जाते हैं…"[117]

आज भी धार्मिक कर्मकांड को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है उसके पीछे का कारण मृतात्मा को शांति एवं परिजनों को मुक्ति एवं नर्क-स्वर्ग की धारणा भी है।

चित्रा मुद्गल जी ने कुछेक प्रसंग धार्मिक जीवन से संबद्ध संवेदनाओं के भी चित्रित किए हैं। इसका विभाजन हम निम्न शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं।

4.2.4.1 अस्पृश्यता:

भारतीय समाज में पाए गई छुआछूत की भावना को अस्पृशता कहते है। हिन्दू समाज में धर्म के नाम पर फैली रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ इस प्रकार फैली है कि जिसके कारण ऊँच-नीच, छुआछूत की भावनाएँ प्रचलित हो गई है। अस्पृश्यता को चित्राजी ने भुगता है। अपने स्वयं के अनुभव पर उन्होंने अपने उपन्यास पात्रों के माध्यम से अस्पृशता को दर्शाया है।

'एक जमीन अपनी' में अनिता के माँ की मृत्यु हो जाती है। नौकरी के कारण तेरह दिन का सुतक रखने तथा घर पर रहने के लिए नमिता से नहीं हो रहा था। उसे वापस मुंबई आकर काम संभालना था। उपन्यास में मां की मृत्यु के पश्चात कर्मकांडों के चलते तेरह दिनों तक के सुतक का उल्लेख पाया गया-" औरतों है कि प्रश्न ही खत्म होते। काकी घुटना पकड़ लेती है। 'तेरही तक रुकोगी न, बिटिया ?''मुश्किल है, काकी...पूरा दफ्तर बिट्टी के जिम्मे है !' 'दुलहिन, दफ्तर-फफ्तर तो, भैया, रोज-रोज का खटराग है...महतारी का रोज-रोज सरगै जाति है।...महतारी-बाप के मरे-जिए की यही कीमत बची है कलिजुग में...किरिया-निबटाने को भी समय नहीं पेटजायों के पास !"[118] हिन्दु धर्म में मृत्यु का सुतक रखना अनिवार्य होता है।

प्राचीन काल से हिन्दु समाज वर्ण व्यवस्था में विश्वास करते आएं है। इसमें ब्राह्मणों को पूज्य समझा जाता था तथा शूद्रों के साथ बुरा व्यवहार करते थे। पर आज उसमें परिवर्तन आ गया है। आज के युग में वर्ण व्यवस्था को महत्व न देकर व्यक्ति के पद तथा प्रतिष्ठा को महत्व देते हैं।

'नाला सोपारा' में तिवारी जी विधायक जी के पी.ए है। वे जाति में ब्राह्मण है। उन्हें लगता है इसी कारण राजनीति में उनकी कोई कीमत नहीं है। वे जानते है कि राजनीति में पिछड़ी जनजाति वालों की अथवा अस्पृश्य लोगों को जो महत्व है वह ब्राह्मणों को नहीं। वे तो किन्नरों को भी अपने से महान समझते हैं – "दुर्भाग्य से मैं ब्राह्मण हूं और सौभाग्य के धनी, तुम किन्नर ! 'देखो अन्यथा न लेना अनुभव बांट रहा हूं तुमसे, सीख नहीं

दे रहा। अपमान का तो सवाल ही नहीं उठता। क्यों करूंगा। दरअसल राजनीति जिस ढांचे पर खड़ी हुई है न, उसे चाहिए सुलगता हुआ मुद्दा। जाहिर है। हम हैं पानी पड़े हुए। हम पर दांव लगाना अपनी बिसात उलटना है। कोई मुद्दा ही नहीं बनता हमारा। सो जब चाहो, लतियाओ ब्राह्मणों को।"[119]

अस्पृश्यता मानवता के लिए कलंक है। आज शहरी जीवन में भले ही इसका निवारण हो चुका पर ग्रामीण जीवन में आज भी छुआछूत-अस्पृश्यता का पालन किया जाता है। आज भी गाँवों की भौगोलिक रचना अस्पृश्यता को बढ़ावा देने वाली होती है।

'गिलिगडु' में सुनगुनिया घर का सारा काम करती थी पर उसे अस्पृश्यता के नाम पर चौके में प्रवेश बंदी थी। नरेंद्र की अम्मा उसे चाय बनाने नहीं देती थी – "सुनगुनिया चौका साफ करने आई तो बाबू जसवंत सिंह ने उसी कहा कि वह उनके लिए नींबू वाली चाय बना दे। पीठ में दर्द के चलते रात नरेंद्र की अम्मा सो नहीं पाई। दूध भी वही गरम करके रख दे। उसके उठने पर झूठ बोल देंगे, स्वयं उन्होंने गरम कर के रखा है। सुनगुनिया को चूल्हे में हाथ नहीं लगाने देती नरेंद्र कि अम्मा।"[120]

हिन्दू धर्म में छुआछूत की भावना सर्वश्रुत है। 'आवां' में भी अस्पृश्यता का वर्णन करते कई प्रसंग आते हैं। अस्पताल में पवार फूलों की क्यारी से सुखी मिट्टी लेकर दांत मांजता है यह सुनकर नमिता को काफी घिन आती है। वह कहती है कि सेड गोबर की खाद डाली जाती है। तब पवार कहता है हम अक्सर गांव में ऐसा ही करते हैं। पवार नीची जाती का होने कारण उसे जाति व्यवस्था से चीढ़ तो थी ही वह अपना गुस्सा बातों के जरिए प्रकट कर देता है – "खैर, तुम लोग ठहरे वेदपाठी ब्राह्मण उच्च वर्ण के- नीम, बबूल के दातून करने वाले ! पिता बताते हैं, गांव के झाड़-झंखाड़ तक सवर्णों की मिल्कियत थे। हम मैला ढोने वालों के नहाने-धोने के लिए थी मेंड़ की मिट्टी। दांत घिसने के लिए चूल्हे की राख।"[121] वर्ण-व्यवस्था में जखड़कर समाज शूद्रों के साथ बहुत ही बुरा बरताव करते थे।

किरपू दुसाध कई व्यासनों का आदि था। दारू बाजी, रंडीबाजी, मटका खेलना, गांजा चरस पीना उसके शौक थे। यही हाल सभी श्रमिकों का रहा है। पर इनकी औरतें सदैव अपने जल्लाद पति के दोषों पर पर्दा डालती है। दुआध की पत्नी फूला भी अनीसा की हत्या के लिए दोषी अपने पति को नहीं बल्कि अनीसा को ही दोषी साबित करती है। वह पाप करने के कारण मरी है ऐसा मानती है और कलयुग में भगवान भी व्यस्त होने के कारण न्याय नहीं कर पा रहे है ऐसा मानती है –" फूला का ओरोप है – जो भी घटा , उसमें उसके पति

का हाथ नहीं। अनीसा छंटी हुई रंडी थी। उसके भतार की आधी-पौनी कमाई सूतने वाली। भतार के मुंह फेर अपने बाल-बच्चों में लगन लगते ही अनीसा ने पेट के पिंड को दाई से मुट्ठी चलवा गिराने की कोशिश की। बच्चा गिरते ही जच्चा भी गच्चा खा गई। कलजुग में पापी का पाप उसे नहीं लीलेगा, चबाएगा तो कौन उसका नियाय करेगा ? घोर आपा-धापी की खातिर विषन भगवान को भी नियाय की फुरसत नहीं।"[122] समाज में पुरुष वर्चस्व होने के कारण जो वे करते थे उसे मान्य किया जाता था। अगर वह स्त्री के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार भी करें तो स्त्री को ही गुनहगार ठहराया जाता था। चित्रा मुद्गल जी का इस बारे में कहना है-"स्त्री की क्षमता को उसकी देह से ऊपर उठकर स्वीकार नहीं करने वाले रुग्ण समाज को झकझोर कर जगाना पड़ेगा।"[123]

इस प्राकार से अस्पृशता के अनेक प्रसंग लेखिकाने प्रस्तुत किए हैं।

4.2.4.2 हिंदू-मुस्लिम संबंध-

आज धार्मिक कट्टरता के परिणाम स्वरूप धर्म के नाम पर दंगे-फसाद हो रहे हैं। एक-दूसरे का लहू बहा रहे है तो कही-कही किसी की जान भी ले रहे हैं।

सुनंदा एवं सुहैल की प्रेमकथा-विवाह-बच्ची आदि के माध्यम से 'आवां' उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। नमिता किशोरीबाई से सुनंदा के बारे में मिलने जाती है तब रास्ते में उसे यादव मिलता है। वे बतियाते हुए शिवकुमारी देवी चाल की ओर निकलते है। यादवजी प्रारंभ में अखबार वाली समझ कर हेय दृष्टि से देखता है पर जब वह कामगार आघाडी से है बताती है तब सहज होकर अखबार वालों की गलत खबर के कारण हिन्दू- मुस्लिम दंगे हुए कहता है – "परसों के जनसत्ता में हलकटों ने छाप मारा-प्रतापनगर की सुनंदा का ब्याह उसके मुसलमान प्रेमी से इस वास्ते नहीं हुआ कि सुनंदा ने ससुराल वालों के दबाव में आकर इस्लाम कबूल करने से इनकार कर दिया। ' वह तीखा होकर बोला, 'एथी सोचिए दुष्परिणाम ? बस, मोहल्ले में गर्मी फैल गई। आग धूं-धूं चूल्हों में नहीं, कलेजों में सुलगने लगी। खौफ-खाए आरिफ भाई-बेटे समेत खोली में ताला डाल न जाने कहां गायब हो गए दो रोज से।"[124]

सुनंदा एक सशक्त पात्र है। सुनंदा हिन्दू है तो सुहैल मुसलमान दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं। सुनंदा माँ बन जाती है। सुहैल के पिताजी उन दोनों का विवाह करने के लिए सुनंदा को मुस्लीम कबूलने तथा नाम बदलने के लिए कहता है। परंतु सुनंदा धर्म परिवर्तन एवं नाम परिवर्तन कर सुहैल से शादी करने के लिए तैयार

नहीं है। सुहैल के पिताजी के शर्त सुनंदा नहीं मानती वह कहती है, "मैं औरों की सुख-संतुष्टि के लिए अपने सच को घोंट दूं या अपने 'स्व' के संरक्षण के लिए उसके उगने को देह धरने दूं, उसे एक पूरी की पूरी काया ग्रहण करने दूं...सुहैल ने प्रेम करने के समय तो कोई शर्त नहीं रखी ? ब्याह करना होगा तो उससे नहीं, इस्लाम से करना होगा…या हिन्दुत्व से ?"[125] उसके इस निर्णय के कारण सांप्रदायिक तत्वों द्वारा उसकी निर्ममता से हत्या करवा दी जाती है।

सुनंदा के संदर्भ में डॉ. अर्चना शर्मा का कथन है,"सुनंदा अपने प्रेम और स्व की लड़ाई को उन्मादी ताण्डव मचानेवाले मर्दों, कट्टपंथियों और धर्मांधों के कंधों पर चढ़कर नहीं लढ़ना चाहती।"[126]

इस प्रकार से हिन्दु-मुस्लीम के संबंध संवेदनाएँ उपन्यासों के माध्यम से दिखाई देती हैं।

4.2.4.3 सदाचार एवं धर्ममूलक संवेदना –

मनुष्य बाहरी दबाव वजह से तो नहीं बल्कि अपने मन के वजह से जिसे स्वीकार करता है उसे है श्रेष्ठ सदाचरण कहते है।

चित्राजी ने सदाचार को अपने साहित्य में एक उदार भावना के रूप में चित्रित किया है। बाबू जसवंत सिंह को अपनी नौकरानी पर पूरा भरोसा था। जब सिंटेक्स की टंकी की चोरी हो जाती है तब उनकी बहू सुनगुनिया के बारे में काफी बुराई करती है पर बाबू जसवंत सिंह उसकी बातों पर यकीन नहीं करते- "बाबू जसवंत सिंह को लगा कि वहीं से चिल्लाकर बहू सुनयना को चेतावनी दें कि वह एक मामूली-सी टंकी के लिए सुनगुनियां को …सुनगुनियां को…सुन…उनका सिर घूम रहा है या भूडोल आया हुआ है। अपना सिर पकड़ने के लिए वे अपने दोनों हाथ नहीं टटोल पा रहे…उनके हाथ कहां चले गए।"[127]

परोपकारी वृत्ति भी सदाचार एक भाग है। कर्नल स्वामी का भरापूरा परिवार था। पर सभी बेटे-बहु, पोते-पोतियाँ उन्हें अकेला छोड़ रहते थे। वे काफी दु:खी थे पर वे अपना दु:ख दिल ही में रखते थे। उपरि तौर पर खुश रहते। अच्छी खासी पेन्शन मिलती थी। वे अपनी पेन्शन का लगभग आधा हिस्सा दलित बस्तियों के बच्चों की जरूरत पर खर्च करते- "शाम चार बजे के लगभग मलिन बस्तियों के बच्चे आते थे कर्नल स्वामी के पास पढ़ने के लिए। अपनी आय का आधा हिस्सा वे उन्हीं बच्चों की जरूरतों पर खर्च किया करते थे। स्वयंपाकी थे। ऐसी मुलायम इडली बनाते थे कि अच्छे-अच्छों से न बने। बच्चों को बड़े चाव से खिलाते थे

मेदु बड़ा और इडली। रोज की भाँति पढ़ाई करने आए बच्चे अपने मास्टरजी की मौत की खबर सुन अबूझ- से हो आए। दूसरी सुबह उनकी निष्प्राण देह पर लोट-लोट कर रोए। "[128] दूसरे के प्रति प्रेम, मदद, अपनेपन की भावना ही सदाचार की विशेषताएं हैं।

डॉ. उषा यादव के अनुसार, "धर्ममूलक संवेदना के अंतर्गत अलौकिक शक्ति में आस्था, कर्मवाद, धार्मिक अंधविश्वास, ज्योतिष में विश्वास आदि बातें देखी जा सकती हैं।"[129]

'आवां' उपन्यास में इस संवेदना से संबंधित प्रसंग पाए गए है। देवीशंकर पांडेय की हालत नाजुक थी। वे मरणासन्न अवस्था में भरती है। वे अन्ना साहब के मित्र एवं दाहिना हाथ थे। जब अन्ना साहब अस्पताल में मिलने आते है तब उनकी पत्नी से कहते है –" इस समय बस, आप एक ही काम करिए, भाभी ! दुनिया-जहान से चित्त हटाकर ईश्वर में लौ लगाइए। वही कोई चमत्कार कर सकता है।"[130] अन्ना साहब को ईश्वर पर भरोसा था। वे देवी शंकर के लिए सत्य नारायण का प्रसाद लेकर आते हैं – "देवीशंकर से मिल आऊं ! प्रसाद खिलाना मुश्किल होगा, माथे पर छुआ-भर दूंगा। "[131] अन्ना साहब की पत्नी उनके हाथों एक कागज पर मंत्र लिखकर भेजती है। जिसे वे देवीशंकर की पत्नी को देते है एवं उनके जाप से देवीशंकर की हालात सुधरेंगे ऐसा कहती है –" ताई (पत्नी) ने मंत्र लिखकर भेजा हा आपके लिए। कहा है कि जरूरी नहीं कि नहा-धोकर ही आप इसका जाप करें। जब भी समय मिले, चित्त को एकाग्र कर जाप करना आरंभ कर दें।"[132] मनुष्य की भगवान पर आस्था सदैव रही है इसलिए अनेक श्रद्धा के माध्यमों से ईश्वर की भक्ति वह करता है।

लेखिकाने इस तरह से सदाचार एवं धर्ममूलक संवेदनाओं को उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

4.3 दुःखात्मक संवेदना

सुख-दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू है। इन दोनों संवेदनाओं से प्रत्येक को जीवन चलता है। चित्राजी ने अपने उपन्यासों में सुखात्मक संवेदनाओं के साथ-साथ ही दुःखात्मक संवेदनाओं का भी उतनी ही कुशलता एवं परिश्रमपूर्वक चित्रण किया है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में दिन-प्रतिदिन इन संवेदनाओं का आना-जाना लगा रहता है। डॉ. उषा यादव का यह कथन चित्रा मुद्गल के संदर्भ में भी सटीक उतरता है–"आज का उपन्यासकार यथार्थ को कटुता को वहन करने में सक्षम है। वह पलायन या मुक्ति नहीं, अपनी पूरी जिजीविषा

के साथ संघर्ष चाहता है। यथार्थ का यह अनुभव जीवन को अपनी पूरी समग्रता में ग्रहण करके व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करता है। उसे विभक्त करने के बजाए ऐसे नए आयाम देता है, जिससे नए जीवन-मूल्य उद्घाटित होते हैं, मानवीय चेतना नए संदर्भों में प्रतिष्ठित होती है तथा अनुभूतियों को नया परिवेश मिलता है। इसलिए आज के उपन्यासों में परंपरा का ठहराव नहीं, व्यक्ति के आचरण एवं उसके अतः संदर्भ को व्यापक अनुभूति के धरातल पर प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। दुःखात्मक संवेदना की नई यथार्थवादी अभिव्यक्ति आज के उपन्यासों की विशेषता है।"[133]

'एक जमीन अपनी' में अंकिता ने सुधांशु के साथ प्रेमविवाह किया था तब अम्मा ने क्रोध में आकर धतूरा पीसकर खा लिया था। अम्मा ने क्रोधित हो उसे श्राप दिया था कि 'तेरी शादी टिकेगी नहीं' और वास्तव में तीन वर्षों तक ही अंकिता और सुधांशु का विवाह टिका था। जब वह सुधांशु को छोडकर सदैव के लिए अपने घर आ गई तब अम्मा को तक कही गई बातों का बहुत दुःख हुआ– "लेकिन उसके लौटने पर वही अम्मा छाती कूट-कूटकर रोई थीं कि "हाय दैया...हमरे ही बोल-कुबोल छौनी का सुख-संतोष डंसि लिहिन..."[134] कभी-कभी तीखी जबान के कारण दु:ख के बादल आते हैं।

मेहता की पत्नी कोकिला ने फाँसी का फंदा लगाकर आत्महत्या कर ली। उसने चिट्ठी लिखकर स्वयं को दोषी ठहराया। जब अस्पताल में उसका पोस्टमार्टम हो रहा था तब मेहता की माँ काफी दु:खी थी। उसने अपनी संवेदनाएँ प्रकट करते हुए बताया-"रात में बहू के व्यवहार से उन्हें राई-रत्ती संदेह नहीं हुआ कि उस निर्मम ने अपनी मौत का षड्यंत्र स्वयं रच रखा है। हमेशा की तरह सहज भाव से उसने पूरे परिवार को खाना खिलाने में उनका हाथ बंटाया। ...क्या पता था कि रात बीतने भी नहीं पाएगी और हम बहू का मरा मुंह देखेंगे...मैं तो अब उस घर में नहीं रहूंगी...बेच दूंगी। नहीं तो आभास होता रहेगा कि अपने घर में नहीं, फांसीघर में रह रही हूं...चौबिसों घंटे बहू घूमती रहेगी आंखों के सामने..."[135]

सुख और दु:ख जीवन के दो अभिन्न पहलू है। इन दो संवेदनाओं का पाला सभी को पड़ता है। साहित्य में दुखात्मक संवेदनाओं को भी महत्व प्राप्त हो रहा है। सुखात्मक संवेदनाओं की तीव्रता जानने के लिए दु:खात्मक संवेदनाओं का जीवन में होना आवश्यक है। "हिन्दी साहित्य के प्रयोगशील धारा के कुछ लेखकों ने दु:खवाद को एक रचनात्मक तथा प्रेरक शक्ति के रुप में ग्रहण किया है।... परंतु ऐसा लगता है कि इन लेखकों

का दु:खवाद किसी दार्शनिक चिंतन धारा से संबंध न होकर वर्तमान युग में संक्रांतिकाली न विघटन से प्रेरित है।"[136]

'आवां' में भी दुखात्मक संवेदना का कुहरा ओढ़े कुछ प्रसंग पाए गएं है। सनुंदा कुंआरी मां थी वह भी मुस्लिम सुहैल से। उसकी हत्या के उपरांत किशोरीबाई नन्हीं बालिका को लेकर बहुत दु:खी थी। हत्यारे ने किशोरीबाई और बालिका को कोई भी नुकसान नहीं पहुँचाया। अपनी व्यथा वह अनिता को बताते हुई रोती है -"हमें काहे छोड़ दिया सत्यानाशी ने, पांडे बिटिया ! नीचे चटाई पर छुटकी को छाती पर औंधाएं हम भी तो सो रहे थे ? हमारा टेटुआ काहे नहीं चांप दिया चांडाल ने? इस छंगुनिया का भी कुंठ मरोड़ देता...किस्सा-कहानी खतम ! छुटकी को उन्होंने दोनों हथलियों में उठा सबके सामने कर दिया–अनुत्तरित प्रश्न-सी। उपस्थित हुजूम की आंखें कुच गई। भल-भल आंसू उमड़ने-बहने लगे।"[137]

हम कह सकते है कि चित्रा मुद्गल द्वारा रचित बृहत् उपन्यास 'आवां' में संवेदनाओं के सभी रुपों को चित्रित किया गया हैं। 'आवां' उपन्यास को हम 'संवेदनाओं की गाथा' कह सकते हैं।

सुखात्मक संवेदना के साथ भी दु:खात्मक संवेदना पाई जाती है। सुख और दुःख एक साथ ही कभी आगे, कभी पीछे निरंतर चलते रहते हैं। ये परिवर्तनशील है। कोई भी अवस्था स्थायी नहीं होती। 'गिलिगडु' उपन्यास में भी दु:खात्मक संवेदना के प्रसंग घटित होते हैं।

कर्नल स्वामी बाबू जसवंत सिंह को इतवार के दिन नोएडा के यमुना बैराज से लगे कालिंदी कुंज घुमाने ले गए थे। उन्होंने वहाँ अपनी बहू से संगीत सीखने की बात कही। बाबू जसवंत सिंह के आग्रह पर उन्होंने गीत गाकर सुनाया-"'ओम लाले कंडु आनऽऽ' गीत का मुखड़ा याद हो गया बाबू जसवंत सिंह को। पहली बार अपनी दिवंगत पत्नी की चर्चा कर्नल स्वामी ने 'अंतिम सांसे भरते हुए वैदेही ने माधवी से इसी गीत को सुनने का इच्छा प्रकट की थी। आंखें बंदकर माधवी तन्मय होकर गा रही थी। अधखुली बहती आंखों से वैदेही हमें देख रही थी। मालूम नहीं था, हमें अंतिम बार देख रही है।"[138]

आपके दोस्त कर्नल स्वामी नहीं रहे ऐसा मिसेज श्रीवास्तव ने बाबू जसवंत सिंह से कहा। यह सुनते ही वे सकते में आ गए -"बाबू जसवंत सिंह को समझ में नहीं आया कि उनका सिर घूम रहा है या पूरी इमारत डोल रही है। या केवल उस घर की देहरी जहां वे खड़े हुए हैं। टेका लेने के उन्होंने 302 के घर की दीवार की

ओर हाथ बढ़ाया।"[139] अपने अपनों से दूर होने का दु:ख मनुष्य को आघात पहुँचाता है। उनकी याद और कमी उनकी जीवन के अधूरापन लाती है।

'नाला सोपारा' में बिन्नी अर्थात विनोद को जननांग विकलंगता के कारण किन्नर लेकर जाने आए थे। पर किसी तरह संकट टल गया। पर उसके भाई, माता-पिता को डर था कि एक ना एक दिन विनोद को ले जाएंगे एवं समाज में अप्रतिष्ठा होगी। इसीलिए उन्होंने उसकी मृत्यु की झूठी खबर फैलाकर उसे किन्नरों को सौंप दिया। पर उसकी माँ बहुत दु:खी थी। वह स्वयं को दोषी मानती थी-"क्या मैं सचमुच दुनिया की सबसे खूबसूरत मां हूं। कैसे हो सकती हूं बिन्नी, मेरे बच्चे ! तूझे दु:ख है न कि मैंने और तेरे पप्पा ने तूझे उस नरक में क्यों ढकेल दिया, इसके बावजूद ?"[140]

समाज ने किन्नरों के प्रति बहुत ही बुरा बरताव करते हैं। पूरे किन्नर वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला विनोद न सिर्फ अपने घर से बेघर होता है बल्कि समाज में कई कठिनाईयों का सामना उसे करना पड़ता है। किन्नर समुनाय में शामिल होने के कारण उसे उनके जैसा हाव-भाव, क्रिया कलाप करने पर बाध्य किया जाता है। न चाहते हुए भी उसे वह सब पड़ता है। सामान्य इंसान के जीवनशैली को भूलाकर उसे किन्नरों की तरह जीवन जीने पर अभिशप्त किया जाता है। मेराज अहमद के अनुसार,"किन्नर होना शरीर विज्ञान की एक विकृति है। उसमें यदि कोई विकृति के साथ जन्म ले ले तो उनका कोई दोष नहीं, लेकिन समाज उन्हें जीवित होने के बावजूद मुर्दों के रूप में तब्दील होने पर विवश कर देता है। "[141]

चित्रा मुद्गलजी ने 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' इस उपन्यास में जननांग विकलांग विनोद की जीवनी पर प्रकाश डाला है। यह एक दु:खात्मक कहानी है जिसका अंत भी दु:खात्मक है। हमेशा की तरह ही अर्थात उनकी अन्य उपन्यासों 'आवां', 'एक जमीन अपनी' और 'गिलिगडु' के अनपेक्षित अंत की भाँति ही रचयिता ने विनोद की माँ का स्वर्गवास एवं विनोद की नृशंस हत्या से इस उपन्यास को समाप्त किया है।

इस प्रकार से मुद्गल जी के उपन्यासों में दुखात्मक संवेदनाओं का भावप्रवण चित्रण हुआ है।

4.3.1.संयुक्त परिवारों का विघटन

जिस परिवार में पति-पत्नी ,माता-पिता ,बहू-बेटे ,चाचा तथा सभी अन्य रिश्तेदार एक ही जगह रहते, खाते-पीते हो। सभी की आय एक जगह जमा हो खर्च होती हो। यह व्यवस्था प्राचीन भारतीय

संस्कृति का प्रतीक थी। इस व्यवस्था में बीमार, असहाय, बूढ़े, विधवाओं को आश्रय मिलता था। बच्चों का लालन-पालन व्यवस्थित ढंग से होता था। उनका सर्वांगीण विकास भी संभव था। अब इस औद्योगिक युग में संयुक्त परिवार टूट चुके हैं। नौकरी–अध्ययन हेतु एकल परिवार व्यवस्था एक फैशन ही बन गई है जो दु:खात्मक संवेदनाओं के पनपने का प्रमुख कारण है।

'एक जमीन अपनी' अंकिता की अम्मा के स्वर्गवास पर उसके ताऊजी, फूफा, बुआ ,तीनों भाई, भाभीयां कई वर्षों के बाद एकत्र हुए थे। वे हिस्से–बाँटनी करने के लिये आतुर थे। अंकिता को अम्मा के जाने का दु:ख खाए जा रहा था वह सोच रही थी कि यह कैसी विडंबना है। अभी अम्मा के फूल तक नहीं सिराए गए हैं और यह बंटवारे की बात शुरू हो गई। तब ताजी बहुत मार्मिक जवाब देते है – "'ताऊजी, यह मौका इन बातों का नहीं है...' 'मौके की तूने भले कही, बिटिया !' ताऊजी उसकी धृष्टता पचा नहीं पाए,'अब तो यही मौके रह गए हैं कुटुंब जुड़ने के..."[142] पहले संयुक्त परिवार शादी, त्यौहार, जन्मदिन आदि में सम्मिलित होते थे। परंतु अब किसी के पास इन सबके लिए समय नहीं है। परंतु संपत्ति के लालच के कारण मृत्यु के पश्चात अवसर देखकर बटवारा करने के लिए यह सारे रिश्ते-नाते जुट जाते हैं। आज अवसरवादिता का बोलबाला है किसी की भावना का कोई मोल नहीं है।

डॉ. ज्ञानचंद्र शर्मा कहते है,"भारतीय समाज में आज पारिवारिक विघटन की समस्या बहुत ही विकट तीखी समस्या बन गई है। भारतीय परिवारों को व्यवस्था की संज्ञा दी जाती थी परंतु इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि आधुनिक युग में सयुक्त परिवार का विघटन हुआ है।"[143]

'गिलिगडु' उपन्यास में दो सेवानिवृत्त बुजुर्गों की दु:खात्मक कहानी का चित्रण किया गया है, जो संयुक्त परिवारों के विघटन के शिकार हुए है। कर्नल स्वामी के तीन बेटे, बहुएँ एवं दो पोतियाँ है कुमुदिनी तथा कात्यायिनी पर साथ कोई नहीं रहता। पत्नी वैदेही ही चल बसी। वे अकेले ही नोयडा स्थित फ्लैट में रहते हैं। रिटायर्ड कर्नल होने के कारण अच्छी खासी पेन्शन मिलती है पर सुख-चैन या पारिवारिक सुख से वंचित है बेचारे कर्नल। चौरानवे की बात होगी। पत्नी की मौत के बाद कर्नल स्वामी अकेले ही गया थे। तीनों बेटों ने तब तक नई नौकरियाँ पकड़कर नए भविष्य की तलाश में नए शहरों को अपना डेरा बना लिया था। छूंछे वादों के अंबार पर उन्हें बैठाए हुए कि बहुत जल्द उन लोगों के लिए संभव हो पाएगा कि उनके अप्पूपन उनके साथ ही रह सकें। बंगलोर, हैदराबाद में कुछ ही समय में उनके अपने छोटे-मोटे फ्लैट भी हो गए।"[144] जिस गुलाब

के पौधों को माली अपने हाथों से सींचता तथा बड़ा करता है। आखिर में उसी गुलाब के काँटे उसके रास्ते में रोड़ा बनते हैं।

संयुक्त परिवार की कल्पना मात्र से ही आज का युवा सिहर उठता है। आज किसी को किसी प्रकार का बंधन नहीं चाहिए। युवाओं को लगता है कि बुजुर्ग माता-पिता रहेंगे तो उनकी आजादी में खलल पड़ जाएगा। घर की बहू भी अपने पर कोई निर्बंध नहीं चाहती है। घर के बड़े-बूढ़े भी कई बातों को अनदेखा करते हैं पर बेटा-बहू के मन के किसी कोने में बैठे डर उन्हें बार-बार दर्शाता है कि वे जो काम कर रहे हैं वह उनके बड़ों की नजरों में हेय है। इसी डर को दूर करने हेतु अपने माता-पिता जिन्होंने अपनी सारी जिंदगी उनके पालन-पोषण एवं योग्य बनाने में दी समिधा बनकर स्वाहा कर उन्हें छोड़ बेटा अपनी गृहस्थी अलग बसाता है। अपने पालकों को या तो गांव छोड़ देता है या फिर वृद्धाश्रम। पाश्चिमात्य संस्कृति का अंधानुकरण भी इसके एक महत्वपूर्ण कारण है।

बाबू जसवंत सिंह की कहानी भी कम दु:खद नहीं है। वे एक रिटायर्ड सिविल इंजीनियर हैं। कानपुर में रहते हैं। बेटे को आय आय टी से इंजीनियर बनाया। बेटी भी अच्छे परिवार में गई। पत्नी थी तब तक ठीक ही लगा उन्हें पर पत्नी के बाद भरे पूरे परिवार के होने पर भी वह लावारिस की तरह हो गए। अकेले रहने लगे। एक नौकरानी उनकी देखभाल करती थी। तबीयत बिगड़ने के बाद मजबूरन बेटे को उन्हें अपने साथ ले जाना पड़ा। बहु-बेटे उसका बिलकुल ध्यान नहीं रखते थे बल्कि बात-बात पर उन्हें टोकते थे। जिंदा लाश की तरह वे उनके कुत्ते टॉमी से भी बदतर जिंदगी काट रहे थे। मलय-निलय दो पोते थे, वे भी उनसे बात तक नहीं करते थे। घंटों कम्पयूटर पर लगे रहते थे। उन्हें बहुत बुरा लगता था। अमेरिका में नौकरी मिलने की संभावना को देखते उन्हें वृद्धाश्रम में भेजने की योजना भी तैयार है –"भैया तो यहाँ तक सोच रहे हैं कि जहाँ बाबूजी का मन लगे, वे प्रसन्नचित्त रहें, उन्हें वहीं रखा जाए। उन्होंने पता लगाया है कि नोएडा के सेक्टर पचपन में कोई आनंद निकेतन वृद्धाश्रम है, क्यों न उनके रहने की व्यवस्था वही कर दी जाए। हमउम्रों की जमात में बाबूजी का मन लगा रहेगा। भैया जगह देख आए हैं। वे बता रहे हैं कि बहुत सुंदर है। भोजनादि की व्यवस्था उत्तम कोटि की है। उन्हें रखने के निर्णय से भैया पर खर्च का अतिरिक्त बोझ पड़ेगा। भैया उसे सहर्ष उठाने के लिए तैयार है।"[145] आज के इस आधुनिक युग में अपने ही संतानों द्वारा बूढ़े जीवन के चौथेपन में ऐसा बुरा व्यवहार सहने के लिए वे अभिशप्त है। लेखिकाने बहुत ही सूक्ष्मता से इस प्रासंगिक समस्या का चित्र उपन्यास में हूबहू प्रस्तुत किया

है। अगर ऐसे ही हालात भविष्य में हुए तो आनेवाली पीढ़ियाँ नाना-नानी, दादा-दादी का प्रेम, वात्सल्य और ममता से वंचित होंगे।

संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण परिवार विभाजन होकर कई प्रकार की समस्याएं पैदा होती है जिसकी परिणिति दु:खात्मक संवेदनाओं में होती है। 'पोस्ट बॉक्स नं…' में विनोद का संयुक्त परिवार था छोटा भाई मंजुल, माता-पिता के साथ वह अपने विवाहित भाई-भाभी सिद्धार्थ एवं सेजल के साथ सभी रहते थे। अचानक जब तुलसीबाई अपने साथ किन्नरों को लेकर जब विनोद को जो की एक किन्नर है को लेने आती है तब से बड़ा भाई काफी विचलित होता है क्योंकि सेजल गर्भवती थी और उसे भय था कि विनोद के कारण कहीं उसे भी किन्नर बच्चा ना पैदा हो।विनोद को लगता है कि इस समय कम से कम उसे पप्पा और बा के पास रहना चाहता था। जिस समय उन्हें सिद्धार्थ की जरूरत थी तभी वह उन्हें नितांत अकेले छोड़कर चला गया। दोनों ने अपने घर के कुलदीपक के आने के कितने हसीन सपने देखें होंगे। बा के तो सारे अरमानों पर पानी फिर गया – "बा , मेरा जी कर रहा है, इस समय मुझे तेरे और पप्पा के पास होना चाहिए। जिस समय तुझे और पप्पा को मोटा भाई की सबसे ज्यादा जरूरत है, वो तुम लोगों को छोड़कर चले गए। अलग होना ही था तो थोडा विवेक से काम लेते। नाला सोपारा ही में फ्लैट ले लेते। आधुनिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न नाला सोपारा में भी बोरीवली जैसी चमक-दमक वाली सोसाइटीज होंगी ही।"[146] उपभोक्तावादी समाज में बच्चे सिर्फ अपना ही स्वार्थ देखते है। जिन माता-पिता ने अपने बच्चों के लिए सर्वस्व अर्पित किया। परंतु वही बच्चे उनको बुढ़ापे में अकेला छोड़कर अपना संसार बसाते हैं। ना अपनी माँ-बाप की कदर करते है ना इज्जत, वो जीवन के अंतिम पड़ाव पर बच्चे होते हुए भी अनाथों की भाँति जीवनयापन करते हैं।

रचनाकार ने उपन्यासों के माध्यम से आज के युग में हो रहे संयुक्त परिवार के विघटन का बखूबी से चित्रित किया है।

4.3.2. पारिवारिक जीवन की समस्या:

आज एकल परिवार व्यवस्था का चारों ओर बोल बाला है। पहले के जमाने में केवल रोटी, कपड़ा और मकान तक ही मूलभूत आवश्यकताएँ सीमित थे, पर आज की जीवनशैली बदल चुकी है। मनुष्य के पास अनेक सुविधाएं प्राप्त हो चुकी है ,फिर भी उसका जीवन दुविधाओं से घिर चुका है। मनुष्य तनाव में जी रहा है। परिवार में नानाविध प्रकार की समस्याएँ मुंह बाएं किए प्रतिदिन खड़ी हो जाती है।

चित्राजी ने उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में पारिवारिक जीवन की समस्याओं पर अपनी लेखनी चलायी है। सुधांशु एवं अंकिता ने अपनी मर्जी से प्रेम विवाह किया। सुधांशु केवल उसका पति ही नहीं बल्कि प्रेमी भी था पर उसके अहंकार के कारण यह विवाह एक समस्या बन चुकी थी – "बहुत सोचा था…वैचारिक मतभेद उनके दांपत्य की उष्मा को चाटता घुन नहीं था, घुन था उसका जबरन आरोपण ! सुधांशु के भीतर के अहंकारी पुरुष की निरंकुश प्रवृत्ति !...तलुओं के छालों से रिसता पानी अब सूख चुका है…पड़े हुए डट्ठों को कोई सुई से कुरेद वह उन्हें मवाद से क्यों भरना चाहती है…नहीं चाहती…इसलिए तो पाषाण हो आई है-स्वयं अपने लिए कवच बनती!"[147]

पारिवारिक सौहार्द और शांति आज अपमानित प्रतीत होती है। आज परिवार में अनेक समस्याएँ डेरा डाल बैठती है। समाधान पाना संभव नहीं लगता है। किसी तरह संघर्षरत रह कर जीवन से निपटा जा रहा है।

'आवां' में स्मिता अपने मटका किगं पिता से बहुत परेशान है। वह उससे घृणा करती है सदैव उसकी हत्या करने की सोचती है। वह नशेडी तो है ही, कई गैरकानूनी धंधे करता है। पर उससे बुरी बात वह अपनी बड़ी बेटी का शारीरिक शोषण करता था। विवाह के सप्ताह भर बाद ही मां को पता चल गया था कि उसके पति के गैर कानूनी धंदे है पर उसके परिवारजनों ने इसकी विवाह के पहले जाँच नहीं की क्योंकि उन्हें किसी तरह बेटी को निपटाना था–" दरअसल, तीसरी बेटी खोपड़ी का पहाड़ हो गई थी उनके लिए। थेगड़ों- सी लटक रही नानी की पसंद का है लाल आंखों वाला दामाद ! नानी को मैं कतई नहीं झेल पाती। आग लगती है देखते ही।"[148]

इन प्रसंगों के माध्यम से लेखिकाने पारिवारिक जीवन की समस्याओं उजागर किया है।

चित्राजी ने अपने उपन्यासों में पारिवारिक जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। जिसका हम निम्नवत् विस्तारपूर्वक निम्न बिंदुओं द्वारा अध्ययन करेंगे –

4.3.2.1.घुटनः

जब व्यक्ति अपना दुःख-दर्द किसी के साथ साझा नहीं कर पाता है तब वह अंदर ही अंदर घुटता रहता है। उसे संत्रास एवं तनाव का अनुभव होता है। वह समाज एवं परिवार से कट जाता है।

'एक जमीन अपनी' उपन्यास में नीता ने सुधीर से सच्चा प्यार किया। परंतु शादीशुदा सुधीर नीता को गर्भवती माँ बनाकर उसका साथ देने से इनकार करता है। वह घुटन में घुटती रहती है। अपनी बच्ची मानसी अंकिता के हाथों में सौपकर आत्मघात करती है। आत्मघात करने से पूर्व नीता ने अपनी वसीयत बना ली थी। उसने एक पत्र अंकिता के नाम लिखा था, जिसमें उसने अपनी दीन मानसिकता का वर्णन किया था–"अपने भीतर अपने को तिल-तिलकर मरता महसूस करना कितनी असाध्य यंत्रणा है ! मुझमें अब और साहस शेष नहीं रहा कि मैं और अधिक दिनों तक अपनी मौत की साथी हो सकूं। चरम अकेलेपन और कुंठा से मुक्त हो स्वयं को बहुत संभालने और सहेजने की कोशिश की, लेकिन असफल रही।"[149] पति-पत्नी के रिश्ते में जो उदात्तता होनी चाहिए वह यहाँ पर दिखाई नहीं दे रही है। डॉ. कल्पना पाटील के अनुसार, "स्त्रियाँ अपने अधिकारों की माँगे करती हैं, किन्तु उन्हें स्वयं क्या अधिकार है, यह भी मासूम नहीं होते। अधिकांश पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी, स्त्री समाज, स्त्री स्वातंत्र्य, स्त्री समानता की बाते करती हैं किन्तु वस्तुतः अधिकांश क्या है, यह उन्हें भी मालूम नहीं।"[150]

पारिवारिक जीवन की समस्याओं के कारण कभी-कभी घुटन महसूस होती है। जीवन मुश्किलों से भरा लगता है। कोई अपने के सामने जब तक दिल हल्का किया ना जाए घुटन बढ़ती ही जाती है।

'आवां' में स्मिता ऊपरी तौर पर खुश दिखाई देती है पर वह अंदर-ही-अंदर अपनी माँ एवं दीदी के लिए पिता के कारण चिंतित रहती है। घुटती भी है वह नमिता के सामने दिल हलका कर लेती है – "तू तो जानती है, नमी, दिमाग में कैसी मुडभेड़ चलती रहती है? डरावनी ! लगता है, किसी रोज आत्महत्या न कर लूं किसी ऊंची बिल्डिंग से छलांग लगा। 'एक्सप्रेस टावर' मुझे बहुत पसंद है। मरने के लिए मैं किसी साधारण इमारत को नहीं चुन सकती। पच्चीस माले की ऊंची बिल्डिंग से कूदना ऐसा लगेगा जैसे मैं स्वर्ग से स्वर्गवासी होने के लिए कूदे रही हूं ...नहीं ?"[151]

जब परिवार के साथ रहते मनुष्य खुलकर सांस नहीं ले पाता, वह घुटन महसूस करता है। 'गिलिगडु' उपन्यास में चित्राजी ने घुटन का चित्रण किया है। बाबू जसवंत सिंह को चाय-पानी, भोजन बहु सुनयना की सुविधा एवं पसंद के अनुसार ही मिलता था। उनकी पसंद-नापसंद को कोई महत्व नहीं था। कभी निंबू की चाय, कभी अधिक निंबू डालकर। जो भी बच जाता उसी से उन्हें नाश्ता बनाकर दे दिया जाता। वे घुट-घुट कर जी रहे थे। एक बार उन्होंने नरेंद्र से भोजन संबंधी आपत्ति प्रकट की तब नरेंद्र ने उन्हें लंबा-चौड़ा

भाषण दिया था – "दिल्ली आने के हफ्ते-भर बाद बाबू जसवंत सिंह को लगा था कि उन्हें नरेंद्र से अपनी आपत्ति प्रकट कर देनी चाहिए। खाने में कुछ भी खाना उनके लिए संभव नहीं। फ्रिज में रखा बासी-कूसी उसकी अम्मा ने कभी उन्हें नहीं खिलाया। सो पेट को उसकी आदत नहीं। रोटी भी तुरंत सिकी ही खा सकते वे। बनी रखी दांतों से चलती नहीं। जवाब में नरेंद्र के लंबे-चौड़े भाषण ने बाबू जसवंत सिंह को नसीहत पिलाई कि आइंदा वे अपनी पसंद की गुंजाइश इस घर में न ढूंढ़े तो बेहतर है।"[152]

'नाला सोपारा' यह उपन्यास विनोद की घुटन भरी दास्तां ही है। प्रारंभ से अंत तक वह विभिन्न कारणों से घुटन महसूस करता है। वह तुलसीबाई के अड्डे पर अन्य किन्नरों के साथ रहता है पर वह स्वयं को उनसे अलग मानता है। वह अपना दर्द बाँटते हुए लिखता है –" उनसे खूब बहस की है। आठवीं कक्षा तक भी है में वही था जो आज हूं। उस वक्त स्कूल के वार्षिकोत्सव में जब मुख्य अतिथि भाषण देते थे तो सभी अन्य विद्यार्थियों के भाँति मैं भी ताली पीटता था। बात-बात पर ताली पीटना मेरी स्वाभाविक प्रकृति नहीं है। स्त्रैण लक्षण मुझमें कभी नहीं रहे। अब भी नहीं हैं और जो लक्षण मुझमें नहीं हैं, उन्हें सिर्फ इसलिए स्वीकारूं कि मेरी बिरादरी के शेष सभी, उन हाव-भावों को अपना चुके हैं ? बैठ जाऊं उन्हीं के संग और रेजर से बांहों और छाती के जंगल को साफ करने लगूं कि उनका प्रतिरूप बने बिना मेरे सामने जीवन जीने के विकल्प शेष नहीं है।[153]

अपनी बा को लिखे पत्रों में उसकी घुटन और अधिक दिखाई पड़ती है। वह अपने को केवल जनतांग विकलांगता के कारण आम मनुष्य से अलग मानने को वह तैयार नहीं है -"कभी-कभी मैं अजीब सी अंधेरी बंद चिमगादड़ों से अटी सुरंग में स्वयं को घुटता हुआ पाता हूं। बाहर निकलने को छटपटाता मैं मनुष्य तो हूं न ! कुछ कमी है मुझमें इसकी इतनी बड़ी सजा! ऐसी मनस्थिति में मेरी आंखों से खारा पानी नहीं, खून ढुरकने लगता है बा!"[154] विनोद को न चाहते हुए भी किन्नरों का साथ देना पड़ता है क्योंकि उसी बिरादरी ने उसे अपनाया है। समाज ने किन्नरों को उपेक्षित करके निचले तबके रखा है।

इस प्रकार से घुटन के उदाहरण इन उपन्यासों में मिलते हैं।

4.3.2.2 दोहरे जीवन की त्रासदी:

वर्तमान युग में सभी लोग नकली चेहरा लगा घूम रहे प्रतीत होते हैं। कौन किसको फँसा रहा इसका पता ही नहीं चलता।

'एक जमीन अपनी' में अंकिता अपनी माँ के आँखों के ऑपरेशन हेतु कुछ दिनों के लिए गाँव गई थी। तब उसने मैथ्यू से कहा था कि नीता को उसके जिम्मे का काम सौंप दे पर म्यैथ्यू ने अंकिता को काम से ही निकाल दिया एवं नीता को सदैव के लिए उसका काम सौंप दिया, पर नीता अंकिता से यह बात छिपानी है- "ओऽ नो, अंकू !तुमसे वादा तो कर दिया था कि तुम निश्चित होकर घर जाओं, मैं तुम्हारा काम संभाल लूंगी, मगर इतनी भागा-दौड़ी मुझसे संभव नहीं हो पाई। बीच में मद्रास की एक फिल्म की 'डबिंग' का अनुबंध पूरा करना पड़ा गया... मैंने मैथ्यू से तुरंत स्पष्ट कर दिया था कि...आई एम रियली सॉरी, अंकू..."[155] आज के युग में हर समय का पूरा फायदा लोग उठाते हैं। दोगली वृत्ति के कारण विवश लोगों को अपने काम से हाथ धोना पड़ता है।

'आवां' में अन्नासाहेब अपना कन्नमवारनगर वाला फ्लैट देवीशंकर के नाम करनेवाले थे। उस घर के लेकर पवार जो सच्चाई बताता है उसे सुनकर नमिता भी हैरान हो जाती है – "'महाडा' का वह फ्लैट किसी सिंधी बुढ़िया के नाम था। एक कमरा अपनी गुजर के लिए रख, शेष दो कमरे उन्हें किराए पर उठाये हुए थे। बहुत पहले ही बुढ़ियाँ के इकलौते बेटे-बहू अमरीकी नागरिक हो विदेश बस गए।...ताई ने बुढ़िया की बड़ी सेवा की। मरने से पहले बुढ़िया से फ्लैट की लिखत-पढ़त अपने नाम करवा ली। सगे-संबंधियों ने बेटे-बहू के पास बुढ़िया की मृत्यु की खबर भिजवाई। बेटा आया। सिर पटक वापस लौट गया। अन्ना साहब ने उसे घर में पांव नहीं देने दिया।... सुना है, बुढ़िया के पास सोना-चांदी कम नहीं था। ...कुछ लोग कुछ और ही सच उगलते हैं। उनका कहना है, उसी सोने को बेचकर अन्ना साहब ने बेटी अवंतिका को उच्च अध्ययन हेतु इंग्लैड भेजा।"[156] दोगले वृत्ति के अन्ना साहब की करतूतें सामान्य जनता नहीं जानती थी।

'गिलिगडु' कर्नल स्वामी बाबू जसवंत सिंह के सम्मुख दोहरा जीवन व्यतीत करते हैं। सैकड़ों दु:खों के बावजूद वे उन्हें बहुत प्रसन्न एवं खुशहाल जिंदगी बिता रहे है ऐसा बताते हैं। उनके भरे-पूरे परिवार की बातें बताते हैं। जब कि उनके तीनों बेटे उन्हें अकेला छोड़ अन्य शहरों में बस गए है। 'गिलिगडु' जुड़वा पोतियों की काल्पनिक कहानियां बताते हैं। जिसके कारण कभी- कभी बाबू जसवंत सिंह को उससे ईर्ष्या होने लगती। पर जब सत्य सामने आता है तब तक कर्नल स्वामी इस दुनिया से कुच कर गए थे। मिसेज श्रीवास्तव से उनके परिवार के बारे में पूछा तो वे कहती है –" कौन से बहू बच्चे। .... उकेले ही रहते देखा है। "[157] ऐसा कहा जाता है जो ज्यादा सुखी दिखता है वह अंदर से बहुत रोता है। आज के इस काल चेहरा और दिल अलग-

अलग भाषा बोलते हैं। जिससे दूसरा व्यक्ति अपरिचित रहता है और जब सच सामने आता है तो बहुत देर होती है।

'नाला सोपारा' में बा विनोद से कहती है कि तेरे पिताजी ने तेरी मौत को लेकर भानू मामा से कौन-सा नया बहाना गढ़ा ? झूठ को सच मानकर चलना ही अब प्रवृत्ति बन गई है। वह स्त्री होने का दु:ख प्रकट करती है कि स्त्री को स्वयं के निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। उसे तो पति एवं बच्चों की हां में हां मिलाना होना पड़ता है एवं दोहरा जीवन जीना उसकी मजबूरी होती है – "फिर द्वन्द्व को भी मन के अदेखे कोने- अन्तरों में उठने की इजाजत नहीं होनी चाहिए। उठ भी आते हैं को क्या ! किसी नतीजे से जुड़ पाने का साहस कहां जुटा पाते हैं। इसलिए कि स्त्री के अंतर्प्रकोष्ठों का वातावरण औरों की भंगिमाओं और भृकुटियों से निर्मित होता है। संज्ञाविहीन होती है, स्त्री सके नाम नहीं होते। मुखौटे होते हैं। गुहारने और हस्ताक्षर करने भर के लिए।"[158] समाज में स्त्री का अस्तित्व बहुत ही दयनीय है। घर में अधिकार उसका होता है परंतु निर्णय लेने का हक सिर्फ पति और बेटों को दिया जाता है। उसमें उसकी कोई भूमिका नहीं रहती। उसे अपनी मान्यता व्यक्त करने का भी अवसर प्रदान नहीं किया जाता।

लेखिकाने अपने उपन्यासों आधुनिक युग की दोहरे जीवन की त्रासदी को उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है।

4.3.2.3 युवा पीढ़ी की स्वरार्थपरता –

आज की युवा पीढ़ी ना किसी की कदर करती नाहिं किसका भला चाहती है। वे अपने स्वार्थ के लिए दूसरे के मोहरा बनाते हैं।

'एक जमीन अपनी' इस उपन्यास में चित्राजी ने युवा पीढ़ी की स्वरार्थपरता पर भी प्रकाश डाला है। नीता वास्तववादी है। वह विज्ञापन जगत के सच्चाई से अच्छी तरह परिचित है व अपने करियर के लिए कुछ भी करने तैयार है। उसमें स्वरार्थपरता भरी है। वह यही दृष्टिकोण के बारे में अंकिता को समझाते हुए कहती है- "सच तो यह है अंकू ! मैं जिंदगी में जो कुछ भी हासिल करना चाहती हूँ, उसे तुम्हारे तर्ज पर चलकर कोई लड़की हासिल नहीं कर सकती ! और तुम्हें क्या लगता है कि तुम्हारी छवि सती-साध्वी की है ? ...अंकू ! जिन्हें तुम अपने कंधे पर हाथ नहीं रखने देतीं, न जाने कितनी बार तुम्हें अपना हमबिस्तर बनाने के चटपटे किस्से

गढ़कर एक-दूसरे को सुना चुके होंगे। फिर तू ही बता ! इन गधों को उल्लू बनाकर हम क्यों न इनके सिर पर चढ़कर बोलें ? "[159]

आज युवा पीढ़ी बुज़ुर्ग पीढ़ी के प्रति समर्पित न रहकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने तक उनका ध्यान रखती है या उनके साथ रहती है अथवा उन्हें वृद्धाश्रम की राह दिखाती है।

बुढ़ापा मनुष्य जीवन का आखरी पड़ाव है। जहाँ मनुष्य अकेला, असहाय, निर्बल तथा दूसरे पर आश्रित रहता है। जसवंत सिंह के बीमारी के कारण खून के धब्बे उनके पायजामे में लगते हैं। बहु सुनयना ने जब यह सुना कि जसवंत सिंह आज रात का भोजन बाहर निरूलाज में खाने वाले है तब उनके बढ़ते उत्साह को उतारने हेतु उसने उनके पायजामे को लगे धब्बों की बात कही। यह बात वह बाद में अहित्सा भी बता सकती थी – "उन्हें बहू सुनयना को अपने बाहर जाने के बारे में सूचित करना था रात वे घर पर खाना नहीं खाएँगे। नोएडा 'निरूलाज' जा रहे हैं। बहू सुनयना ने उनकी बात लगभग सुनी- अनसुनी-सी करते हुए रुक्ष स्वर में कहा। उनके पायजामे और चड्ढी में लगे खून के धब्बे वाशिंग मशीन में नहीं छूटते। उनके बाथरूम में रिन की बट्टी रख दी गई है। कपड़े धोने डालने से पहले वे स्वयं धब्बों को तनिक रगड़ दिया करें।"[160] आज की वर्तमान इन बुज़ुर्गों की परिस्थिति के बारे में लेखिका क्षमा शर्मा का कथन है,"अपने द्वारा ठुकराए जाने का जो मलाल होता है, उसका क्या कोई इलाज है ? उस अकेलापन और अपमान के असहाय का क्या जो उनके करीबी जन कराते है। वे बार-बार यह अहसास दिलाते है कि उनकी जरूरत अब घर में तो क्या इस धरती पर ही नहीं रही। उन्होंने जिनके लिए अपनी उम्र और अपने सारे संसाधन लगा दिए, वे ही दो जून की रोटी के लिए दुत्कारते हैं।"[161]

'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' उपन्यास में चित्रा मुद्गल ने युवापीढ़ी की स्वार्थपरता को दर्शाया है। इस उपन्यास में विनोद का बडा भाई सिद्धार्थ एवं उसकी पत्नी सेजल युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है। वे परिवार की चिंता न करते हुए केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। माता-पिता, कारोबार, छोटे भाई की उन्हें बिल्कुल भी चाह या चिंता नहीं है। वे उन्हें छोड़कर नए फ्लैट में चले जाते हैं।

बा अपने कमरे में विनोद की तस्वीर टांगती है जिसे देखकर सिद्धार्थ को सेजल गर्भावस्था में उस तस्वीर को देखेगी तो विनोद की तरह ही किन्नर पैदा होने की संभावना है ऐसा उसे लगता। तीज-त्योहार में माँ के आँसु विनोद के लिए है यह भी वह जानता है – "बा, अपने कमरे में तुमने बिन्नी की तस्वीर क्यों टांग रखी है ? सेजल

की निगाह उस पर पड़ती नहीं होगी ? कभी सोचा है तुमने उसके मन पर क्या प्रभाव पड़ता होगा ? तुम भले कभी उस काली परछाई का नाम अपनी जुबान पर नहीं लाती तो क्या ? बिना वजह तीज-त्योहार पर तुम्हारी भर-भर आती आँखें... मेरे पेट से जन्मे को तू काली परछाई कह रहा है, तू भी तो उसी कोख से जन्मा है। मंजुल भी तो उसी कोख से जन्मा है। क्या अनिष्ट किया है उसने हमारा। प्रकृति ने जो इसके साथ नाइन्साफी की, उसमें उस मासूम का क्या दोष?"[162] सिद्धार्थ एक सहज एवं व्यवहारिक युवा है। वह अपने इच्छापूर्ति हेतु किसी बात से नहीं हिचकता।

आज के युवा में 'अपनी-अपनी देख' वाली स्वर्थपरक वृत्ति विशेष तौर पर युवा पीढ़ी में पाई जा रही है। देश-समाज तो दूर की बात वे अपने परिवार से भी कटकर रहते हैं। कर्तव्य के प्रति उदासीन रहना केवल अपने स्वार्थ के लिए परिवार से जुड़ना सामान्य बात हो गई है।

संजय कनोई अपने भाई निखिल के बारे में बताते हुए कहता है कि वह चार्टर्ड एकाउंटेंट है। उसे स्वर्ण -व्यवसाय में कोई लगाव नहीं है। "छोटा भाई है मेरा। बड़ी मुश्किल से राजी कर पाया हूँ उसे उसे स्वर्ण -व्यवसाय में आने के लिए। चार्टर्ड एकाउंटेंट है। साल-भर पहले ही पढ़ाई पूरी की है उसने। अमेरिका भागने के फिराक में था। दरअसल उसकी प्रेमिका सानफ्रांसिस्को पहुंच गई न 'इंटरनेशनल रिलेशंज' कोर्स के सिलसिले में...उसका मन हिंदुस्तान में लगे तो कैसे लगे !"[163]

रचनाकार ने आज की युवा-पीढ़ी की स्वार्थपरता को उपन्यासों के प्रसंगों से व्यक्त किया है।

4.3.2.4 संदेहशीलता –

संदेह वह विष है जो बिना मतलब कलह को जन्म देता है। यह दीमक की तरह मनुष्य को खा जाता है।

'एक जमीन अपनी' में अंकिता हरिंद्र की सहायता से स्थायी नौकरी हेतु मुंबई आई थी। वे एक दूसरे को पहले से ही जानते थे। सुधांशु और अंकिता शादी के बाद अलग हुए थे। इसलिए हरिंद्र की पत्नी सविता के हरिंद्र एवं अंकिता के संबंधों को लेकर अकसर चिंतित रहती है। शकभरी नजरों से देखती थी। वह हरिंद्र एवं अंकिता के रिश्ते से अनभिज्ञ थी। "वह हरिंद्र इस विचार से सहमत नहीं थी, किन्तु पत्नी के समक्ष उसके सहयोग की चर्चा न चलाए जाने की बात उसने अवश्य स्वीकार कर ली। सलाह उसे तर्कपूर्ण और अनुभव-

सिद्ध लगी। यूं भी कि एक तलाकशुदा स्त्री का किसी के पति के विषय में उसके गुणों और आत्मीय सहयोग की साधिकार चर्चा, उनके संबंधों को संदिग्ध बनाती है।"[164]

'आवां' में नमिता की पढ़ाई आर्थिक कारणों से छूट गई थी। एक साल व्यर्थ चला गया। यह दु:ख उसे भीतर-भीतर खाए जा रहा था। नौकरी हेतु वह रोजगार कार्यालय के चक्कर काट रही थी। उसका घर से बाहर निकलना भी माँ को नागवार गुजरता था। वह उसपर शक करती थी। -" उड मत ! दीदों में तेल चुआकर नहीं बैठी हूं मैं। वही सोचूं कि इधर तू घर की सीढ़ियां उतरी नहीं, उधर पतरसुट्टी विष्ट आंटी का भतीजा पट्ठा बालों में सुग्गे काढ़ फट सड़क पर ! मामला बडा है।"[165]

संदेह के विष से व्यक्ति मरता तो नहीं पर मर-मर कर जीता है। संदेह के कारण दोनों व्यक्ति परेशान हो जाते हैं – "जो संदेह करता है वह भी और जिसपर संदेह किया जाता है वह भी।"

मिसेज रावत ने बाबू जसवंत सिंह पर आरोप लगाया था कि उन्होंने उनकी बेटी को देखकर पायजामा खोला था। सुनयना ने बिना सोचे समझे बाबू जसवंत सिंह पर संदेह किया एवं उन्हें आरोपी करार कर दिया। जिससे बाबू जसवंत सिंह जिनका कोई दोष नहीं था, मन मसोसकर रह गए – "आप…अपने सामने वालि मिसेज रावत की बेटी को देख पायजामा नहीं खोला ? ' तोहमत सुन बाबू जसवंत सिंह की कनपटियों में खून बटुर आया। ' उम्र में उनकी बेटी के दादा-नाना के बराबर हूं। ऐसी ओछी हरकत करूंगा क्यों ? ''सो तो आप जानें। मिसेज रावत यही शिकायत करने आई थीं और बाकायदा धमकाकर गई हैं- अपने रंगीले ससुर से कहिए, अपना रवैया बदल लें, वरना सोसायटी में हम लिखित शिकायत करेंगें। यह भी कहकर गई हैं। जरूरत पड़ने पर पुलिस में भी जा सकती है।"[166] भारतीय संस्कृति में पहले बुजुर्गों को सम्मान देते थे। उनका मत सुनते थे। पर अब उसका वितरित हो गया है। मान-सम्मान की दूर की बात उनकी बात तक की नहीं सुनता।

दु:खात्मक स्थिति के लिए संदेह एक साधन है। इसमें पारिवारिक जीवन की समस्याएँ बढ़ती है। 'नाला सोपारा' में सेजल का पांचवा महीना चल रहा था। मोटाभाई सदैव आशंकित रहता था कि कहीं बच्चा जननांग दोषी रहा तो क्या होगा ?वह सोनोग्राफी करवाता है। वह डॉक्टर से बच्चे के जननांग के बारे में पुछता है –"सोनोग्राफिस्ट से बच्चे को घुमा-घुमाकर अनेक कारणो से दिखाया था। अपने पोते को देखकर मैं आनन्द-विभोर हो उठी थी। बच्चे के वजन को लेकर सोनोग्राफिस्ट ने हल्की सी चिन्ता जताई थी। सुनकर तेरा मोटा भाई एकदम से चिंतित हो उठा। उससे अजीबो-गरीब सवाल करने लगा। लड़का हो या लड़की; उसे दोनों

स्वीकार हैं मगर वह जरा गौर से देखकर बताए, उसका जननांगं ठीक से विकसित हो रहा है न! कोई नुक्स तो नहीं नुक्स हो तो उन्हें स्पष्ट बता दिया जाए। बच्चा गिरवा देंगे वह। अभी समय है। बच्चे के विषय में उन्हें निर्णय लेने का पूरा अधिकार है।"[167] वह दफ्तर में आकर इंटरनेट पर चिपक जाता है जैसे किन्नरों की जानकारी लेता है। उसे विनोद के किन्नर होने के कारण से सदा यहीं डर खाए जाता है।

इस प्रकार से संदेहशीलता के प्रसंग उपन्यास में मिलते हैं।

4.3.2.5 नारी-शोषण

नारी-शोषण पारिवारिक जीवन की एक समस्या है। नारी-शोषण घर, परिवार, कार्यालय लगभग सभी जगह होता है।

'एक जमीन अपनी' में चित्राजी ने नारी जीवन के प्रसंगों पर प्रकाश डाला है। सुधांशु और अंकिता का प्रेम-विवाह हुआ था। पर 'दूर के ढ़ोल सुहावने लगते हैं' कि उक्ति को चरितार्थ करना उनका प्रेम तीन साल में नफ़रत में परिवर्तित हो गया। एक बच्चा होकर जी नहीं पाया। सुधांशु बातों एवं लातों से उसका शोषण करने लगा। "यह मेरा घर है…और यहां तख्ती वही लटकेगी जैसी में चाहूंगा…इसका फैसला तुम कैसे कर सकती हो ?''मैं ही करूंगी …क्योंकि इस घर के लिए मैंने अपना सब कुछ होम कर दिया है…मुझे हक है यह यह फैसला करने का…''यू शटअप …कमीनी औरत…' 'कमीनी… ।… सुंधांशु पगलाएं सांड-सा टूट पड़ा था उस पर, 'स्साल्ली…रंडी…यही तो तेरा असली रूप है…इतिहास पढ़ाना चाहती है…प्रोफसर बनना चाहती है…तू कभी नहीं बन सकेगी… कभी नहीं…'सुधांशु ने उसकी कविताओं की कॉपी चिथड़े-चिथड़े कर कुड़ेदान में फेंक दी थी।"[168]

डॉ. वंदना मोहिते के शब्दों में,"नारी किसी भी क्षेत्र में हो समाज उसे चूसता हैं।"[169]

नारी शोषण एक सामाजिक समस्या है। घर हो या कार्यालय हर जगह किसी न किसी रूप में नारी शोषण पाया जाता है। 'आवां' में कई प्रसंग इससे संबंधित वर्णित है।

अन्नासाहेब नमिता के पिता के मित्र है। वह उन्हें पिता समान मानती है पर आघाडी कार्यालय में वे उसके साथ बेहूदी हरकत कर शोषण करते है और कोई ग्लानि अथवा लाज भी महसूस नहीं करते –" साफ कहूं तुमसे ? साफ कहने का मैं आदी हूं। देखो, दोस्त की बेटी हो तुम बेटी नहीं हो मेरी। पिता समान हूँ मैं तुम्हारे,

पिता नहीं हूं। रिश्ते की इस गहन अंतर्सूक्ष्मता को महसूस कर लोगी तो संबंध से स्वयं को शोषित अनुभव नहीं करोगी। न छुड़ाने कोशिश करो, न उठने की...कहा न, पिता नहीं हूं, पिता सामान हूं। यह जो समान होने का उत्तरदायित्व है...उससे विमुख हो पाना मेरे लिए कठिन है। इसलिए डरो मत।"[170]

सुनगुनियां के पति जहरीली शराब पीने के कारण मृत्यु हो गई थी। गांव में जेठ जोर जुल्म पर आमदा था। सुनगुनियां का जेठ उसके पति के तेरहवीं के पाँचवीं रात बच्चे को जान से मारने की धमकी देकर उसके साथ जबरदस्ती करता है। संपत्ति हड़पने के बहाने सुनगुनियां का विवाह जबरन एक बूढ़े से करवा रहा था। "गाँव वह किसी हाल में नहीं लौटने की। मलकिन जोर न दें। गांव में जेठ जोर-जुल्म पर आमादा था। हिस्सा बांट हड़पने की फिराक में उसे जबरन बूढ़े दोहाजू के पल्ले बांधने की सांठ-गांठ बना चुका था। सुनगुनियां ने मंजूर न किया। कल दोपहर बुढ़वा के संग उसकी बैठा बैठी थी। "[171]

नारी शोषण को उपन्यासों में उपर्युक्त प्रसंगों से व्यक्त किया है।

4.3.2.6 दांपत्य विषयक समस्याएँ

पति-पत्नी के रिश्ते में कई समस्याएँ आती है। सोच-समझकर उन्हें हल भी किया जा सकता है। पर जब उन्हें अधिक खींचा जाएं तो संबंध तक टूट जाते हैं।

'एक जमीन अपनी' में अंकिता और सुधांशु ने प्रेम विवाह किया था पर उस प्यार की उम्र काफी कम ठहरी। एक बच्चा एवं उसकी मौत ने अंकिता को सुधांशु की उदंडता के प्रति ग्लानि से भर दिया। उसने अपनी चुड़ियाँ तोड़ दी, सिंदूर, मंगलसूत्र निकाल फेंका एवं स्वयं को सुधांशु नामक दीमक से आजाद कर लिया। "अब जो यह अंकिता है, उससे सुधांशु नाम के किसी पुरुष का कोई वास्ता नहीं...उस सुधांशु से, जो ब्याह से पहले प्रशिक्षण के लिए जाते हुए उसे छिहत्तर पता-लिखे लिफाफे थमा गया था और उन खतों की खुशबू जवान भी नहीं होने पाई थी कि असमय दम तोड़ बैठी। मुश्किल से तीन साल साथ रह पाए वे...उसे पहली बार यह एहसास हुआ था कि कुछ लोग दूर से ही अच्छे लगते हैं- हरियाली के बीच गुंथे पोखर-से, जिसका सड़ा हुआ पानी गले से नीचे उतरते ही विष बनकर शिराओं को सन्न कर देता है।"[172]

दांपत्य जीवन में अगर कडुवाहट आ जाए तो उससे उभरना बहुत मुश्किल हो जाता है। अंकिता को अपने ऊपर हुए ज्यादतियों से वाकिफ है। इसलिए जब सुधांशु फिर से उसके साथ रहने का

आश्वासन देता है तब वह कहती है, “सुधांशुजी, औरत बोनसाई का पौधा नहीं है…जब जी चाहा, उसकी जड़े काटकर उसे वापस गमले में रोप लिया ! वह बौना बनाए रखने की इस साजिश को अस्वीकार भी तो कर सकती है !”[173]

सुखी दांपत्य जीवन परिवार को सुखी रखता है। दांपत्य जीवन की समस्याएँ दांपत्य जीवन की सुख-शांति छिन कलह निर्माण करती है। ‘नाला सोपारा’ में सेजल एवं सिद्धार्थ में एक बार झगडा हुआ था और वह गुस्से में मायके चली गई थी। सिद्धार्थ को सेजल के विवाहपुर्व प्रेमी का पता चल था –“तु भुली नहीं होगी, बा! सेजल भाभी और मोटा भाई में एक बार भयकर झगडा हुआ था। बंद कमरे के दरवाजे कमरे का पर्दा बनाए रखने में असमर्त हो उठे थे। सेजल भाभी दूसरी सुबह बलसाड़ चली गयी थीं। मासके। तीसरे रोज तूने मोटा भाई को उन्हें लिवाने बलसाड़ जबरन भेजा था। सेजल भाभी तब समझदार थीं। घर लौट आई। मैंने सेजल भाभी से पूछा था, आपका जीनियस सिद्धार्थ आपसे नाराज क्यों हो गया था? तो सेजल भाभी ने सजल होकर कहा था ‘मुझसे मेरे पूर्व प्रेमी की चिट्ठियां चाहिए उन्हें।”[174]

पारिवारिक जीवन सुखी होने से ही पारिवारिक जीवन सुखी रहता है। दांपत्य जीवन में समस्याएँ रही तो परिवार में कलह एवं दु:ख दैनंदिन क्रियाकलापों का अंग बन जाता है।

‘आवां ’ में संजय कनोई अपनी पत्नी निर्मला की बुरीई करते हुए अपने दु:खी दांपत्य जीवन के बारे में नमिता से खुलकर बतियाता है। अपनी पत्नी के लिए ससुराल नहीं बल्कि मायका अधिक आकर्षित करता है। वह अपने सास-ससुर का ध्यान भी नहीं रखती है। – “विचित्र लगता है।’ गहन वेदना से बोझिल, स्वयं को न ढो पाता हुआ। ‘दरअसल, संबंध गणित नहीं। उसके लिए गणित है। उसकी संवेदना हृदय में नहीं, मस्तिष्क में बैठी हुई है। मायके के लिए वह जितनी संलग्न और दायित्वपूर्ण है, मेरे अस्वस्थ माता-पिता के प्रति उतनी ही उदासीन ! उसके लिए उनका बजूद कहीं है ही नहीं। और जो शिकायत आमतौर पर स्त्री को पुरुष वर्ग से है, वह पुरुष को स्त्री से होने लगे तो समन्वय का लक्ष्य पूरा होने से रहा।”[175]

दांपत्य जीवन में खटास आने पर पति-पत्नी-परिवार दु:खी हो जाता है। नित नई समस्याएँ खड़ी हो जाती है। बाबू जसवंत सिंह अपनी पत्नी की सुशीलता के कारण स्वयं को बहुत सुखी मानते है पर जब सुनगुनियां के पति की मृत्यु हुई, वह गाँव वापस चली गई तेरहवी के कुछ दिनों बाद वह गांव व रिश्तेदारों को छोड़ कानपुर वापस उन्हीं की शरण में आ गई। उसके दु:ख को देखकर पहले तो वे पसीज गई पर उनकी

व्यवहारिकता ने कुछ और ही सोचा- “औरत की इतनी मजाल ? सगे-संबंधियों को लात मार उनकी देहरी आ गिरी। इनकी जात-बिरादरी में कौन अग्नि परीक्षा होती है कि इसके-उसके नहीं बैठते ? जरूर उनके साथ उसका कोई चक्कर है।”[176]

इस प्रकार से दांपत्य जीवन विषयक संवेदनाएँ उपन्यासों में पाई गई है।

4.3.2.7 पति-पत्नी दोनों की कार्य शीलता –

पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हो तो उनका एक दूसरे के साथ एवं अपने परिवार के साथ तालमेल बैठाने का कार्य काफी दुष्कर होता है। वे परिवार को समय देने में असमर्थ होते हैं। भले ही संपत्ति काफी होती है पर काफी हद तक परेशानियां उठानी पड़ती है।

सेजल एवं सिद्धार्थ दोनों भी नौकरी करते हैं। जब चंपाबाई विनोद को लेने आई थी तब से बा ही उसे पाठशाला लेकर जाती है एवं वापिस भी लाती थी। कहीं किन्नर उसे ना उठा ले। एक दिन बा का स्वास्थ्य ठिक न होने के कारण बा ने सेजल से कहा था कुछ दिनों की छुट्टी लेकर विनोद को पाठशाला छोड़ दे। तब सिद्धार्थ ने असमर्थता प्रकट की थी – तु बाई टांग में उठ रही साइटिका की असह्य पीड़ा से बेचैन हो रही थी। तूने सेजल भाभी से आग्रह किया था कि कुछ रोज के लिए वह अपने दफ्तर से छुट्टी ले लें और मेरी हिफाजत का जिम्मा उठा लें। हौम्योपैथी से तुझे एकाध दिन में आराम आ जाएगा। जवाब सेजल भाभी ने न देकर मोटा भाई ने दिया था। जवाब की बजाय सवाल उठा। ‘ऐसे कब तक चलेगा, बा?’ ‘ जब तलक चल सकेगा’ कम बोलने वाले पप्पा का सुझाव था, फिलहाल पंद्रह दिन का मेडिकल और भिजवा देते हैं स्कूल में ... आगे ‘देखते हैं. देकते हैं समाधान तो नहीं है पप्पा!’ ‘ सेजल छुट्टी ले नहीं सकती। परसो ही उसके नये बॉस ने कार्यभार सम्भाला है और मैं छुट्टी लेकर घर नहीं बैठ सकता’ ।”[177]

पति-पत्नी दोनों की कार्य शीलता होने के कारण एक-दूसरे से मुठभेड़ होना स्वाभाविक है। कभी-कभी ऐसे झगडें भी उनके रिश्ते में दूरियाँ पैदा करते है।

‘आवां’ में हीरों के व्यावसायिक संजय कनोई एवं उसकी पत्नी निर्मला जो अपने पति का नहीं बल्कि अपने पिताजी के व्यवसाय की देखभाल करती है। इन दोनों की कार्यशीलता के कारण पैदा होने वाली स्थिति का वर्णन किया गया है – “उनके कार्य व्यापार में रुचि लेने के बजाय निर्मला को अपने बूढ़े पिता के

कारोबार की उन्नति में अधिक दिलचस्पी है। निर्मला के पिता रघुभाई ठाकोर गुजरात के सुप्रतिष्ठित हीरा-पन्ना व्यापारी हैं और विश्व के माने हुए बेजोड़ रत्न परखी। निर्मला तीन बहनें हैं। पुत्र के अभाव में पिता के विश्वव्यापि कारोबार में निर्मला ने आरंभ से ही रुचि ली और दायित्व संभाला। ”[178]

4.3.2.8 सामाजिक रूढ़िया

समाज द्वारा निर्धारित एवं प्राचीन काल से चली आ रही रूढ़ियाँ भी कभी-कभी पारिवारिक दु:खों एवं समस्याओं को जन्म देती है। तत्कालीन जमाने में माने जानेवाली घिसी-पीटी रुढ़ियाँ आज के माहौल में कुछ काम की नहीं, परंतु समाज का साथ एवं मान्यता होने के कारण अंध बनकर उनको मानना पड़ता है।

अंकिता अपनी अम्मा को कई बार मुंबई आने को कह रही थी पर वे कभी नहीं आयी क्योंकि वे सामाजिक रुढ़ियों एवं परंपराओं का पालन करनेवाली महिला थी और मान्यता के अनुसार माँ को बेटी के घर का पानी तक वर्जित होता है। “चलो तुम्हारा प्रण तो टूटा, अम्मा !’ कहां तो वह जब भी अम्मा से अपने पास आकर रहने का आग्रह करती, वे रिसाती हुई उसे झिड़क देतीं, ‘सब्बै तो चक्कर लगावत रहत हैं तोहरे लगे…हमरी छोड़…अइ, बिटिया के घर का पानी पी नरक जइबे का हम … राम-राम !”[179]

इस तरह हमने देखा कि चित्रा जी ने अपने उपन्यास ‘एक जमीन अपनी’ में दु: खात्मक संवेदना का वास्तविक चित्रण किया है। आज समाज का हर वर्ग हर तबके का आदमी दु: खात्मक संवेदना का अनुभव करता है। उसी चिक्त्रण को चित्रा मुद्गल जी ने अपनी लेखनी द्वारा मुखारित किया है।

समाज में चली आ रही रूढ़िया, संस्कार एवं मान्यताएँ पारिवारिक जीवन को दुश्वार कर देते हैं। सुनंदा की हत्या हो जाती है। उसकी मय्यत उठते ही बिमलाबेन ने अर्थी को कंधा दिया। सभी भौंचक्के हो गए। पहली बार संभवतः किसी औरत ने मय्यत को कंधा देने का साहस किया था। पाटील बिमलाबेन से कहता है आपको मालूम नहीं औरत के लिए मय्यत को कंधा देना शास्त्र सम्मत नहीं तब बिमलाबेन दहाड़ती है – “कुमंडूक पुरुषों से हमें सीखना होगा कि स्त्रियों के लिए क्या शास्त्र-सम्मत है, क्या नहीं ? निर्दोष स्त्री की नृशंस हत्या करना शास्त्र-सम्मत है, पाटिल ? नहीं, तो पूछो अपने हृदय से कि क्यों हमसे किसी ने उसके प्राण ले लिए ? मैं कंधा किसी औरत की मैयत को नहीं दे रही, उस स्त्री चेतना को दे रही हूं जिसका गला घोंटने की कोशिश हत्या के बहाने हुई है ! मैं हर जाति, धर्म, वर्ण की स्त्रियों का आवाहन करती हूं कि वे सबकी सब श्मशान चलें और बारी-बारी से सुनंदा की मय्यत को कंधा दें।”[180]

यहां चित्राजी ने पुरानी सामाजिक रूढ़ियों को ठुकरा कर स्त्री-पुरुष समानता की नई तस्वीर समाज के सामने रखने का साहस किया है।

कभी-कभी परंपरागत चली आ रही सामाजिक रूढ़ियाँ भी पारिवारिक जीवन में समस्याएँ खड़ी कर देती है। वर्तमान में क्रियाकर्म, अंतिम संस्कार भी बच्चों को ढकोसले प्रतीत होने लगे हैं। आडंबर लग रहे हैं। 'गिलिगडु' नरेंद्र की अम्मा के मृत्यु उपरांत नरेंद्र ने कंपनी विजिट के नाम पर बाल देने से मना कर दिया था – "भूल नहीं सकते। अम्मा के लिए अतिशय प्रेम बघारने वाले बेटे नरेंद्र ने उनके काम में बाल उतरवाने से मना कर दिया था। बालों में क्या रखा है। आडंबरों में उसे विश्वास नहीं। कंपनी विजिट करने बाहर से लोग आ रहे। चौथा करके दिल्ली चला जाएगा। तेरहवीं की सुबह और आएगा।"[181]

समाज में कुछ रूढ़ियाँ परंपरागत रूप में चली आ रही होती है। कुछ अच्छी होती है पर कुछ वर्तमान में अनुपयोगी सिद्ध होती है पर समाज उसी के प्रति लगाव रखता है, जिससे काफी लोगों को कष्ट पहुँचता है।

जननांग विकलांग बच्चे किन्नरों की अमानत होती है, यह अनिश्चित परंपरा वर्षों से चली आ रही है। किन्नरों को जब पता चलता है वे आकर उस बच्चे को साथ ले जाकर अपने साथ रखते है चाहे परिवार या बच्चे की इच्छा हो अथवा नहीं –" पहली बार जब चंपाबाई आई थी अपने घर तो पड़ोसियों ने तुझसे पूछा था, वंदना बेन, वे हिजड़े क्यों आए तेरे घर पर? गलत खबर थी उनको, सेजल पेट से है...' '.... घर की बंद खिड़कियों के भीतर उन्होंने मुझे लेकर कितना घमासान मचाया था। उनके पास पक्की खबर है। वे मुझे देखना चाहते हैं, साथ ले जाना चाहते हैं। साथ ले जाने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता। दुनिया की कोई ताकत नहीं। खबर पक्की नहीं है तो बच्चे को सामने करो। हम खुद देख लेंगे। माफी मांग निकल लेंगे घर से।"[182]

घर में जब शिशु का जन्म होता है तब किन्नरों को बुलाकर उनका आशीष से उन्हें भेंट देने की परंपरा वर्षों में चली आ रही है। विनोद को इस खोखली परंपरा कि बुजुर्गों की बेसिर पैर की बातें लगती है -"आधुनिक होते लोग पिछड़ी परमपराएं और मान्यताओं में विश्वास नहीं रखते। गुंडागर्दी करने वालों के हाथों में वह अपने शिशु को आशीषने का अधिकार कैसे सौंप सकते हैं ? बुजुर्गों की बाते। एक ओर आशीषने का सम्मान तो दूसरी ओर उन्हें कलंक मान घर-परिवार से उनका निष्कासन !"[183]

इस प्रकार से चित्रा मुद्गल ने अपने उपन्यासों के माध्यम से दु:खात्मक संवेदनाओं के अनेक प्रसंगों को भावप्रवण चित्रण किया है।

निष्कर्षत:

अत: हम कह सकते हैं कि मानवीय संवेदना की यथार्थवादी अभिव्यक्ति करने में चित्रा मुद्गल सफल रही है। उनके उपन्यास 'एक जमीन अपनी', 'आवां', 'गिलिगडु' एवं 'पोस्ट बॉक्स नं.203, नाला सोपारा' में उन्होंने मानवीय जीवन से संबंधित प्रत्येक संवेदना का सूक्ष्म रूप चित्रित किया है। उनका एक-एक उपन्यास हजारों संवेदनाएँ प्रकट करता है। उनका कोई भी उपन्यास पढ़ते समय पाठक उसमें इतना समरस हो जाता है कि कब-कब उसके मस्तिष्क एवं हृदय की संवेदनाएँ बदलती जाती है, कभी सुखी, कभी दु:खी,कभी भयानक, तो कभी घृणा से भर उठता उसे ही पता नहीं चलता। उनका एक-एक उपन्यास संवेदनाओं के सैलाब की तरह प्रतीत होता है।

चित्रा मुद्गल के उपन्यास साहित्य में हमने 'एक जमीन अपनी', 'आवां', 'गिलिगडु' एवं 'पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा' इन उपन्यासों का अध्ययन किया। इसके अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि चित्राजी की उपन्यास संपदा संवेदनाओं से भरी हुई है। उनके इन सभी उपन्यासों में सभी समवेदनाएँ अपनी हाजिरी दर्ज कराते पाए गए है। अत:कहा जा सकता है चित्रा जी की उपन्यासों में संवेदनाओं के सभी प्रसंग पाए जाते है। जिनमें लेखिकाने आर्थिक, रागात्मक, सुखात्मक, दु:खात्मक, धार्मिक, सामाजिक एवं मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाएं को गहराई से अभिव्यक्ति दी है।

संदर्भ सूचि

1. बागलकोट, डॉ. श्रीमती राजु. मृदुला गर्ग का कथा साहित्य का मूल्यांकन. पृ. 40-41
2. सिंह चौहान, डॉ. राजेंद्र. मालती जोशी का कथात्मक साहित्य. पृ. 49
3. वेंकटेश्वर, डॉ. एम. हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यासकार. पृ. 18
4. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.218
5. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.86
6. मोहन, विजय. भेद खोलेगी बात ही. पृ.164
7. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.18
8. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.8
9. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.114

10. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.169
11. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 283
12. मुद्गल, चित्रा. आवा. पृ. 283
13. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 27
14. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ. 263
15. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 159-160
16. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 51
17. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.75
18. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना . पृ.119
19. हिन्दी साहित्य कोश (भाग प्रथम). पृ.658
20. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. चिंतामणि भाग 1. पृ.28
21. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.209
22. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ. 210
23. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.11
24. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 38
25. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.210
26. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. चिंतामणि भाग 1. पृ.77
27. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ 39
28. गर्ग मृदुला. कथादेश. अगस्त 2000. पृ. 63
29. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.206
30. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.210
31. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.59
32. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.124
33. वनजा, के. चित्रा मृद्गल एक मूल्यांकन. पृ. 15
34. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.136
35. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.41
36. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 204-205
37. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.110
38. मनु, प्रकाश. हिन्दुस्तान. नई दिल्ली,17 फरवरी 1991
39. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.191
40. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. चिन्तामणि भाग 1. पृ.63
41. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.11
42. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.61-62
43. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.125

44. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.27
45. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.24
46. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. चिन्तामणि भाग 1. पृ.56
47. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 540
48. गर्ग, मृदुला. कथादेश. अगस्त 2000. पृ.62
49. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.138
50. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.23
51. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.10
52. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 24
53. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ 414
54. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.126
55. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.45
56. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. चिंतामणि भाग 1. पृ.40
57. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.176
58. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.86
59. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.137
60. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.63
61. यादव, डॉ.उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.123-124
62. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.13
63. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.39-40
64. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.53-54
65. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.64
66. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.327
67. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.54
68. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.75
69. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.36
70. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.27
71. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.71
72. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.106
73. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.10
74. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.61
75. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.252
76. मुद्गल, चित्रा.पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.84

77. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.85
78. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.85
79. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.21
80. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.40-41
81. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ-85
82. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 30
83. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 44
84. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 222
85. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.19
86. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.84
87. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 30
88. मिश्रा, डॉ. अर्चना. चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में युग चिंतन
89. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.238
90. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.19
91. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 49
92. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 46
93. सिंह, पुष्पपाल. समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ. पृ.99
94. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.82
95. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 77
96. सिंह, पुष्पपाल. हिन्दी गद्य की उपलब्धियाँ. पृ.40
97. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.81-82
98. भारद्वाज, हेतु. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानवीय प्रतिमा. पृ.100
99. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.189
100. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ43
101. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.172
102. मिश्रा, डॉ. अर्चना. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में युगचिंतन. पृ.66
103. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 40-41
104. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.52
105. पांड्या, डॉ. जसवंत भाई. समकालीन हिन्दी नाटक. पृ.38
106. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.17
107. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.90
108. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.243
109. मुद्गल, चित्रा .एक जमीन अपनी. पृ.243
110. मुद्गल, चित्रा.आवां. पृ. 68

111. मिश्रा, डॉ. अर्चना.चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में युग चिंतन. पृ.79
112. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.71-72
113. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु . पृ.29-30
114. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.203
115. बडोले, डॉ. भगीरथ. प्रकर. अप्रैल 1991. पृ.43
116. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.77
117. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.140
118. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.168
119. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.155
120. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 51
121. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 344
122. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 363- 364
123. आजकल पत्रिका (सन् 2002), पृ. 10
124. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 103-104
125. मुद्गल, चित्रा.आवां. पृ.112
126. मिश्रा, डॉ. अर्चना. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में युग चिंतन. पृ.46
127. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.113
128. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.138-39
129. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.150
130. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.379
131. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 377
132. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 379
133. यादव, डॉ. उषा. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना. पृ.155
134. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.19
135. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.64
136. हिन्दी साहित्यकोश (भाग एक). पृ.370
137. मुद्गल, चित्रा. आवां, पृ.152
138. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.50
139. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.134
140. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.21

141. अहमद , सं. डॉ. एम. फीरोज. वाङमय. त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका, जनवरी-मार्च -2017. पृ.12
142. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.172
143. शर्मा, डॉ. शान. आधुनिक हिन्दी कहानी में वर्णित सामाजिक यथार्थ. पृ.214
144. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 136
145. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 97
146. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 48
147. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.181-182
148. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 187
149. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.271-272
150. पाटील, डॉ. कल्पना. चित्रा मुद्गल का कथा-साहित्य. पृ.126
151. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 187
152. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 39
153. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 9-10
154. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 30
155. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.27
156. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 378
157. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 130
158. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 73
159. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ.41
160. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 71
161. गुप्त, सं.संजय. दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण) दैनिक हिन्दी समाचार पत्र , रविवारीय अंतराल के अंतर्गत 'अपनों की अनदेखी का दर्द', क्षमा शर्मा, नई दिल्ली, 11 जून 2017)
162. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 23-24
163. मुद्गल, चित्रा. आवां . पृ. 277
164. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. 47
165. मुद्गल, चित्रा. आवां .पृ. 26
166. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 59
167. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.22
168. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ. 24
169. मोहिते, डॉ. वंदना. आठवे तथा नवे दशक के हिन्दी उपन्यासों में नारी. पृ.168
170. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 136

171. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 29
172. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ. 23
173. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. 235
174. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.28
175. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 281
176. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 30
177. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.14
178. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 272
179. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ. 20
180. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 153
181. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 52
182. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.12
183. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ.86

पंचम अध्याय

5. चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में शिल्प – विधान

इससे पूर्व अध्यायों में चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य के कथ्य तथा उसमें चित्रित विविध संवेदनाओं का विश्लेषण किया गया है। हर एक रचनाकार अपने विचारों, अनुभूति को अपने चिंतन के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। उसको समाज तक पहुँचाने के लिए वह अनेक माध्यमों का सहारा लेता है। साहित्यकार की पहचान उसके कथ्य से तो होती है परंतु उसके अभिव्यक्ति का कलात्मक माध्यम शिल्प के जरिए भी उसकी पहचान वह समाज में बनाता है। साहित्य में प्रत्येक विधा हो चाहे वह गद्य हो या पद्य उनका अपना विशिष्ट रचना शिल्प होता है। उसी प्रकार से गद्य विधाओं में भी कहानी, उपन्यास, यात्रा-वृतांत, नाटक, रेखाचित्र आदि का प्रस्तुति शैली एक दूसरे से भिन्न होती है। चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में शिल्प-विधान जानने से पहले शिल्प की संकल्पना को समझना उपयुक्त होगा।

5.1 शिल्प:परिभाषा एवं स्वरूप :

अपने विचार साहित्य के माध्यम से कहने के लिए रचनाकार जिस युक्तियों का प्रयोग करता है उसे शिल्प कहते है। शिल्प को क्रिया, रचना, कौशल तथा कला कौशल के रूप में स्वीकार किया गया है। कलाकृति का स्वरूप शिल्प पर ही निर्भर होती है। "शिल्प का अर्थ सामान्यत: निर्माण होना है। कवि अपनी आन्तरिक अनुभूति, विचारधारा और सौंदर्यबोध को कोई भी रूप देने के लिए स्वतंत्र होता है। किन्तु जिन उपादनों को जोड़कर वह अपनी अनुभूति, भावबोध और सौंदेर्यबोध को निश्चित रुपाकार देता है उसकी गणना शिल्प के अंतर्गत ही होती है।"[1]

शिल्प का शाब्दिक अर्थ - 'किसी वस्तु के बनाने या रचने का ढंग अथवा पद्धति' है। शिल्प , शिल्प-विधान, शिल्प-विधि आदि शब्द हिन्दी में समानार्थी रूप में प्रयुक्त होते है। शिल्प शब्द अंग्रेजी के 'टेकनीक' (Technique) का हिन्दी पर्याय है। अंग्रेजी में 'टेकनीक' के अलावा इसके लिए स्ट्रक्चर (Structure), आर्ट (Art), फार्म(Form), क्राफ्ट (Craft) जैसे शब्द प्रसिद्ध है। उपर्युक्त दिए गये सभी शब्दों में "शिल्प-विधि के लिए 'टेकनीक' शब्द अधिक उचित लगता है। क्योंकि शिल्प-विधि का शाब्दिक अर्थ है, किसी चीज के बनाने या रचने का ढंग या तरीका। किसी वस्तु के रचने की जो जो विधियाँ अथवा प्रक्रियाएँ होती हैं, उनके समुच्चय को शिल्प -विधि के नाम से जाना जाता है।"[2]

नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार- 'शिल्प' का अर्थ "कोई वस्तु हाथ से बनाकर तैयार करने का काम, कारीगरी, दस्तकारी या कला संबंधी व्यवसाय है।"[3]

उपर्युक्त परिभाषाओं के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि शिल्प और टेकनीक में ज्यादा अंतर नहीं है। हस्तकला में अधिकतर संबंधित शिल्प है वही दूसरी ओर किसी भी काम के कौशल पूर्ण समापन की ओर संकेत टेकनीक करती है। भले ही यह दोनों शब्द एक दूसरे से भिन्न हो लेकिन साहित्य में यह लगभग एक ही अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं।

हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने शिल्प को इस प्रकार से परिभाषित किया है –

1. जैनेंद्र कुमार शिल्प के संदर्भ में कहते है -"टेकनीक ढ़ाँचे के नियमों का नाम है। पर ढाँचे की जानकारी की उपयोगिता इसी में है कि वह सजीव मनुष्य के जीवन में काम आए। वैसे ही टेकनीक साहित्य-सृजन में योग के लिए है।"[4]
2. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार, "शिल्पविध कला के विभिन्न तत्वों अथवा उपकरणों की योजना का वह विधान, वह ढंग है, जिससे कलाकार की अनुभूति अमूर्त से मूर्त हो जाए।"[5]
3. शोभा वेरेकर के मतानुसार -"शिल्प का संबंध किसी भी वस्तु या कृति के निर्माण से ही है। वस्तु प्राकृतिक हो या मानव निर्मित, उसमें शिल्प को होना नितांत आवश्यक है। रचना में तो घटनाओं या प्रसंगों की सजावट शिल्प के द्वारा ही की जाती है। अतः रचना-प्रक्रिया को जिन उपकरणों से सजाकर सुंदर बनाया जाता है, वही रचना का शिल्प है।"[6]
4. डॉ. जवाहर सिंह के मत है कि, -"शिल्प विधि से तात्पर्य किसी कृति के निर्माण की उन सारी रचना प्रक्रियाओं तथा रचना पद्धतियों से है, जिनके माध्यम से शिल्पकार या रचनाकार अपनी अमूर्त जीवनानुभूतियों, मन:प्रभावों तथा विचारों और भावों को मूर्त रूप देकर अधिकाधिक और सौंदर्यमूलक बनाता है।"[7]

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि शिल्प अभिव्यक्ति करने के लिए एक विधान या बुनियादी स्वरूप है। शिल्प साहित्यकार की सृजनशीलता, प्रतिभा, कल्पना आदि का परिणाम है जो कलात्मक तथा रचनात्मक लेखन को प्रस्तुत करता है।

5.2 शैलीगत विशेषताएँ

साहित्यिक विधा में जितनी महत्वपूर्ण भाषा है उसके साथ शैली तत्व का भी उतना ही महत्व है। दोनों एक-दूसरे के पूरक है। रचनाकार अपनी रचना को प्रभावी तथा आकर्षित बनाने के लिए भाषा-शैली का उपयोग अपनी रचनाओं में करते हैं।

शैली की परिभाषा देते हुए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा कहते है, "शैली अनुभूत विषय वस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते है।"[8]

बाबू गूलाबराय शैली का स्वरूप बताते हुए कहते है, "शैली का संबंध कहानी के किसी एक तत्व से नहीं वर्न सब तत्वों से है और उसकी अच्छाई या बुराई का प्रभाव पूरी कहानी पर पड़ता है। कला की प्रेषणीयता अर्थात दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर करती है। किसी बात के कहने या लिखने के विशेष प्रकार को शैली कहते है। इसका संबंध केवल शब्दों से नहीं है, वरन विचार और भावों ले भी है।"[9]

एम. एस. जयमोहन के अनुसार, "भाषा शैली में चित्रा जी ने नये आयाम प्रस्तुत किए हैं। पात्र, परिवेश और प्रसंग के भाषा वैविध्य प्रत्यक्ष हैं। कथा सन्दर्भ के अनुकूल मलयालम शब्दों के भी प्रयोग है। भावुक समस्या बताने वाले उपन्यास की भाषा में भाव-प्रवीण शब्दों का प्रवाह कहीं दिखता नहीं, बल्कि नपे-तुले शब्दों के अर्थ के भीतर और अनके अर्थ भरकर पाठकों को चिन्तन के अनेक विकल्प प्रदान किए हैं। केरल की मलयालम भाषा का एक शब्द है किलिकलु अर्थात चिडिया।"[10]

डॉ. जोत्सना शर्मा के मतानुसार, "भाषा को यदि साहित्य का शरीर माने तो शैली को उसके शरीर का गठन मानना होगा।"[11]

चित्राजी ने अपनी साहित्य में आवश्यकतानूसार अनके शैलियों का प्रयोग किया है। वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक आत्मकथानक, संवादात्मक, काव्यात्मक, पत्रात्मक, पूर्वदीप्ति, मनोविश्लेषणात्मक ये सभी शैलीयां लेखिका के साहित्य में देखने के लिए मिलती है।

5.2.1. वर्णनात्मक शैली

वर्णनात्मक शैली एक पारस्परिक और प्रचलित शैली के रूप में जानी जाती है। इस शैली को कथात्मक शैली ऐसे भी उल्लेखित किया जाता है। कहानी लेखन में सबसे अधिक इसी शैली का प्रयोग किया जाता है।

“कहानीकार पात्रों के वर्णन,घटनाओं के चित्रण और कहानी के समस्त तत्वों को अपनी वर्णनात्मकता में समेट कर कहानी को पूरा करता है। स्थान-स्थान पर बौद्धिक विवेचन, भावनात्मक वर्णन और विश्लेषण आदि को भी स्थान मिलता है।”[12] यह शैली बहुत सरल, सहज एवं रोचक है। इस शैली में उपन्यासकार कथा तथा पात्रों का वर्णन तृतीय पुरुष के रूप में करता हैं। डॉ. प्रतापनारायण टंडन के मतानुसार – “इस शैली में कहानी के सभी मूल उपकरणों में विकास की संभावनाएँ विद्यमान रहती है। इसमें कथावस्तु में संग्रहित घटनाओं के प्रभावभिव्यंजक रूप में वर्णित होने के लिए स्थान रहता है। पात्रों के स्वाभाविक चरित्रांकन के लिए भी वह उपयुक्त हैं, कथोपकथन अथवा संवाद तत्व का भी आनुपातिक समावेश इसमें हो सकता है। देशकाल अथवा वातावरण के चित्रण के लिए भी इस शैली में उचित स्थान रहता है। उद्देश्य पूर्ति के विचार ले इस शैली में लिखी गई कहानी उत्कृष्ट सिद्ध होती है।”[13] चित्रा जी ने अपने कथा साहित्य में भी वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। लेखिका के उपन्यास ‘एक जमीन अपनी’ उपन्यास में हरीन्द्र मुम्बई के मैसम के बारे में वर्णन करता हुआ अंकिता को कहता है, “बम्बई का मौसम हर समय भीगे गुलाबों की खुशबू से सुवासित रहता है, न गरमी की तपिश, न हाड़ कंपा देने वाली ठिठुरन और सागर से घिरे बम्बई की हवाओं में ही नमक नहीं है, या कि पहाडियों, घाटियों, हरियाली और चेहरों पर भी उसकी आब महसूस की जा सकती है। यह शहर तनिक जिद्दी प्रकृति का है, अंकिता जी, जल्दी किसी से घुलता-मिलता नहीं लेकिन जब किसी को यह अपना लेता है, अपने रंग और तेवरों से उसे ऐसा सम्मोहनबद्ध करता है कि इसके समक्ष सारे शहर फीके, विपन्न, अनुशासनहीन और ऊष्मा रहित प्रतीत होने लगते हैं।”[14]

1) चित्रा जी के जिनावर कहानी में भी वर्णनात्मक शैली का उदाहरण देखने मिलता है – “चिलचिलाती धूप सहन नहीं हो पा रही है शायद सरवरी को। चेहरे को सुस्कारते हुए रह-रहकर झटक रही हैं। बाईं टांग का झटकना बंद हो गया है। हो सकता है, झटक भी रही हो तो उसका ध्यान नग या हो। घर को पलट चले। यहाँ खड़े होकर सुस्ता भी ले दस-पंद्रह मिनट, फिर भी उसे घर जैसा आराम कहाँ। पानी-वानी भी पिला सकता यहां। चलें...क्यों ? उसकी आँखों में एक बार फिर देखा उसने। नजर घूम गई उसकी। दिल दहल उठा। कैसी अजनबी नजरों से देख रही हैं? लगता है तबीयत अधिक बिगड़ रही हैं सरवरी की। आँखें-पानी-भरी कटोरी में तैर रही हैं जैसे।”[15]

2) ‘आवां’ उपन्यास में संजय कनोई जीवन की दिनचर्या से ऊबकर और थकान महसूस करता हुआ कहता है- “दरअसल, कुछ विचित्र सा ही है जीवन का ढर्रा। कारखाने और बाजार के बीच पसरी बदहवास

भागमभाग में न सोने के लिए अपने घर का शयनकक्ष नसीब होता है, न अपना पलंग तकिया। अक्सर चलती गाड़ी की सीटें और थर्राती सड़क की छाती मेरा पलंग और तकिया हो उठते हैं।"[16]

3) 'गिलिगडु' उपन्यास में भी बाबू जसवंत सिंह अपने छोटे शहर कानपुर को याद करते हुए वहां के वर्णन में बताते हैं – "जवाहर नगर में बहुत पहले पांच सौ गज का प्लाट खरीद लिया था। उसी पर योजनानुसार घर बनवाते रहे। संयोग से घर के सामने नगरपालिका ने शानदार बगीचा बनवा दिया। सोने पर सुहागा हो गया। बगीचे के बीचोबीच एक पुराना बरगद का पेड़ है जिसे नगरपालिका ने ज्यों-का-त्यों छोड़ रखा है। सैंकडों पक्षियों का शरण स्थल है बरगद। सुबह-सांझ चारों ओर गूंजता उनका कलरव भीतर ऐसे सुख की सृष्टि कर जाता है कि मन के कमाल धुल-पूंछ जाते हैं।"[17]

4) "मोट्या गाड़ी का पोर-पोर पीटे डाल रहा था। जैसे ही वह उसे धर दबोचने के लिए पैंतरा बदलता, पता नहीं कैसे उसको आभास हो जाता और वह पलटकर उसके सामने सरिया तान लेता। निरूपाय वह सिर से लेकर पाँव तक सिवा काँपने के कुछ नहीं कर पा रहा था।"[18]

उपर्युक्त उदारहरणों में वर्णनात्मक शैली को लेखिका ने सहज और सरल रूप में प्रस्तुत किया है।

5.2.2 विश्लेषणात्मक शैली

इस शैली में साहित्य में चित्रित पात्र, संवाद, वातावरण या घटनाओं के प्रसंगों को कार्य के अनुसार भावों को विश्लेषित करनेवाली शैली विश्लेषणात्मक शैली कहलाती है। इसमें तर्क प्रधान रूप से होता है। डॉ. श्री. लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार,"इस शैली के अंतर्गत अमूर्त से अमूर्त, सूक्ष्म से सूक्ष्म अंतर्गतों की अभिव्यक्ति स्वाभाविकता से हो जाती है।"[19] चित्राजी के लिफाफा कहानी में विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग देखने मिलता है। इस शैली के माध्यम से रचनाकार मुद्गल जी ने मानव मन के अंतर्द्वन्द्व को उजागर किया है।

1) "अजीब हो गयी है वह। अजीब-अजीब खयालात में बिंधी समझ नहीं पाती कि वह बदल गयी है या उसके अपने ? ऐसा क्यों हो रहा है उसके साथ ? इसलिए कि वह इस चौदह बाई दस के कमरे में कैद होकर रह गई ? इसलिए कि उसकी दुनिया न इस कमरे के विस्तार को लांघ पाती है, न बाहर फैली हलचलों का सैलाब उस तक पहुंच पाता है ? निष्क्रियता, अपंगता, असमर्थता…क्या उसकी कुंठा बन गई है ?"[20]

2) 'आवां' में नमिता पवार के चरित्र का विश्लेषण अपने मन में करती है,"पवार के विषय में मैं हमेशा की भांति अनबूझ भाव से भर आई। वही पुरानी बात, कभी लगता है, मैं उससे उसके संपूर्ण ताने-बाने के साथ परिचित हूं। एक-एक फंदे की कसावट या ढिलाहट सहित। मगर अगले ही पल भ्रम टूटना है। लगने लगता है, यह मेरा अपना ही झूठा दंभ है। पवार जालों से भरी ऐसी बंद काजल की कोठरी है, जिसमें दाखिल होने का साहस दिखाना अपने गली-गलियारों की गुंजाइश को तोपना है… "[21]

3) 'शून्य' कहानी में सरला का पति राकेश अपनी दूसरी पत्नी बेला के लिए अपने बेटे दीपू को माँगता है और तर्क देता हैं - "हाँ, यही कि कोर्ट के फैसले के मुताबिक एक साल बाद दीपू को हमारे पास ही होना हैं। लेकिन बेला चाहती हैं कि मैं उसे अभी ही ले आऊं। बेला का तर्क हैं कि दीपू को केवल मां के लाड़-प्यार की ही नहीं, बाप के अनुशासन और अंकुश की भी जरूरत है।"[22]

इस शैली के माध्यम से लेखिका ने मनुष्य के अंतर्द्वन्द्वों को पाठक के समक्ष रखा है।

5.2.3 पूर्वदीप्ति शैली

पूर्वदीप्ति शैली में अनुभवों की प्रधानता होती है जो पाठक के दिल पर सीधा असर डालती है। इसमें पात्र अपने भूतकाल की स्मृतियों में खो जाता हैं, उससे अगली कथा वस्तु को जोड़ता हैं। पात्र अपनी स्वयं की क्रियाकलाएँ अपनी जिंदगी से घटी हुई घटनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। पूर्वदीप्ति शैली को फ्लैश बैक शैली भी कहा जाता है। लेखिका ने पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग अपने कथासाहित्य में किया है।

1) 'आवां' उपन्यास में खंडाला के होटल में संजय कनोई नमिता के कमरे में आकर उसके साथ जबरदस्ती दुर्व्यवहार करता है, तब उसे अन्नासाहब तथा अपने मौसाजी का यौन-शोषण याद आता है,"दु:स्वप्नों की कोई एक सुरंग नहीं। कई-कई सुरंगे हैं बारूद -बिछी, उसके छोटे-से जीवन में। जिनमें हुए विस्फोटों ने उसके विश्वास को चिंधी-चिंधी मौत दे हवा में बिखेर दिया है। अस्तित्व के खंडित टुकड़ों सा।"[23]

2) 'मुआवजा' कहानी में पूर्वदिप्ति शैली की प्रस्तुति देखने मिलती है। मृत शैलू के माता-पिता उसकी स्मृतियों में खो जाते हैं। "उंगलियां माथे और कनपटियों को सहलाती हुई मधु की पलकें ढाँपने नीचे सरकीं तो लगा कि अचानक वे किसी गहरे पोखर में फिसल गई हैं। यह शैलू के लौटने का समय है ! अधिकाशं अंतरराष्ट्रीय उड़ानें आधी रात या सुबह के लगभग आती हैं। ठीक पांच के आस-पास

दरवाजे की घंटी बज उठती। आते ही वह शोर मचाने लगती- 'बिस्तर छोड़िए, मैं फटाफट चाय बनाकर लाती हूँ ! उठिए, उठिए, अब लेटने की क्या जरूरत है ? …आप तो मधुमेह के मरीज है पापा !"[24]

3) "सुदीप से हुई पहली मुलाकात का वाकया स्मरण हो आया…मौसीजी के घर पर मिली थी उससे- बड़े भैया बिन्नी के अरसे बाद मिले दोस्त के रूप में। साधारण कद-काठी और सेनावाली चुस्ती-दुरुस्ती।"[25]

4) "मुश्किल से तीन साल साथ रह पाए वे…उसे पहली बार यह एहसास हुआ था कि कुछ लोग दूर से ही अच्छे लगते हैं। अच्छे होते हैं- हरियाली के बीच गुंथे पोखर-से, जिसका सड़ा हुआ पानी गले से नीचे उतरते ही विष बनकर शिराओं को सुन्न कर देता है।"[26]

उपर्युक्त उदाहरण के से रचनाकार ने पात्रों को भूतकाल में विचरण कर वर्तमान के भाव भूमि पर बड़ी ही सजगता से प्रस्तुत किया है।

5.2.4 आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली में कथा का पात्र स्वयं के अनुभवों को अभिव्यक्त करता है। यहाँ कथाकार प्रथम पुरुष के रूप में अपनी आत्मकथा के समान कहानी का चित्रण करता है। जिसे साहित्य में आत्मकथात्मक शैली कहते है। आधुनिक युग में 'मैं' शैली का ज्यादातर प्रयोग किया जाता है। चित्रा जी ने अपने साहित्य में इस शैली का प्रयोग किया है। निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य है -

1) 'अवांतर कथा' में संपादक की पत्नी के रूप में लेखिका की पहचान बन गई है। उनकी व्यथा उन्होंने आत्मकथात्मक शैली में की है,"आमंत्रण के प्रत्युत्तरस्वरूप जहां भी मैं पहुंचती हूं, मेरे संपादक पति का हुक्का वहां पहले से ही मौजूद होता है। मैं निमंत्रण तो एक कहानी-लेखिका के ही रूप में प्राप्त करती हूं…मगर गोष्ठी समाप्त होते-होते बन जाती हूं-केवल 'संपादक की पत्नी'। जिस पहचान की खातिर मैं निरंतर कलमघिसाई में लगी हुई हूं और भविष्य में भी लगी रहूंगी, उस साधना को पलक झपकते ही संपादक-पत्नी बना देते हैं लोग।"[27]

2) "और साहसा यह मेरे पास आने का निर्णय ? क्या रूना ने मुझे कारण मुक्त कर दिया ? जिन्हें वह अपने स्वप्न संसार के दहने का आधार करार दे एक कसैली चुप्पी की तरह कैद हो गयी थी। जिसके लिए उसे श्रीमंत को जिम्मेदार ठहराना चाहिए था, उसने मुझे ठहराया था।"[28]

3) “माँ पिछले चार-पाँच मिनट से सुबक रही हैं लेकिन उनके आँसू मेरी आँखों में नमी पैदा नहीं कर पाए। उलझन और बेचैनी तो निरंतर बनी हुई हैं किन्तु अपने नाम पापा की लिखी गई चिट्ठी का जिक्र सुनते ही जी में आया कि फौरन उठकर बैठ जाऊँ और माँ से कहूँ मुझे मेरी चिट्ठी दे दो। मेरा गुलाब दे दो ! मेरे पापा को लौट लाओं ! ”[29]

5.2.5) काव्यात्मक शैली

काव्यात्मक शैली में कथाकार अपने रचना की कथा में काव्य के प्रयोग करता है। जिसके द्वारा कथ्य भावपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण प्रतीत होता है। लेखिका ने अपने कथा-साहित्य में काव्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। उनके लोक गीतों में काव्य-पंक्तियों और पौराणिक कथाओं का प्रयोग दिखाई देता है। उदाहरण के लिए निम्नवत् गीत प्रस्तुत है।

1. ‘गिलिगडु’ उपन्यास में कर्नल स्वामी अपनी जुड़वा पोतियों के सुनाए बालगीत को जसवंत सिंह तन्मयता से सुनते है,

“हाथी राजा बहुत बड़े / सूंड उठाकर कहाँ चले

मेरे घर में आओ ना / हलुवा पूड़ी खाओ न !”[30]

2. ‘शून्य’ कहानी में गौने के गीत की चार पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

“गोरी चली नइहरवा बलम सिसकी दै-दै रोवै। / बागन में रोवै बगीचा में रोवै,

देहरी पे सिर दे मारे / बलम सिसकी दै-दै रोवै…”[31]

3. ‘पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा’ विनोद अपने पत्रों में माँ को उनकी लोरी की याद दिलाता है-

‘खम्मा वीरा ने जाऊं वारणे, रेऽऽ लोल / एक तो सुहागी मारो वीर, रेऽऽ लोल

वीजा सुहागी मारो वीर, रेऽऽ लोल / खम्मा वीरा ने जाऊं…’[32]

4. ‘आवां’ के अंत में ‘पाश’ की कविता का प्रस्तुत उदाहरण इस प्रकार से है -

‘ हम लड़ेंगे साथी / उदास मौसम के खिलाफ

हम चुनेंगे साथी / जिन्दगी के टुकड़े।

हम लड़ेंगे, जब तक दुनिया में / लड़ने की जरूरत बाकी है।

हन लड़ेंगे की लड़े बगैर / कुछ नहीं मिलता।

हम लड़ेंगे कि अब तक / लड़े क्यों नहीं।

जो लड़ते हुए मर गए / उनकी याद जिंदा रखने को।

हम लड़ेंगे साथी / हम लड़ेंगे…’[33]

कथा-साहित्य में काव्य पंक्तियों का प्रयोग करना ही गीत काव्य कहा जाता है। इसका प्रयोग विशेषकर ग्रामीण जीवन शैली में किया जाता है, जिसे लोकगीत भी कहा जाता है। लेखिकाने अपने कथाओं में गीत काव्यों का समावेश किया है।

‘ब्लेड’ कहानी में रामखिलावन अपने गाँव जब भी जाता था तो उनकी बेटी घुघुनू को पाँवों पर झूला झूलाती वह गीत गाती थी –

‘घुन मनैया…कौड़ी पैंया…गंग बहैंया / गंगा हमका बालू दिन…

भड़भुजा हमका लावा दीन…/ लावा-लावा बीन चबाबा…ठुर्री-ठुर्री गइया क दिन…

गइया हमका दुद्धा दीन…/दुद्धा लै हम खीर पकावा

सब कोऊ खावा…/टु टुं रू…टूऽऽऽऽ’[3]

5.2.6 व्यंग्यात्मक शैली

व्यंग्य किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना तथा परिस्थिति की कठोर हास्यात्मक शैली में की गई आलोचना को कहा जाता है। इसमें महत्वपूर्ण तत्वों का उद्बोधन किया जाता है। इसमें कभी तीखी चुभन, गुदगुदी तथा मनोरंजन भी होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस संदर्भ में कहते हैं कि “व्यंग्य कथन की ऐसी शैली है जहाँ बोलने वाला अधरोष्ठों में मुस्कुरा रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठे।”[35]

1) ‘गिलिगडु’ उपन्यास में व्यंग्य का उदाहरण इस प्रकार से दिखाई देता है-टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। उसकी हर इच्छा पूरी की जाती है परंतु बाबू जसवंत सिंह की इच्छाओं को कोई महसूस भी नहीं करता। टॉमी को टी.वी पर ‘आज तक’ देखना पसंद नहीं है। “अंग्रजी समाचार लगाने पर उसकी कुंकुआहट नहीं फूटती। उनके ‘आज तक’ लगाते ही भिनक शुरू हो जाती है। मुश्किल से मुख्य समाचार-भर सुन पाते हैं कि टॉमी की कुंकआहट गुर्राहट में तब्दील होती बैठक में आतंक फैलाने लगती। बहू सुनयना से टॉमी की नाराजगी बगदाश्त

न होती। दखल देती हुई उन्हें टोंकती -'कोई म्यूजिक चैनल लगा दीजिए न बाबूजी ! आत तक का क्या है। चौबीसों घंटे चलता ही रहता है।"[36]

2) "कचरे के साथ बहुत सारी बातें ये लोग खुद ही बाहर फेंक देता हय।"[37]

3) "माँ को आपत्ति है कि जिस मोहल्ले में लोगों की जवान-जहील बेटियाँ-बहने डोलती फिरतीं हो, वहाँ किसी को अपने मुस्टंडे भाई-भतीजों को घर में नहीं टिकाना चाहिए।"[38]

4) "समझ नहीं पाई कि मैं अच्छा इसलिए बोलती और लिखती हूँ कि मैं एक सजग लेखिका हूँ, या इसलिए कि संपादक पत्नी हूँ ! आखिर मुझे बोलने के लिए बुलाया जाता है या रचनाएँ तौलने के लिए ?"[39]

5.2.7 मनोविश्लेषणात्मक शैली

मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग कहानियों में आए पात्रों के मन की दशा को सुलझाने यत्न करती है । उसके मन के भावों को प्रकट करने के लिए इस शैली का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक कहानियों में मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में देखा जा सकता है। डॉ. प्रताप नारायण टंडन मतानुसार- "पाश्चात्य मनोविश्लेषण शास्त्री सिगमंड फ्रइड ने इस क्षेत्र में कतिपय ऐतिहासिक मान्यताएं प्रस्तुत की, जिन्होंने मानव मन के वैज्ञानिक विश्लेषण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । फ्रायड तथा उसके परवर्ती मनोविश्लेषणशास्त्रियों ने मनुष्य के मस्तिष्क का विश्लेषण करते हुए उसकी तीन प्रमुख स्थितियों की व्याख्या की और चेतन, अर्धचेतन और अचेतन अवस्थाओं के रूप में उन्हें मान्य किया। व्यक्ति अपनी जागृत और सुप्त अवस्थाओं में इन्हीं से प्रभावित और परिचालित होता है। मनोविश्लेषण शास्त्र के सैद्धान्तिक रूप ने कथाक्षेत्रीय व्यापक संभवनाओं का निदर्शन किया।"[40]

'अपनी वापसी' कहानी में भी शकुन की स्थिति को मनोविश्लेशणात्मक ढंग के लेखिका ने प्रस्तुत की है -"वे बोलते ही जा रहे थे। उसकी एक हथेली उनकी मुट्ठी में भिंच गई। 'लगता हैं, उसने जिंदगी को सोचना अधिक शुरू कर दिया, जीना कम। जीने की कृपणता में वह मरती जा रही। पता नहीं, कैसे पहलेवाली सुनीता अब संशय, विरक्ति उपेक्षा और स्वार्थ की प्रतिमूर्ति बन गई। बहुत निकालने की कोशिश करता हूँ, वह अपने खोल से बाहर आना ही नहीं चाहती। अपने में सिमटकर वह अपने से बाहर कुछ भी सोच नहीं पाती, प्रौढ़ता को उसने हताशा की खोह बना लिया हैं, सोचती है कि उसके जीने के दिन चुक गए। नहीं समझती कि उम्र के

हर मोड़पर अपना रंग होता है। उष्मा होती है। उसे जीने की, जी लेने की ललक तो अपने भीतर होती चाहिए। ललक को हम जबरन मार डालेंगे तो सिवा जड़ता के हमारे पास शेष क्या बचेगा ?"[41]

5.2.8 संवादात्मक शैली

चित्रा मुद्गल जी ने अपनी कहानीयों में ज्यादातर संवादात्मक शैली का प्रयोग किया है। संवादात्मक शैली मुख्यत: नाटक विधा का प्राण तत्व मानी जाती है किन्तु कहानियों में भी संवादों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो रहा है। इस शैली में पात्रों के संवादों के कारण नाटकीयता आ जाती है। उसी प्रकार से कहानी की रोचकता बढ़ती हैं।

1) लेखिका के 'हथियार' काहानी का संवाद दृष्टव्य है

"बोलो तन्वी, कब घर आ रही हो तुम ?" उनका स्वर अधीर हो आया।

"किसके ?" उसकी कनपटियों पर उमस पिघल रही है।

वे शायद मुस्कराए उसके सवाल पर -"अपने और किसके।"

"वह तो आपका घर है, पा।"

वह चिढ़-से गए, "जहां रह रही हो, वह किसका घर है ?"

"मां का।" कोई हिचक नहीं थी उसके स्वर में।

"पगली, वही तो मैं कह रहा हूं, तुम अपने घर लौट आओ।"

"निर्णय ले लिया है, अपने घर ही लौटना चाहती हूं, पा।"

"तब दिक्कत क्या है ?"

"दिक्कत है…घर ढूंढ़ना है।"

"क्या मतलब ?" उनका स्वर गुर्राया।

"मतलब, अब मैं बालिग हो चुकी हूं, पा ! और अपने घर में रहना चाहती हूं। आपके पास ही वनरूम-किचन किराये पर लेकर…"[42]

2) 'लपटें' कहानी में प्रस्तुत उदाहरण इस प्रकार है –

"खूब सोच-विचार लिया है। हम भी उन्हें चंदा देंगे। उनकी जात-बिरादरीवालों से अधिक देंगे।" पत्नी का स्वर दृढ़ हो आया।

दरवाजे की कुंडी खोलते हुए वे पलटे -"बहवूदी न झाड़ो, चंदे की रकम आएगी कहां से ?"

"उसका भी इंतजाम है।"

उन्होंने अविश्वास से पत्नी की ओर देखा। दरवाजे का पल्ला नहीं खोला।

"बब्बू के डाकदरी के दाखिले के लिए जो बाइस हजार रुपये जुगाड़ कर बैंक में डालने के लिए रखवा गए थे तुम-रोक लिए थे हमने। चंदे में वही दे दो।"[43]

3) 'आवां' उपन्यास में चित्रित नमिता के गर्भपात का संवाद-

"कल एक नहीं...दो, दो कहर टूटे !"

"दो-दो...माने ?" संजय अबूझ-से हो आए।

"हमारी बच्ची नहीं रही..." उसकी सांस अपने भीतर छटपटाने लगी।

"तुम शायद चेत में नहीं। क्या कह रही हो...समझ रही हो ?"

"अच्छी-भली उसे छोड़कर आया हूं मैं तुम्हारे पास...सोनोग्राफी में नटखट कैसी चौकड़ी भर रही थी..."

"विश्वास करो, संजय..."

"जो सच नहीं, उसका विश्वास ?"

"जो घट गया, उस क्रूर सच का विश्वास...कल सुबह पाखाने में थी कि फोन की घंटी बजी। सुनकर हड़बड़ाती हुई बाहर निकली। फोन कट गया। कुछ देर बाद घंटी फिर बजी। फोन उठाया। फोन मुंबई से था। पवार का-अन्ना साहब की हत्या की सूचना देने। बस...ऐसी हौक समाई पेट में कि दर्द की चीरती हुई लहरें-सी उठने लगी एकाएक...खड़ी नहीं रह पाई मैं। बिस्तर पर लेटी कि...भल-भल खून रिसने लगा..."[44]

4) 'गिलिगडु' का संवाद दृष्टव्य रूप में प्रस्तुत होता है –

"घर पर...बहुएं, बच्चे सब कहां गए हुए थे ?"

"कौन-से बहू-बच्चे !" मिसेज श्रीवास्तव को बाबू जसवंत सिंह के प्रश्न ने भौंचक कर दिया।

"माधवी, अनुश्री, गिलिगडु...बेटा श्रीनारायण..."

"पिछले आठ वर्षों से हमने भाई साहब को अकेले ही रहते देखा है।"[45]

5.2.9 पत्रात्मक शैली

पत्रात्मक शैली का प्रयोग आधुनिक कथा-साहित्य में ज्यादा पाया जाता है। कथा का पात्र अपने अनुभवों तथा संदेशों को दूसरे पात्र तक पहुँचाने के लिए इस शैली का उपयोग करता है। पत्र के जरिए कथा यथार्थ के धरातल को छूती है। चित्रा जी के कथा-साहित्य में पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

1) 'एक जमीन अपनी' में अकिंता की सहेली नीता उपन्यास के अंत में जब आत्मघात करती हैं, तब एक पत्र अपनी सहेली को लिखती हैं। "अपने भीतर को तिल-तिल मरता महसूस करना कितनी असाध्य यंत्रणा है ! मुझमें अब और साहस शेष नहीं रहा कि मैं और अधिक दिनों तक अपनी मौत की साक्षी हो सकूं। चरम अकेलेपन और कुंठा से मुक्त हो स्वयं को बहुत संभालने और सहेजने की कोशिश की, लेकिन असफल रहीं। शिखर और धरातल के मध्य एक फासला होता है, दीर्घ ! जो अकस्मात खत्म होते ही रीढ़ को साबुत नहीं रहने देता। बीच में सीढ़ियां नहीं होती न ! वे बनाई ही नहीं गई कभी। …'अकू ! मानसी – भविष्य की इस स्त्री – को तुम्हें सौंप रही हूं, कुम्हार के हाथों में कच्ची मिट्टी सी! तुम्हारी ममता की गोद में मानसी अपने अस्तित्व की तलाश पूरी कर सकेगी- विश्वास है। अपनी नन्हीं-सी बेटी को अपने पास ले आना…तूम्हारी -नीतू'"[46]
2) 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा ' उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखा हुआ है। जिसमें किन्नर विनोद और उसकी माँ को दुनिया से छिपकर पत्र के द्वारा बात करते हैं।"'मेरी बा ! इस संकरी गली के संकरे छोर पर पलस्तर उधड़ी दीवारों वाले घर की सींखचों वाली इकलौती खिड़की के पार, दिल्ली के मेघ बरस रहे हैं।….यह पत्र अब पूरा नहीं कर पाऊंगा। सींखचों के बाहर मेघों का बरसना कम नहीं हो रहा। भीतर उसे मैं कैसे रोकूं ! कमरे की छत जाने कौन उड़ा ले गया है, लिफाफे पर पता लिख दिया है जिसे तूने फोन पर नोट करवाया है। पता पोस्ट ऑफिस का है, मेरे घर का नहीं। मेरे घर का पता क्या कहीं कोई है बा ? कैसी विभ्रम की स्थिति में जीता हूं मैं…बा, पगे लागूं, तेरा बिन्नी उर्फ बिनोद उर्फ बिमली।"[47]
3) 'पाली का आदमी' रवि का अपने पहली पत्नी की बेटी लल्ली का पत्र -"'आपको कई पत्र लिखे। कुछ फाड़ दिए, कुछ डाल दिए। किंतु आपने किसी का भी कोई जवाब नहीं दिया। सच बताइए, कोई अपनी बेटी से ऐसा व्यवहार करता है ? जबसे मैंने होश संभाला है, आपको नहीं देखा। कितनी इच्छा

होती है कि एक बार, सिर्फ एक बार आपको देखूं। आप मेरे पास आएं। आप मुझे प्यार नहीं कर सकते तो क्या आशीर्वाद देने भी नहीं आ सकते ? बुआजी के पास मैंने आपका एक फोटो देखा था और माँ से सवाल किया था। मां के आंसू टपकने लगे जवाब में-"मैं अहल्या हूं, लल्ली ! शापग्रस्त अहल्या!"[48]

इस प्रकार से चित्रा मुद्गल जी ने अपने कथा-साहित्य में अनेक शैलियों का प्रसंगानुसार प्रयोग किया है।

5.3 भाषिक संरचना विविध आयाम

भाषा

मनुष्य के भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषा । आदिम युग में मनुष्य भावों को संकेतों के जरिए दूसरे तक पहुँचाता था। धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन आ गया। अक्षरों तथा शब्दों के विकास होने के कारण अनेक बोलियों का प्रादुर्भाव हुआ तथा अनेक बेलियों का विकास होने के कारण भाषा का उद्भव हो गया। आज भाषा अपने परिष्कृत रूप में अत्यन्त उन्नत हो गयी है। भाषा का संबंध समाज से होता है। मनुष्य का ज्ञान का बढ़ाने का कार्य भाषा ही करती है। ज्ञान और साहित्यिक विधाओं की जननी भाषा ही है। भाषा का स्वतंत्र तत्व नहीं लेकिन बिना भाषा के साहित्य की कल्पना करना सम्भव नहीं, फिर भी भाषा को एक तत्व के रूप में स्वीकार किया जाता है। प्रत्येक विधा की अपनी ही भाषा होती है, जिसकी अपनी विशेषताएं और आवश्यकताएं होती हैं। उपन्यासों व कहानियों की भाषा में अनेक प्रकार के शब्द प्रयोग किए जाते हैं जो काव्य में प्रयुक्त भाषा से कुछ भिन्न होते हैं। भाषा के संदर्भ में डॉ. भोलानाथ तिवारी का कथन है, "भाषा, उच्चारण-अवयवों से उच्चारित, यादृच्छिक (Arbitracy) ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज-विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"[49]

भाषा संबंधी विभिन्न भाषाशास्त्रियों ने परिभाषायें दी है जो निम्न प्रकार से है :

डॉ. श्यामसुंदर दास के मतानुसार, "मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।"[50]

आलोचक हजारी प्रसाद के अनुसार "भाषा साहित्य का वाहन है। उपयुक्त भाषा के अभाव में न तो भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति सम्भव है, न ही उनकी सक्षम अभिव्यंजना। भाषा बोध के लिए एक

सक्रिय उपादान है जब कि अन्य ललित कलाओं में ऐसा कम होता है लेकिन यह मान लेना भ्रामक है कि बिना भाषा के विचारों की व्यंजना नहीं होती।"[51]

डॉ.मंगलदेव शास्त्री के अनुसार – "भाषा मनुष्य की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किए गए वर्णनात्मक या व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।"[52]

डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है, "साहित्यिक भाषा मूलतः बोलचाल की वह भाषा है जो विभिन्न रचनाकारों की सृजन प्रक्रिया से समाहित होकर अपने स्वरूप को परिवर्तित कर लेती है।"[53]

भाषा ही साहित्यकार की सफलता की पहचान होती है। उपन्यासकार भाषा के माध्यम से ही सामाजिक यथार्थ को परखता है तथा अपनी लेखनी से उसे उभारता है । लेखिका के कथा साहित्य में हिन्दी, उर्दू, मराठी, ब्रज और अवधी, हरयाणवी भाषा के दर्शन होते हैं। ठेठ बम्बइया लहजे का उन्होंने प्रयोग किया है। आम जनता की भाषा की नब्ज पकड़ने में चित्राजी सिद्धहस्त हैं। मुद्गल जी का साहित्य पढ़ने के अतिरिक्त सुनाई और दिखाई पड़ता है तथा उनकी भाषा में शब्द सुनाई ही नहीं बल्कि दिखाई भी पड़ते हैं जो पाठक के मन मस्तिष्क में घर करते हैं।

कहानीकार ने अपने साहित्य में सरल, रोचक, जीवंत, प्रवाहमयी, पात्रानुकूल, भाषा का प्रयोग किया है। डॉ.गोरक्ष थोरात के मतानुसार – "चित्रा मुद्गल की भाषा केवल पात्रानुकूल ही नहीं है, बल्कि जीवंतता, सजीवता, सरलता,रोचकता, प्रवाहमानता उनकी भाषा केगुण है। इसका कारण हैं कि उनकी भाषा में कहामतों, मुहावरों, उक्तियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ हैं।"[54]

चित्राजी की भाषा पर साहित्यकार महेश दर्पण ने टिपण्णी करते हुए कहा, "चित्रा मुद्गल की कथा भाषा में कई चीजें गौरतलब हैं। जीवन से आती भाषा में मुहावरे यहां खुद-ब-खुद खिल उठते हैं। कई बिला गए शब्दों का प्रयोग मोहक है। भाषा आधुनिक गद्य के सीमित स्वरूप को समृध्द करती है और इसकी वजह यह है कि वह पात्रों के भीतरी व बाहरी संघर्ष को पकडने का प्रयास करती है।"[55]

5.3.1. शब्द-योजना

चित्राजी के कथा-साहित्य में अनेक शब्दों के सृजन के कारण अनेक आयामों में वे परिलक्षित हुए हैं। लेखिका के साहित्य की यह विशेषता रही है कि उन्होंने कई भाषाओं के आभूषणों से अपने साहित्य को निखारा और सजाया है। एक ओर वे ठेठ अवधी भाषा का प्रयोग करती है, तो दूसरी ओर अंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग तनी ही बखूबी से करती है। अनेक भाषाओं से समावेश से मुद्गल जी का साहित्य रंग-बिरंगे फूलों की तरह प्रतीत होता है। उनके साहित्य में अनेक भाषाओं के शब्द मिश्रित हैं। स्थानीय शब्दों का प्रयोग लेखिकाने अपनी कथा साहित्य में किया है। उन्होंने अवधी, मराठी, गुजराती, तेलुगू भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उनके साहित्य में उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का भी भरमार है –

5.3.1.1 परिनिष्ठित हिन्दी शब्दों का प्रयोग

संस्कृतनिष्ठ तथा सभ्य भाषा का प्रभाव जहाँ पर दिखाई पड़ता है उसे परिनिष्ठित हिन्दी शब्द कहते हैं।

1. "देखा जाए तो बेचारे लेखक-लेखिकाओं को एक आदर-सत्कार ही तो है, जो भरपूर खुले हाथों से मिलता है, बाकी तो मात्र 'पत्र-पुष्पम्' होता है।"[56]
2. "इधर हिन्दी के कुछ शीर्षस्थ कथाकारों ने इस दिशा में संयुक्त प्रयास आरंभ किया है, नाटककारों के साथ बैठकर मंच की तकनीक की जानकारी से भिज्ञ हो नाटक लिखने की।"[57]
3. "अपने भ्रम पर उसे वितृष्णा हुई।"[58]

5.3.1.2 भदेस भाषा

साहित्य में भदेस भाषा वर्जित है परंतु कथ्य के अनुरूप इसका प्रयोग किया जाता है तो रचना में प्रवाहमयता तथा स्वभाविकता आ जाती है। लेखिकाने भदेस भाषा का प्रयोग अपने साहित्य में किया है।

1) "चुप्प हरामिन, अलाय-बिलाय उगलती करतनी-सी जबान काबू में रख वरना…छाली-सी छील गली के कुकुरों को खिला दूंगी।"[59]
2) "हरामखोर, कुत्ती ! मेरे कोच बोल मारती कि तेरे सरखा नौरा नई माँगता। आई कोच ? आँख का पानी मर गया ना हलकट ? उस भैए के पिच्छे !"[60]

5.3.1.3 अन्य भाषा तथा बोलियों का प्रयोग -

कथाकार ने पात्रानुकूल भाषा तथा बोलियों का समायोजन करके अपने साहित्य का सौंदर्य बढ़ाया है। उनकी कथासाहित्य में गुजराती, ब्रज, पंजाबी, हरियाणवी शब्दों का प्रयोग किया है।

गुजराती भाषा के शब्द

बेन, तमारो, बा, तपासा, बेवडा, परवडे, आत्मयघात आदि।

ब्रजबोली के शब्द

"बाको कहनौ है कि टांग पै जांच-फांच के बाद पलस्तर चढ़ेगो सो प्रीवेट करवाने से इलाज अच्छो होइगो। अब खर्च-पानी जो लगेगो सो लगेगो, पर मौड़ी की जिनगी बेदाग रहि जाएगी...जमानौ तो जानतई हो, साबुत हाड़-गोड़ वारी केई डोले उठने मुस्किल हैं, जो लूली-लंगड़ी बनी रही तो कौन छप्पर-टप्पर देइगो?"[61]

पंजाबी भाषा के शब्द

गड्डी, सिद्धे-सिद्धे, बिजी, भैन जी, काके, दिदे, बकत

हरियाणवी बोली के शब्द

"मरद मेरा गऊ माणस है, जलती धूप में अक्खा दिण रिक्शा खींचणेवाला माणस। किससे झगड़ा-टंटा करेगा ! सांझ को इतणा लस्त-पस्त होता है, सा'ब कि कोई पास-पड़ोसवाला उठणे-बैठणे को बुलाए भी तो वो कहां बैठणे वाला।"[62]

लेखिकाने अपने कथा-साहित्य में जीवन के विविध प्रसंगों को अपने पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है। उनके कहानियों तथा उपन्यासों में हिन्दी, मराठी, ब्रज, उर्दू, हिन्दी, अवधी आदि का मेल मिलता है। डॉ. अर्चना मिश्रा के अनुसार, "उनकी भाषा कबीर की तरह सधुक्कडी या कही-कही पंचमेल खिचडी हो गई हैं, जो आम जनता के लिए सुपाच्य है। जिसमें 'खडी' बोली का ठाठ और हैदराबादी उर्दू लेखक की खनक एवं ठसक तो है ही राष्ट्रभाषा के जनभाषा में रुपांतरण का अटपटा सा लगनेवाला सयास प्रयास भी दिखता है। "[63]

मलयालम भाषा का प्रयोग

1.किलिकलु (गिलिगडु, चित्रा मुद्गल, पृ. 21)

उर्दू भाषा का प्रयोग

हिन्दी एवं उर्दू को जुड़वा बहनों की सज्ञा दी जाती है। जब उर्दू के शब्द हिन्दी में इस प्रकार से घुलमिल गए हैं कि वे हिन्दी के शब्द है ऐसे प्रतीत होते हैं। रचनाकार ने अन्य भाषा की तरह उर्दू के शब्दों का प्रयोग किया है।

1) "खुदा का खौफ खा बद्ज़ुबान…आग लगे तेरी गजभर की जुबान को कुत्तिया ! जिस रोज बैठ गयी न ये तेरी सौत, संखिया खाने की नौबत आ जायेगी पूरे कुनबे को !"[64]
2) "पुलीस बन्दोबस्त तो जबरदस्त है पर…वारदात हो जाने के बाद ही वह मुस्तैद होती है।"[65]

इसके अलावा साहित्य में अनेक जगह पर उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे- तारीफ, खिलाफ, वजूद, इत्तिफाक, हर्ज, मशविरा, खुदानखास्ता, नामुमकिन, वक्त, तनखाह, औकात, गज़ल, इश्क, औलाद, मुआवजा, बिरादरी, सब्र आदि।

अंग्रेजी भाषा प्रयोग

कथ्य के पात्रों के अनुरूप आवश्यकतानुसार अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता है। लेखिकाने अपने रचनाओं में सुशिक्षित पात्रों के माध्यम से अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया है।

1) "जस्ट लिसन"[66]
2) "परफेक्ट रिलेशंस "[67]
3) "नेवर माइंड"[68]
4) "दे आर क्वाईट मच्यौर"[69]
5) "मैकडोनल्स"[70]
6) "डू यू थिंक दैट पापा इज विद अस ?"[71]
7) "यूनिर्वसिटी"[72]
8) "पोस्ट ऑफिस"[73]
9) "इंडियन एक्सप्रेस"[74]
10) "जे.जे. केमिस्ट "[75]
11) "एशियन पेंटस"[76]

12) "प्लीज, स्टाप दिस ब्लडी ढोंग ! स्टाप इट !"[77]

हिन्दी- अंग्रेजी मिले-जुले वाक्य

1. "व्हाट मीराबाई ! इन सफेद साड़ी …सी, यू लुक लाइक हंसिनी ! समझी मदाम ?"[78]
2. "वह एक खूबसूरत रात थी ऐण्ड…शी वाज वण्डरफुल…वेरी कोऑपरेटिव ।"[79]

इसके अतिरिक्त अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कथाकार के साहित्य में पाया जाता है। लवली कपल, कनेक्शन, प्राइवेट, प्लेस, क्यू, फिनान्स, मैडम, पोर्टफोलियों, मोबाइल चार्जर, डिनर, साइलेंट अटैक आदि शब्द पाए जाते है।

कथासाहित्य में अशिक्षित पात्रों द्वारा उच्चारे गए अंग्रेजी शब्द -टिरेन, लंबर, कारड, फिलैट, डिरेवर, किलास, बिलैक, इंसल्टी, रिसक, टरम, पेशल आदि।

मराठी भाषा के शब्द

लेखिकाने मुंबई का परिवेश देखा ही नहीं बल्कि वहाँ पर रहते झोपडपट्टी में वास करते लोगों के साथ वहाँ को वातावरण को भोगा है। इसलिए उनके साहित्य में मराठी भाषा के शब्दों का आना स्वाभाविक है ।

1. "मुम्बई आमची ।…अब्बी बोलता दूसरा जात वालों को बाहर हकालो ।"[80]
2. "पळ लवकर…"[81]
3. 'घबरा नईं, लक्ष्मा ! मैं दूसरा जागा पर कोसिस करेगा ।'[82]
4. –"हरामखोर, कुत्ती !...मेरे कोच बोल मारती कि तेरे सरखा नौरा नईं मंगता ! आई कोच ? आंख का पानी मर गया न हलकट, उस भैए के पिच्छू…!"[83]

इसके साथ ही अन्य मराठी शब्दों का उदाहरण इस प्रकार है-पावली, हलु-हलु, देवा, घाई, भात, लगेच, पोरगी, शपथ, नक्कीच, उसल-पाव, पोट आदि।

अवधी बोली के शब्द

लेखिका जन्म स्थान अवध प्रदेश होने के कारण उनके साहित्य में अवधी बोली के शब्द पाए जाते हैं। उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से उस गांव के वातावरण में सजीवता लाने के लिए अवधी बोली के शब्दों का प्रयोग किया गया है।

अवधी बोली के शब्द इस प्रकार से है - दुई-चार, नेग-नेगार, बहुरिया, मनई, तेहिन, भेडहा, बइठब आदि । कथाकार के 'लकड़बग्घा' कहानी में अवधी बोली का प्रयोग इस प्रकार से दिखाई देता है -"हमका पक्का प्रबन्ध चही…पुनिया हमरी भाँति जाहिर-काहिल न रही…आज हम चार अक्षर पढ़ी-लिखी तौ कोहू के आसरे चौका बासन निबटावति पड़ी रही होतिन ! हमार जिनगी कढ़िलत-घसिटत बीत गीयी । हमार भाग्य । मगर हम अपनी बिटिया का पढ़ैबै…इंहा संभव न होई तो हम वोहिका अपनी बहिनी के घर इलाहबाद म राखि के पढ़ैबै।"[84] उनकी अवधी शब्दों की गहनता को लेकर दामोदरदत्त दीक्षित का कहना है, "कई कहानियाँ अवध क्षेत्र से संबंधित हैं । लेखिका ने अवधी शब्दों के बहुत अच्छे प्रयोग किए हैं । निराला, भगवतीचरण वर्मा और श्रीलाल शुक्ल को छोड़कर अन्य किसी कथाकार ने खड़ी बोली में ठेठ अवधी के इतने अच्छे प्रयोग नहीं किए जितने कि चित्रा मुद्गल ने किए है ।"[85]

5.3.1.4 उक्तियाँ-सूक्तियाँ

साहित्य में उक्तियाँ-सूक्तियों का बहुत मात्रा में प्रयोग किया जाता है । उक्ति का अर्थ है- "कथन, वाक्य या कवित्मय वचन ।"[86] और "सूक्ति का मतितार्थ है अच्छी उक्ति या बढ़ियाँ बात ।"[87] इसका तात्पर्य है गहन अनुभव से व्यक्त होनेवाली विशेष उक्ति को सूक्ति कहाँ जाता है । रचनाकार चित्रा जी के साहित्य में यत्र-तत्र इस प्रकार की सूक्तियां मिलती है ।

1)"जिसके माँ नहीं होती, बाप पहले ही मर जाता है ।"[88]

2) "जब साहब सुझाव देने लगें तो समझ लो उन्होंने गैंडे की खाल ओढ़ ली है।"[89]

3)"अत्याचार दिल और आँखों का पानी मार देता है ।"[90]

4)"मुहब्बत भी साली कोई दिखाने की चीज है ।"[91]

5.3.1.5 कोरस का प्रयोग

कोरस का अर्थ है, "समवेत गान या वृंदगान"[92] जहाँ पर साम्य राग पैदा करनेवाली ध्वनि की प्रस्तुति होती है ।

" नहीं भूल पाते कि मुंहअंधेरे उनके उठने से पहले एक चिड़िया चहकती है फिर खो-खो खेलती हुई-सी वह दूसरी को जगाती है-दूसरी तीसरी को, तीसरी चौथी को, चौथी पाँचवीं को और सैकड़ों

चिड़ियां जो अद्भुत लय-ताल में घमासान कोरस शुरू करती हैं, -चहचहाट का कोरस-उनका रोम-रोम आंदोलित हो उठता है… ”[93]

5.3.1.6 लेखिम स्तर

लेखिम स्तर का प्रयोग भावना तथा परिस्थिति को चित्रित करने के लिए किया जाता है। कथाकार तनावपूर्ण स्थिति को प्रस्तुत करने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। रचनाकार वाक्य को अधूरा इसलिए छोड़ता है ताकि पाठक उस स्थिति को समझ सकें । चित्रा जी ने अपने साहित्य में लेखिम स्तर का प्रयोग प्रसंगानुसार किया है।

1) “ स्कूल, पास-पड़ोस, बगीचों…रेलवे…प्लेटफार्म…पुलीस स्टेशन…ट्रैफिक दुर्घटना सूचि…रेलवे दुर्घटना सूचि…बाल सुधारगृह…निखिल विक्षिप्त से स्कूटर लिए दौड़ रहे थे।”[94] इस वाक्य में व्याकुल पिता के अपने खोए हुए बेटे को ढूंढने का प्रयत्न दिखाई दे रहा है।

2) “उसने अपने चारों ओर जड़ता की दीवार खड़ी कर ली है…मैं इस जड़ता से ऊब चुका हूँ! शकुन, ऊब गया हूँ बेतरह। बच्चे कट गये हैं…उससे दूर-दूर रहते हैं…मेरा कहीं निकल भागने को जी चाहता है…मैं जीना चाहता हूँ…मैं जी नहीं पा रहा…लगता है, एक और भयंकर युद्ध हो…पाकिस्तान के साथ और मैं बच कर न लौटूं… ”[95]

5.3.1.7 विशेषणों का प्रयोग

लेखिकाने अपने रचनाओं में अनेक नये विशेषणों का प्रयोग किया है। उन्होंने विशेषणों का प्रयोग यथोचित किया। उदाहरण के लिए -‘कुम्भकरना’,[96] ‘जहरीली लिसलिसाहट’,[97] ‘बोनी समर्थता’,[98] ‘विद्रुप सच्चाईयाँ’,[99] ‘दारुण उचाटपन’,[100] ‘आशास्पद भाव’,[101] ‘आत्मघाती आकर्षण’[102], ‘तटस्थता का मुखौटा’[103], आदि उनके कथासाहित्य में पाए जाते है।

5.3.1.8 ध्वनियों का प्रयोग

साहित्य में ध्वनियों का प्रयोग अनुकरणमूलक शब्दों द्वारा किया जाता है। चित्राजी के कथा-साहित्य में अनुकरणमूलक शब्दों का प्रयोग मिलता है। जीवन की क्रियाकलापों की ध्वनियों का समावेश उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। जैसे,

1)‘पो, पो, पो’[104] वाहनों के भोंपू की ध्वनि।

2) ‘खरर...’[105] माचिस की तीली-सुलगाने की ध्वनि।

3) ‘छन्नक!’[106] काँच फूटने की आवाज।

4) ‘खू खू खू खू’[107] खाँसी की आवाज।

5) ‘हिच्’[108] लिफ्ट रुकने की ध्वनि।

इनके अलावा और भी अनुकरणमूलक ध्वनियों का प्रयोग मिलते हैं। जिसमें ‘खच्च-खच्च’ गंडासी से काटने की आवाज, ‘ठक-ठक’ दरवाजे पर दस्तक, ‘सर सर’ बालों में ब्रश करने की आवाज, ‘ठक्क, ठक्क’ हथौड़े की ध्वनि आदि। इस तरह से देखा जा सकता है कि लेखिकाने अपने कथा-साहित्य में भाषागत विशेषताओं को दृष्टव्य रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा में सहजता, सरलता पाई जाती है।

5.3.1.9 भाषा में सृजानात्मकता एवं मौलिक प्रयोग

साहित्यकार अपने साहित्य को प्रभावपूर्ण करने के लिए विचलित वाक्य का प्रयोग प्रसंगानुसार करता है। इनका उपयोग रचनाकार सर्जनशीलता को बढ़ाने के लिए करता है उसी प्रकार से भाषा का सौंदर्य का भी निर्माण करता है। “भाषा में शब्द और रूप तो प्रायः सीमित होते हैं, किन्तु उन्हीं के आधार पर हम अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार सादृश्य के आधार पर नित्य नए-नए असीमित वाक्यों का सृजन करके उनका प्रयोग करते हैं। हम ऐसे अनेकानेक वाक्यों का रोज ही प्रयोग करते हैं, जो ठीक उसी रूप में पहले कभी भी नहीं प्रयुक्त हुए। मजे की बात यह है कि वाक्यों के नए होने पर भी, श्रोता को उन्हें समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। यह कमाल इस सृजनात्मकता का ही है जो वक्ता और श्रोता को समझने में कोई भाषिक क्षमता में होती है। और उसी के परिणाम-स्वरूप वक्ता नित्य नए-नए वाक्य का प्रयोग कर लेता है और श्रोता उन्हें समझ लेता है।”[109] लेखिकाने अपने कथा-साहित्य में विचलित वाक्यों का प्रयोग कर अपनी भाषा को अलग बनाया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखा जा सकता है –

1) “साक्षात दुर्गा ढाल बनी खड़ी है उसकी रक्षा को।”[110]
2) “महेन्द्र भैया के एकमात्र गहरे दोस्त बन गये थे श्रीमन्त”[111]
3) “पत्नी मैं तुम्हारी बन नहीं सकती।”[112]
4) “तरस गई है उन्हें उनकी पहली रंग-उमंग में देखने को।”[113]

उपर्युक्त विचलित वाक्यों से देखा जा सकता है कि भाषा में नयापन निखरकर आया है जिसे लेखिकाने बखूबी से चित्रित किया है।

साहित्यकार अपने लेखन को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने के लिए मौलिक प्रयोग करता है। जिससे वहाँ का वातावरण, व्यक्तित्व जीवंत रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत हो जाए। लेखिकाने सर्जनशीलता में अनोखापन लाने में अनेक मौलिक प्रयोग किए है। उनके कुछ उदाहरण दृष्टव्य रूप में निम्नलिखित है-

1) "पूरी रात अजगर सी पड़ी है।"[114]
2) "मन 'धुप्प' से बुझ गया।"[115]
3) "वह अपने से अलग हुआ"[116]
4) "ऊँगलियों का संकेत भर हूँ"[117]
5) "क्षण भर पहले बंधी आशा तपते तवे पर पड़ी पानी की बुंद-सी छन्न हो गयी"[118]
6) "हफनी साँसों की घरघराहट दहलीज की गोबर पुती फर्श पर नासूर-सी दब गयी"[119]
7) "प्रौढ़ता को हताशा की खोह बना लिया है "[120]

5.3.1.10 उपमाओं का सटीक प्रयोग

कथाकार अपने विचारों रचानाओं के माध्यम सौंदर्य प्रदान करता है। लेखिकाने अपने कथा-साहित्य में उपमाओं का प्रयोग सटीक रूप में किया है।

1) 'रुई के फाहे-सा हलका'[121]
2) 'उबले आलू से थोबड़े'[122]
3) 'पूजते वटवृक्ष सदृश जैसे देह परिदों को रैन बसेरा दिये'[123]
4)'जड़ से उखड़े पेड़ की तरह'[124]
5)'मीन-सी खिंची आँखें'[125]

5.3.1.11 मुहावरेदार भाषा

भाषा को सुसज्जित करने के लिए रचनाकार मुहावरों का प्रयोग भी कई स्थानों पर करता है। मुहावरों का तात्पर्य "रूढ़ वाक्य"[126] से है। जहाँ कोई शब्द अपने मूल रूप को छोड़कर लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त होता

है। चित्राजी ने अपने कथा-साहित्य में हिन्दी के अतिरिक्त अवधी भाषा एंव महानगरीय भाषा के मुहावरों का भी प्रयोग किया है।

1) 'कान में जूं तक नहीं रेंगी।'[127]

2)'न हम हुक्काफरशी वाले ठहरे, न गिलौरियां सजाने वाले।'[128]

3)'तिल-तिल कर मारो'।[129]

4) 'ऊंट के मुंह में जीरे से'[130]

5)'नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली।'[131]

6) 'अपने पावं पर कुल्हाड़ी मारना'[132]

5.3.1.12 तार्किक भाषा

चित्राजी ने अपने कथा साहित्य में तार्किक भाषा का प्रयोग किया है। 'एक जमीन अपनी' उपन्यास में अंकिता और निता के माध्यम से तर्कों पर आधारित है जिसमें परम्परावादी विचार और आधुनिक विचार आपस में टकराते हैं।

5.3.1.13 ग्रामीण भाषा

ग्राम के परिवेश से जुड़ी हुई भाषा के ग्रामीण भाषा कहते है। लेखिकाने देहात के परिवेश को सिर्फ देखा ही नहीं है अपितु उसको भोगा इसलिए उनकी रचनाओं में इस भाषा का प्रयोग मिलता है।

'लेन' कहानी में जब महेंदरिया के पति पर चाकू हल्ला होता है तब वह उस हमले की चस्मदीद गवाह है। उसका पति दत्तुराम अस्पताल में शरीक है। हमलावर पकड़े जाते है शिनाख्त के लिए महेंदरिया को बुलाया जाता है तब हमलावरों के सहयोगी महेंदरिया को खरीदने की चर्चा करते है तब वह घृणा से बिफर जाती है। "नोटों की गड्डी बनाकर तिरस्कार से उनके मुंह पर मारते हुए वह पूरे सयंम के बावजूद दांत पीसती हुई चीखी, "मजाक उड़ाने आए मजदूर माणसं का! अरे, कोई कितना भी गिर जाएगा, अपणे मरद की जाण की कीमत खाएगा... उठाओ गड्डी...सिद्धा रास्ता णापो अपणा ! आगे मेरी कोठणी में पांव नई रखणा…कमीणे, कुत्ते!"[133]

5.3.2.भाषिक विधान की विशेषताएँ

भाषा मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है। प्रेमचंद जी भाषा के गुण के बार में बताते हुए कहते हैं, "किसी भाषा का मुख्य गुण उसकी सरलता नहीं बल्कि उसका मुख्य गुण तो अभिव्यक्त करने की शक्ति है।"[134] कथाकार भाषा के द्वारा ही पाठक के दिलो दिमाग पर छा जाता है। साहित्यकार की सफलता उसके द्वारा लिखे गई रचना से होती है। कथ्य में भाषा सहज, सरल तथा स्फूर्ति प्रदान करने वाली होनी चाहिए। जिसमें कथ्य के माध्यम से चित्र, भाव, प्रतीक, कहावतों तथा मुहावरों का समावेश हो जाए।

प्रेमचंद जी ने जनसाधारण की भाषा को अपने साहित्य के लिए चुना। इसलिए उनका साहित्य आज तक हमारे मन मस्तिष्क पर छाया हुआ है। भाषा के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहानी तथा उपन्यास सम्राट प्रेमचंद का कथन है, "भाषा साधन है, साध्य नहीं, अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा में आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण कार्य आरंभ किया गया था, वह क्योंकर पूरा हो। वही भाषा जिसमें आरंभ में 'बागों बहार' और 'बेतालपचीसी' की रचना ही सबसे बड़ी साहित्य सेवा थी, अब इस योग्य हो गई है कि उसमें शास्त्र और वितज्ञान के प्रश्नों की भी विवेचना की जा सके।"[135] इससे ज्ञात होता है कि भाषा में परिवर्तन होता रहा है। उसमें कथ्य की दृष्टि से नये-नये प्रयोग होते रहे हैं। कथाकार परिवेश से संबंधित भाषा का प्रयोग अपनी रचना में करता है। शहरी वातावरण में सभ्य भाषा, ग्रमीण परिवेश में लोकभाषा आदि।

चित्रा जी के कथासाहित्य में सरल, सहज तथा प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग हुआ है। भारत की अनेक बोलियों तथा भाषाओं का समावेश उनके साहित्य में दिखाई देता है। लेखिका भाषा की भूमिका संदर्भ में लिखती है, "भाषा की कारीगरी और कलात्मकता वहीं तक जरूरी है जहाँ तक वह चरित्रों और स्थितियों को अपने समूचे दायरे और दबावों के बीच उभारने में समर्थ हो और कथ्य के रचाव को बौद्धिक विलास बनने से बचाती हो।"[136] इस प्रकार से उनके कहानी में एक प्रकार की गति है जो पाठक को बोरियत महसूस नहीं करती बल्कि हर कथा के अंत में बौद्धिक क्षमता को झकझोरती है और उसे सोचने पर मजबूर करती है।

5.3.2.1 चित्रात्मकता

लेखिका के साहित्य में सजीवता पुट हर वाक्य में दिखाई देता है। इसलिए उनकी भाषा में चित्रात्मकता का गुण का सामावेश रहा है। जिसके कारण पाठकों को घटनाक्रम अपने समक्ष घटित होता ऐसा आभास होता है और उस घटना का चित्र पाठक के सामने सजीव हो जाता है।

1) 'जिनावर' कहानी में चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है है -"पलक झपकते सरवरी सड़क के बीचोबीच ढेर हो गयी और झुलसी देह-सी छटपटाने लगी। उसके जबड़ों से फेचकुर बहने लगा। आंखें टंग गयीं। टूटी हुई बाई टांग सड़क पर खून की पतली धाराएं बनाती हुई रह-रहकर चिहुंकते उसके शरीर के साथ कांप उठती।[137]

2) 'गिलिगडु' उपन्यास का उदाहरण दृष्टव्य है - "दाईं ओर पेट्रोल पम्प पर सी.एन.जी. गैस भरवाने के लिए तिपहियों की लम्बी लाइन लगी दिखी। बाईं ओर से उठ रही बदबू ने कचराघर की ओर ध्यान आकृष्ट किया ! कुरते की जेब से रूमाल निकाल उन्होंने नाक ढक ली। गायों का झुंड बिखरे कचरे में चरागाह ढूंढ रहा।[138]

5.3.2.2 प्रतीकात्मकता

प्राचीन युग से प्रतीक का प्रयोग कथा साहित्य में किया जाता है। प्रतीकों के कारण कथा आकर्षित तथा सुगठित होती है। गाम्भीर्य पुट लिए कहानी प्रतीकों के माध्यम से बहुत कुछ इशारों-इशारों में कह जाती है। प्रतीकों के सहारे पात्र अपने अनुभव से प्राप्त गहरी बात कहने की कोशिश करता है।

विषय की गंभीरता को समझने के लिए कथा-साहित्य में प्रतीक का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार, "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (गोचर) वस्तु के लिए किया जा सकता है, जो किसी (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचार्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर ही समयानुरुप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान, मूर्त, दृश्य, श्रव्य प्रस्तुत विषय द्वारा करता है।"[139] कथाकारों की भावनाओं को अमूर्त से मूर्त रुप देने की प्रक्रिया प्रतीक से ही होती है। चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में प्रतीक अनेक जगहों पर दृष्टिगोचर होता है।

1) 'फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती' शीर्षक में ही प्रतीकात्मता है। लेखिका सुशिक्षित होकर रेल में मिली असहाय लड़की की मदद नहीं करती। वह वेश्या बनने के लिए मजबूर हो जाती है। लेखिका का अपराध बोध प्रतीक के रूप में व्यक्त होता है,"परदा सरकाकर फातिमाबाई को प्रवेश करते देख वह अपने भीतर चौक पड़ी। वह तो बैठी फिर कमरे में कैसे प्रवेश कर रही है।"[140]

2) "गेंदा का स्वर की दृढ़ता चोट खाई नागिन की तरह फन काढ़े उसकी समूची चेतना पर फुफकार रही हैं।"[141]

3) “सहसा घेर लिए गए हिरन शावक सी छूट भागने को अकुलाती हथेली को उसने इबारत से अलग करने की।”[142]

4)“नागराज की पूँछ पर कब पाँव पड़ा पछाँहवाली का” [143]

5) ‘अजगर होता शहर! जब जिसे चाहे, लील ले और लोग हैं कि ऊसल पाव के चक्कर में निरन्तर उसका ग्रास बन रहे हैं।’[144]

6) “एक भयानक तूफान ने उसके घर को जड़ से उखाड़ फेंका है। वह मांस के बेजान लोथड़े-सी उसमें उड़ी जा रही है। दो खौफनाक पक्षी उसके करीब सिमट आए हैं और अपनी सुर्ख चोंचें खोलकर उसे निगल जाने के लिए झपट पड़े हैं। वह उनकी सुर्ख चोंचों में समाती जा रही हैं।”[145]

चित्रा मुद्गल के भाषा के संदर्भ में वेदप्रकाश अमिताभ का कहना है, “उनकी भाषा में तत्सम शब्दावली का आग्रह कम हैं; बल्कि ‘सौदा’ जैसी कहानियों में तत्सम शब्द ढूँढने से मिलते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि भाषा तत्सम शब्दों से लदी हो। भौंचक, भेड़, सिटकनी, सहिताने, पपड़िया, जबरई, चुगली, पिरान, आदि शब्दों के सहयोग से बनी भाषा वास्तविक, सहज और स्थितियों के अनुरूप है। चित्रा मुद्गल की भाषा सादृश्य सूचक ‘सी’ पर बहुत निर्भर करती है। सम्भवत: ऐसा अर्थग्रहण के साथ-साथ बिम्ब ग्रहण कराने की कोशिश का नतीजा है। ‘सौदा’ कहानी की भाषा को लें तो ‘नाटी-सी’, ‘फूटते कल्लों का-सा’, ‘एक नन्हीं-सी’, ‘भिगोने की-सी’ आदि दसियों पद एक ही पृष्ठ पर मिल जाएंगे। मानसिकता या स्थिति विशेष को उभारने के लिए अप्रस्तुत प्रायः सटीक हैं और अभिव्यंजना को प्रखरता प्रदान करते हैं। विपरित और कटु अनुभवों तथा असुविधाओं, बाधाओं को जताने के लिए ‘आपत्तियों का लावा’, ‘सोए हुए ज्वालामुखी’, ‘पैनी कील’, ‘नागिन’, ‘जोंक’ आदि अप्रस्तुतों और सकारात्मक संदर्भों में ‘लौह-मेरू’ जैसे प्रयोगों का अपना औचित्य है।”[146]

5.3.2.3 प्रवाहात्मकता

प्रवाहात्मकता के गुण वर्णनात्मक शैली में लिखे गई कथाओं में ज्यादा तर पाए जाते है। लेखिका का किसी घटना, प्रसंग आदि का प्रवाहात्मक वर्णन करती है । जिसमें लंबे संवादों के बावजूद रुचि बनी रहती है। चित्रा जी ने अपने साहित्य में यथोचित स्थान पर भाषा का प्रवाह प्रस्तुत किया है।

1) 'फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती' कहानी में केतकी अपने ऊपर होते यौन-शोषण को प्रवाहत्मकता से बताती है -"केतकी पर तो जैसे कोई उन्माद तारी हो उठा। वह भूल गई कि भले इस क्षण फातिमाबाई खोली में मौजूद नहीं है, किन्तु उसकी उद्दंडता की खबर उनसे छिपी नहीं रहेगी। वह किसी भी आतंक और दबाव से निर्भय होकर बताने लगी कि अभी उसकी जचकी हुए तीसरा महीना भी पूरा नहीं हुआ है कि निर्दयी फातिमाबाई ने उसे धंधे के लिए विवश कर दिया। उसका एक चहेता ग्राहक है भट्ठी चलाने वाला जोसेफ। लगभग हर रात वह धुत होकर उसके पास पहुंचता है। रात गुजारता है, वह तो कोई बात नहीं, मगर जिस नृशंसता और कामुकता से वह देह से खिलवाड़ करता है, उसकी गवाह ये छातिया हैं…और तो और, हरामखोर छातियां चूस…वह तड़पकर रह जाती है। चिरौरी करती है, गिड़गिड़ाती है, अपने दुधमुंहे बच्चे का वास्ता देती है, लेकिन वह एक नहीं हिलने देता।सुबह जब वह अपने बच्चे के पास पहुंचती है, बच्चा निचुड़ी छातियों से मुंह नहीं लगाता। फातिमाबाई से कितनी दफे रोई है, पर वो उलटे ही घुड़क देती है कि एक रात के पंद्रह रुपल्ली थमाता है जोसफ।"[147]

2) 'शून्य' कहानी में राकेश के चरित्र को सरला प्रवाहात्मक भाषा से प्रस्तुत करती है,"वही पुरानी आदत! अपनी बस अपनी कहनी की हुमक। उसकी भावनाओं की, उसके सोचने-समझने की परवाह न उन्हें तब थी न अब है। लेकिन अब वह सुनें क्यों ?...बहुत दिनों तक सुनती रही थी। हैसियत को भूलाकर कठघरे में खड़ी कर दी गयी अभियुक्त-सी। कि तुम औरत हो। और हमारे निर्णय तुम्हारी जिंदगी है…तब…सिर झुकाये उसने सब कुछ स्वीकार कर लिया था। अपनी नियति मानकर। और यह मानकर कि किसी के मन में अपने लिए बलात् कोई कोना पैदा नहीं किया जा सकता। न सप्तपदी की प्रदक्षिणा को आजीवन ढाल बनाए पत्नीत्व का हक जिया जा सकता है।"[148]

3) 'आवां' की नमिता कथा के अंत में इस प्रकार आत्म कथानक रूप में कहती है- "कुछ शब्दों की उँगलियाँ उसके गालों पर अनवरत बह रहे मोहभंग को बीनने लगीं...कुछ शब्दों की हथेलियाँ उसकी पीठ सहलाने लगीं...कुछ के बोल फूटने लगे। अपना हक अपने पसीने से ही मिलता है। पसीना चाहे श्रम का हो या संघर्ष का, प्रतिवाद का हो या आक्रोश का। उसे सुलगाओ। उससे मुलाकात करो। तुम शायद उससे बिना मिले ही उससे डर गईं। डरो मत। उठो ! उठकर चलो। उदास मौसम के

खिलाफ...जो अपने से लड़ सकता है, वही उनसे लड़ सकता हैं, जिन्होंने उजाले पर कालिख पोतने के लिए अपने हाथों को काला कर लिया है...”[149]

कथा में प्रवाहात्मकता लाना ही रचनाकार का प्रमुख उद्देश्य रहा है। इसलिए पाठक चाहकर भी कथा को बीच में नहीं छोड़ता क्योंकि प्रवाह के दौरान लेखिका जिज्ञासा का कौतूहल प्रस्तुत करती है।

5.3.2.4 भावात्मकता

साहित्य में अभिव्यक्त करुणा से जुड़े प्रसंगों का संबंध भावात्मक भाषा से होता है। पात्रों के चरित्र विकास के लिए इस भाषा का उपयोग किया जाता है। लेखिकाने अपने कथा-साहित्य में भावात्मक भाषा का प्रयोग किया है।

1) “मेमसा’ब उसे अपनी छोटी-सी जिंदगी में देखी गई उन तमाम औरतों से भिन्न लगी, जो मोहल्ले के रिश्ते से उसे अपनत्व दे दुलारती रहीं...आँखों से छत का पतरा एकदम ओझल हो गया इतनी लबलबा आई। जैसे फूल खूंपटने को लचायी हुई टहनी अचानक डाल समेत चरमारा कर पेड़ से अलग हो गयी।”[150]
2) सावित्री का सेठ लक्ष्मा को काम नहीं देता है । सेठ का नकार सावित्री को इस प्रकार से लगता है, “जैसे उसे ही नौकरी से निकाल दिया। जो औरत अनाज के कचरे में से उसके बच्चों के लिए घुघरी बनाने के लिए दाने चुन लाती है वह...सावित्री के चेहरे की लाचारगी और पीड़ा निश्चित ही उसके मर्माहत होने से कम नहीं होगी।”[151]
3) ‘गिलिगडु’ उपन्यास के बाबू जसवंत सिंह आत्मकथानक शैली में अपने विचार प्रस्तुत करते हैं, “आज वह केवल उनकी सुने। केवल उनकी ! आज जो वह बोलना चाह रहे है आगे शायद उसे सुनने की ललक में न बोल पाएं। वे जीवन का यह नितांत नया पड़ाव अपनी गिलिगडु-कात्यायिनी-कुमुदनी के साथ बिताना चाहते हैं। वे कानपुर वाले घर के सामने वाले बरगद को अपने घर में रोपना चाहते हैं।”[152]

इससे यह ज्ञात होता है कि कथाकार ने पात्रों की भावनाओं का सुंदर चित्रण अपने साहित्य में किया है।

5.3.3 बिम्ब योजना

कथा-साहित्य में बिम्ब तथा प्रतीकों का प्रयोग रचना की सौंदर्यता को बढ़ाता है । कथा प्रवाह के दौरान बिम्बों, प्रतीकों तथा उपमानों के प्रयोग से पाठक की एकरसता टूटती है और वह रचना सौन्दर्य-बोध में आनंद लेने लगता है । इनके समावेश से उसे रचना इतनी पसंद आने लगती है कि वह उसे पूरा पढ़े बिना नहीं छोड़ता । बिम्ब के बिना भाषा निष्प्राण महसूस होने लगती है। लेखिका की भाषा में बिम्बों के माध्यम से वातावरण का सजीव चित्रण दिखाई देता ह है।

बिम्ब के संदर्भ में उपेन्द्रनाथ अश्क का कथन है,"उपमाएं प्राय :बाहर की स्थितियों को समझने में सहायता देती हैं, बिम्ब और प्रतीक मन की स्थितियों को समझने में सहायक होते हैं। कई बार जिस मानसिक स्थिति को समझाने के लिए पैरे और पृष्ठ रंगने की आवश्यकता होती है, वह एक बिम्ब अथवा प्रतीक के माध्यम से समझा दी जाती है।"[153]

5.3.3.1 स्पर्श बिम्ब

स्पर्श बिम्ब का संबंध त्वचा से होता है जब कोई रचना पढ़कर तथा सुनकर किसी वस्तु के खुरदुरापन तथा कोमलता प्रतीत होता है, उसे स्पर्श बिम्ब कहते है । लेखिकाने अपने कथासाहित्य में स्पर्श बिम्ब का प्रयोग प्रसंगानुसार किया है ।

1) "तलुओ के नीचे से उठा सर्द सुन्नाहट का बवंडर पिंडलियों से रेंगता हुआ अचानक बिच्छू के विष-सा पूरी देह में चुनचुनाने लगा । "[154]
2) 'महिला का आचरण उसे खून की बूंद निकाल लेने वाली चिकोटी सा चुभा ।'[155]
3) 'सिहरन का ज्वार उसकी तिरस्कृत देह में चैती की नशीली आरोह-अवरोह की भाँति संचरित होने लगा ।'[156]
4) 'बैसाख की उमस से पसीजी देह को अचानक महकती शीतलता का झोंका सावनी फुहार-सा अल्हादित कर गया ।'[157]

5.3.3.2 दृश्य बिम्ब

दृश्य बिम्ब का संबध नेत्रों से होता है। रचना को पढ़कर तथा सुनकर अपने समक्ष किसी घटना या वस्तु का चित्र उभरकर आता है उसे दृश्य बिम्ब कहाँ जाता है। लेखिकाने अपने साहित्य में दृश्य बिम्बों का अनेक जगह पर प्रयोग किया है।

1) शावक –सी [158]
2) जैसे रोमरहित बलिष्ठ मर्द की छाती।[159]
3) धनुषाकार हो वह [160]
4) खिली फूल-सी[161]
5) कीडे-मकौडों की भांति[162]
6) मोम-सी टपटपा आई[163]
7) अजगर होता शहर [164]
8) "विकलांगों के मलिन चेहरों पर सघनाती संध्या-बेला गंगा में सिराये जाने वाले सैकडों दीपमालाओं के हिचकोले खाती उजास हिलोरें लेने लगी।"[165]
9) "भीड़ उसे ढेला खाए सैकड़ों हजारों मधुमक्खियों के छत्तों-सी लगती।"[166]

5.3.3.3 श्रव्य बिम्ब

किसी वस्तु तथा व्यक्ति की आकृति हमारे द्वारा देखी हुई होती है, परंतु उसके बाद उसके आवाज या नाम सुनने से हमारे दिमाग में जिसका चित्र बन जाता है उसे श्रव्य बिम्ब कहते हैं। रचनाकार ने अपने कथासाहित्य में श्रव्य बिम्ब का प्रयोग किया है।

"उनका स्वर चट्टान पर हथौड़े-से टनका"[167]

"उसकी हँसी नये-नये सिक्कों सी खनकी।"[168]

5.3.3.4.ध्वन्यात्मक बिम्ब

1) घोडे का आवाज - हिनहिनाहट [169]

2) चिडियों का आवाज-चहचहाट [170]

3) कुत्ते की आवाज-कुकुआता [171]

5.3.3.4.1 मानवीय प्रकृति के क्रिया-व्यापार सम्बन्धी ध्वनियां

1.धडकन –सांय सांय[172]

2. कराहाना –ओं ओं[173]

3. दांत किटकिटाना – किरि किरि [174]

4. आहट -थप थप[175]

5.थप्पड-ताड़-ताड़[176]

इस प्रकार से देखा जा सकता है कि भाषा, बिंब, प्रतीक मुहावरों का प्रयोग चित्रा जी ने संवेदनाओं के माध्यम से भाषिक सौंदर्य को बढ़ाने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष

अंत में कहा जा सकता है कि चित्रा जी भाषा एवं शैली में एक नवीनता लाई है। जो उनकी रचनाओं को सजीवता प्रदान करती है। सहज, सरल, भावपूर्ण तथा प्रवाहपूर्ण भाषा द्वार उन्होंने अपने कथा-साहित्य का सौंदर्य बढ़ाया है। कथाकार ने देहाती तथा शहरी भाषा का प्रयोग अपने साहित्य में किया है। मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग प्रसंगानुसार कथाकार ने किया है।हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, हरयाणवी, पंजाबी, गुजराती, ऊर्दू, अवधी, ब्रज आदि भाषा का समावेश आपके रचना में पाया जाता है।

मुद्गल जी ने शैली में विविधता का प्रयोग किया है। वर्णनात्मकता, संवादात्मकता, प्रतीकात्मकता, वर्णनात्मकता, व्याग्यात्मकता, चित्रात्मकता आदि शैलियाँ साहित्य में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। बिम्बों और प्रतीकों का सहज रूप में प्रयोग किया है। लेखिका का साहित्य सहज और सरल होने के कारण पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। उनका साहित्य पाठकों के दिमाग पर एक छाप छोड़ता है। रचनाकार चित्रा जी का साहित्य कल्पना की उड़ान न होकर ठोस यथार्थ के धरातल पर लिखा हुआ साहित्य है। जब पाठक उनके साहित्य को पढ़ता है तो एकरूप हो जाता है।

संदर्भ सूचि

1. रोहिताश्व. समकालीन कविता :मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में. पृ. 260
2. बाबर, डॉ. सुरेश. भीष्म साहनी के साहित्य का अनुशीलन. पृ. 168
3. श्री. नवल जी (संपा.) नालंदा विशाल शब्द सागर. पृ.1344
4. कुमार, जैनेद्र. साहित्य का श्रेय और प्रेय. पृ.370
5. हिन्दी कहानियों की शिल्प विधा का विकास. भूमिका भाग
6. वेरेकर, शोभा. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास. पृ.18
7. सिंह, डॉ. जवाहर.हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि. पृ.19
8. वर्मा धीरेन्द्र. हिंदी साहित्य कोश, भाग 2. पृ. 681
9. टंडन, डॉ. प्रताप नारायण. हिंदी कहानी कला. पृ. 383
10. जयमोहन, प्रो.एम.एस. संग्रथन. मार्च, 2006. पृ.22
11. शर्मा, डॉ. जोत्सना. शिवानी का हिंदी साहित्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य में. पृ. 107
12. लाल, डॉ. लक्ष्मीनारायण. हिन्दी कहानी की शिल्पविधि का विकास. पृ. 312
13. टंडन, डॉ. प्रताप नारायण. हिंदी कहानी कला. पृ. 395
14. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ. 96-97
15. मुद्गल, चित्रा. जिनावर, आदि-अनादि-3. पृ. 42
16. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 267
17. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 27
18. मुद्गल, चित्रा. मामला आगे बढ़ेगा अभी, लाक्षागृह. पृ. 10
19. लाल, डॉ. लक्ष्मीनारायण. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का इतिहास. पृ.314
20. मुद्गल, चित्रा. अग्निरेखा, आदि-अनादि 1. पृ.257
21. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.159
22. मुद्गल, चित्रा. शून्य, आदि-अनादि 1. पृ.195
23. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.300
24. मुद्गल, चित्रा. मुआवजा, आदि-अनादि 2. पृ. 247-248)
25. मुद्गल, चित्रा. मोरचे पर, आदि-अनादि 2. पृ. 68
26. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ. 23
27. मुद्गल, चित्रा. अवांतर कथा, आदि-अनादि 3. पृ.233
28. मुद्गल, चित्रा. रूना आ रही है, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.157
29. मुद्गल, चित्रा. एक काली, एक सफेद, लपटे. पृ.87
30. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 22
31. मुद्गल, चित्रा. शून्य, आदि-अनादि -1. पृ. 200
32. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 64
33. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 541

34. मुद्गल, चित्रा. ब्लेड, इस हमाम में. पृ.69
35. आनंदवर्धन आचार्य, ध्वन्यालोक (प्रथम अध्याय). पृ.102
36. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.11
37. मुद्गल, चित्रा. इस हमाम में, आदि-अनादि 2. पृ. 60
38. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.52
39. मुद्गल, चित्रा. अवांतर कथा, आदि-अनादि 3. पृ. 238
40. टंडन, डॉ. प्रताप नारायण. हिन्दी कहानी कला. पृ. 408.
41. मुद्गल, चित्रा. अपनी वापसी, आदि-अनादि 1. पृ. 174
42. मुद्गल, चित्रा. हथियार, आदि-अनादि 3. पृ. 272
43. मुद्गल, चित्रा. लपटें, आदि-अनादि भाग 3. पृ.177-178
44. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.538
45. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.136
46. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी . पृ. 272
47. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा. पृ. 15
48. मुद्गल, चित्रा. आदि-अनादि भाग 1, पृ. 102
49. तिवारी , डॉ. भोलानाथ. भाषा विज्ञान. पृ.4
50. जैमिनी, अंजु दुआ. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में संघर्ष और संचेतना. पृ.182
51. यादव, डॉ. वीरेन्द्र नारायण. हिन्दी अनुशीलन. मार्च जून, 2007. पृ. 128
52. सक्सेना, डॉ. बाबूराम. तुलनात्मक भाषा शास्त्र
53. चतुर्वेदी, डॉ. रामस्वरूप. भाषा और संवेदना. पृ. 13
54. थोरात, डॉ.गोरक्ष. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन.पृ.133
55. दर्पण महेश.आजकल. फरवरी 2003. पृ. 38
56. मुद्गल, चित्रा. अवांतर कथा, आदि अनादि 3. पृ.235
57. मुद्गल, चित्रा. जरिया, इस हमाम में. पृ.85
58. मुद्गल, चित्रा. पाली का आदमी, चर्चित कहानियाँ. पृ.111
59. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ.342
60. मुद्गल, चित्रा. केंचुल, आदि-अनादि 1.पृ 68
61. मुद्गल, चित्रा. ब्लेड, आदि-अनादि 2. पृ.219
62. मुद्गल, चित्रा. लेन, आदि-अनादि 2. पृ.137
63. मिश्रा, डॉ. अर्चना. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में युग चिंतन. पृ.20
64. मुद्गल, चित्रा. जिनावर, जिनावर. पृ.54
65. मुद्गल, चित्रा. बंद, आदि अनादि -2. पृ.36
66. मुद्गल, चित्रा. चेहरे, भूख. पृ.55
67. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 282
68. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.49

69. मुद्गल, चित्रा. रूना आ रही है, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.159
70. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ.33
71. मुद्गल, चित्रा. मोर्चे पर, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.159
72. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा. पृ. 37
73. मुद्गल, चित्रा. पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा .पृ. 93
74. मुद्गल, चित्रा. आवां. पृ. 420
75. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ. 201
76. मुद्गल, चित्रा. एक जमीन अपनी. पृ. 201
77. मुद्गल, चित्रा. मुआवजा, आदि-अनादि-2. पृ.252.
78. मुद्गल, चित्रा. मोर्चे पर, ग्यारह लंबी कहानी. पृ.64
79. मुद्गल, चित्रा. वाइफ स्वैपी,आदि-अनादि भाग 2. पृ.16
80. मुद्गल, चित्रा. बंद, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.186
81. मुद्गल, चित्रा. केंचुल, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.115
82. मुद्गल, चित्रा. भूख, आदि-अनादि-2. पृ.100
83. मुद्गल, चित्रा. केंचुल, आदि-अनादि- 1. पृ .68
84. मुद्गल, चित्रा. लकड़बग्घा, जगदमबा बाबू आ रहे हैं. पृ-.100-101
85. दीक्षित, दामोदरदत्त.अमर उजाला. 26 सितंबर 1993
86. बाहरी , डॉ. हरदेव.हिन्दी शब्दकोश. पृ.104
87. बाहरी , डॉ. हरदेव.हिन्दी शब्दकोश. पृ.844
88. मुद्गल, चित्रा. रूना आ रही है, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.163
89. मुद्गल, चित्रा. ब्लेड, इस हमाम में. पृ.69
90. मुद्गल, चित्रा. त्रिशंकु,चर्चित कहानियाँ. पृ.159
91. मुद्गल, चित्रा. अपनी वापसी, चर्चित कहानियाँ. पृ.30
92. बाहरी , डॉ. हरदेव.हिन्दी शब्दकोश. पृ.181)
93. मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु. पृ. 143-144
94. मुद्गल, चित्रा. शिनाख्त हो गयी है, चर्चित कहानियाँ. पृ.86
95. मुद्गल, चित्रा. अपनी वापसी, आदि-अनादि 1. पृ. 174
96. मुद्गल, चित्रा. अभी भी, जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं. पृ.51
97. मुद्गल, चित्रा. दुलहिन, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.49
98. मुद्गल, चित्रा. अनुबन्ध, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.14
99. मुद्गल, चित्रा. फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती, इस हमाम में. पृ.29
100. मुद्गल, चित्रा. अनुबंध, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.8
101. मुद्गल, चित्रा. भूख, इस हमाम में. पृ.26
102. मुद्गल, चित्रा. अपनी वापसी, चर्चित कहानियाँ. पृ.32
103. मुद्गल, चित्रा. बावजूद इसके, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.155

104. मुद्गल, चित्रा. जिनावर, जिनावर. पृ.58
105. मुद्गल, चित्रा. फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती , इस हमाम में. पृ.29
106. मुद्गल, चित्रा. मामला आगे बढ़ेगा अभी, लाक्षागृह. पृ.10
107. मुद्गल, चित्रा. दुलहिन, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.52
108. मुद्गल, चित्रा. जरिया, इस हमाम में. पृ.101
109. तिवारी, डॉ. भोलानाथ. भाषा विज्ञान. पृ.12
110. मुद्गल, चित्रा. अभी भी, जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं. पृ.32
111. मुद्गल, चित्रा. रूना आ रही है, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.101
112. मुद्गल, चित्रा. बावजूद इसके, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.144
113. मुद्गल, चित्रा. शून्य, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.200
114. मुद्गल, चित्रा. ब्लेड, इस हमाम में. पृ.71
115. मुद्गल, चित्रा .. भूख, इस हमाम में. पृ.15
116. मुद्गल, चित्रा .अनुबंध, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.24
117. मुद्गल, चित्रा . इस हमाम में, इस हमाम में. पृ.93
118. मुद्गल, चित्रा . ब्लेड, इस हमाम में. पृ.68
119. मुद्गल, चित्रा . दशरथ का वनवास, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.88
120. मुद्गल, चित्रा . रूना आ रही है, चर्चित कहानियाँ. पृ.35
121. मुद्गल, चित्रा . ब्लेड, इस हमाम में. पृ.75
122. मुद्गल, चित्रा .जिनावर, जिनावर. पृ.55
123. मुद्गल, चित्रा .जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं, जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं. पृ.41
124. मुद्गल, चित्रा . इस हमाम में, इस हमाम में. पृ.87
125. मुद्गल, चित्रा . अनुबंध, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ.13
126. बाहरी , डॉ. हरदेव.हिन्दी शब्दकोश. पृ.667
127. मुद्गल, चित्रा . चेहरे, इस हमाम में. पृ. 48
128. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ. 38
129. मुद्गल, चित्रा . बावजूद इसके, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ. 151
130. मुद्गल, चित्रा . आवां .पृ. 75
131. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ. 122
132. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ. 251
133. मुद्गल, चित्रा . लेन, आदि-अनादि-2. पृ.48
134. प्रेमचंद. साहित्य का उद्देश्य. पृ.216
135. प्रेमचंद. साहित्य का उद्देश्य. पृ.2
136. लोकशासन.19 जुलाई 95
137. मुद्गल, चित्रा . आदि-अनादि भाग-3. पृ. 44
138. मुद्गल, चित्रा . गिलिगडु. पृ. 103

139. वर्मा, धिरेंद्र. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1. पृ.398
140. मुद्गल, चित्रा . फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती, इस हमाम में. पृ,44
141. मुद्गल, चित्रा . सौदा, जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं. पृ.24
142. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ.420
143. मुद्गल, चित्रा . लकड़बग्घा, जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं. पृ.103
144. मुद्गल, चित्रा . एक जमीन अपनी . पृ. 96
145. मुद्गल, चित्रा . अग्निरेखा, ग्यारह लंबी कहानियाँ. पृ. 114
146. अमिताभ, वेदप्रकाश. समीक्षा. जुलाई-सितंबर, 1993. पृ.23
147. मुद्गल, चित्रा . फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती, आदि-अनादि 2. पृ.187-188
148. मुद्गल, चित्रा . शून्य, ग्यारह लंबी कहानियां. पृ.195
149. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ. 541
150. मुद्गल, चित्रा . मामला आगे बढ़ेगा अभी, आदि-अनादि 1. पृ. 136
151. मुद्गल, चित्रा . भूख, आदि-अनादि 2. पृ. 96-97
152. मुद्गल, चित्रा . गिलिगडु. पृ. 143
153. अवस्थी,सं.देवीशंकर. अश्क,उपेंद्रनाथ. लेख नयी कहानी:संदर्भ और प्रकृति. पृ.51-52
154. मुद्गल, चित्रा . एक जमीन अपनी. पृ.12
155. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ.24
156. मुद्गल, चित्रा . लाक्षागृह, मामला आगे बढ़ेगा अभी. पृ.90
157. मुद्गल, चित्रा . बेईमान, जगदंबा बाबू आ रहे हैं. पृ.81
158. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ. 420
159. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ.255
160. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ. 338
161. मुद्गल, चित्रा . एक जमीन अपनी. पृ. 36
162. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ.371
163. मुद्गल, चित्रा . गिलिगडु. पृ. 29
164. मुद्गल, चित्रा . एक जमीन अपनी. पृ.96
165. मुद्गल, चित्रा . जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं. पृ. 49
166. मुद्गल, चित्रा . एक जमीन अपनी. पृ. 13
167. मुद्गल, चित्रा . मामला आगे बढ़ेगा अभी, मामला आगे बढ़ेगा अभी. पृ.15
168. मुद्गल, चित्रा . आवां. पृ. 203
169. मुद्गल, चित्रा . गिलिगडु, पृ. 10
170. मुद्गल, चित्रा . आदि-अनादि भाग 3. पृ.41
171. मुद्गल, चित्रा . गिलिगडु. भाग-3 . पृ. 61
172. मुद्गल, चित्रा . आंवा. पृ. 47

173. मुद्गल, चित्रा . आंवा. पृ. 39
174. मुद्गल, चित्रा .आंवा. पृ. 125
175. मुद्गल, चित्रा .आंवा. पृ. 143
176. मुद्गल, चित्रा .आदि अनादि भाग 2, पृ. 35

उपसंहार

चित्रा जी का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा का धनी है। उन्होंने अपने साहित्य में समाज के हर एक वर्ग को हमारे सामने उद्घाटित किया है। लेखिका ने अपने साहित्य में निम्न-मध्य वर्ग का चित्रण किया है, अन्याय का विरोध किया है, तो कही अंधविश्वास को मानने वाले समाज को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। उनके पात्र चेतना शील, प्रगतिशील, उनमें नीडरता की वृत्ति मुखर है, सुधारवादी दृष्टि है, वे किसी के अधीन रहना नहीं चाहते, यही सब इसी कारण है कि उनका परिवेश ही आधुनिक मान्यताओं को मानने वाला है। इनकी रचनाएं भूमंडलीकृत परिवेश में नव स्त्री के नव निर्माण की हिमायती रही है।

चित्रा मुद्गल की कथासहित्य का मुख्य सरोकार समकालीन जीवन स्थितियों में मनुष्य के भीतरी संसार को उजागर करना है। पीड़ा चाहे स्त्री की हो या गरीब की, किसी बुजुर्ग की हो या बालक की लेखिकाने उसके जड़ तक जाने की कोशिश की है। व्यवस्था के सभी पहलुओं के साथ मनुष्य के पारस्परिक संबंधों तथा उनके अंतर्जगत में झाँकने का प्रयास किया है। आपके कथासंसार में क्रूर, अमानवीय जन विरोधी चरित्र बार-बार उभरता है। एक रचनाकार की ऊर्जावान उपस्थिति आप कथासाहित्य में पाएंगे जहाँ बाहरी दिखावा नहीं भीतर का आवां उद्घाटित हुआ है।

मनुष्य के हृदय में संवेदना ही ऐसी भावना है जो उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है, ऐसी बात नहीं है कि संवेदना केवल मानवों में ही पाई जाती है पर अन्यों की तुलना में मनुष्य सर्वाधिक बुद्धिमान एवं सहृदय पाया गया है। संवेदना रहित मनुष्य समाज से कटकर रह जाता है।

किसी के मन से उपजी विशेष सहानुभूति को संवेदना कहते है। संवेदना ज्ञानेंद्रियों की अनुभूति ही होती है। मनुष्य उत्तेजित होकर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है वहीं संवेदना कहलाती है। संवेदना के विविध रूप पाए जाते है। साहित्य और संवेदना का अटूट रिश्ता होता है। संवेदना के कारण ही साहित्य में जान आती है। मनुष्य की संवेदना को सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विविधता प्रदान करते है। साहित्य में संवेदना अनेक रूपों में चित्रित होती है। वास्तव में लेखक की व्यक्तिगत संवेदना ही साहित्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जिसमें मानवीय संवेदना के रागात्मक, सुखात्मक, दु:खात्मक स्वरूप का परिचय होता है, परंतु मानव के अंतस के गूढ़तम सत्यों को समझना और उसे शब्दों में परिभाषित करना कठिन कार्य है। मानवीय संवेदना का संबंध मन की अतल गहराइयों में छिपी करुणा, दया एवं सहानुभूति से है। हिन्दी साहित्य में मानवीय संवेदना का आयाम बहुत व्यापक है। युगों से मानवीय संवेदना की जो धारा निसृत हुई, वह अटूट भाव से निरंतर बह रही है।

कहानीकार ने मनुष्य की संवदनाओं को अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। लेखिका की कहानियों में व्याप्त संवेदनाओं का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इन्होंने मानवीय संवेदना के साथ-साथ समसायिक जीवन दृष्टि का सशक्त चित्रण किया है। इनकी कहानियों में रागात्मक, सुखात्मक तथा दु:खात्मक संवेदनाएं व्यक्त हुई है। एक स्त्री, माँ, पिता, बच्चा, गरीब, वृद्ध आदि की संवेदनाओं को इन्होंने वाणी दी है।

मुद्गलजी ने अपनी कहानियों में रागात्मक संवेदना के अंतर्गत संयोगात्मक एवं वियोगात्मक संवेदनाओं का भी उत्कृष्ट प्रयोग किया है। 'रूना आ रही है', 'एंटीक पीस', 'प्रमोशन' में संयोगात्मक संवेदना तथा 'जिनावर', 'मोरचे पर', 'दशरथ का वनवास' 'नीले चोखानेवाला कंबल' में वियोगात्मक संवेदना दिखाई देती है।

'भूख' कहानी में आर्थिक कठिनाइयों के चलते किराए पर दिए बच्चे की भूख के कारण मृत्यु की करुणापरक संवेदना की उच्च कोटि का आभास कराता है। सुदीप के शहीद होने के बाद 'मोरचे पर' रिन्नी की बच्चों के सम्मुख की करुण स्थिति पत्थर को भी पिघला देती है। 'दुलहिन', 'एक काली एक सफेद' में करुणापरक संवेदना दिखाई देती है।

आर्थिक संवेदना की अभिव्यक्ति लेखिका के प्रत्येक कहानी में पाई जाती है। 'लकडबग्घा' कहानी में पछाहवाली की आर्थिक कारणों से ही हत्या कर दी जाती है। 'भूख' कहानी में लक्ष्मा बेटे की मृत्यु के लिए पैसा ही उत्तरदायी होता है। इसी तरह आर्थिक संवेदनाओं को 'जिनावर', 'चेहरे','बेईमान','ब्लेड','त्रिशंकु' में पाया गया है।

राजनीतिक संवेदनाओं पर अनेक कहानियाँ लेखिका ने लिखी है। उनकी कहानियों द्वारा राजनीति जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति पाई जाती है। राजनीतिक क्षेत्र में होनेवाले भ्रष्टाचार, शोषण, धोखाधडी को प्रस्तुत करती 'जगदंबा बाबू गांव आ रहे है', 'बंद', 'अनुबंध', 'लपटें' आदि कहानियों में राजनीतिक जीवन से संबद्ध संवेदनाएं पाई गई है।

लेखिकाने कहानियों के माध्यम से प्राकृतिक सौंदर्य एवं जड़ वस्तुओं में सहसंबंध दर्शाया है। 'एंटीक पीस' में बाबूजी का दादीजी के खानदानी पानदान के प्रति अपनापन का भाव तथा 'जगदंबा बाबू गांव में आ रहे हैं' कहानी में अपाहिज ललौना एवं सुक्खन भौजी का जगदंबा बाबू ने 'विकलांग उद्धार समिति' के द्वारा वितरण में दी हुई हाथ से चलनेवाली तीन पहियोंवाली गाड़ी के प्रति संवेदना देखने को मिलती है। 'जिनावर' एवं 'जंगल' कहानी में मनुष्य की मनुष्येतर प्राणियों से संबंधित संवेदनाओं को चित्रित किया गया है।

सुखात्मक एवं दु:खात्मक संवेदनाओं का व्यापक चित्रण रचनाकार ने अपने कहानियों के माध्यम से किया है। सुखात्मक संवेदना के अंतर्गत 'त्रिशंकु' कहानी में अपनी ही बेटी जोशीबाई के पूना जाने के कारण दो-चार दिनों के लिए आने वाली है जानकर माँ खुश होती है। 'बेईमान' में पुस्तकों की बंप्पर विक्री के कारण छटंकी की खुशी का ठिकाना नहीं होता। 'एक काली एक सफेद' में कुहू की पडोसी से प्रशंशा सुनकर उसकी माँ खुशी से फूली नहीं समाती। 'प्रेतयोनि' में बेटी के प्रति महिला हवलदार की प्रशस्ति उद्गार सुनकर बाबूजी को गर्व भावविभोर कर देता है।

उसी के साथ दुखात्मक संवेदना को 'अग्निरेखा' कहानी में देखा जा सकता है जहाँ मानसिक रुग्ण बनी मनु अपने पति और बहन पर संदेह करती है और आत्मघात के लिए गोलियाँ खा लेती है। उसी प्रकार 'लकडबग्घा' 'जिनावर' 'भूख' आदि कहानियों में इस संवेदना को अभिव्यक्त किया है। समकालीन कहानियों में मानव जीवन की समस्त संवेदनाओं की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है।

समकालीन यथार्थ को आपने सूक्ष्मतर नजरिए से अब तक के दुर्लक्षित विषयों को भी ध्यान में रखते हुए पाठकों के समक्ष रखा है। आपने उपन्यासों के पात्रों द्वारा अब तक अव्यक्त रही विविध संवेदनाओं को रेखांकित किया है।

उनके उपन्यास 'एक जमीन अपनी', 'आवां', 'गिलिगडु', 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' आदि में संवेदनाओं के विविध प्रसंग पाए गए है। जिनसे रागात्मक, सुखात्मक, दु:खात्मक आदि मानवीय संवेदनाओं का विस्तार से विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में विविध पात्रों और घटनाओं के माध्यम से मूलप्रवृत्तिपरक संवेदनाओं को उजागर किया है। 'एक जमीन अपनी' की नीता आत्मघात करने से पहले अंकिता के नाम पत्र लिखती है जिसमें वह अपनी दीन मानसिकता के बारे में बयान करती है, "अपने भीतर अपने को तील-तील मरता महसूस करना कितनी असाध्य यंत्रणा है।" यहां पर दैन्यपरक संवेदना को देखा जा सकता है।

करुणापरक संवेदनाओं को प्रकट करते अनेक प्रसंग पाए गए हैं। एक व्यक्ति की रेल से कटने की बात शहरी लोगों को कोई मायने नहीं रखती 'एक जमीन अपनी' में अम्मा की मृत्यु एवं अंतिमयात्रा की रात ही ताऊजी संपत्ति के बटवारे के लिए बैठ जाते हैं, इस प्रसंग का वर्णन अत्यधिक करुण व्यतीत होता है। पोस्टमार्टम के बाद सफेद गठरी सी नीता करुणा से पसीज उठती है। 'आवां' उपन्यास में इंद्रभैया को अम्मा खानदानी पानदान देती है तब उसे मना करते असहाय बाबूजी का चेहरा आंखों से नहीं हटता है। 'गिलिगडु' उपन्यास में करुणापरक संवेदना भरी पड़ी है। यह उपन्यास दो वृद्धों की जिंदगी की दुर्दशा को चित्रित करता है। दिल्ली दर्शन के समय कर्नल स्वामी, बाबू जसवंत सिंह को इडली की पसंदगी के बारे में पुछते है तब उनकी आँखों में आँसू तैर जाते हैं। वे करुणाभरी आवाज में कहते हैं, "पत्नी की मृत्यु के बाद किसीने पसंद नापसंद पुछा ही नहीं।" 'पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा' विनोद का जीवन में तो कई करुणापरक प्रसंग से सामना होता है। उनके जननांग दोषी होने के कारण पिताजी के साथ माँ भी मिलकर उसे किन्नरों के हाथ सौंप देते है, जिसे वह पत्र के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

'एक जमीन अपनी' में कामपरक संवेदना को न्योता देता आम्रपाली का विज्ञापन अंकिता को पसंद नहीं आता। 'आवां' में अन्ना साहब का नमिता से जबरदस्ती हस्तमैथुन कराना घिनौना प्रतीत होता है। नमिता और मौसाजी, नमिता और संजय कनोई के कामपरक प्रसंग का चित्रण भी हुआ है। 'नाला सोपारा' में किन्नर पूनम जोशी का बलात्कार विधायक जी के भतीजे एवं उसके मित्रों की कामपरक को संवेदना प्रकट करता है।

'गिलिगडु' उपन्यास में कर्नल स्वामी तथा जसवंत सिंह के प्रथम भेट में रागात्मक संवेदना को देखा जा सकता है। जब कर्नल स्वामी जसवंत सिंह को गिरने पर उठाते हैं और जूते पहनने एवं अर्निका खाने की सलाह देते हैं। 'नाला सोपारा' विनोद अपनी माँ को पत्र लिखकर उसकी तबीयत के बारे में पूछता है वहाँ रागात्मक संवेदना प्रकट होती है।

मुद्गल जी के उपन्यासों में राजनीतिक जीवन से संबद्ध संवेदना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। जिसमें राजनीतिक चेतना, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, राजनीतिज्ञों का षड्यंत्र आदि सम्मिलित है। देवीशंकर को राजनीतिज्ञ षड्यंत्र के कारण लकवाग्रस्त जीवन बीताना पड़ता है। उसी प्रकार अन्ना साहब का भी खून होता है। भ्रष्टाचार को उजागर करती संवेदना 'एक जमीन अपनी' में देखी जा सकती है जहाँ मि. भोजराज को मैथ्यू अंकिता को नौकरी से हठाने के लिए उसपर भ्रष्टाचार का आरोप लगाता है। 'गिलिगडु' में बाबू जसवंत सिंह की नौकरानी सुनगुनिया पिछड़ी जाति की है। इसलिए गांव के नेता उसे राजनीति में सक्रिय होने के लिए कहते है ताकि पार्टी

की ताकत बढ़ जाए। 'नाला सोपारा 'में विनोद एक किन्नर होने के कारण सामान्य मनुष्य की तरह जीने की ख्वाइश रखता है। परंतु विधायक जी के गंदी राजनीति का शिकार बनकर जान से हाथ धो बैठता है। चित्रा जी के उपन्यास समस्त संवेदनाओं की खान है। उनके उपन्यासों में संवेदनाओं का गहराई से विस्तृत रूप में विश्लेषण किया गया है।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी कहानी में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से नया मोड़ आया। आधुनिक कहानी युग संदर्भों की ओर अग्रसर हुई। युगबोध को वाणी देना और अभिव्यक्ति के सरलतम माध्यमों की खोज करना नए कहानीकारों का दायित्व बन गया।

इस अध्याय में कहानी तथा उपन्यासों की भाषागत विशेषताएं और उनमें प्रयुक्त शैलियों का सैद्धांतिक परिचय देकर रचनाकार के कथासाहित्य में उनकी खोज की गई है। मुद्गल जी ने अपनी कहानियों में आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, संवादात्मक, पूर्वदीप्ति आदि शैलियों का प्रयोग किया है। 'शून्य' 'अपनी वापसी''पाली का आदमी', कहानियों में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है। 'अवांतर कथा', 'सफेद सेनारा' में आत्मकथात्मक शैली को प्रस्तुत किया है।'दशरथ का वनवास' 'ट्रेन छुटने तक' आदि में पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है।

कथाकार ने उपन्यासों में शैलीगत विविध प्रयोग किए गए है-वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, पूर्वदीप्ति, व्यंग्य, प्रतीकात्मक, फन्तासी, पत्रात्मक शैलियों का प्रयोग दिखाई देता है। 'आवां' उपन्यास फ्लैशबैक शैली में एवं आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है।'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' उपन्यास में पत्रात्मक एवं संवादात्मक शैली लिखा गया है।

संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए कथा-साहित्य में भाषिक वैशिष्ट ने अपनी अलग पहचान रखी है। चारों उपन्यासों एवं कहानियों में भाषा के नये रूप अलंकार, संकेत, बिंब आदि का समावेश किया है। उनके लोक गीतों में काव्य-पंक्तियों और पौराणिक कथाओं का प्रयोग दिखाई देता है।

चित्रा जी ने कहानियों तथा उपन्यासों के भाषिक विधान में पात्रानुकूलता, अलंकारिता, सांकेतिकता आदि का समावेश पाया है। रचनाकार ने हिन्दी के अलावा मराठी, उर्दू, टपोरी, अंग्रेजी तथा अन्य राज्यों की भाषा का समावेश किया है। अपने कथासहित्य में उन भाषा से जुड़े मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रसंगानुसार प्रयोग किया है। लेखिकाने समाज की भाषा को माध्यम बनाकर संवेदना को प्रस्तुत किया है।

चित्रा मुदगल ने मनुष्य की संवेदनाओं को अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। कथाकार के कथासाहित्य में व्याप्त संवेदनाओं का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इन्होंने मानवीय संवेदना के साथ-साथ समसामयिक जीवन व्यवस्था तथा आज की बदलती जीवनदृष्टि का सशक्त चित्रण किया है।

अतः निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि चित्रा जी ने समकालीन कथासाहित्य में मानव जीवन की समस्त संवेदनाओं को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करने का कार्य किया है। लेखिका के कथासाहित्य के द्वारा संवेदना के विभिन्न पक्षों को समझते हुए कथासाहित्य में निहित संवेदना के महत्वपूर्ण कार्य को विश्लेषित करने का अनुसंधानात्मक प्रयास किया है।

परिशिष्ट - I

आधार ग्रंथ सूची

क्र. सं	लेखक / लेखिका	पुस्तक	प्रकाशन	वर्ष
1	मुद्गल चित्रा	आदि-अनादि भाग-एक	सामयिक प्रकाशन, दिल्ली	2007
2	मुद्गल चित्रा	आदि-अनादि भाग-दो	सामयिक प्रकाशन, दिल्ली	2007
3	मुद्गल चित्रा	आदि-अनादि भाग-तीन	सामयिक प्रकाशन, दिल्ली	2007
4	मुद्गल चित्रा	जहर ठहरा हुआ	अनन्य प्रकाशन, दिल्ली	1980
5	मुद्गल चित्रा	लाक्षागृह	पराग प्रकाशन, शहादरा	1982
6	मुद्गल चित्रा	अपनी वापसी	संभावना प्रकाशन, हापुड	1983
7	मुद्गल चित्रा	इस हमाम में	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	1984
8	मुद्गल चित्रा	ग्यारह लंबी कहानियाँ	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	1987
9	मुद्गल चित्रा	जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस,दिल्ली	1992
10	मुद्गल चित्रा	चर्चित कहानियाँ	सामयिक प्रकाशन, दिल्ली	1994

11	मुद्गल चित्रा	मामला आगे बढ़ेगा अभी	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	1995
12	मुद्गल चित्रा	जीनावर	किताब घर, प्रकाशन, दिल्ली	1996
13	मुद्गल चित्रा	केंचूल	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	2001
14	मुद्गल चित्रा	भूख	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	2001
15	मुद्गल चित्रा	लपटें	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली	2002
16	मुद्गल चित्रा	बयान	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली	2004
17	मुद्गल चित्रा	मेरे साक्षात्कार	किताबघर प्रकाशन, दिल्ली	2010
18	मुद्गल चित्रा	एक जमीन अपनी	सामयिक प्रकाशन, दिल्ली	2016
19	मुद्गल चित्रा	आवां	सामयिक प्रकाशन, दिल्ली	1999
20	मुद्गल चित्रा	गिलीगडु	सामयिक प्रकाशन, दिल्ली	2002
21	मुद्गल चित्रा	पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा	सामयिक प्रकाशन, दिल्ली	2016
22	मुद्गल चित्रा	पेंटिंग अकेली है…	सामायिक बुक्स, दिल्ली	2014

23	मुद्गल चित्रा.	चर्चित कहानियाँ पाठकों की सत्ता से	सामयिक प्रकाशन, दिल्ली	2016
24	वनजा, के.	चित्रा मुद्गल एक मूल्यांकन	सामायिक बुक्स, दिल्ली	2016
25	अनामिका	स्त्री विमर्श की उत्तर-गाथा	सामयिक प्रकाशन, दिल्ली	2012
26	यादव, डॉ. उषा.	हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	1999
27	चतुर्वेदी, रामस्वरूप.	हिन्दी साहित्य और सवेंदना का विकास	लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद	1986
28	तिवारी, डॉ. भोलानाथ.	भाषा विज्ञान	किताब महल पब्लिशर्स, दिल्ली	1955
29	उपाध्याय, करुणाशंकर.	आवां विमर्श	सामायिक बुक्स, दिल्ली	2010
30	शुक्ल, आचार्य रामचंद्र.	चिन्तामणी भाग 1	लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद	2012

परिशिष्ट - II

सहायक ग्रंथ सूची

1. अमिताभ वेदप्रकाश/पालीवाल, प्रो. दिनेश. समकालीन हिन्दी कहानी.1978
2. अग्रवाल, डॉ. साधना . वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन. 1995
3. कप्पीकेरे, डॉ.सौ. मंगला. सोठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी. विकास प्रकाशन, कानपुर. 2002
4. कुमार, जैनेद्र. साहित्य का श्रेय और प्रेय. पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली. 1953
5. खान, सं.डॉ.एम.फ़ीरोज. थर्ड जेन्डर :कथा आलोचना.अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर. 2017
6. खोत डॉ.सिद्राम कृष्णा. शिवानी के उपन्यासों में समाज. रोली बुक डिस्ट्रीब्युटर्स, कानपुर. 2009
7. जलील, डॉ. वी.के. अब्दुल. समकालीन हिन्दी उपन्यास समय और संवेदना. वाणी प्रकाशन, दिल्ली. 2006
8. जैमिनी, अंजु दुआ. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में संघर्ष और संचेतना. कल्याणी शिक्षा परिषद, दिल्ली. 2016
9. जाधव, डॉ. मीना. चित्रा मुद्गल व्यक्तितव एवं कृतित्व अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर. 2015
10. टंडन, डॉ. प्रताप नारायण. हिंदी कहानी कला. हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ. 1970
11. तिवारी, डॉ. विश्वनाथ. बीसवी सदी का हिन्दी साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,2005
12. तिवारी, डॉ.प्रदीप. हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान. अभय प्रकाशन. 1990
13. त्रिवेदी, डॉ. पुनम.राही मासूम रजा का संवेदना और शिल्प.विद्या प्रकाशन.2012
14. थोरात, डॉ. गोरक्ष. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन. अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर.2009
15. द्वेवेदी, डॉ.हजारी प्रसाद. अशोक के फूल. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.2014

16. पाण्डेय, डॉ. शिवशंकर. हिन्दी कहानी: संवेदना और शिल्प (1950-2000). ज्ञान प्रकाशन.2016
17. प्रियंवदा, उषा. पचपन खंभे, लाल दीवारें. राजकमल पेपर बैक्स, दिल्ली.1984
18. प्रेमचंद. गबन. सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद.2016
19. प्रेमचंद. गोदान. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.1988
20. प्रेमचंद. साहित्य का उद्देश्य. हंस, प्रकाशन, इलाहाबाद.1967
21. पाटील, डॉ. कल्पना. चित्रा मुद्गल का कथा-साहित्य. विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2012
22. पाण्डेय इन्दुप्रकाश. हिन्दी के अधुनातन नारी उपन्यास . हिन्दी बुक सेंटर, दिल्ली.2002
23. बाविस्कर, डॉ. राजेन्द्र. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में नारी. रोली प्रकाशक, कानपुर. 2013
24. बांदिवडेकर डॉ. चंद्रकांत. उपन्यास :स्थिति और गति. वाणी प्रकाशन, 1993
25. बाबर, डॉ. सुरेश. भीष्म साहनी के साहित्य का अनुशीलन. अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर.1997
26. भुतड़ा डॉ. घनश्याम दास. समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप. अतुल प्रकाशन, कानपुर.1993
27. भारद्वाज राहूल. नवे दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य विघटन. अमन प्रकाशन, कानपुर
28. मदान, सं.डॉ. इद्रनाथ. हिन्दी कहानी पहचान और परख. लिपि प्रकाशन, दिल्ली.1973
29. मदान, डॉ. इद्रनाथ. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य.राजकमल प्रकाशन दिल्ली.1996
30. मांद्रेकर, डॉ. वृषाली. मार्कण्डेय एवं पुंडलिक नायक का कथासाहित्य. विद्या प्रकाशन, कानपुर.2008
31. मेहरा, सं. डॉ. दिलीप. हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर समाज. माया प्रकाशन. कानपुर.2018
32. मोहन विजय. भेद खोलेगी बात ही. सामयिक प्रकाशन, दिल्ली.2002
33. मिश्र, रामपरश. हन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.1977
34. मिश्रा, डॉ. अर्चना. चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में युग-चिंतन. भारती पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, फ़ैजाबाद.2008
35. वाजपेयी नंददुलारे. नया साहित्य नये प्रश्न.विद्या मदिर, बनारस.1955
36. वारद डॉ. विजया. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएँ. विकास प्रकाशन,कानपुर.1993.
37. वेंकटेश्वर, डॉ. एम. हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यासकार. अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर.2002

38. लाल, डॉ. लक्ष्मीनारायण. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास. साहित्य भवन, प्रा.लि.इलाहाबाद.1974.

39. शर्मा, डॉ. नीरज. अन्तिम दशक की हिन्दी कहानियाँ: संवेदना और शिल्प. वाणी प्रकाशन, दिल्ली. 2011

40. शर्मा, डॉ. जोत्सना. शिवानी का हिंदी साहित्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य में. अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर.1994

41. शर्मा, डॉ. नीरज. अंतिम दशक की हिन्दी कहानियाँ: संवेदना और शिल्प. वाणी प्रकाशन.2011

42. शर्मा, क्षमा. स्त्रीवादी विमर्श: समाज और साहित्य. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.2002

43. शर्मी, डॉ.प्रदीप. हिन्दी उपन्यासों का शिल्प-विधान. अभय प्रकाशन, कानपुर.1990

44. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद. 2002

45. शुक्ला, डॉ. शालिनी. चित्रा मुद्गल के उपन्यास में नारी चित्रण :विविध आयाम. अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर 2016

46. सिंह, पुष्पमाल. समकालीन कहानी रचना मुद्रा.राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली.1986

47. सिंह पुष्पमाल. हिन्दी गद्य इधर की उपलब्धियां. वाणी प्रकाशन, दिल्ली.2004

48. सिंह पुष्पमाल.समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, नेशनल पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली.1996

49. सिंह, डॉ. जवाहर. हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.1986

50. सोबती कृष्णा. जींदगीनामा. राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद.1979

परिशिष्ट - III

पत्र-पत्रिकाएँ

1. अनुसंधान (त्रैमासिक शोध पत्रिका), अक्टूबर-दिसंबर 2017,
2. अमिताभ वेदप्रकाश. समीक्षा. जुलाई-सितंबर 1993, पृ.22
3. अवस्थी,सं.देवीशंकर. अश्क,उपेंद्रनाथ. लेख नयी कहानी:संदर्भ और प्रकृति.
4. अहमद , सं. डॉ. एम. फीरोज. वाङमय. त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका, जनवरी-मार्च -2017.
5. आजकल पत्रिका (सन् 2002),
6. किशोर गिरिराज. संडे ऑब्जर्वर, 2 जून 1991
7. कुमार, धनंजय. राष्ट्रीय सहारा. 11 नवंबर 2002
8. गर्ग मृदुला. कथादेश. अगस्त 2000.
9. गुप्त, सं.संजय. दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण) दैनिक हिन्दी समाचार पत्र , रविवारीय अंतराल के अंतर्गत 'अपनों की अनदेखी का दर्द', क्षमा शर्मा, नई दिल्ली, 11 जून 2017)
10. चित्रा मुद्गल से दिल्ली स्थित उनके निवास स्थान पर साक्षात्कार. दि.27 जून,2004
11. जयमोहन, प्रो.एम.एस. संग्रथन. मार्च, 2006
12. डॉ. महेश्वर .चौथी दुनिया. 18-24 अक्तूबर, 1987. पृ12
13. तिवारी विश्वमोहन. वैचारिकी संकलन. सितंबर, 1997
14. दीक्षित, दामेदर दत्त . सुजाता. सितंबर,1993,पृ.39
15. दर्पण महेश.आजकल. फरवरी 2003.
16. दीक्षित, दामोदरदत्त.अमर उजाला. 26 सितंबर 1993
17. नया प्रतीक- वर्ष 2, अंक 5, मई 1975, पृ.27-28
18. पंकज से चित्राजी की बातचित . राष्ट्रिय सहारा, 29 अप्रैल 2001
19. बडोले, डॉ. भगीरथ. प्रकर. अप्रैल 1991. पृ.43

20. बांदिवडेकर, चंद्रकांत. सारिका . पृ. 16-30 अप्रैल 1984

21. भारद्वाज भारत. पल-प्रतिपल, जनवरी-जून 1993. पृ.219

22. मदान ब्रजेश्वर. दिनमान. 25 अगस्त 1987

23. मनु प्रकाश. हिन्दुस्तान. नई दिल्ली, 17 फरवरी 1991

24. मुद्गल चित्रा. नवभारत टाइम्स. 12 जून 1988

25. मुद्गल चित्रा. 'नवभारत'. दिल्ली, 18 दिसंबर, 1994

26. मुद्गल चित्रा. जिनावर. सवाल दर सवाल

27. मुद्गल चित्रा. मनोरमा.जुलाई 1994

28. मुद्गल चित्रा. आजकल पत्रिका हीरक जयंती वर्ष दिसंबर 2004

29. मुद्गल चित्रा. लोकशासन. 19 जुलाई,1995

30. यादव, डॉ. वीरेन्द्र नारायण. हिन्दी अनुशीलन. मार्च जून, 2007.

31. रेडियो टॉकिज-रायटर्स जर्नी मुलाकात

32. लोकायतन-परितोष चक्रावर्ती, 31 दिसंबर 2003

33. लोकशासन.19 जुलाई 95

34. श्रीकांत लेखा- श्रीनिवास. यथार्थ एवं गल्प की सजीव संरचना. हिमप्रस्थ जानकी 2003

35. श्रीवास्तव ललितेश्वर और रविवार्ती नंद किशोर त्रिखा - नवभारत टाइम्स नई दिल्ली 10 अगस्त 1980 में प्रकाशित 'प्रजातंत्र' में विरोध की भूमिका' नामक लेख, पृ.1

36. शर्मा, जानकी प्रसाद . समकालीन भारतीय साहित्य. मई-जून 1997

37. शर्मा लता .हंस, सितंबर 2003.

38. सिंह पुष्पमाल. शीराजा. अगस्त- सितंबर-1991

39. सिंह रामधारी 'दिनकर'. ईर्ष्या-तू न गई मेरे मन से

40. श्री. नवल जी (संपा.) नालंदा विशाल शब्द सागर.

41. सहाय डॉ. साकेत. वातायन संगोष्ठी.

परिशिष्ट - IV

शब्द कोश

1. अभिनव पर्यायवाची कोश.

2. Encyclopaedia American Vol.26, pg.no.168

3. वर्मा, (संपा.) धिरेंद्र. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 व 2 ज्ञानमंडल लि. वाराणसी, संस्करण 2000
4. कपूर, डॉ.बदरीनाथ . वैज्ञानिक परिभाषा कोश.
5. चतुर्वेदी, द्वारिका प्रसाद. झा, तारिणीश. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभम्.
6. तिवारी, आदित्य नारायण. शिक्षा मनोविज्ञान भाग-1.
7. डॉ. नगेंद्र. मानविकी पारिभाषिक कोश-साहित्यखंड
8. बाहरी, सं.डॉ.हरदेव. हिन्दी शब्द कोश,
9. बृहत् हिन्दी कोश.- कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव. ज्ञानमंडल लिमीटेड, वाराणसी 2001
10. मानविकी पारिभाषिक कोश.
11. वर्धा हिन्दी शब्दकोश.
12. वर्मा, रामचंद्र. मानक हिन्दी कोश (पाँचवां खंड
13. शब्दार्थ विचार कोश.
14. डॉ. नगेंद्र. मानविकी पारिभाषिक कोश-साहित्यखंड
15. दीक्षित, आनंद प्रकाश . हिन्दी साहित्य कोश भाग-1.
16. पांडेय, रामशकल. शिक्षा मनोविज्ञान.
17. बाहरी , डॉ. हरदेव.हिन्दी शब्दकोश. राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली
18. वर्मा, डॉ. रामचंद्र. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर. नागरी प्रचारिणी सभा काशी, अष्टम संस्करण
19. वर्मा, सं.रामचंद्र. मानक हिन्दी कोश खंड-5.
20. समाजशास्त्र विश्व कोश.

परिशिष्ट - V

वेब कड़ियाँ

1. www-wekipedia. chitra.mudgal com
2. www. chitra.mudgal.com
3. www.chitra.mudgal.into